स्मृति-सन्दर्भः

श्रीमद्भिः महर्षिभिः प्रणीतः धर्मशास्त्र संग्रहः

THE SMṚTI-SANDARBHA

(A COLLECTION OF DHARMAŚĀSTRAS)
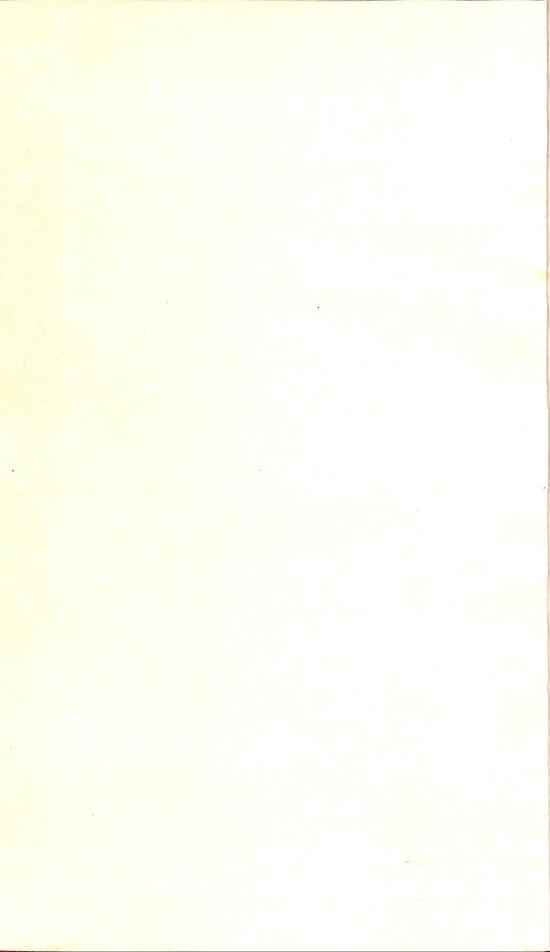
स्मृति-सन्दर्भः

श्रीमन्महर्षिप्रणीत—धर्मशास्त्रसंग्रहः

पराशरादिचतुष्टयस्मृत्यात्मकः

द्वितीयो भागः

नाग प्रकाशक

११ ए/यू. ए., जवाहर नगर, दिल्ली-७

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के आर्थिक अनुदान से प्रकाशित

नाग प्रकाशक

1. 11 A/U. A. जवाहरनगर, दिल्ली-110007
2. 8 A/3 U. A. जवाहरनगर, दिल्ली-110007
3. जलालपुरमाफी (चुनार-मिर्जापुर) उ० प्र०

ISBN : 81-7081-170-8 (Set)

संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण

१९८८

छः भागों के

नागशरण सिंह, नाग प्रकाशक, जवाहर नगर, दिल्ली-७ द्वारा प्रकाशित
तथा न्यू ज्ञान आफसेट प्रिंटर्स, शाहजादा बाग, दिल्ली द्वारा मुद्रित

THE
SMRITI SANDARBHA

COLLECTION OF THE FOUR DHARMASHASTRIC TEXTS BY MAHARSHIES.

Volume II

NAG PUBLISHERS
11.A/U.A. JAWAHAR NAGAR (P. O. BUILDING)
DELH-110007

This Publication has been brought out with the financial assistance from the Govt. of India, Ministry of Human Resource Development.

(If any defect is found in this volume, please return the copy per VPP for postage to the Publisher for free exchange.)

NAG PUBLISHERS

(i) 11A/ U.A. Jawahar Nagar, Delhi-110007

(ii) 8A/3 U.A. Jawaharnagar, Delhi-110007

(iii) Jalalpur Mafi (Chunar-Mirzapur) U. P.

ISBN 81-7081-170-8 (Set)

1988

per 7 vols. set
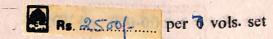
PRINTED IN INDIA

Published by Nag Sharan Singh for Nag Publishers, 11A/U.A. Jawaharnagar, Delhi-110007 and printed at New Gian Offset Printers, Delhi.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ स्मृतिसन्दर्भस्य द्वितीयभागस्थ मुद्रितस्मृतीनां नामनिर्देशः ।

मुद्रा करकाराघातकातरा कापि भारती ।
करुणार्द्रकरस्पर्शैः सुधियः सान्त्वयन्तु ताम् ॥१॥
स्मृतिवचनमयेऽस्मिन् संग्रहेचेदशुद्धिः ।
सदय हृदयमद्भिः शोधनीया महद्भिः ॥
प्रभवतु परितुष्टिः सर्वथाऽलोकनेन ।
मिलितकरयुगाभ्यां याचये श्रीमहेशः ॥२॥

इतिविदुषामनुचरस्य—
श्रीमहेश्वरमिश्रस्य
(मैथिलस्य)

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

स्मृतिसन्दर्भ द्वितीयभाग की विषय-सूची

पराशरस्मृति के प्रधान विषय ।

अध्याय	प्रधानविषय	पृष्ठाङ्क

वर्तमान कलियुग में पराशर स्मृति का मुख्य स्थान माना गया है। पराशर संहिता दो उपलब्ध हैं पराशरस्मृति और बृहत्पराशर। पराशर स्मृति में द्वादश अध्याय हैं, बृहत्पराशर में भी उतनी ही ! प्रथमाध्याय में दोनों स्मृतियों में एक जैसा वर्णन "कलौपाराशरीस्मृता" दूसरे अध्याय से बृहत्पराशर में कुछ विशेष बातें और विचार वर्णन किया है। पराशरस्मृति किसी देश विशेष, संप्रदाय विशेष, जाति विशेष को लेकर धर्माख्या नहीं करती है, अपि तु मनुष्यमात्र का पथ-प्रदर्शित यह स्मृति करती है। इसके प्रारम्भ में ऋषियों ने इस प्रकार प्रश्न किया।

"मानुषाणां हितं धर्मं वर्तमाने कलौयुगे
शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत !"

वर्तमान कलियुग में मनुष्यमात्र का हित जिससे हो वह धर्म कहिए और ठीक-ठीक रीति से शौचाचार की रीति भी बतला दीजिये—ऋषियों के प्रश्न करने पर व्यासजी ने उत्तर दिया कि कलियुग के सार्वभौम धर्म के विकाश करने में अपने पिता पराशरजी की प्रतिभा शक्ति की सामर्थ्य कही यतः पराशरजी निरन्तर एकान्त बदरिकाश्रम की तपोभूमि में आसीन हैं। तपोमय भूमि में तपस्यारूपी साधन के बिना कलियुग के धर्म, व्यवहार, मर्यादा पद्धति का पर्षदीकरण अवैध सूचित किया ऋषियों ने इस बात पर विचार किया कि कलियुग के मनुष्य किसी धर्म मर्यादा की पर्षद् बुलाने की क्षमता नहीं रख सकते हैं यावत् तपोमय जीवन से इन्द्रियों की उपरामता न हो जाय यतः इन्द्रिय भोग विलासिता के जीवनवाले वेद शास्त्रपारंगता प्राप्त करने पर भी धर्म, न्याय विधिको नहीं बना सकते हैं। अतः विधि, नियम रूपी धर्म व्यवहार के लिये

"यदि जानासि मे भक्तिं स्नेहाद्वा भक्तवत्सल !
धर्मं कथय मे तात ! अनुग्राह्योह्ययं तव" ॥

(पुत्र पिता से सर्वोच्च वस्तु क्या चाहता है यह समुदाचार इस प्रश्न से सरलता से ज्ञात हो रहा है) व्यासजी कहते हैं कि भगवन् ! यदि मेरी भक्ति को आप जानते हैं या मेरे स्नेह को तो मुझे धर्म का उपदेश कीजिये जिससे मैं आपका अनुगृहीत होऊंगा। पुत्र पिता से सबसे बड़ा धन धर्म मांगता है यह भारत की संस्कृति है (एक ओर व्यासजी की पिता की निधि धर्म जिज्ञासा, दूसरी ओर संसार में देखो पैतृक धन संपत्ति पर न्यायालयों में पुत्र पिता पर अभियोग चलाते हैं) इससे सांस्कृतिक जीवन, असांस्कृतिक जीवन का सरलता से ज्ञान हो जायगा। संस्कृति उसे कहते हैं जिससे धर्म

अध्याय | प्रधान विषय | पृष्ठाङ्क

अध्याय प्रधान विषय पृष्ठाङ्क

बृहत् पराशरस्मृति के प्रधान विषय

ह। सतयुग को ब्राह्मण युग, त्रेता को क्षत्रिय युग, द्वापर को वैश्य युग तथा कलियुग को शूद्र युग बताया है। वर्णाश्रम धर्म की क्षमता उस भूमि में बताई है जिसमें कृष्णसार मृग स्वभावतः स्वतंत्रता पूर्वक विचरण करते हैं। हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य देश को पावन देश बताया है और अन्य देश जहाँ से नदियाँ साक्षात् समुद्रगामिनी हैं उन्हें भी तीर्थस्थान बताया है। इसमें पराशरजीने अपने पुत्र व्यास को द्विज कर्म और षट्कर्म वर्ण धर्म की प्रशंसा और गो बृषभ का पालन पशुपालन विधि

षट्कर्म वर्णधर्माश्च प्रशंसा गोवृषस्य च।
अदोह्य-वाह्यौ यौ तत्र क्षीरं क्षीरप्रयोक्त्रिणा॥
अमावास्या निषिद्धानि ततश्च पशुपालनम्॥

विवाह संस्कार, व्रतचर्यादि, पुत्रजन्म, अखिल गृहस्थधर्म का उपदेश, भक्ष्याभक्ष्य की व्यवस्था, द्रव्य शुद्धि, अध्ययनाध्यापन का समय, श्राद्ध कर्म, नारायणबली, सूतक तथा अशौच, प्रायश्चित्त विधान, दानविधि तथा फल, भूमिदान की प्रशंसा, इष्टापूर्त कर्म, ग्रहों की शान्ति, वानप्रस्थ धर्म, चारों आश्रम, दो मार्ग, अर्चि तथा धूम मार्ग इन सबका वर्णन यथानुपूर्व वृहत् पराशर के द्वादश अध्याय में बताया है (३६-६४)।

अध्याय प्रधानविषय पृष्ठाङ्क

यस्याः शिरसि ब्रह्माऽऽस्ते स्कन्धदेशे शिवः स्थितः।
पृष्ठे नारायणस्तस्थौ श्रुतयश्चरणेषु च॥
या अन्या देवताः काश्चित्तस्या लोमसुताःस्थिताः।
सर्वदेवमया गावस्तुष्येत्तद्भक्तितो हरिः॥

स्पृष्टाश्च गावः शमयन्ति पापं,
संसेविताश्चोपनयन्ति वित्तम्।
ता एव दत्तास्त्रिदिवं नयन्ति,
गोभिर्नतुल्यं धनमस्ति किञ्चित्॥

कृषि के सम्बन्ध में बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। अन्त में यह बताया है—

५ "कृषेरन्यतमोऽधर्मो न लभेत्कृषितोऽन्यतः।
न सुखं कृषितोऽन्यत्र यदि धर्मेण कर्षति" ॥

अर्थात् कृषि के तुल्य दूसरा कोई धर्म नहीं एवं कृषि के तुल्य और कोई व्यवहार इतना लाभदायक नहीं। कृषि करने में ही बड़ा सुख है यदि धर्मानुकूल कृषि की जाय। (१५६-१६५)।

कन्याओं के आठ प्रकार के विवाह होते हैं। अपनी जाति में वर के लक्षण देखकर वस्त्राभूषण से सुसज्जित कर जो कन्या दी जाती है उसको ब्राह्म विवाह कहते हैं। लड़के का लक्षण देखना परमावश्यक है। जिसके पेशाब में फेन निकले वह पुरुष होता है। ऐसा न होने पर नपुंसक होता है। यज्ञ करते हुए यज्ञ करनेवाले को वस्त्राभूषण से सुसज्जित जो कन्या दी जाती है इसे दैव विवाह कहते हैं। वर कन्या के समान हो और गुण-

अध्याय प्रधानविषय पृष्ठाङ्क

अध्याय | प्रधानविषय | पृष्ठाङ्क

श्री बृहत्पराशर स्मृतिस्थ विषयानुक्रमणिका समाप्ता।

अध्याय प्रधानविषय पृष्ठाङ्क

लघुहारीतस्मृति के प्रधान विषय

वृद्धहारितस्मृति के प्रधान विषय

अध्याय प्रधानविषय पृष्ठाङ्क

पौराणिक तथा स्मृति के मन्त्रों से भगवान् विष्णु का पूजन और नवधा भक्ति का वर्णन, ध्यानजप, मन्त्रजप का वर्णन, तप्तचक्रांक धारण का माहात्म्य और वैष्णव धर्मवालों की प्रशस्ति बताई है।

"दानं दमः तपः शौचं आर्जवं शान्तिरेव च
आनृशंसं सतां संग पारमैकान्त्य हेतवः।
वैष्णवः परमेकान्तो नेतरो वैष्णवःस्मृतः॥

पूजा का माहात्म्य और भिन्न भिन्न प्रकार से जो भगवान् विष्णु की पूजा उत्सव यज्ञ दान बताये हैं, इन सबका तात्पर्य यह है कि भक्त पर विष्णु भगवान् की कृपा हो जाय। जिसपर वैष्णव संस्कारों से विष्णु भगवान् की कृपा या आशिर्वाद हो जाता है उनका जीवन-चरित्र ऐसा होता है—दान करना, दम इन्द्रियों का दमन, तप तपस्या, शौच पवित्रता, आर्जव सरलता, शान्ति क्षमा, आनृशंसं सत्य वचन, सज्जनों का

स्मृति सन्दर्भ द्वितीय भाग की विषय-सूची समाप्त।

॥ शुभम् ॥

—❀::❀—

॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

श्रीमन्महर्षि पराशरप्रणीता-

॥ पराशरस्मृतिः ॥

—:०००:—

प्रथमोऽध्यायः ।

—००—

श्रीगणेशायनमः ।

तत्रादौ—धर्मोपदेशंतल्लक्षणञ्चाह—

अथातो हिमशैलाग्रे देवदारुवनालये ।
व्यासमेकाग्रमासीनमपृच्छन्नृषयः पुरा ॥१
मानुषाणां हितं धर्मं वर्त्तमाने कलौ युगे ।
शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत ! ॥२
तच्छ्रुत्वा ऋषिवाक्यन्तु समिद्धाग्न्यर्कसन्निभः ।
प्रत्युवाच महातेजाः श्रुतिस्मृतिविशारदः ॥३
नचाहं सर्व्वतत्त्वज्ञः कथं धर्मं वदाम्यहं ।
अस्मत् पितैव प्रष्टव्य इति व्यासः सुतोऽवदत् ॥४

ततस्ते ऋषयः सर्व्वे धर्मतत्त्वार्थकाङ्क्षिणः ।
ऋषिं व्यासं पुरस्कृत्य गता वदरिकाश्रमे ॥५
नानावृक्षसमाकीर्णं फलपुष्पोपशोभितम् ।
नदीप्रस्रवणाकीर्णं पुण्यतीर्थैरलङ्कृतम् ॥६
मृगपक्षिगणाढ्यञ्च देवतायतनावृतम् ।
यक्षगन्धर्व्वसिद्धैश्च नृत्यगीतसमाकुलम् ॥७
तस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रं पराशरम् ।
सुखासीनं महात्मानं मुनिमुख्यगणावृतम् ॥८
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा व्यासस्तु ऋषिभिः सह ।
प्रदक्षिणाभिवादैश्च स्तुतिभिः समपूजयत् ॥९
अथ सन्तुष्टमनसाः पराशरमहामुनिः ।
आह सुस्वागतं ब्रूहीत्यासीनो मुनिपुङ्गवः ॥१०
व्यासः सुस्वागतं ये च ऋषयश्च समन्ततः ।
कुशलं कुशलेत्युक्त्वा व्यासः पृच्छत्यतः परम् ॥११
यदि जानासि मे भक्तिं स्नेहाद्वा भक्तवत्सल !
धर्मं कथय मे तात ! अनुग्राह्योह्यहं तव ॥१२
श्रुता मे मानवा धर्म्मा वाशिष्ठाः काश्यपास्तथा ।
गार्गेया गौतमाश्चैव तथा चौशनसाः स्मृताः ॥१३
अत्रेर्विष्णोश्च साम्वर्त्ता दाक्षा आङ्गिरसास्तथा ।
शातातपाश्च हारीता याज्ञवल्क्यकृताश्च ये ॥१४
कात्यायनकृता श्चैव प्राचेतसकृताश्च ये ।
आपस्तम्बकृता धर्म्माः शङ्खस्य लिखितस्य च ॥ १५

श्रुता ह्येते भवत्प्रोक्ताः श्रौतार्थास्तेन विस्मृताः ।
अस्मिन्मन्वन्तरे धर्म्माः कृतत्रेतादिके युगे ॥१६

सर्व्वे धर्म्माः कृते जाताः सर्वे नष्टाः कलौ युगे ।
चातुर्वर्ण्यसमाचारं किञ्चित् साधारणं वद ॥१७

व्यासवाक्यावसाने तु मुनिमुख्यः पराशरः ।
धर्मस्य निर्णयं प्राह सूक्ष्मं स्थूलञ्च विस्तरात् ॥१८

शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्येऽहं शृण्वन्तु ऋषयस्तथा ॥१६

कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्तौ ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
श्रुतिः स्मृतिः सदाचारा निर्णेतव्याश्च सर्वदा ॥२०

न कश्चिद्वेदकर्त्ता च वेदस्मर्त्ता चतुर्मुखः ।
तथैव धर्मं स्मरति मनुः कल्पान्तरान्तरे ॥२१

अन्ये कृतयुगे धर्म्मास्त्रेतायां द्वापरे परे ।
अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपानुसारतः ॥२२

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञमित्यूचुर्दानमेकं कलौ युगे ॥२३

कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमः स्मृतः ।
द्वापरे शाङ्खलिखितः कलौ पाराशरः स्मृतः ॥२४

त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ।
द्वापरे कुलमेकन्तु कर्त्तारञ्च कलौ युगे ॥२५

कृते सम्भाषणात् पापं त्रेतायाञ्चैव दर्शनात् ।
द्वापरे चान्नमादाय कलौ पतति कर्मणा ॥२६

कृते तु तत्क्षणाच्छापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः।
द्वापरे मासमात्रेण कलौ सम्वत्सरेण तु ॥२७
अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते।
द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ ॥२८
अभिगम्योत्तमं दानमाहूतञ्चैव मध्यमम्।
अधमं याच्यमानं स्यात् सेवादानञ्च निष्फलम् ॥२९
कृते चास्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांससंस्थिताः।
द्वापरे रुधिरं यावत् कलावन्नादिषु स्थिताः ॥३०
धर्मो जितो ह्यधर्मेण जितः सत्योऽनृतेन च।
जिता भृत्यैस्तु राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषा जिताः ॥३१
सीदन्ति चाग्निहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति।
कुमार्य्यश्च प्रसूयन्ते तस्मिन् कलियुगे सदा ॥३२
युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः।
तेषां निन्दा न कर्त्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः ॥३३
युगे युगे च सामर्थ्यं शेषं मुनिविभाषितम्।
पराशरेण चाप्युक्तं प्रायश्चित्तं प्रधीयते ॥३४
अहमद्यैव तद्धर्ममनुस्मृत्य ब्रवीमि वः।
चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ! ॥३५
पाराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।
चिन्तितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥३६
चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः।
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥३७

षट्कर्माभिरतो नित्यं देवतातिथिपूजकः ।
हुतशेषन्तु भुञ्जानो ब्राह्मणो नावसीदति ॥३८
सन्ध्यास्नानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ।
वैश्वदेवातिथेयञ्च षट्कर्म्माणि दिने दिने ॥३६
प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव वा ।
वैश्वदेवे तु संप्राप्तः सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥४०
दूराद्ध्वानं पथि श्रान्तं वैश्वदेवे उपस्थितम् ।
अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः ॥४१
न पृच्छेद्गोत्रचरणं न स्वाध्यायव्रतानि च ।
हृदयं कल्पयेत्तस्मिन् सर्वदेवमयोहि सः ॥४२
नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं साङ्गमिकं तथा ।
अनित्यं ह्यागतो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥४३
अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वो वातिथिस्तथा ।
वेदाभ्यासरतो नित्यं त्रयोऽपूर्वा दिने दिने ॥४४
वैश्वदेवे तु संप्राप्ते भिक्षुके गृहमागते ।
उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥४५
यती च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ ।
तयोरन्नमदत्वा च भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥४६
यतिहस्ते जलं दद्याद्भैक्षं दद्यात् पुनर्जलम् ।
तद्भैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥४७
वैश्वदेवकृतान् दोषान् शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ।
नहि भिक्षु कृतान् दोषान् वैश्वदेवो व्यपोहति ॥४८

अकृत्वा वैश्वदेवन्तु भुञ्जते ये द्विजातयः।
सर्वे ते निष्फला ज्ञेयाः पतन्ति नरके शुचौ ॥४६
शिरोवेष्टन्तु यो भुङ्क्ते योभुङ्क्ते दखिणामुखः।
वामपादे करं न्यस्य तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥५०
यतये काञ्चनं दत्त्वा ताम्बूलं ब्रह्मचारिणे।
चौरेभ्योऽप्यभयं दत्त्वा दातापि नरकं व्रजेत् ॥५१
पापोवा यदि चाण्डालो विप्रघ्नः पितृघातकः।
वैश्वदेवे तु सम्प्राप्तः सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥५२
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्त्तते।
पितरस्तस्य नाश्नन्ति दशवर्षशतानि च ॥५३
न प्रसङ्ग्याति गो विप्रो ह्यतिथिं वेदपारगम्।
अददन्नान्नमात्रन्तु भुक्त्वा भुङ्क्ते तु किल्विषम् ॥५४
ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निरुदकमकण्टकम्।
वापयेत् सर्व्ववीजानि सा कृषिः सर्वकामिका ॥५५
सुक्षेत्रे वापयेद्वीजं सुपुत्रे दापयेद्धनं।
सुक्षेत्रे च सुपुत्रे च यत्क्षिप्तं नैव नश्यति ॥५६
अनृता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः।
तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चौरभक्तप्रदो हि सः ॥५७
क्षत्रियोहि प्रजा रक्षन् शस्त्रपाणिः प्रचण्डवत्।
विजित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत् ॥५८
न श्रीः कुलक्रमायाता स्वरूपाल्लिखितापि या।
खड्गेणाक्रम्य भुञ्जीत वीरभोग्या वसुन्धरा ॥५६

पुष्पं पुष्पं विचिनुयान्मूलच्छेदं न कारयेत् ।
मालाकार इवोद्याने न तथाङ्गारकारकः ॥६०

लोहकर्म तथा रत्नं गवाश्व प्रतिपालनम् ।
वाणिज्यं कृषिकर्माणि वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥६१

शूद्राणां द्विजशुश्रूषा परो धर्मः प्रकीर्त्तितः ।
अन्यथा कुरुते किञ्चित्तद्भवेत्तस्य निष्फलम् ॥६२

लवणं मधु तैलञ्च दधि तक्रं घृतं पयः ।
न दूषयेच्छूद्रजातीनां कुर्य्यात् सर्वस्य विक्रयम् ॥६३

अविक्रयं मद्यमांसमभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।
अगम्यागमनञ्चैव शूद्रोऽपि नरकं व्रजेत् ॥६४

कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च ।
वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्य नरकं ध्रुवम् ॥६५

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

गृहस्थाश्रमधर्मवर्णनम् ।

अतःपरं गृहस्थस्य धर्माचारं कलौ युगे ।
धर्मं साधारणं शक्यं चातुर्वर्ण्याश्रमागतम् ॥१

संप्रवक्ष्याम्यहं भूयः पाराशर्य्य प्रचोदितः ।
षट्कर्मनिरतो विप्रः कृषिकर्माणि कारयेत् ॥२

हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं मध्यमं स्मृतम् ।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं वृषघातिनाम् ॥३

क्षुधितं तृषितं श्रान्तं वलीवर्द्दं न योजयेत् ।
हीनाङ्गं व्याधितं क्लीवं वृषं विप्रो न वाहयेत् ॥४

स्थिराङ्गं नीरुजं दृप्तं वृषभं षण्डवर्जितम् ।
वाहयेद्दिवसस्यार्द्धं पश्चात् स्नानं समाचरेत् ॥५

जपं देवार्च्चनं होमं स्वाध्यायं साङ्गमभ्यसेत् ।
एकद्वित्रिचतुर्विप्रान् भोजयेत् स्नातकान् द्विजः ॥६

स्वयंकृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः ।
निर्वपेत् पञ्च यज्ञानि क्रतुदीक्षाञ्च कारयेत् ॥७

तिला रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यतःसमा ।
विप्रस्यैवंविधा वृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रयः ॥८

ब्राह्मणस्तु कृषिं कृत्वा महादोष मवाप्नुयात् ।
सम्वत्सरेण यत्पापं मत्स्यघाती समाप्नुयात् ।
अयोमुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लाङ्गली ॥९

पाशको मत्स्यघाती च व्याधः शाकुनिकस्तथा ।
अदाता कर्षकश्चैव पञ्चैते समभागिनः ॥१०

कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भोऽथ मार्जनी ।
पञ्च शूना गृहस्थस्य अहन्यहनि वर्त्तते ॥११

वृक्षान् छित्वा महीं हत्वा हत्वा तु मृगकीटकान् ।
कर्षकः खलु यज्ञेन सर्वपापात् प्रमुच्यते ॥१२

योन दद्याद्द्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः ।
स चौरः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नं तं विनिर्दिशेत् ॥१३
राज्ञे दत्त्वा तु षड्भागं देवानाञ्चैकविंशकम् ।
विप्राणां त्रिंशकं भागं कृषिकर्ता न लिप्यते ॥१४
क्षत्रियोऽपि कृषिं कृत्वा द्विजान् देवांश्च पूजयेत् ।
वैश्यः शूद्रः सदा कुर्यात् कृषिवाणिज्यशिल्पकान् ॥१५
विकर्म कुर्वते शूद्रा द्विजसेवाविवर्जिताः ।
भवन्त्यल्पायुषस्ते वै पतन्ति नरकेषु च ॥१६
चतुर्णामपिवर्णानामेष धर्मः सनातनः ॥१७

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

अशौचव्यवस्थावर्णनम् ।

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा ।
दिनत्रयेण शुद्ध्यन्ति ब्राह्मणाः प्रेतसूतके ॥१
क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहकैः ।
शूद्रः शुद्धति मासेन पराशरवचो यथा ॥२
उपासने तु विप्राणामङ्गशुद्धिस्तु जायते ।
ब्राह्मणानां प्रसूतौ तु देहस्पर्शो विधीयते ॥३
जाते विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥४

एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः।
त्र्यहात् केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥५

जन्मकर्मपरिभ्रष्टः सन्ध्योपासनवर्जितः।
नामधारकविप्रस्य दशाहं सूतकं भवेत् ॥६

एकपिण्डास्तु दायादाः पृथग्दारनिकेतनाः।
जन्मन्यपि विपत्तौ च भवेत्तेषाञ्च सूतकम् ॥७

उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते।
दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्त्तते ॥८

प्राप्नोति सूतकं गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु।
दायाद्विच्छेदमाप्नोति पञ्चमो वात्मवंशजः ॥९

चतुर्थे दशरात्रं स्यात् षण्निशा पुंसि पञ्चमे।
षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे तु दिनत्रयम् ॥१०

पञ्चभिः पुरुषैर्युक्ता अश्राद्धेया सगोत्रिणः।
ततः षट्पुरुषाद्यश्च श्राद्धे भोज्याः सगोत्रिणः ॥११

भृग्वग्निमरणे चैव देशान्तरमृते तथा।
वाले प्रेते च सन्न्यासे सद्यः शौचं विधीयते ॥१२

दशरात्रेष्वतीतेषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते।
ततः सम्वत्सरादूर्द्ध्वं सचैलं स्नानमाचरेत् ॥१३

देशान्तरमृतः कश्चित् सगोत्रः श्रूयते यदि।
न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा विशुद्ध्यति ॥१४

आत्रिपक्षात्त्रिरात्रं स्यादाषण्मासाच्च पक्षिणी।
अहः सम्वत्सरादर्वाक् सद्यः शौचं विधीयते ॥१५

अजातदन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिःसृताः ।
न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥१६

यदि गर्भोविपद्येत स्रवते वापि योषिताम् ।
यावन्मासं स्थितोगर्भो दिनं तावत् स सूतकः ॥१७

आ चतुर्थाद्भवेत् स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः ।
अत ऊद्‌र्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ॥१८

प्रसूतिकाले संप्राप्ते प्रसवे यदि योषिताम् ।
जीवापत्ये तु गोत्रस्य मृते मातुश्च सूतकम् ॥१६

रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके ।
पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः ॥२०

दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूड़े च संस्थिते ।
अग्निसंस्करणं तेषां त्रिरात्रं सूतकं भवेत् ॥२१

आ दन्तजननात् सद्य आचूड़ान्नैशिकी स्मृता ।
त्रिरात्रमाव्रतात्तेषां दशरात्रमतः परम् ॥२२

गर्भे यदि विपत्तिः स्यात्दशाहं सूतकं भवेत् ।
जीवन् जातो यदि प्रेतः सद्य एव विशुद्ध्यति ॥२३

स्त्रीणां चूड़ान्न आदानात् संक्रमात्तदधःक्रमात् ।
सद्यः शौचमथैकाहं त्रिरहः पितृबन्धुषु ॥२४

ब्रह्मचारी गृहे येषां हूयते च हुताशने ।
सम्पर्कं न च कुर्वन्ति न तेषां सूतकं भवेत् ॥२५

सम्पर्काद्दुष्यते विप्रो नान्यो दोषोऽस्ति ब्राह्मणे ।
सम्पर्केषु निवृत्तस्य न प्रेतं नैव सूतकम् ॥२६

शिल्पिनः कारुका वैद्या दासीदासाश्च नापिताः।
श्रोत्रियाश्चैव राजानः सद्यः शौचाः प्रकीर्त्तिताः॥२७
सव्रती मन्त्रपूतश्च आहिताग्निश्च यो द्विजः।
राज्ञश्च सूतकं नास्ति यस्य चेच्छति पार्थिवः॥२८
उद्यतो निधने दाने आर्त्तो विप्रो निमन्त्रितः।
तदेव ऋषिभिर्दृष्टं यथाकालेन शुद्ध्यति॥२९
प्रसवे गृहमेधी तु न कुर्य्यात् सङ्करं यदि।
दशाहाच्छुद्ध्यते माता अवगाह्य पिता शुचिः॥३०
सर्वेषां त्र्यावमाशौचं मातापित्रोर्दशाहिकं।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः॥३१
यदि पत्न्यां प्रसूतायां सम्पर्कं कुरुते द्विजः।
सूतकन्तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षड़ङ्गवित्॥३२
सम्पर्काज्जायते दोषो नान्यो दोषोऽस्ति ब्राह्मणे।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सम्पर्कं वर्जयेद्द्विजः॥३३
विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके।
पूर्वं सङ्कल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दूष्यति॥३४
अन्तरा तु दशाहस्य पुनर्मरणजन्मनी।
तावत् स्यादशुचिर्विप्रोयावत्तत् स्यादनिर्दशम्॥३५
ब्राह्मणार्थे विपन्नानां वन्दिगोग्रहणे तथा।
आहवेषु विपन्नानामेकरात्रन्तु सूतकम्॥३६
द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदकौ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखे हतः॥३७

यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः।
अक्षयांल्लभते लोकान् यदि क्लीवं न भाषते ॥३८
जितेन लभते लक्ष्मीं मृतेनापि सुराङ्गनाः।
क्षणविध्वंसिकेऽमुस्मिन् का चिन्ता मरणे रणे ॥३९
यस्तु भग्नेषु सैनेषु विद्रवत्सु समन्ततः।
परित्राता यदा गच्छेत् स च क्रतुफलं लभेत् ॥४०
यस्य च्छेदक्षतं गात्रं शरशक्त्यृष्टिमुद्गरैः।
देवकन्यास्तु तं वीरं गायन्ति रमयन्ति च ॥४१
वराङ्गनासहस्राणि शूरमायोधने हतं।
नागकन्याश्च धावन्ति मम भर्त्ता भवेदिति ॥४२
ललाटदेशाद्रुधिरं हि यस्य
तप्तस्य जन्तोः प्रविशेच्च वक्त्रे।
तत् सोमयानेन हि तस्य तुल्यं
संग्रामयज्ञे विधिवच्च दृष्टम् ॥४३
यं यज्ञसंघैस्तपसा च विद्यया
स्वर्गैषिणो वात्र यथैव विप्राः।
तथैव यान्त्येवहि तत्र वीराः
प्राणान् सुयुद्धेन परित्यजन्तः ॥४४
अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः।
पदे पदे यज्ञफलमानुपूर्व्याल्लभन्ति ते ॥४५
असगोत्रमबन्धुञ्च प्रेतीभूतञ्च ब्राह्मणं।
नीत्वा च दाहयित्वा च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥४६

न तेषामशुभं किञ्चिद्द्विजानां शुभकर्मणि।
जलावगाहनात्तेषां शुद्धिः स्मृतिभिरीरिता ॥४७

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा।
स्नात्वा चैव तु स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥४८

क्षत्रियं मृतमज्ञानाद्ब्राह्मणो योऽनुगच्छति।
एकाहमशुचिर्भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥४९

शवञ्च वैश्यमज्ञानाद्ब्राह्मणो योऽनुगच्छति।
कृत्वा शौचं द्विरात्रञ्च प्राणायामान् षड़ाचरेत् ॥५०

प्रेतीभूतन्तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः।
नयन्तमनुगच्छेत त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥५१

त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम्।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥५२

विनिर्वर्त्य यदा शूद्रा उदकान्त मुपस्थिताः।
द्विजैस्तदानुगन्तव्या इति धर्मविदोविधिः ॥५३

तस्माद्द्विजो मृतं शूद्रं न स्पृशेन्न च दाहयेत्।
दृष्टे सूर्यावलोकेन शुद्धिरेषा पुरातनी ॥५४

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥

—❀❀❀—

।। चतुर्थोऽध्यायः ।।

अनेकविधप्रकरणप्रायश्चित्तम्।

अतिमानादतिक्रोधात् स्नेहाद्वा यदि वा भयात्।
उद्बध्नीयात् स्त्री पुमान् वा गतिरेषा विधीयते ।।१
पूयशोणितसंपूर्णे अन्धे तमसि मज्जति।
षष्टिं वर्षसहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते।
नाशौचं नोदकं नाग्निं नाश्रुपातञ्च कारयेत् ।।२
वोढारोऽग्निप्रदातारः पाशच्छेदकरास्तथा।
तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः ।।३
गोभिर्हतं तथोद्बद्धं ब्राह्मणेन तु घातितम्।
संस्पृशन्ति तु ये विप्रा वोढारश्चाग्निदाश्च ये ।।४
अन्येऽपि वानुगन्तारः पाशच्छेदकराश्च ये।
तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्ति कुर्य्युर्ब्राह्मणभोजनम् ।।५
अनडुत्सहितां गाञ्च दद्युर्विप्राय दक्षिणाम्।
त्र्यहमुष्णं पिबेद्वापस्त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत्।
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रयम् ।।६
यो वै समाचरेद्विप्रः पतितादिष्वकामतः।
पञ्चाहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ।।७
मासार्द्धं मासमेकं वा मासद्वयमथापि वा।
अब्दार्द्धमब्दमेकं वा तदूर्ध्वं चैव तत्समः ।।८

त्रिरात्रं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्माचरेत्।
तृतीये चैव पक्षे तु कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥९
चतुर्थे दशरात्रं स्यात् पराकः पञ्चमे मतः।
कुर्य्याच्चान्द्रायणं षष्ठे सप्तमे त्वैन्दवद्वयम ॥१०
शुद्ध्यर्थमष्टमे चैव षण्मासात् कृच्छ्माचरेत्।
पक्षसंख्याप्रमाणेन सुवर्णान्यपि दक्षिणा ॥११
ऋतुस्नाता तु या नारी भर्त्तारं नोपसर्पति।
सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥१२
ऋतौ स्नातान्तु यो भार्य्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥१३
अदुष्टापतितां भार्य्यां यौवने यः परित्यजेत्।
सप्तजन्म भवेत् स्त्रीत्वं वैधव्यञ्च पुनः पुनः ॥१४
दरिद्रं व्याधितं मूर्खं भर्त्तारं या न मन्यते।
सा मृता जायते व्याली वैधव्यञ्च पुनः पुनः ॥१५
ओघवाताहृतं वीजं यथा क्षेत्रे प्ररोहति।
क्षेत्री तल्लभते वीजं न वीजी भागमर्हति ॥१६
तद्वत् परस्त्रियाः पुत्रौ द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ।
पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्त्तरि गोलकः ॥१७
औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः।
दद्यान्माता पिता वापि स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥१८
परिवित्तिः परीवेत्ता यया च परिविद्यते।
सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥१९

दाराग्निहोत्रसंयोगं यः कुर्य्यादग्रजे सति।
परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्व्वजः ॥२०

द्वौ कृच्छ्रौ परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्र एव च।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ दातुश्च होता चान्द्रायणञ्चरेत् ॥२१

कुब्जवामनषण्डेषु गद्गदेषु जड़ेषु च।
जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥२२

पितृव्यपुत्रः सापत्न्यः परनारीसुतस्तथा।
दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ॥२३

ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव चिन्तयेत्।
अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शङ्खस्य वचनं यथा ॥२४

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो न विद्यते ॥२५

मृते भर्त्तरि या नारी ब्रह्मचर्य्ये व्यवस्थिता।
सा मृता लभते स्वर्गं यथा सद्ब्रह्मचारिणः ॥२६

तिस्रः कोट्यर्द्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे।
तावत् कालं वसेत् स्वर्गे भर्त्तारं यानुगच्छति ॥२७

व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलात्।
एवमुद्धृत्य भर्त्तारं तेनैव सह मोदते ॥२८

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

प्रायश्चित्तवर्णनम् ।

श्ववृकाभ्यां शृगालाद्यैर्यदि दष्टस्तु ब्राह्मणः ।
स्नात्वा जपेत गायत्रीं पवित्रां वेदमातरम् ॥१

गवां शृङ्गोदके स्नातो महानद्यास्तु सङ्गमे ।
समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः शुचिर्भवेत् ॥२

वेदविद्याव्रतस्नातः शुना दष्टस्तु ब्राह्मणः ।
स हिरण्योदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥३

सव्रतस्तु शुना दष्टस्त्रिरात्रं समुपोषितः ।
घृतं कुशोदकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥४

अव्रतः सव्रतो वापि शुना दष्टो भवेद्द्विजः ।
प्रणिपत्य भवेत् पूतो विप्रैश्चानुनिरीक्षितः ॥५

शुना घ्रातावलीढस्य नखै र्विलिखितस्य च ।
अद्भिः प्रक्षालनाच्छुद्धिरग्निना चोपचूलनम् ॥६

शुना च ब्राह्मणी दष्टा जम्बुकेन वृकेण वा ।
उदितं सोमनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥७

कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन ।
यां दिशं व्रजते सोमस्तां दिशश्चावलोकयेत् ॥८

असद्ब्राह्मणके ग्रामे शुना दष्टस्तु ब्राह्मणः ।
वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नानाद्विशुध्यति ॥९

चाण्डालेन श्वपाकेन गोभिर्विप्रैर्हतो यदि ।

आहिताग्निर्मृतो विप्रो विषेणात्महतो यदि ।
दहेत्तं ब्राह्मणं विप्रो लोकाग्नौ मन्त्रवर्जितम् ॥१०
स्पृष्ट्वा चोढ्वा च दग्ध्वा च सपिण्डेषु च सर्व्वथा ।
प्राजापत्यं चरेत् पश्चाद्विप्राणामनुशासनात् ॥११
दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरैः प्रक्षालयेद्द्विजः ।
पुनर्दहेत् स्वकाग्नौ तन्मन्त्रेण च पृथक् पृथक् ॥१२
आहिताग्निर्द्विजः कश्चित् प्रवसन् कालचोदितः ।
देहनाशमनुप्राप्तस्तस्याग्निर्वर्त्तते गृहे ॥१३
श्रौताग्निहोत्रसंस्कारः श्रूयतामृषिसत्तमाः ! ॥
कृष्णाजिनं समास्तीर्य्य कुशैश्च पुरुषाकृतिम् ॥१४
षट् शतानि शतञ्चैव पलाशानाञ्च वृन्तकम् ।
चत्वारिंशच्छिरे दद्यात् षष्टिं कण्ठे विनिर्दिशेत् ॥१५
बाहुभ्याञ्च शतं दद्यादङ्गुलीषु दशैव तु ।
शतञ्चोरसि संदद्यात् त्रिंशच्चैवोदरे न्यसेत् ॥१६
अष्टौ वृषणयोर्दद्यात् पञ्च मेढ्रे च विन्यसेत् ।
एकविंशतिमूरुभ्यां जानुजङ्घे च विंशतिम् ॥१७
पादाङ्गुल्योः शतार्द्धञ्च पात्राणिं च तथा न्यसेत् ।
शम्यां शिश्ने विनिःक्षिप्य अरणीं वृषणे तथा ॥१८
जुहूं दक्षिणहस्तेन वामहस्ते तथोपसत् ।
कर्णेचोलूखलं दद्यात् पृष्ठे च मुषलं ततः ॥१९
निःक्षिप्योरसि दृशदं तण्डुलाज्यतिलान्मुखे ।
श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीञ्च चक्षुषोः ॥२०

कर्णे नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलं क्षिपेत्।
अग्निहोत्रोपकरणं गात्रे शेषं प्रविन्यसेत्॥२१

असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति च घृताहुतीः।
दद्यात् पुत्रोऽथवा भ्राता ह्यन्ये वापि स्वधर्मिणः॥२२

यथा दहनसंस्कारस्तथा कार्य्यं विचक्षणैः।
ईदृशन्तु विधिं कुर्य्याद्ब्रह्मलोके गतिर्ध्रुवम्॥२३

ये दहन्ति द्विजास्तन्तु ते यान्ति परमां गतिम्।
अन्यथा कुर्व्वते किञ्चिदात्मबुद्धिप्रबोधिताः॥२४
भवन्त्यल्पायुषस्ते वै पतन्ति नरके ध्रुवम्॥२५

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः।

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः॥

प्राणिहत्याप्रायश्चित्तवर्णनम्।

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्राणिहत्यासु निष्कृतिम्।
पराशरेण पूर्व्वोक्तां मन्वर्थेऽपि च विस्मृताम्॥१

हंससारसक्रौञ्चांश्च चक्रवाकं सकुक्कुटम्।
जालपादांश्च शरभमहोरात्रेण शुध्यति॥२

बलाकाटिट्टिभानाञ्च शुकपारावतादिनाम्।
आटिनाञ्च बकानाञ्च शुद्ध्यते नक्तभोजनात्॥३

भासकाककपोतानां सारीतित्तिरिघातकः ।
अन्तर्जले उभे सन्ध्ये प्राणायामेन शुध्यति ॥४
गृध्रश्येनशिखिग्राहचासोलूकनिपातने ।
अपक्काशी दिनं तिष्ठेत्त्रिकालं मारुताशनः ॥५
वल्गुणीचटकानाञ्च कोकिलाखञ्जरीटकान् ।
लावकारक्तपादांश्च शुद्ध्यन्ते नक्तभोजनात् ॥६
कारण्डवचकोराणां पिङ्गलाकुररस्य च ।
भारद्वाजनिहन्ता च शुद्ध्यते शिबपूजनात् ॥७
भेरुण्डश्येनभासञ्च पारावतकपिञ्जलान् ।
पक्षिणामेव सर्वेषामहोरात्रेण शुध्यति ॥८
हत्वा नकुलमार्जारसर्पाजगरडुण्डुभान् ।
कृशरं भोजयेद्विप्रान् लोहदण्डञ्च दक्षिणाम् ॥६
शल्लकीशशकागोधामत्स्यकूर्म्माभिपातने ।
वृन्ताकफलभोक्ता च ह्यहोरात्रेण शुध्यति ॥१०
वृकजम्बूकऋक्षाणां तरक्षूणाञ्च घातने ।
तिलप्रस्थं द्विजे दद्याद्वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥११
गजगवयतुरङ्गानां महिषोष्ट्रनिपातने ।
शुद्ध्यते सप्तरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥१२
मृगं रुरुं वराहञ्च अज्ञानाद्यस्तु घातयेत् ।
अफालकृष्टमश्नीयादहोरात्रेण शुध्यति ॥१३
एवं चतुष्पदानाञ्च सर्वेषां वनचारिणाम् ।
अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन् वै जातवेदसम् ॥१४

शिल्पिनं कारुकं शूद्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत्।
प्राजापत्यद्वयं कुर्य्याद्वृषैकादशदक्षिणा ॥१५
वैश्यं वा क्षत्रियं वापि निर्दोषमभिघातयेत्।
सोऽतिकृच्छ्रद्वयं कुर्य्याद्गोविंशं दक्षिणां ददेत् ॥१६
वैश्यं शूद्रं क्रियासक्तं विकर्मस्थं द्विजोत्तमम्।
हत्वा चान्द्रायणं कुर्य्याद्दद्याद्गोत्रिंशदक्षिणाम् ॥१७
क्षत्रियेणापि वैश्येन शूद्रेणैवेतरेण वा।
चाण्डालबधसंप्राप्तः कृच्छ्रार्द्धेन विशुध्यति ॥१८
चौराः श्वपाकचाण्डाला विप्रेणापि हता यदि।
अहोरात्रोपवासेन प्राणायामेन शुध्यति ॥१९
श्वपाकं वापि चाण्डालं विप्रः सम्भाषते यदि।
द्विजसम्भाषणं कुर्य्याद्गायत्रीं वा सकृज्जपेत् ॥२०
चाण्डालैः सह सुप्तन्तु त्रिरात्रमुपवासयेत्।
चाण्डालैकपथङ्गत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः ॥२१
चाण्डालदर्शनेनैव आदित्यमवलोकयेत्।
चाण्डालस्पर्शने चैव सचैलं स्नानमाचरेत् ॥२२
चाण्डालखातवापीषु पीत्वा सलिलमग्रजः।
अज्ञानाच्चैव नक्तेन त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥२३
चाण्डालभाण्डसंस्पृष्टं पीत्वा कूपगतं जलम्।
गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥२४
चाण्डालोदकभाण्डे तु अज्ञानात् पिबते जलम्।
तत्क्षणात् क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२५

यदि न क्षिपते तोयं शरीरे यस्य जीर्य्यति ।
प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सान्तपनञ्चरेत् ॥२६

चरेत् सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यन्तु क्षत्रियः ।
तदर्द्धन्तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥२७

भाण्डस्थमन्त्यजानान्तु जलं दधि पयः पिवेत् ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव प्रमादतः ॥२८

ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनान्तु निष्कृतिः ।
शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तितः ॥२९

ब्राह्मणो ज्ञानतो भुङ्क्ते चाण्डालान्नं कदाचन ।
गोमूत्रयावकाहारादशरात्रेण शुध्यति ॥३०

एकैकं ग्रासमश्नीयाद्गोमूत्रयावकस्य च ।
दशाहनियमस्थस्य व्रतं तत्र विनिर्दिशेत् ॥३१

अविज्ञातश्च चाण्डालः सन्तिष्ठत्तस्य वेश्मनि ।
विज्ञाते तूपसंन्यस्य द्विजाः कुर्वन्त्यनुग्रहम् ॥३२

ऋषिवक्त्राच्च्युता धर्म्माम्नायन्ते वेदपावनाः ।
पतन्तमुद्धरेयुस्ते धर्मज्ञाः पापसङ्कटात् ॥३३

दध्ना च सर्पिषा चैव क्षीरगोमूत्रयावकम् ।
भुञ्जीत सह सर्वैश्च त्रिसन्ध्यमवगाहनम् ॥३४

त्र्यहं भुञ्जीत दध्ना च त्र्यहं भुञ्जीत सर्पिषा ।
त्र्यहं क्षीरेण भुञ्जीत एकैकेन दिनत्रयम् ॥३५

भावदुष्टं न भुञ्जीयान्नोच्छिष्टं कृमिदूषितम् ।
त्रिपलं दधिदुग्धस्य पलमेकन्तु सर्पिषः ॥३६

भस्मना तु भवेच्छुद्धिरुभयोस्ताम्रकांस्ययोः।
जलशौचेन वस्त्राणां परित्यागेन मृण्मयम् ॥३७

कुसुम्भगुड़कार्पासलवणं तैलसर्पिषी।
द्वारे कृत्वा तु धान्यानि गृहे दद्याद्धुताशनम् ॥३८

एवं शुद्धस्ततः पश्चात् कुर्य्याद्ब्राह्मणभोजनम्।
त्रिंशतं गा वृषञ्चैकं दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥३९

पुनर्लेपनया तेन होमजप्येन शुध्यति।
आधारेण च विप्राणां भूमिदोषो न विद्यते ॥४०

रजकी चर्मकारी च लुब्धकस्य च पुक्कसी।
चातुर्वर्ण्यगृहे यस्य ह्यज्ञानादधितिष्ठति ॥४१

ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्य्यात् पूर्व्वोक्तस्यार्द्धमेव च।
गृहदाहं न कुर्व्वीताप्यन्यत् सर्वञ्च कारयेत् ॥४२

गृहस्याभ्यन्तरे गच्छेच्चाण्डालो यस्य कस्यचित्।
तस्माद् गृहाद्विनिःसृत्य गृहभाण्डानि वर्जयेत् ॥४३

रसपूर्णन्तु यद्भाण्डं न त्यजेच्च कदाचन।
गोरसेन तु संमिश्रैर्जलैः प्रोक्षेत् समन्ततः ॥४४

ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसम्भवे।
कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥४५

गवां मूत्रपुरीषेण दध्ना क्षीरेण सर्पिषा।
त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा कृमिदुष्टः शुचिर्भवेत् ॥४६

क्षत्रियोऽपि सुवर्णस्य पञ्च माषान् प्रदापयेत्।
गोदक्षिणान्तु वैश्यस्याप्युपवासं विनिर्द्दिशेत् ॥४७

शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुध्यति ।
ब्राह्मणांस्तु नमस्कृत्य पञ्चगव्येन शुध्यति ॥४८
अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः ।
प्रणम्य शिरसा धार्य्य मग्निष्टोमफलं हि तत् ॥४६
व्याधिव्यसनिनि श्रान्ते दुर्भिक्षे डामरे तथा ।
उपवासो व्रतो होमो द्विजसम्पादितानि वा ॥५०
अथवा ब्राह्मणास्तुष्टाः स्वयं कुर्व्वन्त्यनुग्रहम् ।
सर्वधर्ममवाप्नोति द्विजैः सम्वर्द्धिताशिषा ॥५१
दुर्ब्बलेऽनुग्रहः कार्य्यस्तथा वै बालवृद्धयोः ।
अतोऽन्यथा भवेद्दोषस्तस्मान्नानुग्रहः स्मृतः ॥५२
स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ।
कुर्वन्त्यनुग्रहं ये वै तत्पापं तेषु गच्छति ॥५३
शरीरस्यात्यये प्राप्ते वदन्ति नियमन्तु ये ।
महत्कार्य्योपरोधेन न स्वस्थस्य कदाचन ॥५४
स्वस्थस्य मूढाः कुर्वन्ति नियमन्तु वदन्ति ये ।
ते तस्य विघ्नकर्त्तारः पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥५५
स एव नियमस्त्याज्यो ब्राह्मणं योऽवमन्यते ।
वृथा तस्योपवासः स्यान्न स पुण्येन युज्यते ॥५६
स एव नियमो ग्राह्यो यं यं कोऽपि वदेद्द्विजः ।
कुर्य्याद्वाक्यं द्विजानाञ्च अकुर्व्वन् ब्रह्महा भवेत् ॥५७
उपवासो व्रतञ्चैव स्नानं तीर्थं जपस्तपः ।
विप्रैः सम्पादितं यस्य सम्पन्नं तस्य तद्भवेत् ॥५८

व्रतच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि।
सर्वं भवति निश्छिद्रं ब्राह्मणैरुपपादितम् ॥५६
ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं निर्जलं सर्वकामदम्।
तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥६०
ब्राह्मणा यानि भाषन्ते भाषन्ते तानि देवताः।
सर्ववेदमया विप्रा न तद्वचनमन्यथा ॥६१
अन्नाद्ये कीटसंयुक्ते मक्षिकाकीटदूषिते।
अन्तरा संस्पृशेच्चापस्तदन्नं भस्मना स्पृशेत् ॥६२
भुञ्जानो हि यदा विप्रः पादं हस्तेन संस्पृशेत्।
उच्छिष्टं हि स वै भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते भुक्तभाजने ॥६३
पादुकास्थो न भुञ्जीत पर्य्यङ्के संस्थितोऽपि वा।
शुना चाण्डालदृष्टो वा भोजनं परिवर्जयेत् ॥६४
पक्वान्नञ्च निषिद्धं यदन्नशुद्धिस्तथैव च।
यथा पराशरेणोक्तं तथैवाहं वदामि वः ॥६५
मितं द्रोणाढकस्यान्नं काकश्वानोपघातितम्।
केनैतच्छुद्ध्यते चान्नं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥६६
काकश्वानावलीढन्तु द्रोणान्नं न परित्यजेत्।
वेदवेदाङ्गविद्विप्रैर्धर्मशास्त्रानुपालकैः ॥६७
प्रस्था द्वात्रिंशतिर्द्रोणः स्मृतो द्विप्रस्थ आढकः।
ततो द्रोणाढकस्यान्नं श्रुतिस्मृतिविदो विदुः ॥६८
काकश्वानावलीढं तु गवाघ्रातं खरेण वा।
स्वल्पमन्नं त्यजेद्विप्रः शुद्धिर्द्रोणाढके भवेत् ॥६९

अन्यस्योद्धृत्य तन्मात्रं यच्च नोपहतं भवेत् ।
सुवर्णोदकमभ्युक्ष्य हुताशेनैव तापयेत् ॥७०

हुताशनेन संस्पृष्टं सुवर्णसलिलेन च ।
विप्राणां ब्रह्मघोषेण भोज्यं भवति तत्क्षणात् ॥७१

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

द्रव्यशुद्धिवर्णनम् ।

अथातो द्रव्यसंशुद्धिः पराशरवचो यथा ।
दारवाणान्तु पात्राणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥१

मार्ज्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ।
चमसानां ग्रहाणाञ्च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥२

चरूणां स्रुक्स्रुवाणाञ्च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ।
भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति ॥३

रजसा शुद्ध्यते नारी विकलं या न गच्छति ।
नदी वेगेन शुद्ध्येत लेपो यदि न दृश्यते ॥४

वापीकूपतड़ागेषु दूषितेषु कथञ्चन ।
उद्धृत्य वै घटशतं पञ्चगव्येन शुध्यति ॥५

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत् कन्या अत ऊर्द्ध्वं रजस्वला ॥६

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति।
मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरः स्वयम् ७
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैवच।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥८
यस्तां समुद्वहेत् कन्यां ब्राह्मणोऽज्ञानमोहितः।
असम्भाष्यो ह्यपाङ्क्तेयः स विप्रो वृषलीपतिः ॥९
यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः।
स भैक्षभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्विशुध्यति ॥१०
अस्तं गते यदा सूर्य्ये चाण्डालं पतितं स्त्रियम्।
सूतिकांस्पृशतश्चैव कथं शुद्धिर्विधीयते ॥११
जातवेदं सुवर्णञ्च सोममार्गं विलोक्य च।
ब्राह्मणानुगतश्चैव स्नानं कृत्वा विशुध्यति ॥१२
स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणी तथा।
तावत्तिष्ठेन्निराहारा त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥१३
स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रिया तथा।
अर्द्धकृच्छ्रं चरेत् पूर्वा पादमेकमनन्तरा ॥१४
स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी वैश्यजा तथा।
पादोनं चैव पूर्व्वायाः परायाः कृच्छ्रपादकम् ॥१५
स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजा तथा।
कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्रा दानेन शुध्यति ॥१६
स्नाता रजस्वला या तु चतुर्थेऽहनि शुध्यति।
कुर्य्याद्रजोनिवृत्तौ तु दैवपित्र्यादिकर्म च ॥१७

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्त्रहन्तु प्रवर्त्तते।
नाशुचिः सा ततस्तेन तत् स्याद्वैकालिकं मतम्॥१८

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति॥१९

आतुरे स्नानमुत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः।
स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्धयेत् स आतुरः॥२०

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति॥२१

अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्नानं स्पर्शे विधीयते।
उच्छिष्टेन च संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत्॥२२

भस्मना शुद्धयते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते।
सुरामात्रेण संस्पृष्टं शुद्धयतेऽग्न्युपलेपनैः॥२३

गवाघ्रातानि कांस्यानि श्वकाकोपहतानि च।
शुद्धयन्ति दशभिः क्षारैः शूद्रोच्छिष्टानि यानि च॥२४

गण्डूषं पादशौचञ्च कृत्वा वै कांस्यभाजने।
षण्मासाद् भुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत्॥२५

आयसेष्वपसारेण सीसस्याग्नौ विशोधनम्।
दन्तमस्थि तथा शृङ्गं रौप्यं सौवर्णभाजनम्॥२६

मणिपाषाणशङ्खाश्च एतान् प्रक्षालयेज्जलैः।
पाषाणे तु पुनर्घृष्टिरेषा शुद्धिरुदाहृता॥२७

मृद्भाण्डदहनाच्छुद्धिर्धान्यानां मार्जनादपि।
अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम्॥२८

प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते।
वेणुबल्कलचीराणां क्षौमकार्पासवाससाम् ॥२९
और्णानां नेत्रपट्टानां जलाच्छौचं विधीयते।
तूलिकाद्युपधानानि पीतरक्ताम्बराणि च ॥३०
शोषयित्वार्कतापेन प्रोक्षयित्वा शुचिर्भवेत्।
मुञ्जोपस्करसूर्पाणां शाणस्य फलचर्मणाम् ॥३१
तृणकाष्ठादिरज्जूना मुदकप्रोक्षणं मतम्।
मार्जारमक्षिकाकीटपतङ्गकृमिदर्दुराः ॥३२
मेध्यामेध्यं स्पृशन्त्येव नोच्छिष्टान् मनुरब्रवीत्।
भूमिं स्पृष्ट्वा गतं तोयं यश्चाप्यन्योन्यविप्रुषः ॥३३
भुक्त्वोच्छिष्टं तथास्नेहं नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत्।
ताम्बूलेक्षुफले चैव भुक्तस्नेहानुलेपने ॥३४
मधुपर्के च सोमे च नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत्।
रथ्याकर्द्दमतोयानि नावः पन्थास्तृणानि च ॥३५
मरुतार्केण शुद्ध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च।
अदुष्टा सन्तता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ॥३६
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन।
क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते ॥३७
पतितानाञ्च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्।
अग्निरापश्च वेदाश्च सोमसूर्य्यानिलास्तथा ॥३८
एते सर्व्वेऽपि विप्राणां श्रोत्रे तिष्ठन्ति दक्षिणे।
प्रभासादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥३९

विप्रस्य दक्षिणे कर्णे सान्निध्यं मनुरब्रवीत्।
देशभङ्गे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि ॥४०
रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत्।
येन केन च धर्मेण मृदुना दारुणेन च ॥४१
उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत्।
आपत्काले तु सम्प्राप्ते शौचाचारं न चिन्तयेत्।
स्वयं समुद्धरेत् पश्चात् स्वस्थो धर्म्मं समाचरेत् ॥४२

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः।

....

॥ अष्टमोऽध्यायः ॥

धर्माचरणवर्णनम्।

गवां बन्धनयोक्त्रेतु भवेन्मृत्युरकामतः।
अकामात् कृतपापस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥१
वेदवेदाङ्गविदुषां धर्मशास्त्रं विजानताम्।
स्वकर्मरतविप्राणां स्वकं पापं निवेदयेत् ॥२
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपस्थानस्य लक्षणम्।
उपस्थितो हि न्यायेन व्रतादेशनमर्हति ॥३
सद्योनिःशंसये पापे न भुञ्जीतानुपस्थितः।
भुञ्जानो वर्द्धयेत् पापं पर्षद्यत्र न विद्यते ॥४
शंसये तु न भोक्तव्यं यावत् कार्यविनिश्चयः।
प्रमादश्च न कर्त्तव्यो यथैवाशंसयस्तथा ॥५

कृत्वा पापं न गूहेत गुह्यमानं विवर्द्धते ।
स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा धर्मविद्भ्यो निवेदयेत् ॥६
ते हि पापे कृते वेद्या हन्तारश्चैव पाप्मनाम् ।
व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमन्तो रुजापहाः ॥७
प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने ह्रीमान् सत्यपरायणः ।
मुहुरार्जवसम्पन्नः शुद्धिं गच्छेत मानवः ॥८
सचैलं वाग्यतः स्नात्वा क्लिन्नवासाः समाहितः ।
क्षत्त्रियो वाथ वैश्यो वा ततः पर्षद मात्रजेत् ॥६
उपस्थाय ततः शीघ्रमार्त्तिमान् धरणीं व्रजेत् ।
गात्रैश्च शिरसा चैव न च किञ्चिदुदाहरेत् ॥१०
सावित्र्याश्चापि गायत्र्याः सन्ध्योपास्त्यग्निकार्ययोः ।
अज्ञानात् कृषिकर्त्तारो ब्राह्मणा नामधारकाः ॥११
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥१२
यद्वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममतद्विदः ।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तुरधि गच्छति ॥१३
अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः ।
प्रायश्चित्तीभवेत् पूतः किल्विषं परिषद्व्रजेत् ॥१४
चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः ।
स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रशः ॥१५
प्रमाणमार्गं मार्गन्तो ये धर्मं प्रवदन्ति वै ।
तेषामुद्विजते पापं सम्भूतगुणवादिनाम् ॥१६

यथाश्मनि स्थितं तोयं मारुतार्केण शुद्ध्यति ।
एवं परिषदादेशान्नाशयेदेव दुष्कृतम् ॥१७

नैव गच्छति कर्त्तारं नैव गच्छति पर्षदम् ।
मारुतार्कादिसंयोगात् पापं नश्यति तोयवत् ॥१८

अनाहिताग्नयो येऽन्ये वेदवेदाङ्गपारगाः ।
पञ्च त्रयो वा धर्म्मज्ञाः परिषत् सा प्रकीर्त्तिता ॥१९

मुनीनामात्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनाम् ।
वेदव्रतेषु स्नातानामेकोऽपि परिषद्भवेत् ॥२०

पञ्च पूर्वं मया प्रोक्तस्तेषाञ्चैव त्वसम्भवे ।
स्ववृत्तिपरितुष्टा ये परिषत् सा प्रकीर्त्तिता ॥२१

अत ऊर्ध्वन्तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः ।
परिषत्त्वं न तेषां वै सहस्रगुणितेष्वपि ॥२२

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
ब्राह्मणास्त्वनधीयानास्त्रयस्ते नामधारकाः ॥२३

ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपस्तु निर्जलः ।
यथा हूतमनग्नौ च अमन्त्रो ब्राह्मणस्तथा ॥२४

यथा षण्डोऽफलः स्त्रीषु यथा गौरूषराफला ।
यथा चाज्ञेऽफलं दानं यथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥२५

चित्रं कर्म यथानेकैरङ्गैरुन्मील्यते शनैः ।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकः ॥२६

प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्ति ये द्विजा नामधारकाः ।
ते द्विजा पापकर्माणः समेता नरकं ययुः ॥२७

ये पठन्ति द्विजा वेदं पञ्चयज्ञरताश्च ये।
त्रैलोक्यं धारयन्त्येते पञ्चेन्द्रियरताश्रयाः ॥२८
सम्प्रणीतः श्मशानेषु दीप्तोऽग्निः सर्वभक्षकः।
तथैव ज्ञानवान् विप्रः सर्वभक्षश्च दैवतम् ॥२९
अमेध्यानि च सर्वाणि प्रक्षिपन्त्युदके यथा।
तथैव किल्विषं सर्वं प्रक्षेप्तव्यं द्विजेऽमले ॥३०
गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत्।
गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यन्ते द्वितोत्तमाः ॥३१
दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न शूद्रो विजितेन्द्रियः।
कः परीत्यज्य दुष्टाङ्गां दुहेच्छीलवतीं खरीम् ॥३२
धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः।
क्रीड़ार्थमपि यद्ब्रू युः स धर्मः परमः स्मृतः ॥३३
चातुर्वेद्यो विकल्पी च अङ्गविद्धर्मपालकः।
प्रपञ्चाश्रमिणो मुख्याः परिषत् स्युर्दशावराः ॥३४
राज्ञाश्चानुमते चैव प्रायश्चित्तं द्विजो वदेत्।
स्वयमेव न वक्तव्या प्रायश्चित्तस्य निष्कृतिः ॥३५
ब्राह्मणांश्च व्यतिक्रम्य राजा यत् कर्त्तुमिच्छति।
तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमुपगच्छति ॥३६
प्रायश्चित्तं सदा दद्याद्देवतायतनाग्रतः।
आत्मानं पावयेत् पश्चाज्जपन् वै वेदमातरम् ॥३७
सशिखं वपनं कृत्वा त्रिसन्ध्यमवगाहनम्।
गवां गोष्ठे वसेद्रात्रौ दिवा ताः समनुव्रजेत् ॥३८

उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ।
न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥३६
आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले ।
भक्षयन्तीं न कथयेत् पिवन्तञ्चैव वत्सकम् ॥४०
पिवन्तीषु पिवेत्तोयं सम्विशन्तीषु संविशेत् ।
पतितां पङ्कमग्नां वा सर्वप्राणैः समुद्धरेत् ॥४१
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ।
मुच्यते ब्रह्महत्याद्यैर्गोप्ता गोब्राह्मणस्य च ॥४२
गोबधस्यानुरूपेण प्राजापत्यं विनिर्द्दिशेत् ।
प्राजापत्यन्तु यत्कृच्छ्रं विभजेत्तच्चतुर्विधम् ॥४३
एकाहमेकभक्ताशी एकाहं नक्तभोजनः ।
अयाचिताश्येकमहरेकाहं मारुताशनः ॥४४
दिनद्वयं चैकभक्तोद्विदिनं नक्तभोजनः ।
दिनद्वयमयाची स्याद्द्विदिनं मारुताशनः ॥४५
त्रिदिनञ्चैकभक्ताशी त्रिदिनं नक्तभोजनः ।
दिनत्रयमयाची स्यात्त्रिदिनं मारुताशनः ॥४६
चतुरहन्त्वेकभक्ताशी चतुरहं नक्तभोजनः ।
चतुर्दिनमयाची स्याच्चतुरहं मारुताशनः ॥४७
प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्य्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
विप्राय दक्षिणां दद्यात् पवित्राणि जपेद्द्विजः ॥४८
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु गोघ्नः शुद्धो न संशयः ॥४६

इति पाराशरे धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ।

॥ नवमोऽध्यायः ॥

गोसेवोपदेशवर्णनम्।

गवां संरक्षणार्थाय न दुष्येद्रोधबन्धयोः।
तद्बधन्तु न तं विद्यात् कामात् कामकृतन्तथा ॥१
अङ्गुष्ठमात्रः स्थूलो वा वाहुमात्रः प्रमाणतः।
आर्द्रस्तु सपलाशश्च दण्ड इत्यभिधीयते ॥२
दण्डादूर्द्ध्वं यदन्येन प्रहरेद्वा निपातयेत्।
प्रायश्चित्तं चरेत् प्रोक्तं द्विगुणं गोव्रतञ्चरेत् ॥३
रोधबन्धनयोक्त्राणि घातनञ्च चतुर्विधम्।
एकपादञ्चरेद्रोधे द्विपादं बन्धने चरेत् ॥४
योक्त्रेषु पादहीनं स्याच्चरेत् सर्वं निपातने।
गोचारे च गृहे वापि दुर्गेष्वपि समेष्वपि ॥५
नदीष्वपि समुद्रेषु खातेऽप्यथ दरीमुखे।
दग्धदेशे स्थिताः गावः स्तम्भनाद्रोध उच्यते ॥६
योक्त्रदामकडोरैश्च घण्टाभरणभूषणैः।
गृहे वापि वने वापि बद्धा स्याद्गौर्मृता यदि ॥७
तदेव बन्धनं विद्यात् कामाकामकृतञ्च यत्।
मृल्लेखे शकटे पंक्तौ भारे वा पीड़ितो नरैः ॥८
गोपतिर्मृत्युमाप्नोति योक्त्रो भवति तद्बधः।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तश्चेतनो वाप्यचेतनः ॥६
कामाकामकृतक्रोधोदण्डैर्हन्यदथोपलैः।
प्रहता वा मृता वापि तद्धि हेतुर्निपातने ॥१०

मूर्च्छितः पतितो वापि दण्डेनाभिहतः स तु।
उत्थितस्तु यदा गच्छेत् पञ्च सप्त दशैव वा ॥११
ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वापि पिबेद्यदि।
पूर्वव्याध्युपसृष्टश्चेत् प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥१२
पिण्डस्थे पादमेकन्तु द्वौ पादौ गर्भसम्मिते।
पादोनं व्रतमुद्दिष्टं हत्वा गर्भमचेतनम् ॥१३
पादेऽङ्गरोमवपनं द्विपादे श्मश्रुणोऽपि च।
त्रिपादे तु शिखावर्जं सशिखन्तु निपातने ॥१४
पादे वस्त्रयुगञ्चैव द्विपदे कांस्यभाजनम्।
पादोने गोवृषं दद्याच्चतुर्थे गोद्वयं स्मृतम् ॥१५
निष्पन्नसर्वगात्रन्तु दृश्यते वा सचेतनम्।
अङ्गप्रत्यङ्गसम्पन्ने द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ॥१६
पाषाणे नैव दण्डेन गावो येनाभिघातिताः।
शृङ्गभङ्गे चरेत् पादं द्वौ पादौ तेन यातने ॥१७
लाङ्गूले कृच्छ्रपादन्तु द्वौ पादावस्थिभञ्जने।
त्रिपादञ्चैव कर्णे तु चरेत् सर्वं निपातने ॥१८
शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च कटिभङ्गे तथैव च।
यदि जीवति षण्मासान् प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥१९
व्रणभङ्गे च कर्त्तव्यः स्नेहाभ्यङ्गस्तु पाणिना।
यवसश्चापहर्त्तव्यो यावद्दृढबलो भवेत् ॥२०
यावत्सम्पूर्णसर्वाङ्गस्तावत्तं पोषयेन्नरः।
गोरूपं ब्राह्मणस्याग्रे नमस्कृत्य विवर्जयेत् ॥२१

यद्यसम्पूर्णसर्वाङ्गो हीनदेहो भवेत्तदा।
गोघातकस्य तस्यार्द्धं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥२२

काष्ठलोष्ट्रकपाषाणैः शस्त्रेणैवोद्धतो बलात्।
व्यापादयति यो गान्तु तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥२३

चरेत् सान्तपनं काष्ठे प्राजापत्यन्तु लोष्ट्रके।
तप्तकृच्छ्रन्तु पाषाणे शस्त्रे चैवातिकृच्छ्रकम् ॥२४

पञ्च सान्तपने गावः प्राजापत्ये तथा त्रयः।
तप्तकृच्छ्रे भवन्त्यष्टावतिकृच्छ्रे त्रयोदश ॥२५

प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम्।
तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः ॥२६

अन्यत्राङ्कनलक्ष्मभ्यां वाहने मोहने तथा।
सायं संयमनार्थं तु न दुष्येद्रोधबन्धयोः ॥२७

अतिदाहेऽतिवाहे च नासिकाभेदने तथा।
नदीपर्वतसञ्चारे प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥२८

अतिदाहे चरेत्पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत्।
नासिके पादहीनं तु चरेत्सर्वं निपातने ॥२९

दहनाच्च विपद्येत अबद्धो वापि यन्त्रितः।
उक्तं पाराशरेणैव ह्येकपादं यथाविधि ॥३०

रोधबन्धनयोक्त्रञ्च भारः प्रहरणन्तथा।
दुर्गप्रेरणयोक्त्रञ्च निमित्तानि बधस्य षट् ॥३१

बन्धपाशसुगुप्ताङ्गो म्रियते यदि गोपशुः।
भवने तस्य नाशस्य पापं कृच्छ्रार्द्धमर्हति ॥३२

न नारिकेलैर्न च शाणवालै-
र्न चापि मौञ्जेन च बन्धशृङ्खलैः ।
एतैस्तु गावो न निबन्धनीया-
बद्ध्वा तु तिष्ठेत् परशुं गृहीत्वा ॥३३
कुशैः काशैश्च बध्नीयाद्गोपशुं दक्षिणामुखम् ।
पाशलग्नाग्निदग्धेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३४
यदि तत्र भवेत् काण्डं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।
जपित्वा पावनीं देवीं मुच्यते तत्र किल्बिषात् ॥३५
प्रेरयन् कूपवापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन् ।
गवाशनेषु विक्रीणंस्ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥३६
आराधितस्तु यः कश्चिद्भिन्नकक्षो यदा भवेत् ।
श्रवणं हृदयं भिन्नं मग्नो वा कूटसङ्कटे ॥३७
कूपादुत्क्रमणे चैव भग्नो वा ग्रीवपादयोः ।
स एव म्रियते तत्र त्रीन् पादांस्तु समाचरेत् ॥३८
कूपखाते तटीबन्धे नदीबन्धे प्रपासु च ।
पानीयेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३९
कूपखाते तटीखाते दीर्घखाते तथैव च ।
अन्येषु धर्मपातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४०
वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः खातमिच्छति ।
स्वकार्यगृहखातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥४१
निशि बन्धनिरुद्धेषु सर्पव्याघ्रहतेषु च ।
अग्निविद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४२

ग्रामघाते शरौघेण वेश्मबन्धनिपातने।
अतिवृष्टिहतानाञ्च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४३

संग्रामे प्रहतानाञ्च ये दग्धा वेश्मकेषु च।
दावाग्निं ग्रामघाते वा प्रायश्चित्तं च विद्यते ॥४४

यन्त्रिता गौश्चिकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने।
यत्ने कृते विपद्येत प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४५

व्यापन्नानां बहूनाञ्च बन्धने रोधने ऽपिवा।
भिषग्मिथ्याप्रचारे च प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥४६

गोवृषाणां विपत्तौ च यावन्तः प्रेक्षका जनाः।
न वारयन्ति तां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत् ॥४७

एको हतोयैर्बहुभिः समेतै-
र्नज्ञायते यस्य हतोऽभिधानात्।
दिव्येन तेषामुपलभ्य हन्ता
निवर्त्तनीयो नृपसन्नियुक्तैः ॥४८

एका चेद्बहुभिः कापि दैवाद्व्यापादिता भवेत्।
पादं पादञ्च हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक् ॥४९

हतेषु रुधिरं दृश्यं व्याधिग्रस्तः कृशो भवेत्।
नाना भवति दृष्टेषु एवमन्वेषणं भवेत् ॥५०

मनुना चैवमेकेन सर्वशास्त्राणि जानता।
प्रायश्चित्तन्तु तेनोक्तं गोषु चान्द्रायणं चरेत् ॥५१

केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं गोव्रतं चरेत्।
द्विगुणे व्रत आदिष्टे दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ॥५२

राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ।
अकृत्वा वपनं तस्य प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥५३
यस्य न द्विगुणं दानं केशश्च परिरक्षितः ।
तत्पापं तस्य तिष्ठेत वक्ता च नरकं व्रजेत् ॥५४
यत्किञ्चित् क्रियते पापं सर्वकेशेषु तिष्ठति ।
सर्वान् केशान् समुद्धृत्य च्छेदयेदङ्गुलिद्वयम् ॥५५
एवं नारीकुमारीणां शिरसो मुण्डनं स्मृतम् ।
न स्त्रियाः केशवपनं न दूरे शयनाशनम् ॥५६
न च गोष्ठे वसेद्रात्रौ न दिवा गा अनुव्रजेत् ।
नदीषु सङ्गमे चैव अरण्येषु विशेषतः ॥५७
न स्त्रीणामजिनं वासो व्रतमेवं समाचरेत् ।
त्रिसन्ध्यं स्नानमित्युक्तं सुराणामर्च्चनं तथा ॥५८
बन्धुमध्ये व्रतं तासां कृच्छ्रचान्द्रायणादिकम् ।
गृहेषु नियतं तिष्ठेच्छुचिर्नियममाचरेत् ॥५९
इह यो गोवधं कृत्वा प्रच्छादयितुमिच्छति ।
स याति नरकं घोरं कालसूत्रमसंशयम् ॥६०
विमुक्तो नरकात्तस्मान्मर्त्यलोके प्रजायते ।
क्लीवो दुःखी च कुष्ठी च सप्त जन्मानि वै नरः ॥६१
तस्मात् प्रकाशयेत् पापं स्वधर्मं सततं चरेत् ।
स्त्रीवालभृत्यगोविप्रेष्वतिकोपं विवर्जयेत् ॥६२

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ।

———

॥ दशमोऽध्यायः ॥

अगम्यागमनप्रायश्चित्तवर्णनम्।

चातुर्वर्ण्यस्य सर्वत्र हीयं प्रोक्ता तु निष्कृतिः।
अगम्यागमने चैव शुद्धौ चान्द्रायणञ्चरत्॥१
एकैकं ह्रासयेत् पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत्।
अमावास्यां न भुञ्जीत एष चान्द्रायणो विधिः॥२
कुक्कुटाण्डप्रमाणन्तु ग्रासञ्च परिकल्पयेत्।
अन्यथा भावदुष्टस्य न धर्मो नैव शुद्ध्यति॥३
प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्य्याद्ब्राह्मणभोजनम्।
गोद्वयं वस्त्रयुग्मञ्च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम्॥४
चाण्डालीञ्च श्वपाकीञ्च ह्यभिगच्छति यो द्विजः।
त्रिरात्रमुपवासी स्याद्विप्राणामनुशासनात्॥५
सशिखं वपनं कुर्यात् प्राजापत्यत्रयञ्चरेत्।
ब्रह्मकूर्च्चं ततः कृत्वा कुर्य्याद्ब्राह्मणतर्पणम्॥६
गायत्रीञ्च जपेन्नित्यं दद्याद्गोमिथुनद्वयम्।
विप्राय दक्षिणां दद्याच्छुद्धिमाप्नोत्यसंशयम्॥७
क्षत्रियश्चापि वैश्यो वा चाण्डालीं गच्छतो यदि।
प्राजापत्यद्वयं कुर्य्याद्दद्याद्गोमिथुनन्तथा॥८
श्वपाकीमथ चाण्डालीं शूद्रो वै यदि गच्छति।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं दद्याद्गोमिथुनन्तथा॥९

मातरं यदि गच्छेत भगिनीं पुत्रिकान्तथा ।
एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीन् कृच्छ्रांस्तु समाचरेत् ॥१०
चान्द्रायणत्रयं कुर्याच्छिश्नच्छेदेन शुद्धयति ।
मातृस्वसृगमे चैव आत्मभेदनिदर्शनम् ॥११
अज्ञानात्तान्तु यो गच्छेत् कुर्य्याच्चान्द्रायणद्वयम् ।
दशगोमिथुनन्दद्याच्छुद्धिः पाराशरोऽब्रवीत् ॥१२
पितृदारान् समारुह्य मातुराप्ताञ्च भ्रातृजाम् ।
गुरुपत्नीं स्नुषाञ्चैव भ्रातृभार्य्यां तथैव च ॥१३
मातुलानीं सगोत्राञ्च प्राजापत्यत्रयञ्चरेत् ।
गोद्वयं दक्षिणां दत्त्वा शुद्धयते नात्र संशयः ॥१४
पशुवेश्यादिगमने महिष्युष्ट्रीकपीस्तथा ।
खरीञ्च शूकरीं गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥१५
गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकं ब्राह्मणे ददत् ।
महिष्युष्ट्रीखरीगामी त्वहोरात्रेण शुद्धयति ॥१६
डामरे समरे वापि दुर्भिक्षे वा जनक्षये ।
वन्दिग्राहे भयार्त्ते वा सदा स्वस्त्रीं निरीक्षयेत् ॥१७
चाण्डालैः सह सम्पर्कं या नारी कुरुते ततः ।
विप्रान् दश वरान् गत्वा स्वकं दोषं प्रकाशयेत् ॥१८
आकण्ठसम्मिते कूपे गोमयोदककर्दमे ।
तत्र स्थित्वा निराहारा त्वेकरात्रेण निष्क्रमेत् ॥१६
सशिखं वपनं कृत्वा भुञ्जीयाद्यावकौदनम् ।
त्रिरात्रमुपवासित्वा ह्येकरात्रं जले वसेत् ॥२०

शङ्खपुष्पीलतामूलं पत्रञ्च कुसुमं फलम् ।
सुवर्णं पञ्चगव्यञ्च काथयित्वा पिबेज्जलम् ॥२१

एकभक्तं चरेत् पश्चाद्यावत् पुष्पवती भवेत् ।
व्रतं चरति तद्यावत्तावत् संवसते बहिः ॥२२

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्य्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिः पाराशरोऽब्रवीत् ॥२३

चातुर्वर्ण्यस्य नारीणां कृच्छ्रचान्द्रायणं व्रतम् ।
यथा भूमिस्तथा नारी तस्मात्तां न तु दूषयेत् ॥२४

वन्दिग्राहेण या भुक्त्वा हत्वा बद्ध्वा बलाद्भयात् ।
कृत्वा सान्तपनं कृच्छ्रं शुद्ध्येत् पाराशरोऽब्रवीत् ॥२५

सकृद्भुक्ता तु या नारी नेच्छन्ती पापकर्मभिः ।
प्राजापत्येन शुद्ध्येत ऋतुप्रस्रवणेन तु ॥२६

पतत्यर्द्धं शरीरस्य यस्य भार्य्या सुरां पिबेत् ।
पतितार्द्धं शरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥२७

गायत्रीं जपमानस्तु कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥२८

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्र्युपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥२९

जारेण जनयेद्गर्भं गते त्यक्ते मृते पतौ ।
तां त्यजेदपरे राष्ट्रे पतितां पापकारिणीम् ॥३०

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत् परपुंसा समन्विता ।
सा तु नष्टा विनिर्दिष्टा न तस्यां गमनं पुनः ॥३१

कामान्मोहाद्यदा गच्छेत्यक्त्वा बन्धून् सुतान् पतिम्।
सा तु नष्टा परे लोके मानुषेषु विशेषतः ॥३२

दशमे तु दिने प्राप्ते प्रायश्चित्तं न विद्यते।
दशाहं न त्यजेन्नारी त्यजेन्नष्टश्रुता तथा ॥३३

भर्त्ता चैव चरेत् कृच्छ्रं कृच्छ्रार्द्धं चैव बान्धवाः।
तेषां भुक्त्वा च पीत्वा च अहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥३४

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत् परपुंसा विवर्जिता।
गत्वा पुंसां शतं याति त्यजेयु स्तान्तु गोत्रिणः ॥३५

पुंसो यदि गृहं गच्छेत्तदशुद्धं गृहं भवेत्।
पितृमातृगृहं यच्च जारस्यैव तु तद्गृहम् ॥३६

उल्लिख्य तद्गृहं पश्चात् पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।
त्यजेन्मृण्मयपात्राणि वस्त्रं काष्ठञ्च शोधयेत् ॥३७

सम्भारान् शोधयेत् सर्वान् गोकेशैश्च फलोद्भवान्।
ताम्राणि पञ्चगव्येन कांस्यानि दश भस्मभिः ॥३८

प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रो ब्राह्मणै रुपपादितम्।
गोद्वयं दक्षिणां दद्यात् प्राजापत्यं समाचरेत् ॥३९

इतरेषा महोरात्रं पञ्चगव्येन शोधनम्।
सपुत्रः सह भृत्यश्च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥४०

आकाशं वायुरग्निश्च मेध्यं भूमिगतं जलम्।
न दुष्यन्तीह दर्भाश्च यज्ञेषु च समास्तथा ॥४१

उपवासैर्व्रतैः पुण्यैः स्नानसन्ध्यार्च्चनादिभिः।
जपैर्होमैस्तथा दानैः शुद्ध्यन्ते ब्राह्मणा सदा ॥४२

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः।

॥ एकादशोऽध्यायः ॥

अभक्ष्यभक्षणप्रायश्चित्तवर्णनम्।

अमेध्यरेतोगोमांसं चाण्डालान्नमथापि वा।
यदि भुक्तन्तु विप्रेण कृच्छ्रं चान्द्रायणञ्चरेत् ॥१
तथैव क्षत्रियो वैश्य स्तदर्द्धन्तु समाचरेत्।
शूद्रोऽप्येवं यदा भुङ्क्ते प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२
पञ्चगव्यं पिवेच्छूद्रो ब्रह्मकूर्चं पिवेद्द्विजः।
एकद्वित्रिचतुर्गाश्च दद्याद्विप्रादनुक्रमात् ॥३
शूद्रान्नं सूतकस्यान्न मभोज्यस्यान्नमेव च।
शङ्कितं प्रतिषिद्धान्नं पूर्वोच्छिष्टं तथैव च ॥४
यदि भुक्तन्तु विप्रेण अज्ञानादापदापि वा।
ज्ञात्वा समाचरेत् कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चन्तु पावनम् ॥५
व्यालैर्नकुलमार्जारै रन्नमुच्छिष्टितं यदा।
तिलदर्भोदकैः प्रोक्ष्य शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥६
शूद्रोऽप्यभोज्यं भुक्त्वान्नं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।
क्षत्रियो वापि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥७
एकपंक्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने।
यद्येकोऽपि त्यजेत् पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥८
मोहाद्वा लोभतस्तत्र पंक्तावुच्छिष्टभोजने।
प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रः कृच्छ्रं सान्तपनन्तथा ॥९
पीयूषश्वेतलसुनवृन्ताकफलगृञ्जनम् ॥१०

पलाण्डुं वृक्षनिर्य्यासं देवस्वं कवकानि च ।
उष्ट्रीक्षीर मविक्षीर मज्ञानाद्भुञ्जति द्विजः ॥११
त्रिरात्रमुपवासी स्यात् पञ्चगव्येन शुद्धयति ।
मण्डूकं भक्षयित्वा च मूषिकामांसमेव च ॥१२
ज्ञात्वा विप्रस्त्वहोरात्रं यावकान्नेन शुद्धयति ।
क्षत्रियोवापि वैश्योवा क्रियावन्तौ शुचिव्रतौ ।
तद्गृहेषु द्विजैर्भोज्यं हव्यकव्येषु नित्यशः ॥१३
घृतं तैलं तथा क्षीरं गुड़ं तैलेन पाचितम् ।
गत्वा नदीतटे विप्रो भुञ्जीयाच्छूद्रभोजनम् ॥१४
अज्ञानाद्भुञ्जते विप्राः सूतके मृतकेऽपिवा ।
प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णे वर्णे विनिर्द्दिशेत् ॥१५
गायत्र्यष्टसहस्रेण शुद्धः स्याच्छूद्रसूतके ।
वैश्ये पञ्चसहस्रेण त्रिसहस्रेण क्षत्रियः ॥१६
ब्राह्मणस्य यदा भुङ्क्ते प्राणायामेन शुद्धयति ।
अथवा वामदेव्येन साम्ना चैकेन शुद्धयति ॥१७
शुष्कान्नं गोरसं स्नेहं शूद्रवेश्मन आगतम् ।
पक्वं विप्रगृहे पूतं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत् ॥१८
आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि ।
मनस्तापेन शुद्धयेत द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥१९
दासनापितगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥२०

शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः।
संस्कृतस्तु भवेद्दास्यो ह्यसंस्कारैस्तु नापितः॥२१
क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्नस्तु यः सुतः।
स गोपाल इतिज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः॥२२
वैश्यकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः।
आर्द्धिकश्च स तु ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः॥२३
भाण्डस्थित मभोज्येषु जलं दधि घृतं पयः।
अकामतस्तु यो भुङ्क्ते प्रायश्चित्तं कथं भवेत्॥२४
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाप्युपसर्पति।
ब्रह्मकूर्चोपवासेन यथावर्णस्य निष्कृतिः॥२५
शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्ध्यति।
ब्रह्मकूर्चमहोरात्रं श्वपाकमपि शोधयेत्॥२६
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
निर्दिष्टं पञ्चगव्यन्तु पवित्रं पापनाशनम्॥२७
गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेताया गोमयं हरेत्।
पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया दधि चोच्यते॥२८
कपिलाया घृतं ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा।
गोमूत्रस्य फलं दद्याद्दध्नस्त्रिपलमुच्यते॥२९
आज्यस्यैकपलं दद्यादङ्गुष्ठार्द्धन्तु गोमयम्।
क्षीरं सप्तदलं दद्यात् पलमेकं कुशोदकम्॥३०
गायत्र्यागृह्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि॥३१

तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्।
पञ्चगव्यमृचा पूतं स्थापयेदग्निसन्निधौ ॥३२
आपोहिष्ठेति चालोड्य मानस्तोकेति मन्त्रयेत्।
सप्तावरास्तु ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुकत्विषः ॥३३
एभिरुद्धृत्य होतव्यं पञ्चगव्यं यथाविधि।
इरावती इदं विष्णुर्मानस्तोके च शंवती ॥३४
एतैरुद्धृत्य होतव्यं हुतशेषं स्वयं पिवेत्।
आलोड्य प्रणवेनैव निर्म्मथ्य प्रणवेन तु।
उद्धृत्य प्रणवेनैव पिवेच्च प्रणवेन तु ॥३५
यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम्।
ब्रह्मकूर्चो दहेत् सर्वं यथैवाग्निरिवेन्धनम् ॥३६
पिवतः पतितं तोयं भाजने मुखनिःसृतम्।
अपेयं तद्विजानीयाद्भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥३७
कूपे च पतितं दृष्ट्वा श्वशृगालौ च मर्कटम्।
अस्थि चर्म्मादि पतितं पीत्वा मेध्या अपो द्विजः ॥३८
नारन्तु कूपे काकञ्च विड्वराहखरोष्ट्रकम्।
गावयं सौप्रतीकञ्च मायूरं खाड्गकं तथा ॥३९
वैयाघ्रमार्क्षं सैंहं वा कुणपं यदि मज्जति।
तड़ागस्याथ दुष्टस्य पीतं स्यादुदकं यदि ॥४०
प्रायश्चित्तं भवेत् पुंसः क्रमेणैतेन सर्वशः।
विप्रः शुद्ध्येत्त्रिरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयात् ॥४१
एकाहेन तु वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुद्ध्यति ॥४२
४३

परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च।
अपचस्य च भुक्त्वान्नं द्विजश्चान्द्रायणञ्चरेत् ॥४३
अपचस्य च यद्दाने दातुश्चास्य कुतः फलम्।
दाता प्रतिग्रहीता च द्वौ तौ निरयगामिनौ ॥४४
गृहीत्वाग्निं समारोप्य पञ्च यज्ञान्न वर्त्तयेत्।
परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः परिकीर्त्तितः ॥४५
पञ्चयज्ञं स्वयं कृत्वा परान्नेनोपजीवति।
सततं प्रातरुत्थाय परपाकरतो हि सः ॥४६
गृहस्थधर्मो यो विप्रो ददाति परिवर्ज्जितः।
ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचः परिकीर्त्तितः ॥४७
युगे युगे च ये धर्मास्तेषु धर्मेषु ये द्विजाः।
तेषां निन्दा न कर्त्तव्या युगरूपा हि ब्राह्मणाः ॥४८
हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारञ्च गरीयसः।
स्नात्वा तिष्ठन्नहःशेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥४९
ताड़यित्वा तृणेनापि कण्ठे वा बध्यवाससा।
विवादेनापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥५०
अवगूर्य्य त्वहोरात्रं त्रिरात्रं क्षितिपातने।
अतिकृच्छ्रञ्च रुधिरे कृच्छ्रमन्तरशोणिते ॥५१
नवाहमतिकृच्छ्रं स्यात् पाणिपूरान्नभोजनम्।
त्रिरात्रमुपवासः स्यादतिकृच्छ्रः स उच्यते ॥५२
सर्व्वेषामेव पापानां सङ्करे समुपस्थिते।
शतसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधनं परम् ॥५३

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः।

॥ द्वादशोऽध्यायः ॥

तत्रादौ—पुनः संस्कारादिप्रायश्चित्तवर्णनम् ।

दुःस्वप्नं यदि पश्येत्तु वान्ते वा क्षुरकर्मणि ।
मैथुने प्रेतधूमे च स्नानमेव विधीयते ॥१
अज्ञानात् प्राप्य विण्मूत्रं सुरां वा पिवते यदि ।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥२
अजिनं मेखला दण्डो भैक्षचर्य्या व्रतानि च ।
निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥३
स्त्रीशूद्रस्य तु शुद्ध्यर्थं प्राजापत्यं विधीयते ।
पञ्चगव्यं ततः कृत्वा स्नात्वा पीत्वा विशुध्यति ॥४
जलाग्निपतने चैव प्रव्रज्यानाशकेषु च ।
प्रत्यवसितमेतेषां कथं शुद्धिर्विधीयते ॥५
प्राजापत्यद्वयेनापि तीर्थाभिगमनेन च ।
वृषैकादशदानेन वर्णाः शुद्ध्यन्ति ते त्रयः ॥६
ब्राह्मणस्य प्रवक्ष्यामि वनं गत्वा चतुष्पथम् ।
सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यत्रयञ्चरेत् ॥७
गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
मुच्यते तेन पानेन ब्राह्मणत्वञ्च गच्छति ॥८
स्नानानि पञ्च पुण्यानि कीर्त्तितानि मनीषिभिः ।
आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च ॥९
आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुणम् ।
आपोहिष्ठेति च ब्राह्मं वायव्यं रजसा स्मृतम् ॥१०

यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते।
तत्र स्नाने तु गङ्गायां स्नातो भवति मानवः ॥११
स्नानार्थं विप्रमायान्तं देवाः पितृगणैः सह।
वायुभूता हि गच्छन्ति तृषार्त्ताः सलिलार्थिनः ॥१२
निराशास्ते निवर्त्तन्ते वस्त्रनिष्पीड़ने कृते।
तस्मान्न पीड़येद्वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् ॥१३
विधुनोति हि यः केशान् स्नातः प्रस्नवतोद्विजः।
आचामेद्वा जलस्थोऽपि स वाह्यः पितृदैवतैः ॥१४
शिरः प्रावृत्य कं बद्ध्वा मुक्तकच्छशिखोऽपिवा।
विना यज्ञोपवीतेन आचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥१५
जले स्थलस्थो नाचामेज्जलस्थश्च वहिःस्थले।
उभे स्पृष्ट्वा समाचान्त उभयत्र शुचिर्भवेत् ॥१६
स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्ते रथ्योपसर्पणे।
आचान्तः पुनराचामेद्वासोविपरिधाय च ॥१७
क्षुते निष्ठीविते चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते।
पतितानाञ्च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥१८
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सोमः सूर्य्योऽनिलस्तथा।
ते सर्वे ह्यपि तिष्ठन्ति कर्णे विप्रस्य दक्षिणे ॥१९
दिवाकरकरैः पूतं दिवास्नानं प्रशस्यते।
अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥२०
मरुतो वसवो रुद्रा आदित्याश्चादिदेवताः।
सर्वे सोमे विलीयन्ते तस्मात् स्नानन्तु तद्ग्रहे ॥२१

खलयज्ञे विवाहे च संक्रान्तौ ग्रहणेषु च ।
शर्वर्यां दानमेतेषु नान्यत्रेति विनिश्चयः ॥२२
पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा चात्ययकर्मणि ।
राहोश्च दर्शने दानं प्रशस्तं नान्यथा निशि ॥२३
महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थप्रहरद्वयम् ।
प्रदोषपश्चिमौ यामौ दिनवत् स्नानमाचरेत् ॥२४
चैत्यवृक्षश्चितिस्थश्च चण्डालः सोमविक्रयी ।
एतांस्तु ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥२५
अस्थिसञ्चयनात् पूर्वं रुदित्वा स्नानमाचरेत् ।
अन्तर्दशाहे विप्रस्य पर्वमाचमनं भवेत् ॥२६
सर्वं गङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
सोमग्रहे तथैवोक्तं स्नानदानादिकर्मसु ॥२७
कुशपूतन्तु यत्स्नानं कुशेनोपस्पृशेद्द्विजः ।
कुशेनोद्धृततोयं यत् सोमपानसमं स्मृतम् ॥२८
अग्निकार्य्यात् परिभ्रष्टाः सन्ध्योपासनवर्जिताः ।
वेदञ्चैवानधीयानाः सर्वे ते वृषलाः स्मृताः ॥२९
तस्माद्वृषलभीतेन ब्राह्मणेन विशेषतः ।
अध्येतव्योऽप्येकदेशो यदि सर्वं न शक्यते ॥३०
शूद्रान्नरसपुष्टस्याप्यधीयानस्य नित्यशः ।
जपतो जुह्वतो वापि गतिरूर्द्ध्वा न विद्यते ॥३१
शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेण तु सहासनम् ।
शूद्राज्ज्ञानागमश्चापि ज्वलन्तमपि पातयेत् ॥३२

मृतसूतकपुष्टाङ्गोद्विजः शूद्रान्नभोजने।
अहं तां न विजानामि कां कां योनिं गमिष्यति ॥३३
गृध्रो द्वादश जन्मानि दश जन्मानि शूकरः।
श्वयोनौ सप्तजन्म स्यादित्येवं मनुरब्रवीत् ॥३४
दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः।
ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥३५
मौनव्रतं समाश्रित्य आशीनो न वदेद्द्विजः।
भुञ्जानो हि वदेद्यस्तु तदन्नं परिवर्जयेत् ॥३६
अर्द्धं भुक्ते तु यो विप्रस्तस्मिन् पात्रे जलं पिवेत्।
हतं दैवञ्च पित्र्यञ्च आत्मानञ्चोपघातयेत् ॥३७
भाजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः।
न देवा स्तृप्तिमायान्ति निराशाः पितरस्तथा ॥३८
गृहस्थस्तु यदा युक्तो धर्ममेवानुचिन्तयेत्।
पोष्यधर्मार्थसिद्ध्यर्थं न्यायवर्त्ती सुबुद्धिमान् ॥३९
न्यायोपार्जितवित्तेन कर्त्तव्यं ज्ञानरक्षणम्।
अन्यायेन तु यो जीवेत् सर्वकर्मवहिष्कृतः ॥४०
अग्निचित् कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः।
दृष्टमात्रं पुनन्त्येते तस्मात् पश्येत्तु नित्यशः ॥४१
अरणिं कृष्णमार्जारश्चन्दनं सुमणिं घृतम्।
तिलान् कृष्णाजिनं छागं गृहे चैतानि रक्षयेत् ॥४२
गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितम्।
तत्क्षेत्रं दशगुणितं गोचर्म परिकीर्त्तितम् ॥४३

ब्रह्महत्यादिभिर्मर्त्यो मनोवाक्कायकर्मजैः।
एतद्गोचर्मदानेन मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥४४

कुटुम्बिने दरिद्राय श्रोत्रियाय विशेषतः।
यद्दानं दीयते तस्मै तदायुर्वृद्धिकारकम् ॥४५

आषोड़शदिनादर्वाक् स्नानमेव रजस्वला।
अत ऊर्द्ध्वं त्रिरात्रं स्यादुशना मुनिरब्रवीत् ॥४६

युगं युगद्वयञ्चैव त्रियुगञ्च चतुर्युगम्।
चाण्डालसूतिकोदक्यापतितानामधः क्रमात् ॥४७

ततः सन्निधिमात्रेण सचैलं स्नानमाचरेत्।
स्नात्वावलोकयेत् सूर्य्यमज्ञानात् स्पृशते यदि ॥४८

वापीकूपतड़ागेषु ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः।
तोयं पिवति वक्त्रेण श्वयोनौ जायते ध्रुवम् ॥४६

यस्तु क्रुद्ध पुमान् भार्य्यां प्रतिज्ञायाप्यगम्यताम्।
पुनरिच्छति ताङ्गन्तुं विप्रमध्ये तु श्रावयेत् ॥५०

श्रान्तः क्रुद्धस्तमोभ्रान्त्या क्षुत्पिपासाभयार्द्दितः।
दानं पुण्यमकृत्वा च प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥५१

उपस्पृशेत्त्रिषवणं महानद्युपसङ्गमे।
चीर्णान्ते चैव गां दद्याद्‌ब्राह्मणान् भोजयेद्दश ॥५२

दुराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च।
अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्य्याद्दिनमेकमभोजनम् ॥५३

सदाचारस्य विप्रस्य तथा वेदान्तवादिनः।
भुक्त्वान्नं मुच्यते पापादहोरात्रन्तु वै नरः ॥५४

ऊर्द्धोच्छिष्टमधोच्छिष्टमन्तरीक्षमृतौ तथा।
कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचमरणे तथा॥५५
कृच्छ्रदेव्ययुतञ्चैव प्राणायामशतत्रयम्।
पुण्यतीर्थे नार्द्रशिरः स्नानं द्वादशसंख्यया।
द्वियोजनं तीर्थयात्रा कृच्छ्रमेवं प्रकल्पितम्॥५६
गृहस्थः कामतः कुर्य्याद्रेतसः सेचनं भुवि।
सहस्रन्तु जपेद्देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिः सह॥५७
चातुर्वेद्योपपन्नस्तु विधिवद्ब्रह्मघातके।
समुद्रसेतुगमनप्रायश्चित्तं विनिर्द्दिशेत्॥५८
सेतुबन्धपथे भिक्षां चातुर्वर्ण्यात् समाचरेत्।
वर्जयित्वा विकर्मस्थांश्छत्रोपानद्विवर्जितः॥५९
अहं दुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः।
गृहद्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः॥६०
गोकुलेषु वसेच्चैव ग्रामेषु नगरेषु च।
तथा वनेषु तीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु च॥६१
एतेषु ख्यापयन्नेनः पुण्यं गत्वा तु सागरम्।
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम्॥६२
रामचन्द्रसमादिष्टं नलसञ्चयसञ्चितम्।
सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥६३
यजेत वाश्वमेधेन राजा तु पृथिवीपतिः॥६४
पुनः प्रत्यागतो वेश्म वासार्थमुपसर्पति।
सपुत्रः सह भृत्यैश्च कुर्य्याद्ब्राह्मणभोजनम्॥६५

गाश्चैवैकशतं दद्याच्चातुर्वेद्येषु दक्षिणाम् ।
ब्राह्मणानां प्रसादेन ब्रह्महा तु विमुच्यते ॥६६
सवनस्थां स्त्रियं हत्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ।
मद्यपश्च द्विजः कुर्य्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥६७
चान्द्रायणे ततश्चीर्णे कुर्य्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
अनडुत्सहितां गाञ्च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥६८
अपहृत्य सुवर्णन्तु ब्राह्मणस्य ततः स्वयम् ।
गच्छेन्मुषलमादाय राजाभ्यासं बधाय तु ॥६९
ततः शुद्धिमवाप्नोति राज्ञासौ मुक्त एव च ।
कामकारकृतं यत् स्यान्नान्यथा वधमर्हति ॥७०
आसनाच्छयनाद्यानात् सम्भाषात् सहभोजनात् ।
संक्रामति हि पापानि तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥७१
चान्द्रायणं यावकञ्च तुलापुरुष एव च ।
गवाञ्चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम् ॥७२
एतत् पराशरं शास्त्रं श्लोकानां शतपञ्चकम् ।
द्विनवत्या समायुक्तं धर्मशास्त्रस्य संग्रहः ॥७३
यथाध्ययनकर्माणि धर्मशास्त्रमिदं तथा ।
अध्येतव्यं प्रयत्नेन नियतं स्वर्गगामिना ॥७४

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ॥

समाप्ता चेयं पराशरसंहिता ॥

ॐ तत्सत् ।

॥ अथ ॥

(सुव्रतमुनिप्रोक्ता)

* बृहत्पराशरस्मृतिः *

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

—:ooo:—

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

—oo—

तत्रादौ–वर्णाश्रमप्रश्नम् ।

व्यक्ताव्यक्ताय देवाय वेधसेऽनन्ततेजसे ।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि धर्मान् पाराशरोदितान् ॥१
अथातो हिमशैलाग्रे देवदारुवनाश्रमे ।
व्यासमेकाग्रमासीन मृषयः प्रष्टुमागताः ॥२
मनुष्याणां हितं धर्मं वर्तमाने कलौ युगे ।
वर्णानामाश्रमाणाञ्च किञ्चित्साधारणं वद ॥३
युगे युगेषु ये प्रोक्ता धर्मा मन्वादिभिर्मुने ! ।
वाक्यं तेनैव ते कर्त्तुं वर्णैराश्रमवासिभिः ॥४
स पृष्टो मुनिभिर्व्यासो मुनिभिः परिवेष्टितः ।
प्रष्टुं जगाम पितरं धर्मान् पराशरं ततः ॥५
सर्वेषामाश्रमाणाञ्च वरे वदरिकाश्रमे ।
स विवेशाश्रमे तस्मिन् तनुं योगीव वेधसः ॥६

नानापुष्पलताकीर्णे फलपुष्पैरलङ्कृते।
नदी प्रस्रवणानेकैः पुण्यतीर्थोपशोभिते ॥७
मृगपक्षिभिराकीर्णे देवतायतनावृते।
यक्ष गन्धर्व सिद्धैश्च नृत्यगीतसमाकुले ॥८
तस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रः पराशरः।
सुखासीनो महातेजा मुनिमुख्यगणावृतः ॥९
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा व्यासस्तु मुनिभिः सह।
प्रदक्षिणाभिवादैश्च मुनिभिः प्रतिपूजितः ॥१०
ततः सन्तुष्टमनसा पाराशरमहामुनिः।
व्यासस्य स्वागतं ब्रूयाद् आसीनो मुनिपुङ्गवः ॥११
वशस्य स्वागतं तेऽस्तु महर्षीणां समन्ततः।
कुशलं कुशलेत्युक्त्वा व्यासो पृच्छत्ततः परम् ॥१२
यदि जानासि मां भक्तं स्नेहोवा यदि वत्सल।
धर्मं कथय मे तातः अनुग्राह्यो ऽस्म्यहं यदि ॥१३
श्रुतास्तु मानवा धर्मा गार्गीया गौतमास्तथा।
वासिष्ठाः काश्यपाश्चैव तथा गोपालकस्य च ॥१४
आत्रेया विष्णु सम्वर्ता दाक्षाश्चाङ्गिरसास्तथा।
शातातपाश्च हारीता याज्ञवल्क्यकृतास्तथा ॥१५
आपस्तम्बकृता धर्माः सशङ्खलिखितास्तथा।
कात्यायनकृताश्चैव प्रचेतसकृतास्तथा ॥१६
श्रुतिरात्मोद्भवा तात! श्रुत्यर्थी मानवाः स्मृताः।
मन्वर्थः सर्वधर्माणां कृतादि त्रियुगेषु च ॥१७

धर्मं तु त्रियुगाचारं स शक्यं हि कलौ युगे।
वर्णानामाश्रमाणाञ्च किञ्चित्साधारणं वद ॥१८
व्यासवाक्यावसाने तु मुनिमुख्यः पराशरः।
सुखासीनो महातेजा इदं वचनमब्रवीत् ॥१९
क्रियन्ते नैव वेदाश्च नैवाति प्रभवन्ति ते।
न कश्चिद्वेदकर्ताऽस्ति वेदस्मर्ता चतुर्मुखः ॥२०
तथा स धर्मं स्मरति मनुः कल्पान्तरान्तरे।
अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परे ॥२१
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः।
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥२२
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे।
कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमस्य च ॥२३
द्वापरे शाङ्ख-लिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः।
त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ॥२४
द्वापरे कुलमेकं तु कर्त्तारञ्च कलौ युगे।
कृते सम्भाष्य पतति त्रेतायां स्पर्शनेन च ॥२५
द्वापरे भक्षणेऽन्नस्य कलौ पतति कर्मणा।
अभिगम्य कृते दानं त्रेतामाहूय दीयते ॥२६
द्वापरे याच्यमानन्तु सेवया दीयते कलौ।
अभिगम्योत्तमं दानमाहूतञ्चैव मध्यमम् ॥२७
अधमं याच्यमानं स्यात् सेवादानञ्च निष्फलम्।
कृते त्वस्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांसमेव च ॥२८

द्वापरे रुधिरं यावत्कलौत्वन्नाद्यमेव च ।
कृते तात्क्षणिकः शापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः ॥२६
मासेन द्वापरे ज्ञेयः कलौ सम्वत्सरेण तु ।
युगे युगेषु ये धर्मास्तेषु धर्मेषु ये द्विजाः ॥३०
ते द्विजा नावमन्तव्या युगरूपा द्विजोत्तमाः ।
धर्मश्च सत्यमायुश्च तुर्य्यांशेन कलौ युगे ॥३१
अदनात्तदनाद्यस्य तुच्छमायुरकार्य्यतः ।
धर्मश्च लोकदम्भार्थं पाषण्डार्थं तपस्विनः ॥३२
विविधा वाग्वञ्चनार्थं कलौ सत्यानुसारिणी ।
अल्पक्षीर-घृता गावो ह्यल्पसस्या च मेदिनी ॥३३
स्त्रीजनन्यः स्त्रियः सर्वा रत्यर्थं कृतमैथुनाः ।
पुरुषाश्च जिताः स्त्रीभी राजानो दस्युभिर्जिताः ॥३४
जितो धर्मश्च पापेन अनृतेन तथा ऋतम् ।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचारास्तथा द्विजाः ॥३५
अन्त्यानुयायिनश्चाढ्या वर्णास्तदुपजीविनः ।
कृतन्तु ब्राह्मणयुगं त्रेता तु क्षत्रियं युगम् ॥३६
वैश्यं तु द्वापरयुगं कलिः शूद्रयुगं स्मृतम् ।
चातुर्वर्णिकनारीणां तथा तुरीयजन्मनी ॥३७
यति(पति)द्विजा(त्युपास्त्यापि)भ्युपास्त्यादि धर्मर्द्धिर्महतीकलौ ।
शतेन या कृते दत्ते फलाप्तिः पुरुषस्य सा ॥३८
दत्तेषु दशभिर्नृणां फलाप्तिः स्यात् कलौ युगे ।
कृते यत् कोटिदस्य स्यात् त्रेतायां लक्षदस्य तत् ॥३६

द्वापरेऽयुतदस्य स्यात् शतदस्य कलौ फलम् ।
युगस्वरूपमाख्यातमन्यं निगदतः शृणु ॥४०
वर्णानामाश्रमाणाञ्च सर्वेषां धर्मसाधनम् ।
मृगः कृष्णश्चरेद्यत्र स्वभावेन महीतले ॥४१
वसेत्तत्र द्विजातिस्तु शूद्रो यत्र तु तत्र तु ।
हिमपर्वतविन्ध्याद्र्योर्विनशन-प्रयागयोः ॥४२
मध्ये तु पावनो देशो म्लेच्छदेशस्ततः परम् ।
देशेष्वन्येषु या नद्यो धन्याः सागरगाः शुभाः ॥४३
तीर्थानि यानि पुण्यानि मुनिभिः सेवितानि च ।
वसेयुस्तदुपान्तेऽपि शमिच्छन्तो द्विजातयः ॥४४
मुनिभिः सेवितत्वाच्च पुण्यदेशः प्रकीर्तितः ।
यत्र पानमपेयस्य देशेऽभक्ष्यस्य भक्षणम् ॥४५
अगम्यागामिता यत्र तं देशं परिवर्जयेत् ।
एवं देशः समाख्यातो यन्नियस्तु द्विजन्मनाम् ॥४६
एवमेवानुवर्त्तरन्देशं धर्मानुकाङ्क्षिणः ।
वसन् वा यत्र तत्रापि स्वाचारं न विवर्जयेत् ॥४७
षट्कर्माणि च कुर्वीरन्निति धर्मस्य निश्चयः ।
पराशरः स्वयम्प्राह शास्त्रं पुत्रस्य वत्सलः ॥४८
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्विजकर्मादिकं द्विजाः ! ।
षट्कर्म-वर्णधर्माश्च प्रशंसा गोवृषस्य च ॥४९
अदोह्य-वाह्यौ यौ तत्र क्षीरं क्षीरप्रयोक्तृणा ।
अमावास्यानिषिद्धानि ततश्च पशुपालनम् ॥५०

अन्न-तोयप्रशंसा च वाह्याऽवाह्यावसुन्धरा ।
अथार्थकृवतोऽपारं तद्व्ययस्यापि शोधनम् ॥५१
बर्हि सोतामखश्चापि विवाहाः कन्यकावराः ।
त्रोषु (पुं) धर्मो मखाः पञ्च द्विजातिस्वर्गसाधनाः ॥५२
विधिः प्राणाऽग्निहोत्रस्य आधानादिकसंस्कृतिः ।
व्रतचर्यादि तद्धर्मः प्रशंसा पुत्रजन्मनः ॥५३
कृत्स्नो गृहस्थधर्मश्च भक्ष्याऽभक्ष्यं तथैव च ।
निषिद्धवस्तुकथनं पात्रशुद्धिस्ततः परम् ॥५४
द्रव्याणाञ्च तथाशुद्धिरुपाकर्माणि कर्म च ।
अनध्यायास्तथा श्राद्धं विप्र-काल-हविर्युतम् ॥५५
बलिर्नारायणीयश्च सूतकाशौचमेव च ।
परिषत्प्रायश्चितानि तद्व्रतानि यथा द्विजाः ! ॥५६
विविवत्सर्वदानानि तेषाञ्चैव फलानि च ।
भूमिदानप्रशंसा च विशेषो विप्र कालयोः ॥५७
इष्टापूर्त्तौ तथा विद्वन् ! तयोर्भिन्नफलानि च ।
प्रतिग्रहविधिस्तद्वद्यथा तस्य प्रतिग्रहः ॥५८
विनायकादिशान्तीनां विनयश्च द्विजोत्तमाः ! ।
वानप्रस्थस्य धर्मोऽपि तथा धर्मो यतेरपि ॥५९
चतुराश्रमभेदोऽपि वपुर्निन्दा तथैव च ।
योगोऽर्चिर्धूममार्गौ च कालं रुद्रान्तमेव च ॥६०
दृष्टञ्च तत्परं ध्येयं सर्वमेतत्पराशरः ।
प्रोक्तवान् व्यासमुख्यानां शेषं मुनिविभाषितम् ॥६१

नियुक्तः सुव्रतः शेषं विप्राणां ख्यापनाय च ॥६२

पराशरो व्यास वचो निशम्य
यदाह शास्त्रं चतुराश्रमार्थम्।
युगानुरूपञ्च समस्तवर्ण-
हिताय वक्ष्यत्यथ सुव्रतस्तत् ॥६३

शक्तिसूनोरनुज्ञातः सुतपाः सुव्रतस्त्विदम्।
चतुर्वर्णाश्रमाणाञ्च हितं शास्त्रमथाब्रवीत् ॥६४

इति श्रीवृहत्पाराशरीये धर्मशास्त्रे व्यासप्रश्ने सुव्रतप्रोक्तायां शास्त्रसंग्रहोद्देशकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः।

....

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

आचारधर्मवर्णनम्।

पराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।
चिन्तितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥१

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालनम्।
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥२

षट्कर्माभिरतो नित्यं देवताऽतिथिपूजकः।
हुतशेषन्तु भुञ्जानो ब्राह्मणो नावसीदति ॥३

(व्यासउवाच)

कर्माणि कानीह कथञ्च तानि
कार्याणि वर्णैश्च किमाद्यकानि ।
तेषामनेहाकरणे विधिश्च
सर्वं प्रसादात् प्रतनुष्व मह्यम् ॥४

(पराशर उवाच)

कर्मषट्कं प्रवक्ष्यामि यत् कुर्वन्तो द्विजातयः ।
गृहस्था अपि मुच्यन्ते संसारै र्बन्धहेतुभिः ॥५

अथोद्देशक्रमं शास्त्रं यच्छ्रुतं श्रुतिदृष्टिकृत् ।
तदुक्तं कर्म यत् पुंसां शृणुध्वं पापनाशनम् ॥६

सन्ध्या स्नानं जपश्चैव देवतानाञ्च पूजनम् ।
वैश्वदेवं तथाऽऽतिथ्यं षट्कर्माणि दिने दिने ॥७

प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव वा ।
वैश्वदेवे तु सम्प्राप्तः सोऽतिथि स्वर्गसङ्क्रमः ॥८

सन्ध्यामथ प्रवक्ष्यामि देवता-काल-नामभिः ।
वर्णर्षि-च्छन्दसा युक्ता यद्विधानं यथार्चनम् ॥६

यावन्मन्त्रा यथोपास्तिरुपस्पर्शनमेव च ।
आवाहनं विसर्गश्च यावन्मानं(मन्त्र)क्रमेण तु ॥१०

दिवसस्य च रात्रेश्च सन्धिः सन्ध्येति कीर्तिता ॥११

सोपास्या सद्द्विजैर्यत्नात् स्यात्तैर्विश्वमुपासितम् ।
मध्याह्नेऽपि च सन्धिः स्यात् पूर्वस्याह्नः परस्य च ॥१२

पूर्वाह्णो ह्यपराह्णस्तु क्षपा चेति श्रुतिक्रमः।
पूर्वा सन्ध्या तु गायत्री ब्रह्माणी हंसवाहना ॥१३
रक्तपद्मारुणा देवी रक्तपद्मासनस्थिता।
रक्ताभरणभासाङ्गा रक्तमाल्याम्बरा तथा ॥१४
अक्षमाला स्रग्धरा च वरहस्ताऽमरार्चिता।
प्रागादित्योदयाद्विद्वान् मुहूर्ते वैधसे सति ॥१५
"प्रातः संध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि।
सादित्यां पश्चिमां सन्ध्यामर्धास्तमितभास्कराम् ॥"
उत्थायोपासयेत्सन्ध्यां यावत् स्यादर्कदर्शनम्।
विश्वमातः! सुराभ्यर्च्ये! पुण्ये! गायत्रि! वैधसि! ॥१६
आवाहयाम्युपास्त्यर्थं एह्यनेनाधिन पुनीहि माम्।
सन्ध्या माध्याह्निकी श्वेता सावित्री रुद्रदेवता ॥१७
वृषेन्द्रवाहना देवी ज्वलत्त्रिशिखधारिणी।
श्वेताम्बरधरा श्वेता नानाभरणभूषिता ॥१८
श्वेतस्रगक्षमाला च कृतानुरक्तिशङ्करा।
जलाधारा धरा धात्री धरेन्द्राङ्गभवा तथा ॥१९
स्वभावविभातभूराद्या सुरौघनुतपादद्वया।
मातर्भवानि! विश्वेशि! विश्वे विश्वजनार्चिते! ॥२०
शुभे! वरे! वरेण्यैहि आहूतासि पुनीहि माम् ॥२१
सन्ध्या सायन्तनी कृष्णा विष्णुदेवी सरस्वती।
खगगा कृष्णवस्त्रा तु शङ्खचक्रगदाधरा ॥२२

कृष्णस्रग्भूषणैर्युक्ता सर्वज्ञानमया वरा।
सर्ववाग्देवता सर्वा ब्रह्मादिवचसि स्थिता॥२३
वीणा-ऽक्षमालिका चापहस्ता स्मितवराननना।
चतुर्दशजनाभ्यर्च्या कल्याणी शुभवाक्प्रदा॥२४
मातर्वाग्देवि! वरदे! वरेण्ये! वचनप्रदे!।
सर्वमरुद्गणस्तुत्ये! आहूतेहि! पुनीहि माम्॥२५
ब्रह्मेशार्क हरीणां तु सङ्गमोऽस्तूभयोर्भवेत्।
माध्याह्निकायां सन्ध्यायां सर्वदेवसमागमः॥२६
पूजाभिकाङ्क्षिणो ये च ये च किञ्चिज्जलार्थिनः।
श्राद्धान्नभागधेया ये ये चाग्निहुतभागिनः॥२७
अन्यान्युच्चावचानीह स्थावराणि चराणि च।
माध्याह्निकीमपेक्षन्ते तेषामाप्यायिका हि सा॥२८
यस्तस्यां नार्चयेद्देवांस्तर्पयेन्न पितॄंस्तथा।
भूतान्युच्चावचानीह सोऽन्धतामिस्रमृच्छति॥२९
ईशान्याभिमुखो भूत्वा द्विजः पूर्वमुखोऽपि वा।
सन्ध्यामुपासयेद्यद्वत्तथावत्तन्निबोधत॥३०
आ मणेर्बन्धनाद्धस्तौ पादौ चाऽऽजानुतः शुचिः।
प्रक्षाल्याऽऽचमेद्विद्वानन्तर्जानुकरो द्विजः॥३१
निर्मलात् फेनपूताभि र्मनोज्ञाभिः प्रयतवान्।
आचामेद्ब्रह्मतीर्थेन पुनराचमनाच्छुचिः॥ ३२
वक्त्रनिर्माजनं कृत्वा द्विस्तनैवाधरान्यथा।
अद्भिश्च संस्पृशेत् खानि सर्वाण्यपि विशुद्धये॥३३

अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या सव्यपाणिस्थवारिणा ।
घ्राणं संस्पृश्य नेत्रे च तेनानामिकया श्रुती: ॥३४
नाभिश्च तत्कनिष्ठाभ्यां वक्षः करतलेन च ।
शिरः सर्वाभिरंसौ च ह्यङ्गुल्यग्रैश्च संस्पृशेत् ॥३५
आचम्य प्राणसंरोधं कृत्वा चोपस्पृशेत्पुनः ।
अत्रोपस्पर्शने मन्त्रं प्रातः केचित्पठन्ति हि ॥३६
सूर्यश्चमेति मन्त्रेण प्रातराचमनं स्मृतम् ।
'आपः पुनन्तु' मध्याह्ने सायमग्निश्चमेति च ।
मन्त्राभिमन्त्रितं कृत्वा कुशपूतञ्च तज्जलम् ॥३७
आचम्य विधिवद् धीमान् सन्ध्योपासनमाचरेत् ॥३८
सोङ्कारां चैव गायत्रीं जप्त्वा व्याहृतिपूर्वकम् ।
आपोहिष्ठादि जल्पन्ति च्छन्दो-देवर्षिपूर्वकम् ॥३९
छन्दोभिर्विनियोगैश्च मन्त्र-ब्राह्मणसंयुतम् ।
एतद्धीने न कुर्वीत कुर्य्यात् ह्येतत्तदासुरम् ॥४०
मृत्युभीतैः पुरा देवैरात्मनश्छादनाय च ।
छन्दांसि संस्मृतानीह च्छादितास्तैस्ततोऽमराः ॥४१
छादनाच्छन्द उद्दिष्टं वाससी कृत्तिरेव वा ।
छन्दोभिरावृतं सर्वं विद्या सर्वत्र नान्यतः ॥४२
यस्मिन्मन्त्रे तु ये देवा स्तेन मन्त्रेण चिह्नितम् ।
मन्त्रं तद्दैवतं विद्यात् सैव तस्य तु देवता ॥४३
येन यदृषिणा दृष्टं सिद्धिः प्राप्ता तु येन वै ।
मन्त्रेण तस्य स प्रोक्तो मुनेर्भावस्तदात्मकः ॥४४

यत्र कर्मणि चारब्धे जपहोमार्चनादिके ।
क्रियते येन मन्त्रेण विनियोगस्तु स स्मृतः ॥४५

अस्य मन्त्रस्य चाऽर्थोऽयमयं मन्त्रोऽत्र वर्तते ।
तत्तस्य ब्राह्मणं ज्ञेयं मन्त्रस्येति श्रुतिक्रमः ॥४६

एतद्धि पञ्चकं ज्ञात्वा क्रियते कर्मयद्द्विजैः ।
तदनन्तफलं तेषां भवेद्वेदनिदर्शनात् ॥४७

अकामेनापि यन्न्यूनं कुर्य्यात् कर्म द्विजोऽपि यः ।
तेनासौ हन्यते कर्ताऽमृतो गन्ताधमृच्छति ॥४८

कुर्वन्नज्ञो द्विजः कर्म जपहोमादि कञ्चन ।
नासौ तस्य फलंबिन्देत् कर्म(क्लेश)मात्रं हि तस्य तत् ॥४६

आपद्यते स्थाणु गर्तं स्वयं वापि प्रलीयते ।
यातयामानि च्छन्दांसि भवन्त्यफलदान्यपि ॥५०

सिन्धुद्वीप ऋषिश्छन्दो गायत्री ऋक्षु तिसृषु ।
आपो हि दैवतं प्राहुरापोहिष्ठादिषु द्विजाः ॥५१

गोभिलो (गाधिजो) राजपुत्रस्तु द्रुपदायामृषिर्भवेत् ।
आनुष्टुभं भवेच्छन्द आपश्चैव तु दैवतम् ॥५२

सौत्रामण्यावभृतके विनियोगोऽस्य कल्पितः ।
उदुत्यमृषिः प्रस्कण्वो गायत्रं सूर्य्यदेवता ॥५३

चित्रमित्यत्र कुत्सस्तु शक्करी सूर्य्यदेवता ।
प्रणवो भूर्भुवः स्वश्च गायत्र्यापो ऋचां त्रयम् ॥५४

अघमर्षणसूक्तस्य ऋषिरेवाघमर्षणः ।
छन्दोऽस्यानुष्टुभं प्राहुरापश्चैव तु दैवतम् ॥५५

द्रुपदाघमर्षणं सूक्तं मार्जने व्याहरेदिति ।
स्मृतिभिः परिशिष्टैश्च विशेषस्तोयसेचने ॥५६
उक्तोऽधोर्ध्वं विभागेन कर्तव्यः सोऽपि सद्द्विजैः ।
आपोहिष्ठेति च ऋचामष्टाक्षरपदेन च ॥५७
पादान्ते प्रक्षिपेद्वापि पादमध्ये न च क्षिपेत् ।
भूमौ मूर्ध्नि तथाऽऽकाशे मूर्ध्न्याकाशे पुनर्भुवि ॥५८
एवं वारि द्विजः सिञ्चन् तर्पयेत् सर्वदेवताः ।
ऋगन्ते मार्जनं कुर्यात् पादान्ते वा समाहितः ॥५६
ऋगर्धे वा प्रकुर्वीत शिष्टानां मतमीदृशम् ।
उदुत्यं चित्रं देवानामुपस्थाने नियोजयेत् ॥६०
हंसः शुचिः षदित्यादि केचिदिच्छन्ति सूरयः ।
अव्याकृतमिदं ह्यासीत् सदेवासुर-मानुषम् ॥६१
सङ्क्षोभायासृजद् ब्रह्मा, सप्तेमा व्याहृतीः पुरा ।
भूर्भुवः स्वर्महर्जनस्तपः सत्यं तथैव च ॥६२
आद्यास्तिस्रो महाप्रोक्ताः सर्वत्रैव नियोजनात् ।
अग्निर्वायुस्तथा सूर्य्यो बृहस्पत्याप एव च ॥६३
इन्द्रश्च विश्वेदेवाश्च देवताः समुदाहृताः ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ॥६४
त्रिष्टुप् च जगती चैव च्छन्दांस्येतान्यनुक्रमात् ।
भरद्वाजः कश्यपश्च गौतमोऽत्रिस्तथैव च ॥६५
विश्वामित्रो जमदग्निर्वशिष्ठश्चर्षयः क्रमात् ।
एताभिः सकलं व्याप्तमेताभ्यो नास्ति चापरम् ॥६६

सप्तैते स्वर्गलोका वै सत्यादूर्द्ध्वं न विद्यते ।
तस्माल्लोकात्परा मुक्तिरर्वाचीनादपेक्षया ॥६७
प्राणसंयमनेष्वेता अभ्यस्याः पूरकादिभिः ।
ओमापोज्योतिरित्येतच्छिरः पश्चात्प्रयुज्यते ॥६८
प्रत्योङ्कारसमायुक्तो मन्त्रोऽयं तैत्तिरीयके ।
अत्रोङ्कारवद्दार्षादि विदु र्ब्रह्मविदो जनाः ॥६९
प्रणवाद्यन्त गायत्रीप्राणायामेष्वयं विधिः ।
गायत्र्यादिकचित्रान्तैर्मन्त्रैश्च प्रागुदीरितः ॥७०
उपासीरन्द्विजास्तावद्यावन्नोदेति भास्करः ।
गवां वालपवित्रेण यस्तु सन्ध्यामुपासते ॥७१
सर्वतीर्थाभिषेकं तु लभते नात्र संशयः ।
गोवालं दर्भसारञ्च खड्गं कनकमेव च ॥७२
दर्भ-ताम्र-तिलैर्वापि एतैस्तर्पणकृद्-द्विजाः ।
स सन्तर्प्य पितॄन्देवानात्मानं त्रिदिवं नयेत् ॥७३
त्रिंशत्कोट्यस्तु विख्याता मन्देहा नाम राक्षसाः ।
उद्यन्तं ते विवस्वन्तं बलादिच्छन्ति खादितुम् ॥७४
दिने दिने सहस्रांशु रलक्ष्यैस्तैरभिद्रुतः ।
भानुर्हीनः कृतस्तूर्गं तद्वश्यत्वमिवागतः ॥७५
अतस्तस्य च तेषां तु ह्यभूद्युद्धं सुदारुणम् ।
किं भविष्यति युद्धेऽस्मिन् नित्यभूत्सुरविस्मयः ॥७६
अरुणस्य च ये बाणा ज्वलन्तो ये च भास्वतः ।
विलक्ष्यास्ते निवर्तन्ते मन्देहानामदर्शनात् ॥७७

रवेरप्यंशवो ह्यस्मात् यातायाता ह्यशक्तितः ।
अप्राप्त्या च शरीराणां स्वामिनैव लयं गताः ॥७८

हेषाशब्दमकुर्वाणाः शफस्फुरणवर्जिताः ।
स्तब्धाङ्गा निर्जयाज्जाताः सूर्यस्यन्दनवाजिनः ॥७९

ततो देवगणाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ।
यत्सन्ध्यांते उपासीत प्रक्षिपन्ति जलं महत् ॥८०

ॐकारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
दह्येरन् तेन ते दैत्या वज्रीभूतेन वारिणा ॥८१

सहस्रांशुरथे तिष्ठन् योऽधीयानश्चतुः श्रुतीः ।
याज्ञवल्क्यः समाप्त्यैतत्त्रिशानुक्तवांस्तथा ॥ ८२

सत्त्वे त्वनुदिवादित्ये सन्ध्योपास्तिकरो भवेत् ।
उदिते सति या सन्ध्या बालक्रीडोपमा च सा ॥८३

सन्ध्या येन न विज्ञाता ज्ञात्वा नैव ह्युपासिता ।
स जीवन्नेव शूद्रश्च ह्याशु गच्छति सान्वयः ॥८४

मान्त्रं पार्थिवमाग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च ।
वारुणं मानसञ्चेति सप्त स्नानान्यनुक्रमात् ॥८५

शं न आपस्तु वै मन्त्रं मृद्वालम्भं तु पार्थिवम् ।
भस्मना स्नानमाग्नेयं गोरेणूनाऽऽनिलं स्मृतम् ॥८६

आतपे सति या वृष्टि र्दिव्यस्नानं तदुच्यते ।
बहिर्नद्यादिके स्नानं वारुणं प्रोच्यते बुधैः ॥८७

यद्ध्यानं मनसा विष्णोर्मानसं तत्प्रकीर्तितम् ।
असामर्थ्येन कायस्य कालशक्त्याद्यपेक्षया ॥८८

तुल्यफलानि सर्वाणि स्युरित्याह पराशरः ।
स्नानानां मानसं स्नानं मन्वाद्यैः परमं स्मृतम् ॥८६
कृतेन येन मुच्यन्ते गृहस्था अपि तु द्विजाः ।
दिव्यादीनां त्रयाणां तु स्नानानामौषसं परम् ॥६०
सद्यः पापहरं प्राहुः प्राजापत्यव्रताधिकम् ।
उषस्युषसि यत्स्नानं क्रियतेऽनुदितेऽरवौ ॥६१
प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ।
प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातःस्नायी सदा भवेत् ॥६२
सर्वपापविनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ।
अस्नातो नाचरेत्कर्म जपहोमादि किञ्चन ॥६३
विद्यन्ते (क्लिद्यन्ते) च सुतृप्तानि (सुगुप्तानि) इन्द्रियाणि क्षरन्ति च ।
अङ्गानि समतां यान्ति उत्तमान्यधमैः सह ॥६४
अत्यन्तमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः ।
स्रवत्येष दिवारात्रौ प्रातः स्नानेन शुध्यति ॥६५
उषःस्नानं प्रशंसन्ति सर्वे च पितरोऽमराः ।
दृष्टादृष्टकरं पुण्यं शंसन्ति पितरो(ऋषयो)ऽपि हि ॥६६
प्रातःस्नायी हि यो विप्रः सोऽर्हः स्यात्सर्वकर्मसु ।
तत्कृतं कर्म यत्किञ्चित्तत्सर्वं स्याद्यथार्थवत् ॥ ६७
अविद्वान् स्नानकाले तु यः कुर्याद्दन्तधावनम् ।
पापीयान् रौरवं याति पितृशापहतो ध्रुवम् ॥ ६८
यच्च श्मश्रुषु केशेषु यज्जलं देहलोमसु ।
हस्ताभ्यां न तु वस्त्रेण जलं विद्वान् हि मार्जयेत् ॥६६

मार्जिते पितरः सर्वे सर्वा अपि च देवताः।
तथा सर्वे मनुष्याश्च त्यजेरन् नियतं द्विजम् ॥१००
स्नातृसञ्चिन्तितं सर्वे तीर्थं पितृदिवौकसः।
ततो नद्याद्यसौ गच्छन्निराशास्ते शपन्ति हि ॥१०१
ये तु स्नानार्थिनस्तीर्थं सञ्चिन्तन्ति जलाश्रयान्।
तद्देहमुपतिष्ठन्ति तृप्त्यै पितृदिवौकसः ॥१०२
अतो न चिन्तयेत्तीर्थं व्रजेदेव तत्र चिन्तितम्।
देवखातनदीस्रोतःसरस्सु स्नानमाचरेत् ॥१०३
स्नानं नद्यादिबन्धेषु सद्भिः कार्यं सदम्बुषु।
कृत्रिमं तोयकूपस्थं तोयं तत्र त्वकृत्रिमम् ॥१०४
न तीर्थे स्त्र्याकुले स्नायान्नासज्जनसमावृते।
दर्भहीनोऽन्यचित्तस्तु न नग्नो न शिरोविना ॥१०५
कदाचिद्विदुषा मिथ्या न स्नातव्यं पराम्भसा।
अम्भःकृद्दुष्कृतांशेन स्नानकर्तापि लिप्यते ॥१०६
पञ्च वा सप्त वा पिण्डान् स्नायादुद्धृत्य तत्र तु।
वृथास्नानादिकानीह विशेषेण विवर्जयेत् ॥१०७
वृथा चोष्णोदकस्नानं वृथा जप्यमवैदिकम्।
वृथा चाश्रोत्रिये दानं वृथा भुक्तमसाक्षिकम् ॥१०८
मासे नभसि न स्नायात्कदाचिन्निम्नगासु च।
रजस्वला भवन्त्येता वर्जयित्वा समुद्रगाः ॥१०९
नापो मूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा।
न स्त्री दुष्यति जारेण न विप्रो वेदकर्मणा ॥११०

न स्नायात् क्षोभितास्वप्सु स्वयं न क्षोभयेच्च ताः।
निर्गतासु तीर्थाच्च पतन्तीष्वाहतासु च ॥१११
रविसंक्रान्तिवारेषु ग्रहणेषु शशिक्षये।
व्रतेषु चैव षष्ठीषु न स्नायादुष्णवारिणा ॥११२
न स्नायाच्छूद्रहस्तेन नैकहस्तेन वा तथा।
उद्धृताभिरपि स्नायादाहृताभिर्द्विजातिभिः ॥११३
स्वभावाभिरनुष्णाभिः सहसाभिस्तथा द्विजः।
नवाभिर्निर्दशाहाभिरसंस्पृष्टाभिरन्त्यजैः ॥११४
यः स्नानमाचरेन्नित्यं तं प्रशंसन्ति देवताः।
तस्माद्बहुगुणं स्नानं सदा कार्यं द्विजातिभिः ॥११५
उत्साहाप्यायनंस्वान्तप्रशान्ति-शक्ति-वृद्धिदम्।
कीर्ति-कान्ति-वपुः पुष्टि-सौभाग्या-ऽऽयुःप्रवर्धनम् ॥११६
स्वर्ग्यश्च दशभिर्युक्तं गुणैः स्नानं प्रशस्यते।
सूर्य्यादिदिनवारोक्तं तैलाभ्यञ्चनपूर्वकम् ॥११७
हृत्ताप-कीर्तिमरण-सुत(लक्ष्मी)स्थानाप्ति-मृत्यवः।
आयुश्चार्कादिवारेषु तैलाभ्यङ्गे फलं क्रमात् ॥११८
जलावगाहनं नित्यं स्नानं सर्वेषु वर्णिषु।
शक्तैरहरहः कार्यं तस्याथ विधिरुच्यते ॥११९
गोशकृन्मृत्कुशांश्चैव पुष्पाणि पत्रिकां तथा।
स्नानार्थी प्रयतो नित्यं स्नानकाले समाहरेत् ॥१२०
स्वमनोऽभिमतं तीर्थं गत्वा प्रक्षाल्य पादयोः।
हस्तौ चाचम्य विधिवच्छिखां बध्वैकचेतसा ॥१२१

मृदम्बुभिः स्वगात्राणि क्रमात्प्रक्षालयेद्यथा।
पादौ जङ्घे कटिञ्चैव क्रमाद्घ्राणं जलैस्त्रिभिः १२२

प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य नमस्कृत्य च तज्जलम्।
गृह्योपगुह्यमित्येतद्यजुषा प्रयताञ्जलिः ॥१२३

ऊरु ७ हीति च मन्त्रेण कुर्य्यादापोऽभिमन्त्रिताः।
विधिज्ञाः कवयः केचिन्मन्त्रतत्त्वार्थवेदिनः ॥१२४

यत्र स्थाने तु यत्तीर्थं नदी पुण्यतरा तथा।
तां ध्यायेन्मनसा नित्यमन्यतीर्थं न चिन्तयेत् ॥१२५

गङ्गादिपुण्यतीर्थानि कृत्रिमादिषु संस्मरेत्।
तां ध्यायेन्मनसा वापि अन्यतीर्थं न चिन्तयेत् ॥१२६

महाव्याहृतिभिः पश्चादाचामेत्प्रयतोऽपि सन्।
उदुत्तममिति ह्यप्सु मन्त्रेण प्राङ्मुखो विशेत् ॥१२७

येऽग्नयो दिवि चेत्येतत्कुर्यादालम्भनं ततः।
सूर्य्यं पश्यं जलं मुक्त्वा समुत्तीर्य ततः स्थलम् ॥ १२८

आचम्याथ हरेन्मृत्स्नां तथा कायं समालभेत्।
अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ॥१२९

मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसञ्चितम्।
मृत्तिकाहरणे मन्त्रमिति वासिष्ठजोऽब्रवीत्।
समालभेत्त्रिभिर्मन्त्रैरिदं विष्णुादिभिर्द्विजः ॥१३०

शिरश्चांसावुरश्चोरू पादौ जङ्घे क्रमेण तु।
भास्कराभिमुखो मज्जेदापो ह्यस्मानिति त्रिभिः ॥१३१

उन्मृज्य सर्वगात्राणि निमज्जेच्च पुनः पुनः।
उत्तीर्य्याऽऽचम्य गात्राणि गोमयेनाथ लेपयेत् ॥१३२
मानस्तोक इति ह्युक्त्वा प्राग्वदङ्गक्रमेण तु।
इमं मे वरुण, त्वन्नः, सत्यं नय, उदुत्तमम् ॥१३३
मुञ्च त्ववभृथेत्येतैरात्मानमभिषेचयेत्।
निमज्ज्याऽऽचम्य चाऽऽत्मानं दर्भैर्मन्त्रैश्च पावयेत् ॥१३४
सर्वपापापनोदार्थं प्राग्वदङ्गक्रमेण तु।
आपोहिष्ठादिकैर्मन्त्रैस्त्रिभिरन्यैश्च पावयेत् ॥१३५
हविष्मतीरिमा आप इदमापस्तथैव च।
देवीराप इति द्वाभ्यामापो देवीरिति त्यृचा ॥१३६
संस्मृत्य द्रुपदां देवीं शन्नो देवीरपां रसम्।
प्रत्यङ्गं मन्त्रनवकमापोदेवी पुनन्तु माम् ॥१३७
चित्पतिं मां पुनात्वेतन्मन्त्रेणापि च पावयेत्।
हिरण्यवर्णा इति च पावमान्यस्तथापरम् ॥१३८
तरत्समन्दीधावति पवित्र्याण्यपि शक्तितः।
स्नानकर्मात्मकैर्मन्त्रैरन्यैरप्यम्बुदैवतैः ॥१३९
प्राप्यात्मानं निमज्ज्याथ आचान्तास्त्वन्यदाचरेत्।
काल-काय-प्रदेशानां तथा चैवोदकस्य च ॥१४०
प्राकृत्ये सति चैवायं विधिरन्यो विपर्यये।
सोंकारां चैव गायत्रीं महाव्याहृतिभिः सह ॥१४१
त्रिषण्णवैकधाऽऽवर्त्य स्नायाद्विद्वानपि द्विजः :
छन्दो-मुन्यमरैर्युक्तं स्वशाखास्वरसंयुतम् ॥१४२

आवर्त्य प्रणवं स्नायाच्छतमर्धशतं दश।
चिद्रूपं परमं ज्योतिर्निरालम्बमनामयम् ॥१४३

अव्यक्तमव्ययं शान्तं स्नायाद्वापि हरिं स्मरन्।
गायत्रीवारिसंस्नातः प्रणवैर्निर्मलीकृतः ॥१४४

विष्णुस्मरणसंशुद्धो योग्यः सर्वेषु कर्मसु।
योऽधीतवेदो वेदार्थः स स्नातः सर्ववारिषु ॥१४५

शुद्धे यदशुचिनः स्वान्तस्तच्छुद्धस्तु शुचिर्यतः।
मन्त्रैश्च मनसा स्नानं न गोमय-मृदम्बुभिः ॥१४६

तैश्चेद्गो-खर-मत्स्याश्च स्नानस्य फलमाप्नुयुः।
भावपूतः पवित्रः स्यान्मन्त्रपूतस्तथा नरः ॥१४७

उभयेन पवित्रस्तु नित्यस्नायी शुचिर्नरः।
विधिदृष्टं तु यत् कर्म करोत्यविधिना तु यः ॥१४८

न किंचित् फलमाप्नोति क्लेशमात्रं हि तस्य तत्।
उत्पद्यन्ते जले मत्स्या विपद्यन्ते तु तत्र च ।१४६

तिष्ठन्तोऽपि च ते स्नानफलं नैवाप्नुयुर्यतः।
विधिहीनं भावदुष्टं कृतमश्रद्धयापि च ॥१५०

तद्धरन्त्यसुरास्तस्य मूढत्वादकृतात्मनः।
श्रद्धा-विधिसमायुक्तं यत् कर्म क्रियते नृभिः।
शुचिभीरेकचित्तैश्च तदानन्त्याय कल्पते ॥१५१

उदात्तमनुदात्तं च स्वरितं प्लुतमेव च।
द्रुतं च स्वरितोदात्तं स्वरं विद्यात्तथा प्लुतम् ॥१५२

स्वरान्तं व्यञ्जनान्तं च विसर्गान्तं तथैव च।
सानुस्वारं पृथक्त्वं च ज्ञातव्यमपरं च यत् ॥१५३

वृत्रं शतक्रतुर्हन्ति वज्रेण शतपर्वणा।
यथा तथा प्रवक्तारं मन्त्रो हीनः स्वरादिभिः ॥१५४

स्वरतो वर्णतः सम्यक् सन्ध्या-ध्यान-जपादिषु।
सर्वे मन्त्राः प्रयोक्तव्या हीनाः स्युरफला नृणाम् ॥१५५

नाभेरधस्तादङ्गानि क्षालयित्वा मृदम्भसा।
उपरिष्टात् सिक्तवस्त्रो मन्त्रैः प्रोक्ष्य शुचिर्भवेत् ॥१५६

चतुरश्चतुरस्त्वङ्घ्र्योर्द्वौ द्वौ च जङ्घयोस्तथा।
द्वौ द्वौ च जानुनोर्न्यस्य ऊर्वोः पञ्च च पञ्च च ॥१५७

द्वावप्येवं तथा गुह्ये दशदशोदर-वक्षसोः।
द्वौ द्वौ गले च बाह्वोश्च द्वौ द्वावंस मुखेषु च ॥१५८

द्वौ द्वौ च चक्षुषोः श्रुत्योः सप्तोङ्काराश्च मूर्धनि।
न्यस्तप्रणवसर्वाङ्गः स्नातः स्यात् सर्ववारिषु ॥१५९

अकारं मूर्ध्नि विन्यस्य उकारं नेत्रमध्यतः।
मकारं कण्ठदेशे तु ब्रह्मीभवति वै द्विजः ॥१६०

अभ्यङ्गाक्लिष्टधौते तु विद्वाञ्छुक्ले च वाससी।
परिधाय मृदम्बुभ्यां करौ पादौ च मार्जयेत् ॥१६१

तद्वाससोरसम्पत्तौ शाण-क्षौमा-ऽऽविकानि च।
कुतपं योगपट्टं वा द्विवासास्तु यथा भवेत् ॥१६२

न जीर्ण-नील-काषाय-माञ्जिष्ठेन तु वाससा।
मूत्राद्युपगतेनैव शुचिः स्यान्नैकवाससा ॥१६३

एकं वासो यथाप्राप्तं परिधाय मन.शुचिः।
अन्यत् कृत्वोत्तरासङ्गमाचम्य प्राङ्मुखः स्थितः ॥१६४
प्रत्योङ्कारसमायुक्ताः प्रणवाद्यन्तकास्तथा।
महाव्याहृतयः सप्त दैवतार्षादिसंयुताः ॥१६५
प्रणवान्ता च गायत्री शिरस्तस्यास्तथैव च।
त्रिरावर्तनमेतस्याः प्राणायामो विधीयते ॥१६६
शक्त्याऽसुसंयमं कृत्वा तथाचम्य विधानतः।
उपास्य विधिवत् सन्ध्यामुपस्थाय च भास्करम् ॥१६७
गायत्रीं शक्तितो जप्त्वा तर्पयेद्देवताः पितॄन्।
अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु ॥१६८
तृप्यतामिति सेक्तव्यं नाम्ना तु प्रणवादिना।
ब्रह्मेश-केशवान् पूर्वं प्रजापतिमथो श्रुतीः ॥१६९
छन्दो यज्ञानृषीन् सिद्धानाचार्यांस्तनयानपि।
गन्धर्व-वत्सरर्तूंश्च मासान् दिन-निशास्तथा १७०
देवान् देवानुगांश्चैव नागान्नागकुलानि च।
सरितः सागरांस्तीर्थान् पर्वतान् कुलपर्वतान् ॥१७१
किन्नरान् खेचरान् यक्षान् मनुष्यानथ तर्पयेत्।
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥१७२
आसुरिः कपिलश्चैव बोढुः पञ्चशिखस्तथा।
मानुषान् यातुधानांश्च तेषां चैव कुलान्यपि ॥१७३
सुपर्णांश्च पिशाचांश्च भूतान्यथ पशूंस्तथा।
वनस्पतीनोषधींश्च भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥१७४

ब्रह्मादयो मयाहूता आगच्छन्त्वाददन्त्वपः।
अनृणं मां प्रकुर्वन्तु प्रसीदन्तु ममोपरि ॥१७५
ततः पूर्वाग्रदर्भेषु साग्रेषु सकुशेषु च।
प्रादेशिकेषु शुद्धेषु ब्रह्मादिभ्योऽम्बु सेचयेत् ॥१७६
अन्वारब्धापसव्येन पाणिना दक्षिणे न तु।
भूस्थदक्षिणजानुः सन् देवेभ्यः सेचयेज्जलम् ॥१७७
देवेभ्यश्च नमः स्वाहा पितृभ्यश्च नमः स्वधा।
मन्यन्ते कवयः केचिदित्यर्थं तर्पणक्रमः ॥१७८
तर्प्यमाणेषु कर्मत्वं णिजन्तं च क्रियापदम्।
तर्पयामि पितॄन् देवानित्याहुरपरे पुनः ॥१७९
सिच्यमानेन तोयेन मन्यन्ते मुनयो परे।
देवास्तृप्यन्तु पितरस्तृप्यन्त्विति निदर्शनम् ॥१८०
उदीरतामाङ्गिरस आयन्तु नोर्जमित्यपि।
पितृभ्यश्च स्वधायिभ्यो ये चेह पितरस्तथा ॥१८१
अग्निष्वात्तोपहूताश्च तथा वर्हिषदोऽपि च।
येन पूर्वे च तितरः सोमपानामुदीरयेत् ॥१८२
आवाह्य च पितॄनेतैरपसव्योपवीतिना।
दक्षिणाभिमुखो द्वाभ्यां कराभ्यामम्बु सेचयेत् १८३
भूलग्नसव्यजानुश्च दक्षिणाग्रकुशेषु च।
रुक्म-रौप्य-तिलैस्ताम्र-दर्भ-मन्त्रैः क्षिपेत् पयः ॥१८४
विना रौप्य-सुवर्णाभ्यां विना-ताम्र-तिलैरपि।
विना दर्भैश्च मन्त्रैश्च पितॄणां नोपतिष्ठति ॥१८५

दर्भैर्लोहितदर्भैश्च काश-वीरण-वल्वजैः ।
शूकधान्य-तृणैर्वापि दर्भकार्यं श्रयेद् द्विजः ॥१८६
न तर्पयेत् पतन्तीभिर्विद्वानद्भिः कथंचन ।
पात्रस्थाभिः सदर्भाभिः सतिलाभिश्च तर्पयेत् ॥१८७
वसून् रुद्रांस्तथाऽऽदित्यान्नमस्कारैस्समन्वितान् ।
एते च दिव्याः पितर एतदायत्तमानुषाः ॥१८८
ध्रुवो धरश्च सोमश्च आपश्चैवानलो ऽनिलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो ऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥१८९
अजैकपादहिर्बुध्न्यो विरूपाक्षोऽथ रैवतः ।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः ॥१९०
सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चापराजितः ।
एते रुद्राः समाख्याता एकादश सुरोत्तमाः ॥१९१
इन्द्रो धाता भगः पूषा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा ।
अंशुर्विवस्वांस्त्वष्टा च सविता विष्णुरेव च ॥१९२
एते वै द्वादशादित्या देवानां परमाः स्मृताः ।
एवं हि दिव्याः पितरः पूज्याः सर्वे प्रयत्नतः ॥१९३
कव्यवाहो नलः सोमो यमश्चैव तथार्यमा ।
अग्निष्वात्ता सोमपाश्च तथा बर्हिषदोऽपि च ॥१९४
एते चान्ये च पितरः पूज्याः सर्वे प्रयत्नतः ।
एतैस्तु तर्पितैः सर्वैःपुरुषास्तर्पिता नृणां ॥१९५
यमश्च धर्मराजश्च मृत्युश्चैव तथान्तकः ।
वैवस्वतश्च कालश्च सर्वभूतक्षयस्तथा ॥१९६

औदुम्बरश्च नीलश्च दध्नश्च परमेष्ठ्यपि ।
चित्रश्च चित्रगुप्तश्च वृकोदरस्तथार्यमा: ।।१९७
एतैस्तु तर्पितैः सद्भिर्विश्वं स्यात्तर्पितं नृभिः ।
तस्मात् प्राक्तर्पयित्वैतान् पित्रादीन् तर्पयेत्ततः ।।१९८
मातामहान् मातुलांश्च सखि-सम्बन्धि-बान्धवान् ।
स्वजनान् ज्ञातिवर्गीयानुपाध्यायान् गुरूनपि ।।१९९
मित्रान् भृत्यानपत्यांश्च ये भवन्ति तदाश्रिताः ।
तान् सर्वांस्तर्पयेद्विद्वानीहन्ते ते यतो जलम् ।।२००
जलस्थश्च जले सिञ्चेत् स्थलस्थश्च तथा स्थले ।
पादौ स्थाप्योऽभयोश्चैव प्रक्षाल्योभयतः शुचिः ।।२०१
यज्जले शुष्कवस्त्रेण स्थले चैवार्द्रवाससा ।
कुर्याद्धोमं जपं दानं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ।।२०२
नार्द्रवासाःस्थलस्थस्तु बुधस्तर्पणमाचरेत् ।
जानुदध्नजलस्थो वा विगलत्स्नानवस्त्रकः ।।२०३
गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य करौ विप्रो जले स्थितः ।
अम्बरे तु क्षिपेद्वारि पितॄणां तृप्तिमावहन् ।।२०४
उभाभ्यां सेचयेद्वारि आकाशे दक्षिणामुखः ।
पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणा दिक् तथैव च ।।२०५
स्थलगो मार्द्रवासास्तु कुर्याद्वै तर्पणादिकम् ।
प्रेतादृते नार्द्रवासा नैकवासा समाचरेत् ।।२०६
एवं हि तर्पणं कृत्वा सर्वेषां विधिवद्द्विजाः ।
निष्पीडयेत् स्नानवस्त्रं येन स्नातो भवेद्द्विजः ।।२०७

निष्पीडयति यः पूर्वं स्नानवस्त्रमबुद्धिमान्।
निराशाः पितरस्तस्य यान्ति देवाः सहर्षिभिः २०८
निष्पीडयेत् स्नानवस्त्रं तिल-दर्भसमन्वितम्।
न पूर्वं तर्पणाद्वस्त्रं नैवाम्भसि न पादयोः ॥२०९
एषु चेत् पीडयेद्वस्त्रं राक्षसं तदतिक्रमात्।
वस्त्रनिष्पीडने विप्र इमं श्लोकमुदाहरेत् ॥२१०
ये मे कुले लुप्तपिण्डा पुत्र-दार-विवर्जिताः।
तेषां प्रदत्तमक्षय्यमिदमस्तु तिलोदकम्॥ २११
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे कुमृत्युना।
तेषां तृप्तिर्भवत्त्वेषा तिलमिश्रेण वारिणा ॥२१२
जलमध्ये च यः कश्चिद्ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः।
निष्पीडयति चेद् वस्त्रं स्नानं तस्य वृथा भवेत् ॥२१३
यदप्सु मलनिक्षेपः शौच-स्नानादिकुर्वताम्।
तत्पापस्य व्यपोहार्थमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२१४
यन्मया दूषितं तोयं मलैः शारीरसम्भवैः।
तस्य पापस्य निष्कृत्यै यक्ष्मणस्तत्र तर्पणम् ॥२१५
अम्बुपेभ्योऽथ यक्ष्मभ्यो ददामीदं जलाञ्जलिम्।
अन्यथा घ्नन्ति ते सर्वं सुकृतं पूर्वसञ्चितम् ॥२१६
अपुत्रा ये मृताः केचित् पुमांसो योषितोऽपि वा।
अस्मद्वंशेऽपि तेभ्यो वै दत्तं वस्त्रजलं मया ॥२१७
नास्तिक्येनापि यो विप्रस्तर्पयेत् पितृ-देवताः।
स तत्तृप्तिकृतो धर्मान् प्राप्नुयात् परमां गतिम् ॥२१८

नास्तिक्यावस्थितो यस्तु तर्पयेन्न पितॄन् द्विजः।
पिबन्ति देहनिस्रावं पितरस्तज्जलार्थिनः ॥२१६

पितॄणां पितृतीर्थेन देवानां दैविकेन तु।
इति मत्वा प्रकुर्वाणा मुच्यते गृहमेधिनः ॥२२०

पञ्च तीर्थानि विप्रस्य करे तिष्ठन्ति दक्षिणे।
ब्राह्मं दैवं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं तु सौमिकम् ॥२२१

ब्राह्मं पश्चिमलेखायां दैवं ह्यङ्गुलिमूर्धनि।
प्राजापत्यं कनिष्ठादौ मध्ये सौम्यं विजानतः ॥२२२

अङ्गुष्ठस्य प्रदेशिन्या मध्ये पित्र्यं प्रतिष्ठितम्।
कुर्याद्यो ऽहरहश्चैवं सम्यग्ज्ञात्वा विधानतः ॥२२३

स प्राप्नुयाद्गृहस्थोऽपि ब्रह्मणः पदमव्ययम्।
स्नात्वा जप्त्वा च हुत्वा च दत्वा चैव तु योऽश्नुते ॥२२४

सो ऽमृतं नित्यमश्नाति तस्य स्थानमनामयम्।
अस्नात्वाऽश्नन् मलं भुङ्क्ते अजप्त्वा पूय-शोणितम्।
अजुह्वंश्च कृमीन् कीटानददंश्च शकृत्तथा ॥२२५
आह्लादकारणं स्नानं दुःख-शोकापहं तथा।
दुःस्वप्ननाशनं चैव कार्यं स्नानमतः सदा ॥२२६
चित्तप्रसाद-बल-रूप-तपांसि-मेधा-
मायुष्य-शौच-सुभगत्वमरोगितां च ।
ओजस्वितां त्विषमदात् पुरुषस्य चीर्णं
स्नानं यशो-विभव-सौख्यमलोलुपत्वम ॥२२८

गीर्वाणवृन्दद्विजसत्तमस्तुतः

प्राप्तो मया यस्तु वसिष्ठपौत्रतः।

पापप्रणाशं वितनोति यः श्रुतः

प्रोदीरितः स्नानविधिः स लेशतः २२८

उद्देशतो मया प्रोक्तः स्नानस्य परमो विधिः।

द्विजन्मनां हितार्थं तु जपस्यातः परो विधिः ॥२२९

इति श्रीबृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां स्मृतायां स्नानविधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

—:००:—

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

ॐकारमन्त्रवर्णनम्।

जपस्याथ प्रवक्ष्यामि विधिं पाराशरोदितम्।

यावद्विधो जपो यस्तु यथा कार्यो द्विजातिभिः ॥१

जप्यानि ब्रह्मसूक्तानि शिवसूक्तानि चैव हि।

वैष्णवानि च सूक्तानि तथा सौरण्यनेकधा ॥२

सारस्वतानि दौर्गाणि वारुणान्यानिलानि च।

पौराणिकानि चान्यानि तथा सिद्धान्तिकानि च ॥३

सर्वेषां जप्यसूक्तानामृचां च यजुषां तथा ।
साम्नां चैकाक्षरादीनां गायत्री परमो जपः ॥४
तस्याश्चैव तु ॐकारो ब्रह्मणा यमुपास्यते ।
आभ्यां तु परमं जप्यं त्रैलोक्येऽपि न विद्यते ॥५
तयोस्तु देवतार्षादि समासेनाभिधीयते ।
येन विज्ञातमात्रेण द्विजो ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥६
आसीन्नैव यदा किंचित् सदेवाऽ-सुर-मानुषम् ।
तदैकाक्षर एवासीदात्मविन्यस्तविश्वकः ॥७
गतभीरद्वितीयोऽपि एकाकी स न मोदते ।
चिन्तयामास गायत्रीं प्रत्यक्षा साऽभवत्तदा ॥८
गायत्री साऽभवत् पत्नी प्रणवोऽभूत् पतिस्तदा ।
पुनरन्यौ च दम्पत्यमिति ताभ्यामभूज्जगत् ॥९
प्रणवो हि परं तत्त्वं त्रिवेदं त्रिगुणात्मकम् ।
त्रिदैवतं त्रिधामं च त्रिप्रज्ञं त्रिरवस्थितम् ॥१०
त्रिमात्रं च त्रिकालं च त्रिलिङ्गं कवयो विदुः ।
सर्वमेतत्त्रिरूपेण व्याप्तं तु प्रणवेन हि ॥११
ऋग्यजुः-सामवेदाश्च त्रिवेद इति कीर्तितः ।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रिगुणस्तेन चोच्यते ॥१२
ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानस्त्रिदैवत इतीष्यते ।
अग्निः सोमश्च सूर्यश्च त्रिधामेति प्रकीर्तितः ॥१३
अन्तःप्रज्ञं बहिःप्रज्ञं घनप्रज्ञमुदाहृतम् ।
हृत्कण्ठ-तालुकं चेति त्रिस्थान इति कीर्त्यते ॥१४

अकारोकारौ मश्चेति त्रिमात्रः प्रोच्यते बुधैः।
भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिकाल इति स स्मृतः ॥१५
स्त्री-पुन्नपुंसकं चेति त्रिलिङ्ग इति कीर्तितः।
त्रिस्वभावः स्थितो देवो मन्तव्यो ब्रह्मवादिभिः ॥१६
पर्यवस्यति यत्रैतद्विश्वमुत्पद्यते यतः।
निर्मात्रकः समात्रोऽपि सादिरेव निरादिकः ॥१७
स जप्यः सर्वदा सद्भिर्ध्यातव्यश्च विधानतः।
वेदेषु चैव शास्त्रेषु बहुधा स व्यवस्थितः ॥१८
तथा सत्यपि चैकोऽयं घटाकाश इव स्थितः।
कर्मारम्भेषु सर्वेषु त्रिमात्रः सम्प्रकीर्तितः ॥१९
स्थितो यत्र यथोक्तश्च स्मर्तव्यः स तथैव हि।
ऋग्वेदे स्वरितोदात्त उदात्तस्तु यजुःश्रुतौ ॥२०
सामवेदे स विज्ञेयो दीर्घः स प्लुत एव च।
सनत्कुमारसिद्धान्ते प्रणवो विष्णुरुच्यते ॥२१
यस्मिंस्तस्य च विश्रान्तिस्तत् परं ब्रह्मसंज्ञितम्।
उच्चारितस्य तस्याथ विश्रान्तौ च यदक्षरम् ॥२२
तदक्षरं सदा ध्यायेद्यस्तत्रैव प्रलीयते।
घण्टास्वनितवत्तस्य विश्रान्तिः शब्दवेधसः ॥२३
कुर्वीत ब्रह्मविद्विप्रो यदीच्छेद्योगमात्मनः।
सर्वस्यापि च शब्दस्य ह्यन्त उच्चारितस्य यत् ॥२४
तद्ध्यायेद्यस्तु स ज्ञानी शब्दब्रह्मविदुच्यते।
याज्ञवल्क्यो मुनीनां प्रागब्रवीज्जनकस्य च ॥२५

वासिष्ठजो ऽपि तं ब्रूयात् स्वभावं शब्दवेधसः।
तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घं घण्टानिनादवत् ॥२६

अवाग्जं प्रणवस्यायं यस्तं वेद स वेदवित्।
स्थित्वा सर्वेषु शब्देषु सर्वं व्याप्तमनेन हि।
न तेन हि विना किंचिद्वक्तुं यासि गिरा यतः ॥२७

उद्गीथमक्षरं ह्येतदुद्गीथं च उपासते।
उपास्यो मध्यतस्तत्रैष नादं विश्रामयेद्धृदि ॥२८

प्रणवाद्याः स्मृता वेदाः प्रणवे पर्यवस्थिताः।
वाङ्मयं प्रणवे सर्वं तस्मात् प्रणवमभ्यसेत् ॥२६

ब्रह्मार्षं तत्र विज्ञेयमग्निश्च दैवतं महत्।
आद्यं छन्दः स्मरेत्तत्र नियोगो ह्यादिकर्मणि ॥३०

उत्पन्नमेतत्तु यतः समस्तं व्यावृत्य तिष्ठेत् प्रलये ऽपि यत्र।
एकाक्षरेणापि जगन्ति येन व्याप्तानि कोऽन्यः परमोऽस्ति तस्मात् ॥

ध्येयं न जप्यं नच पूजनीयं तस्मान्न देवाद्वरणीयमन्यत्।
दुस्तारसंसारपयोधिमग्नतारराय विष्णुः प्रणवः स पूज्यः ॥३२

उक्तमुद्देशतो ह्येतद् रूपमेकाक्षरस्य च।
जप्या च सततं देवी गायत्री साऽधुनोच्यते ॥३३

इति श्रीबृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां स्मृत्यां षट्कर्मनिरूपणे प्रणवस्वरूपवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥

— ❀::❀ —

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥

गायत्रीमन्त्रपुरश्चरणवर्णनम् ।

गायत्र्याः संप्रवक्ष्यामि देवर्ष्यादि क्रमेण तु ।
अक्षराणां च विन्यासं तेषां चैव तु देवताः ॥१
जप्ये यथाविधा कार्या यथारूपा च साऽर्चने ।
होमे यथा च कर्तव्या यथा वा चाऽऽभिचारिके ॥२
यत् फलं जपहोमादौ यदर्थं जप्यते तु सा ।
ध्यातव्या च यथा देवी यथावत्तन्निबोधत ॥३
गायत्री तु परं तत्त्वं गायत्री परमा गतिः ।
सर्वाऽमरैरियं ध्याता सर्वं व्याप्तं तया जगत् ॥४
उत्पद्यते त्रिपादायाः पुनस्तस्यां विशेदिदम् ।
गायत्री प्रकृतिर्ज्ञेया ॐकारः पुरुषः स्मृतः ॥५
एतयोरेव संयोगाज्जगत् सर्वं प्रवर्तते ।
पादास्त्रयस्त्रयो वेदास्तेषु तत्त्वाक्षराणि च ॥६
चतुर्विंशतिरेवास्यां तैर्हि व्याप्तमिदं जगत् ।
आदाय चैकं प्रथमं तु पादमृग्भ्यो द्वितीयं तु तथा यजुर्भ्यः ।
साम्नस्तृतीयं तु ततोऽभवत् सा सावित्रिदेवी स्वयमेव सर्गे ॥७
दैवत्यमस्यां सविता सुरार्च्यश्छन्दोऽपि गायत्रमभून्न तस्याः ।
विश्वस्य मित्रो द्विजराजपूज्यो मुनिर्नियोगस्तु जपादिकेषु ॥८
अस्यां तु तत्त्वाक्षरविंशतिस्तु चत्वारि पादत्रियतं तु देव्याम् ।
भूरादिभिस्तिसृभिः संप्रयुक्तं सोङ्कारमेतद्वदनं च तस्याः ॥९

केचिद्धुताशं वदनं वदन्ति सावित्रिदेव्योः श्रुतितत्त्वविज्ञाः ।
इदं च वक्त्रं सकलामराणामित्येतया व्याप्तमशेषमेतत् ॥१०

भूरादिकेन त्रितयेन पादं पादं च वेदत्रितयेन चास्याः ।
प्राणादिकेन त्रितयेन पादं पादैस्त्रिभिर्व्याप्तमशेषमस्याः ॥११

यस्तुर्यमस्या द्विज वेत्ति पादं स वेत्ति विद्वन् परमं पदं तु ।
व्याप्तिःपराऽस्याःसकलापि चैषा यो वेत्ति चैनां स तु वित्तमःस्यात् ॥

गायत्रीं यो न जानाति ज्ञात्वा नैव उपासयेत् ।
नामधारकमात्रोऽसौ न विप्रो वृषलो हि सः ॥१३

किं वेदैः पठितैः सर्वैः सेतिहास-पुराणकैः ।
साङ्गैः सावित्रिहीनेन न विप्रत्वमवाप्यते ॥१४

गायत्रीमेव यो ज्ञात्वा सम्यगभ्यसते पुनः ।
इहामुत्र च पूज्योऽसौ ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥१५

गायत्री च तथा वेदा ब्रह्मणा तुलिताः पुरा ।
वेदेभ्योऽपि षडङ्गेभ्यो गायत्र्यतिगरीयसी ॥१६

यदक्षरेषु दैवत्यं चतुर्विंशतिरुच्यते ।
संन्यासं यद्विबोधेन कुर्वन् ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥१७

जानीयादक्षरं देव्याः प्रथमं त्वाशुशुक्षणम् ।
प्राभञ्जनं द्वितीयं तु तृतीयं शशिदैवतम् ॥१८

विद्युतश्च तुरीयं तु पञ्चमं तु यमस्य च ।
षष्ठं तु वारुणं तत्त्वं सप्तमं तु बृहस्पतेः ॥१९

पार्जन्यमष्टमं तत्त्वं नवमं चेन्द्रदैवतम् ।
गान्धर्वं दशमं विद्यात्त्वाष्ट्रमेकादशं तथा ॥२०

मैत्रावरुणमन्यद्वै तथा पूष्णस्त्रयोदशम्।
चतुर्दशं सुरेशस्य प्रागिदं ब्रह्मणः स्मृतम् ॥२१
मरुद्दैवतकं ज्ञेयं पञ्चदशं यदक्षरम्।
सौम्यं च षोडशं तत्त्वं तथा चाङ्गिरसं परम् ॥२२
विश्वेषां चैव देवानामष्टादशमथाक्षरम्।
अश्विनोश्चोनविंशं तु विंशं प्रजापतेर्विदुः ॥२३
एकविंशं कुबेरस्य द्वाविंशं शंकरस्य च।
त्रयोविंशं तथा ब्राह्मं चार्तुविंशं तु वैष्णवम् ॥२४
इति ज्ञात्वा द्विजः सम्यग्सर्वाश्चाक्षरदेवताः।
कुर्वन् जपादिकं विप्रः परं श्रेयोऽधिगच्छति ॥२५
पादाङ्गुष्ठादिमूर्द्धान्तमात्मनो वपुषि न्यसेत्।
अक्षराणि च सर्वाणि वाञ्छन् ब्रह्मत्वमात्मनः ॥२६
पादाङ्गुष्ठयुगे त्वेकमेकैकं गुल्फयोर्द्वयोः।
जानुनोश्च द्वयोरेकमेकमूरुयोर्द्वयोः ॥२७
गुह्ये कट्यां तथैकैकमेकैकं जठरोरसोः।
स्तनद्वये तथैकं तु न्यसेदेकं गले तथा ॥२८
वक्त्रे तालुनि दृक्-श्रुत्योश्चतुर्ष्वेकैकमेव च।
भ्रुवोर्मध्ये तथैकं तु ललाटे चैकमेव हि ॥२९
याम्य-पश्चिम-सौम्येषु एकैकमेकमूर्धनि।
गायत्रीन्यस्तसर्वाङ्गो गायत्रो विप्र उच्यते ॥३०
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।
प्रोक्तः प्रणवविन्यासो व्याहृतीनामथोच्यते ॥३१

सप्तापि व्याहृतीर्न्यस्याः सर्वदेहे जपादिषु।
भूर्लोकं पादयोर्न्यस्य भुवर्लोकं तु जानुनोः ॥३२

स्वर्लोकं कटिदेशे तु नाभिदेशे महस्तथा।
जनलोकं तु हृदये कण्ठदेशे तपस्तथा ॥३३

भ्रुवोर्ललाटसन्ध्योस्तु सत्यलोकः प्रतिष्ठितः।
हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ॥३४

तच्छुद्धं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः।
देवस्य सवितुर्भर्गो वरेण्यं चैव धीमहि ॥३५

तदस्माकं धियो यस्तु ब्रह्मत्वे च प्रचोदयात्।
छन्दोदैवतमार्षं च विनियोगं च ब्राह्मणम् ॥३६

मन्त्रं पञ्चविधं ज्ञात्वा द्विजः कर्म समाचरेत्।
स्वरतो वर्णतश्चैव परिपूर्णं भवेद्यथा ॥३७

हीनं न विनियुञ्जीत मन्त्रं तु मात्रयापि च।
देवतायतने कुर्याज्जपं नद्यादिकेषु च ॥३८

आश्रमेषु यतीनां वा गोष्ठे वा स्वगृहेऽपि वा।
चतुर्ष्वन्तिमपूर्वेषु ह्युत्तमादिक्रमेण तु ॥३९

दशगुणं सहस्रं स्यात् फलं विष्णावनन्तकम्।
अप्समीपे जपं कुर्यात् ससङ्ख्यं तद्भवेद्यथा ॥४०

असङ्ख्यमासुरं यस्मात्तस्मात्तद्गणयेद्ध्रुवम्।
स्फाटिकेन्द्राक्ष-रुद्राक्षैः पुत्रजीवसमुद्भवैः ॥४१

अक्षमाला प्रकर्तव्या प्रशस्ता चोत्तरोत्तरा।
अभावे त्वक्षमालाया कुशग्रन्थ्याऽथ पाणिना ॥४२

यथा कथंचिद्गणयेत् ससङ्ख्यं तद्भवेद्यथा।
प्रणवो भूर्भुवः स्वश्च पुनः प्रणवसंयुतम् ॥४३

अन्त्योऽङ्कारसमायुक्तां मन्यन्ते मुनयोऽपरे।
प्रणवोऽन्ते तथा चादावाहुरन्ये जपे क्रमम् ॥४४

आदावेव तु चोङ्कार आवृत्तावादिकोऽन्ततः।
तदाद्यं च तदन्तं च कुर्यात् प्रणवसम्पुटम् ॥४५

आद्यन्तरक्षितां कुर्यादिति पाराशरोऽब्रवीत्।
यो न वाञ्छति सन्तानं मोक्षमिच्छति केवलम् ॥४६

प्रत्योङ्कारमसौ कुर्वन्नक्षरं मोक्षमाप्नुयात्।
अक्षरप्रातिलोम्येन सोङ्कारेण क्रमेण तु ॥४७

फट्कारान्तां च कुर्वीत प्रेच्छन्नरिवधं बुधः।
होमे चापि पठन् कुर्यात् प्रणवावर्तनं द्विजः।
अभिप्रेतार्थहोमादौ स्वाहान्तां तामुदीरयेत् ॥४८

संकीर्णतां यदा पश्येद्रोगाद्वा द्विषतोऽपि वा।
तदा जपेच्च गायत्रीं सर्वदोषापनुत्तये ॥४९

रुद्रजाप्यानि कार्याणि सूक्तं च पुरुषस्य च।
शिवसंकल्पजाप्यं च सर्वं कुर्याद्विधानतः ॥५०

जप्यानि घ्नन्ति पापानि श्रेयो दद्युस्तदर्थिनाम्।
अतो जपं सदा कुर्याद्यदीच्छेच्छुभमात्मनः ॥५१

द्रुपदां वा जपेद्देवीमजपां जम्बुकां तथा।
प्रणवं च सदाभ्यस्येद्यदि ब्रह्मत्वमिच्छति ॥५२

प्राणानामयुताभ्यां च तथा षौडशभिः शतैः ।
पुंसो गच्छत्यहोरात्रं तत्संख्यामजपां विदुः ॥५३
रविमण्डलमध्यस्थे पुरुषे लोकसाक्षिणि ।
समर्पितं मया चेदं सूर्याख्ये ब्रह्मणः पदे ॥५४
न जप्यं प्रसभं कुर्यात् प्रसभं घ्नन्ति राक्षसाः ।
ब्राह्मणा भागधेयास्तु तेषां देवो विधिक्रमः ॥५५
उपांशु तु जपं कुर्यात् ब्राह्मणो वाथ मानसम् ।
विवृतोष्टमुपांशुः स्यादचलोष्ठं तु मानसम् ॥५६
द्विविधस्तु जपः प्रोक्त उपांशुर्मानसस्तथा ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥५७
उपांशुजपयुक्तस्तु मानसे च रतस्तथा ।
इहैव याति वैधस्त्वमिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥५८
विधियज्ञाः पाकयज्ञा ये चान्ये बहवी मखाः ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षौडशीम् ॥५६
जप्येनैकेन सिद्धेन किं न सिद्धं भवेदिह ।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्री ब्राह्मण उच्यते ॥६०
शतेन जन्मजनितं सहस्रेणं पुराकृतम् ।
अयुतेन त्रिजन्मोत्थं गायत्री हन्ति पातकम् ॥६१
दशभिर्जन्मजनितं शतेन तु पुराकृतम् ।
सहस्रेण त्रिजन्मोत्थं गायत्री हन्ति पातकम् ॥६२
अस्मिन् कलौ च विदुषा विधिवत् कर्म यत् कृतम् ।
भवेद्दशगुणं तद्धि कृतादेर्युगतो ध्रुवम् ॥६३

न च तच्छक्यते कर्तुं मन्त्राम्नायेऽस्य दूषणात् ।
अयथार्थकृतात् पाठात् मन्त्रसिद्धिर्गरीयसी ॥६४

न च क्रमन्न च हसन्न पार्श्वमवलोकयन् ।
नान्यसक्तो न जल्पंश्च न चैवोर्ध्वशिरास्तथा ॥६५

नाङ्घ्रिणा पीडयेत् पादं न चैव हि तथा करम् ।
नैवंविधं जपं कुर्यान्न च संचालयेत् करम् ॥६६

प्रच्छन्नानि च दानानि ज्ञानं च निरहंकृतम् ।
जप्यानि च सुगुप्तानि तेषां फलमनन्तकम् ॥६७

य एवमभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणः संयतेन्द्रियः ।
स ब्रह्मलोकमाप्नोति तथा ध्यानार्चनादपि ॥६८

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि यथा तात पितामहः ।
लब्धवान् वेधसः पृष्टाद्गायत्रीध्यानमुत्तमम् ॥६९

यदक्षरेषु यद्वर्णं यत्र यत्र च यः स्मरेत् ।
यत्फलं लभते कृत्वा यथा तस्याः समर्चनम् ॥७०

तत् प्रकृतिः स स्वातं विकारो बुद्धिरेव च ।
वुरित्येतदहंकारं बशब्दं विद्धि पापहम् ॥७१

रे स्पर्शं तु णि रूपं च यं रसं गधमत्र भम् ।
गों श्रोत्रं दे त्वचं वा व चक्षुः स्य रसना तथा ॥७२

धी नासा च म वाचा च हि हस्तौ धि च पादद्वयम् ।
यो उपस्थं भुवं यो ऽन्यो नः खं प्रकारमाहृतम् ॥७३

चो तेजो द् जलं यात् क्ष्मा गायत्र्यास्तत्त्वचिंतनम् ।
चतुर्विंशतितत्त्वानि प्रत्येकमक्षरेषु यः ॥७४
गायत्र्याः संस्मरेद्योगी स याति ब्रह्मणः पदम् ।
तत्कारं पादयोर्न्यस्य ब्रह्म-विष्णु-शिवाकृतिम् ॥७५
शान्तं पद्मासनारूढं ध्यानाद्दहति किल्विषम् ।
सकारं गुल्फयोर्न्यस्येदतसीपुष्पसन्निभम् ॥७६
पद्मसध्यस्थितं सौम्यं दहते चोपपातकम् ।
त्रिकारं जङ्घयोर्दीप्तं ध्यायेदेतद्विचक्षणः ॥७७
ब्रह्महत्याकृतं पापं हन्यात्तद्धि स्मृतं क्षणात् ।
तुर्कारं जानुदेशे तु इन्द्रनीलसमप्रभम् ॥७८
निर्दहेत् सर्वपापानि ग्रहरोगमुपद्रवम् ।
ऊर्वोर्वं विमलं ध्यायेच्छुद्धस्फटिकविद्युतिम् ॥७९
विज्ञातं हन्ति तत्पापमगम्यागमनात् कृतम् ।
रेकारं वृषणे प्रोक्तं विद्युत्स्फुरिततेजसम् ॥८०
मित्रद्रोहकृतं पापं स्मरणादेव नाशयेत् ।
णि गुह्यं श्वेतवर्णं तु जातिपुष्पसमद्युतिम् ।
गुरुहत्याकृतं पापं शोधयेद्ध्यानचिन्तनात् ॥८१
यं कट्यां तारकावर्णं चन्द्रवद्धिष्ण्यभूषितम् ।
योगिनां वरदं प्राहुर्ब्रह्महत्याविशोधनम् ॥८२
भं (भकारंचालि) नभोवलिवर्णाभं मेघोन्नतिसमद्युतिम् ।
ध्यात्वा कमलमध्यस्थं महद् दहति पातकम् ॥८३

जठरे रक्तवर्णं तु मात्राद्वयविभूषितम् ।
गोहत्यादिकृतं पापं गोंकारस्तु विशोधयेत् ॥८४

श्यामरक्तं च दकारं ध्यानं तद्देशयेद्धृदि ।
हिम-कुन्देन्दुवर्णाभं वकारममृतं स्रवत् ॥८५

पितृ-मातृ-वधोद्भूतं मित्रावरुणदैवतम् ।
गुरुहत्याकृतं पापं वकारेण प्रणश्यति ॥८६

स्यकारं विन्यसेत् कण्ठे त्वाग्रं स्फटिकसन्निभम् ।
मनसोपार्जितं पापं स्यकारेण प्रणश्यति ॥८७

धीकारं वसुदैवत्यं वदन्ति स्वर्णसन्निभम् ।
प्रतिग्रहकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥८८

मकारं पद्मरागाभं शिरस्थं दीप्ततेजसम् ।
पूर्वजन्मकृतं पापं मकारेण प्रणश्यति ॥८९

हिकारं नासिकाग्रे तु पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।
पूर्वात्पूर्वतरं पापं स्मरणादेव नश्यति ॥९०

धिकारं शान्तमक्ष्णोश्च पीतवर्णं सुधांशुवत् ।
मनो-वाक्कायजं पापं चिन्तनादेव नश्यति ॥९१

योकारौ द्वौ धूम्र-नीलौ भ्रू-ललाटे च संस्थितौ ।
ध्यायन्नित्यं द्विजो नूनं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९२

नकारं तु मुखं पूर्वं द्वादशादित्यसन्निभम् ।
सकृद्ध्यात्वा द्विजश्रेष्ठः प्राप्नोति ब्रह्मणः पदम् ॥९३

प्रकारं दक्षिणे वक्त्रे कालाग्नि-रुद्रसन्निभम् ।
सकृद्ध्यात्वा द्विजश्रेष्ठ ऐश्वरं पदमाप्नुयात् ॥९४

चोकारं पश्चिमे वक्त्रे विद्युद्दीप्तिसमप्रभम् ।
एकवारं द्विजो ध्यात्वा वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥९५
दकारमुत्तरे वक्त्रे शुक्लवर्णसमद्युतिम् ।
सकृद्ध्यानात् द्विजश्रेष्ठ प्राप्नुयात् पदमव्ययम् ॥९६
याकारस्तु शिरः प्रोक्तं चतुर्वदनसंयुतम् ।
स एष त्रिगुणः प्रोक्तश्चतुर्विंशतिमः स्मृतः ॥९७
यं यं पश्यति चक्षुर्भ्यां यं यं स्पृशति पाणिना ।
यं यं च भाषते किञ्चित्तत्सर्वं पूतमेव च ॥९८
जाप्ये तु त्रिपदा ज्ञेया पूजने तु चतुष्पदा ।
न्यासे जप्ये तथा ध्याने अग्निकार्ये तथार्चने ॥९९
सर्वत्र त्रिपदा ज्ञेया ब्राह्मणैस्तत्त्वचिन्तकैः ।
जम्बुका नाम सा देवी यजुर्वेदे प्रतिष्ठिता ॥१००
सा देवी द्रुपदा नाम मन्त्रे वाजसनेयके ।
अन्तर्जले त्रिरावर्त्य मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥१०१
सोऽपनीय समस्तानि महैनांसि द्विजोत्तमः ।
ब्रह्मणः पदमाप्नोति यद्गत्वा न निवर्तते ॥१०२
विना श्रद्धां प्रमादाद्वा जपं कुर्वंश्च्यवेद्यदि ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति स्मृतिः ॥१०३
तद्विष्णोरिति मन्त्रोयं स्मर्तव्यः सर्वकर्मसु ।
आवर्त्यः प्रणवो वापि सर्वस्यादिर्यतो हि सः ॥१०४
अभ्यसेत् प्रणवं नित्यमेकचित्तः समाहितः ।
गायत्रीं च तथा देवीमभ्यस्यन् मुक्तिमाप्नुयात् ॥१०५

वैदिकं तु जपं कुर्यात् पौराणां पाञ्चरात्रिकम्।
यो वेदस्तानि चैतानि यान्येतानि च सा श्रुतिः ॥१०६

जपेन येनेह कृतेन पुंसो ददाति मार्गं सवितापि कर्तुः।
अयं हि सर्वेष्टिकृतां वरिष्ठो विधेः पदं यास्यति निर्विकल्पम् ॥१०७

यदुक्तं सर्वशास्त्रेषु तथा सर्वश्रुतिष्वपि।
उपनिषन्मतं तद्वो विप्रा ह्येतत् प्रकीर्तितम् ॥१०८

न्यासं तनुत्रं न बबन्ध देहे जग्राह नोङ्कारमसिं च तीक्ष्णम्।
विप्रो वशे यस्त्रिपदां न चक्रे लोके स रुष्टः किमु कस्य कुर्यात् ॥१०९

उद्देशेन मया प्रोक्तो विधिर्जप्यस्य पावनः।
देवार्चनविधानं तु सम्प्रवक्ष्याम्यतःपरम् ॥११०

इति श्रीबृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे जपनिर्णयः।

अथ देवार्चनविधिवर्णनम्।

देवार्चनं प्रवक्ष्यामि यदुक्तमृषिभिः पुरा।
वैदिकैरेव तन्मन्त्रैर्यस्य ये तस्य तैरिति ॥१११

अर्चयन् वैदिकैर्मन्त्रैर्नानुग्रहमपेक्षते।
वैदिकोऽनुग्रहस्तस्य वेदस्वीकरणेन तु ॥११२

ब्रह्माणं वैधसैर्मन्त्रैर्विष्णुं स्वैः शंकरं स्वकैः।
अन्यानपि तथा देवानार्चयेत् स्वीयमन्त्रकैः ११३

मन्त्रन्यासं पुरा कृत्वा स्वदेहे देवतासु च।
गायत्र्योंकारन्यस्ताङ्गः पूजयेद्विष्णुमव्ययम् ॥११४

न्यस्त्वा तु व्याहृतीः सर्वाः प्रोक्तस्थानक्रमेण तु।
ब्रह्मभूतः शुचिः शान्तो देवयागमुपक्रमेत् ॥११५

विष्णुरादिरयं देवः सर्वामरगणार्चितः।
नामग्रहणमात्रेण पापपाशं छिनत्ति यः ॥११६

तदर्चनं प्रवक्ष्यामि विष्णोरमिततेजसः।
यत् कृत्वा मुनयः सर्वे परं सायुज्यमाप्नुयुः ॥११७

षट्स्वेतेषु हरेः सम्यगर्चनं मुनिभिः स्मृतम्।
अप्स्वग्नौ हृदये सूर्ये स्थण्डिले प्रतिमासु च ॥११८

अग्नौ क्रियावतां देवो दिवि देवो मनीषिणाम्।
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां योगिनां हृदये हरिः ॥११६

आपो ह्यायतनं तस्य तस्मात्तासु सदा हरिः।
सर्वगत्वेन विष्णोस्तु स्थण्डिले भावितात्मनाम् ॥१२०

दद्यात् पुरुषसूक्तेन आपः पुष्पाणि चैव हि।
अर्चितं स्यादिदं तेन नित्यं भुवनसप्तकम् १२१

आनुष्टुभस्य सूक्तस्य त्रैष्टुभस्य च दैवतम्।
पुरुषो यो जगद्वीजमृषिर्नारायणः स्मृतः ॥१२२

तस्य सूक्तस्य सर्वस्य ऋचां न्यासं यथाक्रमम्।
देवे चैवात्मनि तथा सम्प्रवक्ष्याम्यतः परम् ॥१२३

हस्तन्यासं पुरा कृत्वा स्मृत्वा विष्णुं तथाऽव्ययम्।
शिखाबन्धं च दिग्बन्धं सञ्चिन्त्य विष्णुमात्मनि ॥१२४

प्रथमां विन्यसेद्वामे द्वितीयां दक्षिणे करे।
तृतीयां वामपादे तु चतुर्थीं दक्षिगे न्यसेत् ॥१२५

पञ्चमीं वामजानौ तु षष्ठीं च दक्षिणे न्यसेत्।
सप्तमीं वामकट्यां च दक्षिणायां तथाष्टमीम् ॥१२६

नवमीं नाभिमध्ये तु दशमीं हृदि विन्यसेत् ।
एकादशीं वामपादे द्वादशीं दक्षिणे न्यसेत् ॥१२७
कण्ठे त्रयोदशीं न्यस्य तथा वक्त्रे चतुर्दशीम् ।
अक्ष्णोः पञ्चदशीं न्यस्य षोडशीं मूर्ध्नि विन्यसेत् ॥१२८
एवं न्यासविधिं कृत्वा पश्चाद्यागं समाचरेत् ।
आसनं चिन्तयेन्मेरुमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥१२९
व्याहृतीनामथ न्यासं कुर्य्याच्च विधिवद् द्विजः ।
भूर्लोकं पादयोर्न्यस्य भुवर्लोकं तु जानुनोः ॥१३०
स्वर्लोकं कटिदेशे तु नाभिदेशे महस्तथा ।
जनोलोकं तु हृदये कण्ठदेशे तपस्तथा ॥१३१
भ्रुवोर्ललाटसन्ध्योस्तु सत्यलोकः प्रतिष्ठितः ।
हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ॥१३२
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ।
आवाहनमथ प्राहुर्विष्णोरमिततेजसः ॥१३३
यथाऽर्चा क्रियते तस्य स्वदेहे चिन्तयेत्तथा ।
आद्ययाऽऽवाहयेद्देवमृचा तु पुरुषोत्तमम् ॥१३४
यथा देवे तथा देहे न्यासं कुर्याद्विधानत ।
द्वितीययाऽऽसनं दद्यात् पाद्यं चैव तृतीयया ॥१३५
चतुर्थ्यार्घ्यः प्रदातव्यः पञ्चम्याऽऽचमनं तथा ।
षष्ठ्या स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या वसनं तथा ॥१३६
यज्ञोपवीतं चाष्टम्या नवम्या गन्धमेव च ।
पुष्पं देयं दशम्या तु एकादश्या च धूपकम् ॥१३७

द्वादश्या दीपकं दद्यात्त्रयोदश्या नैवेद्यकम् ।
चतुर्दश्याञ्जलिं कुर्यात् पञ्चदश्या प्रदक्षिणम् ॥१३८
षोडश्योद्वासनं कुर्याच्छेषकर्मणि पूर्ववत् ।
स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनं हरेः ।
षण्मासात् सिद्धिमाप्नोति एवमेवहि योऽर्च्चयेत् ॥१३६
आदित्यमण्डले देवं ध्यात्वा विष्णुं मनोमयम् ।
स याति ब्रह्मगः स्थानं नात्र कार्या विचारणा ॥१४०

ध्येयो दिनेशपरिमण्डलमध्यवर्ती
नारायगः सरसिजासनसन्निविष्टः ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्ख-चक्रः ॥१४१
सूक्तेन विष्णुविधिना समुदीरितेन
योऽनेन नित्यमजमादिमनन्तमूर्तिम् ।
भक्त्याऽर्चयेत् पठति यश्च स विष्णुदेहं
विप्रो विशेद्धरिविरेग कृतार्थदेहः ॥१४२

पञ्चरात्रविधानेन स्थण्डिले वापि पूजयेत् ।
जलमध्यगतो वापि पूजयेज्जलमध्यतः ॥१४३
द्वादशारं नवव्यूहं पञ्चरात्रक्रमेण तु ।
अभावे धौतवस्त्रस्य पत्रिकायास्तथा द्विजः ॥१४४
जलेऽपि हि जलेनैव मन्त्रैरेवार्चयेद्धरिम् ।
विष्णुर्विष्णुरित्यजस्रं चिन्तयेद्धरिमेव तु ॥१४५

तिष्ठन् व्रजंस्तथाऽऽसीनः शयानोऽपि हरिं सदा।
संस्मरन्ना ऽशुभं पश्येदिहाऽमुत्र च वै द्विजः ॥१४६
रुद्रं रुद्रविधानेन ब्रह्माणं च विधानतः।
सूर्यं संहितमन्त्रैश्च तदीरितविधानतः ॥१४७
दुर्गां कात्यायनीं चैव तथा वाग्देवतामपि।
स्कन्दं विनायकं चैव योगिनीं क्षेत्रपालकान् ॥१४८
विधिवदर्चयेत् सर्वान्यो विप्रो भक्तितत्परः।
विष्णुना सुप्रसन्नेन विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥१४६
ग्रहांश्च पूजयेद्विद्वान् ब्राह्मणः शान्तितत्परः।
आरोग्य-पुष्टिसंयुक्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥१५०
गृहा गावो नृपा विप्राः सद्भिः पूज्याः सदा नरैः।
पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यपमानिताः ॥१५१
यो हितः सर्वसत्त्वेषु नृप-गो-ब्राह्मणेषु च।
इहाऽमुत्र च पूज्योऽसौ विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥१५२
उक्तो गृहस्थस्य सुरार्चनस्य धन्यो विधिर्विष्णुपदोपलब्ध्यै।
कार्यो द्विजातेः प्रतिवासरं यो वेदोक्तमन्त्रैः स मया हिताय ॥१५३
देवपूजाविधिः प्रोक्त एष उद्देशतो यथा।
वैश्वदेवस्य वक्तव्यो विधिर्विप्रा मयाधुना ॥१५४

इति देवपूजाविधिः।

अथ वैश्वदेवविधिवर्णनम्।

वैश्वदेवं प्रवक्ष्यामि यथाकार्यं द्विजातिभिः।
स्वगृह्योक्तविधानेन जुहुयाद्वैश्वदैविकम् ॥१५५

हविष्यस्य द्विजोऽभावे यथालाभं शृतं हविः।
जुहुयाद्विधिवद्भक्त्या यथा स्याच्चित्तनिर्वृतिः ॥१५६
यद्वा तद्वापि होतव्यमग्नौ किंचिद् द्विजातिभिः।
फलं वा यदि वा मूलं घासं वा यदि वा पयः ॥१५७
अहुत्वा च द्विजोऽश्नीयाद्यत्किंचित् स्वयमश्नुते।
अश्नीयाच्चेदहुत्वापि नरकं स समाविशेत् ॥१५८
जुहुयाद्व्यञ्जन-क्षारवर्ज्यमन्नं हुताशने।
अनुज्ञातो द्विजैस्तैस्तु त्रिःकृत्वा पुरुषर्षभः ॥१५६
यत्त्वग्नौ हूयते नैव यस्य चाग्रं न दीयते।
अभोज्यं तद् द्विजातीनां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१६०
लौकिके वैदिके चैव वैश्वदेवो हि नित्यशः।
लौकिके प.पनाशाय वैदिके स्वर्गमाप्नुयात् ॥१६१
अभावादग्निहोत्रस्य आवसथ्यस्य वा तथा।
यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तत्र होमो विधीयते ॥१६२
अग्निःसोमस्समस्तौ तौ विश्वेदेवास्तथैव च।
धन्वन्तरिः कुहूस्तद्वदनुमतिः प्रजापतिः ॥१६३
द्यावाभूम्योः स्विष्टकृते हुत्वैतेभ्यः पुनस्ततः।
कुर्याद्बलिहृतिं पश्चात् सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् ॥१६४
सुत्राम्णे तस्य पुंभ्यश्च यमाय च सहानुगैः।
वरुणाय सहैतैश्च सोमाय च सहानुगैः ॥१६५
मरुद्भिश्च क्षिपेद्द्वारि अश्विभ्यां च तथा हरेत्।
वनस्पतिभ्यः सर्वेभ्यो मुसलोलूखले हरेत् ॥१६६

श्रियै च भद्रकाल्यै च उच्छीर्षे पादयोः क्रमात्।
ब्रह्मणे सानुगायेति मध्ये चैव बलिं हरेत् ॥१६७
वास्तवे सानुगायेति वास्तुमध्ये बलिं हरेत्।
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत् ॥१६८
द्युचरेभ्यश्च भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च।
वास्तोः पृष्ठे च कुर्वीत बलिं सर्वानुतृप्तये ॥१६९
पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत्।
पतितेभ्यः श्वपाकेभ्यः पापानां पापरोगिणाम् ॥१७०
कृमि-कीट-पतङ्गानां सर्वेभ्योऽपि बलिं हरेत्।
एवं सर्वाणि भूतानि यो विप्रो नित्यमर्चयेत् ॥१७१
तत् स्थानं परमाप्नोति यज्ज्योतिः परवेधसः।
गृह्ये ऽग्नौ वैश्वदेवं तु प्रोक्तमेतन्मनीषिभिः ॥१७२
अनग्निकस्तु कुर्वीत वैश्वदेवं कथं त्विति ?।
महाव्याहृतिभिस्तिस्रः समस्ताभिस्तथाऽपरा ॥१७३
इत्याहुतीश्चतस्रस्तु तथा देवकृते ऽपि च।
त्रियम्बकं यजामहे इत्यादि चाहुतिद्वयम् १७४
वैश्वदेवेन जुहुयाद्विशेषोऽन्यत्र वै पुनः
अपमृत्युनिवृत्त्यर्थमायुः पुष्टिविवृद्धये ॥१७५
जुहुयात् त्र्यम्बकं देवं विल्वपत्रैस्तिलैस्तथा।
विनायकाय होतव्या घृतस्याहुतयस्तथा ॥१७६
सर्वविघ्नोपशान्त्यर्थं पूजयेद्यत्नतस्तु तम्।
गणानां त्वेति मन्त्रेण स्वाहाकारान्तमाहृतः ॥१७७

चतस्रो जुहुयात्तस्मै गणेशाय तथाऽऽहुतीः ।
तद्विष्णोरिति जुहुयाद्विधिसम्पूर्णताकृते ॥१७८

प्रणवेन च गायत्र्या केचिज्जुह्वति तद् द्विजाः ।
एतौ वै सर्वदैवत्यौ एतत्परं न किंचन ॥१७९

एताभ्यां तु हुतेनैव सर्वेभ्योऽपि हुतं भवेत् ।
जुहुयात् सर्पिषाऽभ्यक्तं गव्येन पयसाऽथ वा ॥१८०

क्रीतेन गोविकारेण तिलतैलेन वा पुनः ।
सम्प्रोक्ष्य पयसा वाऽन्नं नाभ्यक्तं चाश्नुयादपि ॥१८१

अस्नेहा यव-गोधूमाः शालयो हवनीयकाः ।
हविस्तु हविरभ्यक्तमहविस्तु हविर्यतः ॥१८२

अभ्यक्तमेव होतव्यमतो रूक्षं विवर्जयेत् ।
दारिद्र्यं श्वित्रितामेके रूक्षान्नहवने विदुः ॥१८३

जठराग्नेः क्षयं चैके रूक्षमन्नं न हूयते ।
ओंकारपूर्विका सर्वाः स्वाहाकारान्तिकास्तथा ॥१८४

जुहुयादग्निको विप्रो गृहमेधी हि नित्यशः ।
बलिं चोपान्तभूतेभ्यः सर्वेभ्यो ऽप्यविशेषतः ॥१८५

हुत्वाऽथ कृष्णवर्त्मानं कृताञ्जलिः प्रसादयेत् ।
त्वमग्ने द्युभिरेतेन मन्त्रेण भक्तिमान् द्विजः ॥१८६

आब्रह्मन्निति मन्त्रं तु जपेद्वै सार्वकामिकम् ।
आहाव्यम्न इति ह्येनं मन्त्रं च प्रयतो जपेत् ॥१८७

अन्यं हौताशनं मन्त्रं जपित्वाथ क्षमापयेत् ।
अन्यानि चैव सूक्तानि पवित्राणि ततो जपेत् ।
सर्वशान्तिककृत्यर्थं तथाग्निर्देवतेति च ॥१८८

ज्ञानं धनमरोगित्वं गतिमिच्छंस्तथा द्विजः।
शम्भुमग्निं रविं विष्णुमर्चयेद्भक्तितः क्रमात् ॥१८९

अजानन् यो द्विजो नित्यमहुत्वाऽत्ति श्रृतं हविः।
पितृ-देव-मनुष्याणामृणयुक्तः स यात्यधः ॥१९०

शाकं वाऽपि तृणं वापि हुत्वाग्नावश्नुते द्विजः।
सर्वकामसमायुक्तः सोऽत्रैव सुखमश्नुते ॥१९१

स्वरेण वर्णेन च यद्विहीनं तथैव हीनं क्रिययापि यच्च।
तथातिरिक्तं मम तत् क्षमस्व तदस्तु चाग्ने परिपूर्णमेतत् ॥९२

सर्वपापापनोदाय सर्वकामाय वै द्विजाः।
द्विजन्मनां हितार्थाय वैश्वदेव उदाहृतः ॥१९३

इति वैश्वदेवविधिः।

अथातिथ्यविधिवर्णनम्।

आतिथ्यं सम्प्रवक्ष्यामि चातुर्वर्ण्यफलप्रदम्।
चातुर्वर्ण्योऽतिथिः प्रोक्तः काले प्राप्तोऽध्वगोऽश्रुतः १९४

अदृष्टऽपृष्टगोत्रादिरज्ञाताचार-विद्यकः।
सन्ध्यामात्रकृताचारस्तज्ज्ञैः सोऽतिथिरुच्यते ॥१९९५

क्षुत्तृष्णा-ऽध्वश्रमश्रान्तः प्राणत्राणान्नयाचकः।
गृहीतपात्रमात्रः सन् गृहद्वारमुपागतः ॥१९६

विष्णुरूपोऽतिथिः सोयमुत्तरार्थमुपागतः।
इति मत्त्वा महाभक्त्या वृणुयाद्भोजनाय तम् ॥१९७

एष स्वर्ग्यः समायातः सर्वदेवमयोऽतिथिः।
निर्दह्य सर्वपापानि ममायं सम्प्रयास्यति ॥१९८

ब्राह्मणैः सह भोक्तव्यो भक्त्या प्रक्षाल्य पादद्वयम्।
आसनार्घ्यादिकं दत्वा कृत्वा स्रक्-चन्दनादिकम् ॥१९९
योगिनो विविधै रूपैर्भ्रमन्ति धरणीतले।
नराणामुपकाराय ते चाज्ञातस्वरूपिणः ॥२००
तस्मादभ्यर्चयेत् प्राप्तं श्राद्धकालेऽतिथिं द्विजः।
श्राद्धक्रियाफलं हन्ति तत्रैवापूजितोऽतिथिः ॥२०१
तस्मादपूर्वमेवात्र पूजयेदागताऽतिथिम्।
कदाचित् कश्चिदागच्छेत्तारयेद्यस्तु पूर्वजान् ॥२०२
यतिर्ब्रह्मचार्यग्निहोत्री च तथा च मखकृद् द्विजः।
सदैतेऽतिथयः प्रोक्ता अपूर्वाश्च दिने दिने ॥२०३
अतिथेऽमरदेहस्त्वं मत्तारार्थमिहागतः।
संसारपङ्कमग्नं मामुद्धरस्वाऽघनाशन ॥२०४
नैकाश्रमे वसन् विप्रो मुनीन्द्रैरुच्यतेऽतिथिः।
अन्यत्र दृष्टपूर्वो यो नासावतिथिरुच्यते ॥२०५
क्षत्रियो यदि वा गच्छेदतिथित्वेन वेश्मनि।
भुक्तेषु सत्सु विप्रेषु कामतस्तु तमाशयेत् ॥२०६
वैश्यो वा यदि वा शूद्रो विप्रगेहं समाव्रजेत् ॥
तौ भृत्यैः सह भोक्तव्यावितिपाराशरोऽब्रवीत् ॥२०७
क्लीबो वा यदि वा काणः कुष्ठी वा व्याधितो ऽपि वा।
आगतोवैश्वदेवान्तेद्रष्टव्यः सर्वदेववत् ॥२०८
क्षत्रियेणापि वैश्येन तथैव वृषलेन च।
आतिथ्यं सर्ववर्णानां कर्तव्यं स्यादसंशयम् ॥२०९

योऽतिथिं पूजयेद्भक्त्या अन्याभ्यागतमेव च।
बाल-बृद्धादिकं चैव तस्य विष्णुः प्रसीदति ॥२१०

देवा मनुष्याः पितरश्च सर्वे स्युर्येन तृप्तेन च भूरि दिष्टम्।
तस्मान्न दातुस्त्वमराङ्गनाभिस्तस्यातिथेः केन समत्वमस्ति ॥२११

इति आतिथ्यविधिः।

अथ वर्णाश्रमधर्मवर्णनम्।

वर्णधर्मान् प्रवक्ष्यामि यत् कृत्यं ब्राह्मणादिभिः।
निबोधध्वं द्विजास्तद्वै संक्षेपेण पृथक् पृथक् ॥२१२

यजनं याजनं विप्रे तथा दान-प्रतिग्रहौ।
अध्यापनमध्ययनं कर्माण्येतानि षट् तथा ॥२१३

प्रजानां रक्षणं दानमरीणां निग्रहस्तथा।
यजना-ऽध्ययने राज्ञि विषयासक्तिवर्जनम् ॥२१४

यजना-ऽध्ययने दानं पाशुपाल्यं तथा विशि।
वाणिज्यं च कुसीदं च कर्मषट्कं प्रकीर्तितम् ॥२१५

शुश्रूषा ब्राह्मणादीनां तदाज्ञापालनं तथा।
एष धर्मः स्मृतः शूद्रे वाणिज्येन च जीवनम् ॥२१६

सर्वेषां जीवनं प्रोक्तं धर्मेणैव च कर्षणम्।
भिन्नवृत्तिर्यथा न स्यात् कुर्याद्विप्रस्तथा च तत् ॥२१७

कुर्वन्नुक्तानि कर्माणि वृत्या वा क्षत्रियस्य च।
वृत्यभावे द्विजो जीवेद्भिन्नवृत्तिं विवर्जयेत् ॥२१८

प्रजानां पालनं दानं शस्त्रभृत्त्वं प्रचण्डता।
निर्जयः परसैन्यानामेव धर्मः स्मृतो नृपे ॥२१९

पुष्पं पुष्पं विचिनुयान् मूलच्छेदं न कारयेत् ।
मालाकार इवाऽऽरामे प्रजासु स्यात्तथा नृपः ॥२२०

लोहकर्मरथानां च गवां च प्रतिपालनम् ।
गोरक्षा कृषि-वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥२२१

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा परो धर्मः प्रकीर्तितः ।
अन्यथा कुरुते यत्तु तद्भवेत्तस्य निष्फलम् ॥२२२

लवणं मधु तैलं च दधि तक्रं घृतं पयः ।
न दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात् सर्वस्य विक्रयम् ॥२२३

विक्रयं मद्य-मांसानामभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।
अगम्यागामिता चौर्यं शूद्रे स्युः पातहेतवः ॥२२४

कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च ।
वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्य नरको ध्रुवम् २२५

इति श्रीबृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां संहितायां चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ गोमहिमावर्णनम् ।

अतः परं गृहस्थस्य कर्माचारं कलौ युगे ।
वर्णसाधारणं साक्षाच्चातुर्वर्ण्यक्रमेण तु ॥१

युष्माकं सम्प्रवक्ष्यामि पराशरवचोदितम् ।
षट्कर्मसहितो विप्रः कृषिवृत्तिं समाश्रयेत् ॥२

हीनाङ्गं व्याधिसंयुक्तं प्राणहीनं च दुर्बलम्।
क्षुद्युक्तं तृषितं श्रान्तमनड्वाहं न वाहयेत् ॥३
स्थिराङ्गं नीरुजं तृप्तं साण्डं षण्ढविवर्जितम्।
अधृष्यं सबलप्राणमनड्वाहं तु वाहयेत् ॥४
वाहयेद् दिवसस्याऽध ततः स्नानं समाचरेत्।
कुगवैर्न कृषिं कुर्यात् सर्वथा धेनुसंग्रहम् ॥५
बन्धनं पालनं रक्षां द्विजः कुर्याद्गृही गवाम्।
वत्साश्च यत्नतो रक्ष्या वर्धन्ते ते यथा क्रमात् ॥६
न दूरे तास्तु नेतव्याश्चारणाय कदाचन।
दूरे गावश्चरन्त्यो हि न भवन्ति शुभावहाः ॥७
प्रातरेव हि दोग्धव्या दुह्यात् सायं न ता गृही।
दोग्धुर्द्धिः पयसो नैव वर्धन्ते ताः कदाचन ॥८
अनादेयतृणान्यत्त्वा स्रवन्त्यनुदिनं पयः।
तुष्टिदा देवतादीनां पूज्या गावः कथं न ताः ॥९

स्पृष्टाश्च गावः शमयन्ति पापं
संसेविताश्चोपनयन्ति वित्तम्।
ता एव दत्तास्त्रिदिवं नयन्ति
गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किंचित् ॥१०

यस्याः शिरसि ब्रह्माऽऽस्ते स्कन्धदेशे शिवः स्थितः।
पृष्ठे नारायणस्तस्थौ श्रुतयश्चरणेषु च ॥११
या अन्या देवताः काश्चित्तस्या लोमसु ताः स्थिताः।
सर्वदेवमया गावस्तुष्येत्तद्भक्तितो हरिः ॥१२

हरन्ति स्पर्शनात् पापं पयसा पोषयन्ति याः ।
प्रापयन्ति दिवं दत्ताः पूज्या गावः कथं न ताः ॥१३
यत्खुराहतभूमेर्ये उत्पद्यन्ते रजः कणाः ।
प्रलीनं पातकं तैस्तु पूज्या गावः कथं न ताः ॥१४
शकृन्मूत्रं हि यस्यास्तु पीतं दहति पातकम् ।
किमपूज्यं हि तस्या गोरिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥१५
गौरवत्सा न दोग्धव्या न चैवं गर्भसन्धिनी ।
प्रसूता च दशाहार्वाग्दोग्धि चेन्नरकं व्रजेत् ॥१६
दुर्बला व्याधिसंयुक्ता पुष्पिता या द्विवत्सका ।
साधुभिर्न च दोग्धव्या धार्मिकैर्धनमीप्सुभिः ॥१७
कुलान्ते पुष्पिता गावः कुलान्ते बहवस्तिलाः ।
कुलान्ते चलचित्ता स्त्री कुलान्ते बन्धुविग्रहः ॥१८
एकत्र पृथिवी सर्वा सशैल-वन-कानना ।
तस्या गौर्ज्यायसी साक्षादेकत्रोभयतोमुखी ॥१९
यथोक्तविधिना चैता वर्णैः पाल्याः सुपूजिताः ।
पालयन् पूजयन्नेताः स प्रेत्येह च मोदते ॥२०
दक्षिणाभिमुखा गाव उत्तराभिमुखा अपि ।
बन्धनीयास्तथैताः स्युर्न प्राक्-पश्चिमतोमुखाः ॥२१
वाजि-गो-वृषशालायां सुतीक्ष्णं लोहदात्रकम् ।
स्थाप्यं तु सर्वदा तत् स्याद्कलुषविमोक्षकम् ॥२२
गावो देयाः सदा रक्ष्याः पाल्याः पोष्याश्च सर्वदा ।
ताडयन्ति च ये पापा ये चाक्रोशन्ति ता नराः ॥२३

नरकाग्नौ प्रपच्यन्ते गोनिःश्वासप्रपीडिताः ।
सपलाशेन शुष्केग ता दण्डेन निर्वतयेत् ॥२४

गच्छ गच्छेति तां ब्रूयान् मा मा भैरिति वारयेत् ।
संस्पृशन् गां नमस्कृत्य कुर्यात्तां च प्रदक्षिणम् ॥२५

प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।
तृणोदकादिसंयुक्तं यः प्रदद्याद्गवाह्निकम् ॥२६

सोऽश्वमेधसमं पुण्यं लभते नात्र संशयः ।
गवां कण्डूयनं स्नानं गवां दानसमं भवेत् ॥२७

तुल्यं गोशतदानस्य भयतो गां प्रपाति यः ।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्रं सरांसि च ॥२८

गवां शृङ्गोदकस्नानफलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
पातकानि कुतस्तेषां येषां गृहमलंकृतम् ॥२९

सततं बालवत्साभिर्गोभिः श्रीभिरिव स्वयम् ।
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ॥३०

तिष्ठन्त्येकत्र मन्त्रास्तु हविरेकत्र तिष्ठति ।
गोभिर्यज्ञाः प्रवर्तन्ते गोभिर्देवाः प्रतिष्ठिताः ॥३१

गोभिर्वेदाः समुद्गीर्णाः षडङ्गाः सपद-क्रमाः ।
सौरभेयास्तु यस्याग्रे पृष्ठतो यस्य ताः स्थिताः ॥३२

वसन्ति हृदये नित्यं तासां मध्ये वसन्ति ये ।
ते पुण्यपुरुषाः क्षोण्यां नाकेऽपि दुर्लभाश्च ते ॥३३

ये गोभक्तिकरा नित्यं भजन्ते ये च गोप्रदाः ।
शृङ्गमूले स्थितो ब्रह्मा शृङ्गमध्ये तु केशवः ।
शृङ्गाग्रे शंकरं विद्यात्त्रयो देवाः प्रतिष्ठिताः ॥३४

शृङ्गाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च।
सर्वे देवाःस्थिता देहे सर्वदेवमयी हि गौः ॥३५

ललाटाग्रे स्थिता देवी नासामध्ये तु षण्मुखः।
कम्बलाऽश्वतरौ नागौ तत्कर्णाभ्यां व्यवस्थितौ ॥३६

स्थितौ तस्याश्च सौरभ्याश्चक्षुषोः शशिभास्करौ।
दन्तेषु वसवश्चाष्टौ जिह्वायां वरुणः स्थितः ॥३७

सरस्वती च हुंकारे यम-यक्षौ च गण्डयोः।
ऋषयो रोमकूपेषु प्रस्रावे जाह्नवीजलम् ॥३८

कालिन्दी गोमये तस्या अपरा देवतास्तथा।
अष्टाविंशतिदेवानां कोट्यो लोमसु ताः स्थिताः ॥३६

उदरे गार्हपत्योऽग्निर्हृदये दक्षिणस्तथा।
मुखे चाहवनीयस्तु सभ्याऽऽवसथ्यौ च कुक्षिषु ॥४०

एवं यो वर्तते गोषु ताडनक्रोधवर्जितः।
महतीं श्रियमाप्नोति स्वर्गलोके महीयते ॥४१

कुलं तस्या न शङ्केत पूतिगन्धं न वर्जयेत्।
यावत् पिबति तद्दुग्धं तावत् पुण्यं प्रवर्धते ॥४२

यो गां पयस्विनीं दद्यात्तरुणां वत्ससंयुताम्।
शिवस्यायतने दत्त्वा दत्तं तेन तु विश्वकम् ॥४३

इति गोमहिमावर्णनम्।

—:००:—

अथ समहत्त्ववृषभपूजनवर्णनम् ।

उक्षाणो वेधसा सृष्टाः सस्यस्योत्पादनाय च ।
तैरुत्पादितसस्येन सर्वमेतद्विवार्यते ॥४४
यश्चैतान् पालयेद्यत्नाद्वर्धयेच्चैव यत्नतः ।
जगन्ति तेन सर्वाणि साक्षात् स्युः पालितानि च ॥४५
यावद्गोपालने पुण्यमुक्तं पूर्वमनीषिभिः ।
उक्ष्णोऽपि पालेन तेषां फलं दशगुणं भवेत् ॥४६
जगदेतद्धृतं सर्वमनडुद्भिश्चराचरम् ॥४७
वृष एव ततो रक्ष्यः पालनीयश्च सर्वदा ।
धर्मोऽयं भूतले साक्षाद् ब्रह्मणा ह्यवतारितः ॥४८
त्रैलोक्यधारणायालमन्नानां च प्रसूतये ।
अनादेयानि घासानि विघसन्ति स्वकामतः ॥४९
भ्रमित्वा भूतलं दूरमुक्षाणं को न पूजयेत् ।
उत्पादयन्ति सस्यानि मर्दयन्ति वहन्ति च ।
आनयन्ति दवीयस्तदुक्षतः कोऽधिको भुवि ॥५०

स्कन्धेन दूराच्च वहन्ति भारमाख्याति पत्युर्न च भारयुक्ताः ।
स्वीयेन देहेन परस्य जीवान्पुष्यन्ति रक्षन्ति च वर्धयन्ति ॥५१
पुण्यास्तु गावो वसुधातले या बिभ्रत्यमुं गोवृषगर्भभारम् ।
भारःपृथिव्या दशताडिताया एकस्य चोक्ष्णो ह्यपि साधुवाचः ॥५२
एकेन दत्तेन वृषेण येन भवन्ति दत्ता दश सौरभेय्यः ।
माहेय्यपीयं धरणीसमाना तस्माद्वृषात् पूज्यतमोऽस्ति नान्यः ॥५३

उत्पाद्य सस्यानि तृणं चरन्ति तदेव भूयः सततं वहन्ति ।
न भारखिन्नाः प्रवदन्ति किंचिदहो वृषैर्जीवति जीवलोकः ॥५४

तृतीयेऽब्दे चतुर्थे वा यदा वत्सो दृढो भवेत् ।
तदा नासाऽस्य भेत्तव्या नैव प्राग्, दुर्बलस्य च ॥५५

नासावेधनकीलं तु खादिरं वाथ शैंशपम् ।
द्वादशाङ्गुलकं कार्यं तज्ज्ञैस्तैश्च समं च वा ॥५६

शालां द्विजेन्द्रा वृष-गो-हयानां
तां याम्यदिग्द्वारवतीं विदध्यात् ।
सौम्याककुब्द्वारवतीं सुशोभां
तेषां शमिच्छन् ध्रुवमात्मनश्च ॥५७

गावो वृषा वा हय-हस्तिनो वा
अन्येऽपि सर्वे पशवो द्विजेन्द्राः ।
याम्यामुखा वोत्तरदिङ्मुखा वा
नान्याशकास्ते खलु बन्धनीयाः ॥५८

शालाप्रवेशे वृष-गो-पशूनां
राजाऽपि यत्नाद्धय-कुञ्जराणाम् ।
होमं च सप्तार्चिषि शास्त्रयुक्तं
कुर्याद्विधिज्ञो द्विजपूजनं च ॥५९

इति समहत्त्ववृषभपूजनवर्णनम् ।

अथ हल (वेध) करण वर्णनम् ।

लाङ्गलं सम्प्रवक्ष्यामि यत्काष्ठं यत्प्रमाणतः ।
हलेषायास्तथोन्मानं प्रतोदस्य युगस्य च ॥६०

चत्वारिंशत्तथा चाष्टावङ्गुलानि कुथः स्मृतः ।
अर्धार्धमङ्गुलैर्भाज्यो हलेषावेधतश्च यः ॥६१

षोडशैव तु तस्याधः षड्विंशति तथोपरि ।
वेधस्तस्याश्च कर्तव्यः प्रमाणेन षडङ्गुलः ॥६२

अङ्गुलैश्चाष्टभिस्तस्माद्वेधःस्यात् प्रातिहारिकः ।
तस्याधस्ताच्च चत्वारि वेधश्च चतुरङ्गुलः ॥६३

अष्टाङ्गुलमुरस्तस्य वेधादूर्ध्वं प्रकल्पयेत् ।
ग्रीवा दशाङ्गुला चोर्ध्वं हस्तग्राही ततः स्मृता ॥६४

साऽपि तज्ज्ञैः शुभा कार्या तद्वेधस्त्र्यङ्गुलो भवेत् ।
पञ्चाङ्गुलं पुरस्तस्य शिरसोऽपि विभावनम् ॥६५

पृथुत्वं शिरसो धार्यं हस्ततलप्रमाणकम् ।
अङ्गुलानि तथा चाष्टौ उरसः पृथुता भवेत् ॥६६

वेधाद्बहिः प्रतीकारी षट्त्रिंशदङ्गुला भवेत् ।
सुतीक्ष्णलोहफलका मृत्काष्ठादिविदारकृत् ॥६७

न सीरं क्षीरवृक्षस्य न बिल्व-पिचुमन्दयोः ।
इत्यादीनां हि कुर्वाणो न नन्दति चिरं गृही ॥६८

प्लक्षाक्षयोर्न तत् कुर्यात् कीर्तिघ्नौ तौ प्रकीर्तितौ ।
तयोः काष्ठस्य तत् कुर्वन्ससस्यो नश्यति ध्रुवम् ॥६९

प्राञ्जला सप्तहस्ता च चतुरस्राऽग्रवर्तुला ।
सालादिशुभकाष्ठानां हलीषा विदुषां मता ॥७०

अस्या वेधः सकर्णायाः कार्यो नववितस्तिभिः ।
नीचोच्चवृषमानेन तज्ज्ञा एवं वदन्ति हि ॥७१

चतुर्हस्तं युगं कार्यं स्कन्धस्थानेऽर्द्धचन्द्रवत्।
मेषशृंग्याः कदम्बस्य सालाद्यन्यतमस्य वा ॥७२
शम्या वेधाद्बहिः कार्या दशाङ्गुलप्रमाणिका।
तन्मानेन प्रणाली च तदन्तरदशाङ्गुलम् ॥७३
प्रतोदश्च समग्रन्थिर्वैणवश्च चतुष्करः।
तदग्रे चापि कर्त्तव्यो यवाकारस्तु लोहजः ॥७४
हीनातिरिक्तं कर्तव्यं नैव किञ्चिन् प्रमाणतः।
कुर्यादनडुहोऽदैन्याद्दैन्यात्तु नरकं व्रजेत् ॥७५
यथा दृढं यथाशोभं वाहकस्य प्रमाणतः।
भूमेश्च कर्षणायालं तज्ज्ञाः सीरं वदन्ति हि ॥७६
योजनं तु हलस्याथ प्रवक्ष्यामि यथा तथा।
ज्येष्ठानक्षत्रसंयुक्ते पुण्येऽन्हि तद्विधीयते ॥७७
अन्यत्र वा शुभे भे च तत्र कार्यं विपश्चिता।
यत्तु कृत्यं हितं वापि पुण्यं वा मनसि स्फुरेत् ॥७८
मातृश्राद्धं द्विजः कुर्याद्यथोक्तविधिना गृही।
द्रव्य-कालानुसारेण कुर्वाणो धर्मतः कृषिम् ॥७९
प्रोल्लिख्य मण्डलं पुष्प-धूप-दीपैः समर्च्य तत्।
इन्द्राय च तथाऽश्विभ्यां मरुद्भ्यश्च तथा द्विजः ॥८०
कुर्याद्बलिहृतिं विद्वान् उदग्वै कश्यपाय च।
तथा कुमार्यै सीतायै अनुमत्यै तथा बलिः ॥८१
नमःस्वाहेति मन्त्रेण स चेच्छन्नात्मनो हितम्।
दधि-गन्धा-ऽक्षतैः पुष्पैः शमीपत्रैस्तिलैस्तथा ॥८२

दद्याद्बलिं वृषाणां च मध्वाज्यप्राशनं तथा।
समुद्धृत्य सीरफालाग्रं हेम्ना व रजतेन वा ॥८३

प्रलिप्य मधु-सर्पिर्भ्यां कुर्याच्च तत्प्रदक्षिणम्।
अग्न्युक्षणोर्मण्डलं कृत्वा कुर्यात्सीरप्रवाहणम् ॥८४

पुण्य लाङ्गल कल्याण कल्याणाय नमोऽस्त्विति।
सीतायाः स्थापनं कृत्वा पराशरमृषिं स्मरन् ॥८५

सीरा युञ्जन्ति इत्याद्यैर्मन्त्रैः सीरं प्रवाहयेत्।
दधि-दूर्वा-ऽक्षतैः पुष्पैः शमीपत्रैश्च पुण्यदैः ॥८६

सीतां पूज्य वृषौ भक्त्या रक्तवस्त्रविषाणकौ।
सप्तधान्यानि चादाय प्रोक्ष्य पूर्वामुखो हली।
तानि कृत्वोक्ष्मोः क्षेत्रे च किरन् भूमिं कृषेद्द्विजः ॥८७

न तिलैर्न यवैर्हीनं द्विजः कुर्वीत कर्षणम्।
तद्विहीनं तु कुर्वाणं न प्रशंसन्ति देवताः ॥८८

तिलपात्रच्युतं तोयं दक्षिणस्यां पतेद्दिशि।
तेन तृप्यन्ति पितरो यावन्न तिलविक्रयः ॥८९

विक्रीणीते तिलान्यस्तु मुक्त्वाऽन्यद्धान्यसामकान्।
विमुच्य पितरस्तं तु प्रयान्ति हि तिलैः सह ॥९०

तुषाज्जलं यवस्थं च पात्रेभ्यो भूतले पतत्।
पयो-दधि-घृताद्यैस्तु तर्पयेत्सर्वदेवताः ॥९१

दैव-पर्जन्य-भू-सीरयोगात् कृषिः प्रजायते।
व्यापारात् पुरुषस्यापि तस्मात्तत्रोद्यतो भवेत् ॥९२

शालीक्षु-शण-कार्पास-वार्ताकप्रभृतीनि च ।
वापयेत् सस्यबीजानि सर्वं वापि न सीदति ॥९३

चन्द्रक्षये ऽमतिर्विप्रो यो युनक्ति वृषं क्वचित् ।
तं पञ्चदशवर्षाणि त्यजन्ति पितरो हितम् ॥९४

चन्द्रक्षये तु योऽविद्वान् द्विजो भुङ्क्ते पराशनम् ।
भोक्तुर्मासार्जितं पुण्यं भवेदशनदस्य वै ॥९५

चन्द्रार्कयोस्तु संयोगे कुर्याद्यः स्त्रीनिषेवणम् ।
स्युरेतोभोजनास्तस्य तन्मासं पितरो हताः ॥९६

चन्द्रक्षये तु यः कुर्यात्तरुस्तम्भनिकृन्तनम् ।
तत्पर्णसंख्यया तस्य भवन्ति भ्रूणहत्यकाः ॥९७

वनस्पतिगते सोमे योऽध्वानं तु व्रजेद्द्विजः ।
प्रभ्रष्टद्विजकर्माणं तं त्यजन्त्यमरादयः ॥९८

वासांसीन्दुप्रणाशे यो रजकस्याग्रतः क्षिपेत् ।
पिबन्ति पितरस्तस्य मासं वस्त्रमलाम्बु तत् ॥९९

सोमक्षये द्विजो याति त्यक्त्वा यस्तु हुताशनम् ।
स देव-पितृशापाग्निदग्धो नरकमाविशेत् ॥१००

अष्टमी कामभोगेन षष्ठी तैलोपभोगतः ।
कुहूश्च दन्तकाष्ठेन हिनस्त्यासप्तमं कुलम् ॥१०१

चन्द्राप्रतीतौ पुरुषस्तु दैवाद्द्यादमत्या यदि दन्तकाष्ठम् ।
ताराधिराजः स्वदितस्तु तेन घातः कृतः स्यात्पितृ-देवतानाम् ॥१०२

तत्राभ्यज्य विषाणानि गावश्चैव तथा वृषाः ।
चरणाय विसृज्यन्ते आगतान् निशि भोजयेत् ॥१०३

य उत्पाद्येह सस्यानि सर्वाणि तृणचारिणः।
जगत् सर्वं धृतं यैस्तु पूज्यन्ते किंन ते वृषाः ॥१०४
चरणाय विसृष्टं तु यस्य गोदशकं भवेत्।
यद्रूपेण स्थितो धर्मः पूज्यन्ते किं न ते वृषाः ॥१०५
स्युः पाल्या यत्नतस्ते वै वाहनीया यथाविधि।
स याति नरकं घोरं यो वाहयत्यपालयन् ॥१०६
नाऽधिकाङ्गो न हीनाङ्गः पुष्पिताङ्गो न दूषितः।
वाहनीयो हि शूद्रेण वाहयन्क्षयमश्नुते ॥१०७
वर्जयेद्दुष्टदोषांश्च वाहने दोहने नरः।
पाल्या वै यत्नतः सर्वे पालयन्च्छुभमाप्नुयात् ॥१०८
अन्नार्थमेतानुक्षाणः ससर्ज परमेश्वरः।
अन्नेनाप्यायते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१०९
अग्निर्ज्वलति चान्नार्थं वाति चान्नाय मारुतः।
गृह्णाति चाम्भसां सूर्यो रसानन्नाय रश्मिभिः ॥११०
अन्नं प्राणो बलं चान्नमन्नाज्जीवितमुच्यते।
अन्नं च जगदाधारं सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥१११
सर्वेषां देवतादीनामन्नं जीवः प्रकीर्तितः।
तस्मादन्नात्परं तत्वं न भूतं न भविष्यति ॥११२
द्यौः पुमान्धरणी नारी अम्भो बीजं दिवश्च्युतम्।
द्यु-धात्री-तोयसंयोगादन्नादीनां हि सम्भवः ॥११३
आपो मूलं हि सर्वस्य सर्वमप्सु प्रतिष्ठितम्।
आपोऽमृतरसो ह्याप आपः शुक्रं बलं महः ॥११४

सर्वस्य बीजमापो हि सर्वमद्भिः समावृतम् ।
सद्य आप्यायना ह्याप आपो ज्येष्ठतरा ह्यतः ॥११५
किञ्चित्कालं विनाऽन्नाद्यैर्जीवन्ति मनुजादयः ।
न जीवन्ति विना ताभिस्तस्मादापोऽमृतंस्मृताः ॥११६
दत्ताभिरद्भिरेतस्यां किं न दत्तं कलौ युगे ।
यथान्नेन प्रदत्तेन सर्वं दत्तं भवेदिह ॥११७
अतोऽप्यन्नार्थभावेन कर्तव्यं कर्षणं द्विजैः ।
यथोक्तेन विधादेन लाङ्गलादि प्रयोजनम् ॥११८
सीते सौम्ये कुमारि त्वं देवि देवार्चिते श्रिये ।
शक्तिसूनोर्यथा सिद्धा तथा मे सिद्धिदा भव ॥११९
शक्तिसूनोर्विना नाम्ना सीतायाः स्थापनं विना ।
विनाऽभ्युक्षणरक्षार्थं सर्वं हरति राक्षसः ॥१२०
वापने लवने क्षेत्रे खले गन्त्रीप्रवाहणे ।
एष एव विधिर्ज्ञेयो धान्यानां च प्रवेशने ॥१२१
देवतायतनोद्यान-निपातस्थान-गोव्रजान् ।
सीमा-श्मशान-भूमिं च वृक्षच्छायां क्षितिं तथा ॥१२२
भूमिं निखातं यूपांश्च अयनस्थानमेव च ।
अन्यामपि हि चाऽवाह्यां न कुर्यात्कृषिकृद्धराम् ॥१२३
नोषरां वाहयेद्भूमीं न चाऽश्म-शर्करावृताम् ।
न गोचरां न प्रदत्तां न नदीपुलिनां तथा ॥१२४
यद्यसौ वाहयेल्लोभाद्द्वेषाद्वापि हि मानवः ।
क्षीयतेऽसौ चिरात्पापात् सपुत्र-पशु-बान्धवः ॥१२५

नरकं घोरतामिस्रं पापीयान् याति निश्चितम्।
योऽपहृत्य परकीयां कृषिकृद्वाहयेद्धराम् ॥१२६
स भूमिस्तेयपापेन सुचिरं नरके वसेत्।
एकसङ्ख्यमपि स्वर्णं भूमिमङ्गुलमात्रिकाम् ॥१२७
तथैकामपि गां हृत्वा सृष्ट्यन्तं नरकं वसेत्।
न दूरे वाहयेत् क्षेत्रं न चैवात्यन्तिके तथा ॥१२८
वाहयेन्न पथि क्षेत्रं वाहयन्दुःखभाग्भवेत्।
क्षेत्रेष्वेवं वृतिं कुर्याद्यामुष्ट्रो नावलोकयेत् ॥१२६
न लङ्घयेत्पशुर्नाश्वो नभिन्द्याद्यां च शूकरः।
वन्धाश्च यत्नतः कार्या मृगादित्रासनाय च ॥१३०
अत्राप्युपद्रवं राज्ञा तस्करादिसमुद्भवम्।
संरक्षेत्सर्वतो यत्नाद्यस्मात् गृह्णात्यसौ करान् ॥१३१
कृषिकृन्मानवस्त्वेवं मत्वा धर्मं कृषेद्धराम्।
अनवद्यां शुभां स्निग्धां जलवगाहनक्षमाम् ॥१३२
निम्नां हि वाहयेद्भूमिं यत्र विश्रमते जलम्।
वाहयेत्तु जलाभ्यर्णमवृष्टौ सेकसम्भवः ॥१३३
शारद्यमुच्चकैर्भूमौ कङ्गवाद्यं वापयेद्धली।
अधित्यकासु कार्पासं वदन्त्यन्यत्र हैमकम् ॥१३४
वासन्तं ग्रीष्मकालीयं वाप्यं स्निग्धेषु तद्विदा।
केदारेषु तथा शालीञ्जलोपान्तेषु चेक्षवः ॥१३५
वृन्ताक-शाकमूलानि कन्दानि च जलान्तिके।
वृष्टिविश्रान्तपानीयक्षेत्रेषु च यवादिकान् ॥१३६

गोधूमाश्च मसूराश्च खल्याः खलकुशास्तथा ।
समस्निग्धेषु वाप्याश्च भूमिजीवान्विजानता ॥१३७

तिला बहुविधाश्चोप्या अतसी-शणमेव च ।
समस्निग्धेषु वाप्यानि धान्यान्यन्यानि योगतः ॥१३८

कुलत्था मुद्गमाषाश्च राजमाषादिकास्तथा ।
वाप्या भूमिविशेषे तु भूमिजीवं विजानता ॥१३६

मृदम्बुयोगजं सवं वापयेत्कृषिकृन्नरः ।
सम्पश्येच्चरतः सर्वान् गोवृषादीन् स्वयं गृही ॥१४०

चिन्तयेत्सर्वमात्मीयं स्वयमेव कृषिं व्रजेत् ।
प्रथमं कृषिवाणिज्यं द्वितीयं पशुपोषणम् ॥१४१

तृतीयं क्रीतविक्रीतं चतुर्थं राजसेवनम् ।
नखैर्विलिखने यस्याः पापमाहुर्मनीषिणः ॥१४२

तस्याः सीरविदारेण किं न पापं क्षितेर्भवेत् ।
तृणैकच्छेदमात्रेण प्रोच्यते क्षय आयुषः ॥१४३

असङ्ख्यकन्दनिर्नाशादसङ्ख्यातं भवेदघम् ।
यद्वर्षे मत्स्यबन्धानां तथा सङ्करिणामपि ॥१४४

अंहः कुक्कुटिकानां च तद्दिने कृषिकारिणाम् ।
वधकानां च यत् पापं यत् पापं मृगयोरपि ।
कदर्याणां च यत् पापं तद्दिने कृषिकारिणाम् ॥१४५

वर्णानां च गृहस्थानां कृषिवृत्त्युपजीविनाम् ।
तदेनसो विशुद्ध्यर्थं प्राह सत्यवतीपतिः ॥१४६

द्वादशो नवमो वापि सप्तमः पञ्चमोऽपि वा।
धान्यभागः प्रदातव्यो सीरिणा खलके ध्रुवम् ॥१४७

अश्मर्यव्यूढभूमौ च विंशांशी क्षेत्रभुग्भवेत्।
एकैकांशाय कर्षः स्याद्यावद्दशम-सप्तमौ ॥१४८

ग्रामेशस्य नृपस्यापि वर्णिभिः कृषिजीविभिः ॥१४९

सस्यभागः प्रदातव्यो यतस्तौ कृषिभागिनौ।
ब्राह्मणस्तु कृषिं कुर्वन्वाहयेदिच्छया धराम् ॥१५०

न किञ्चित् कस्यचिद्दद्यात्स सर्वस्य प्रभुर्यतः।
ब्रह्मा वै ब्राह्मणं चास्यात्प्रभुस्त्वसृजदादितः ॥१५१

तद्रक्षणाय बाहुभ्यामसृजत् क्षत्रियानपि।
पशुपाल्याशनोत्पत्त्यै ऊरुभ्यां च तथा विशः ॥१५२

द्विजदास्याय पण्याय पद्भ्यां शूद्रमकल्पयत्।
यत्किञ्चिज्जगतीहात्र भू-गेहाश्व गजादिकम् ॥१५३

स्वभावेन हि विप्राणां ब्रह्मा स्वयमकल्पयत्।
ब्राह्मणश्चैव राजा च द्वावप्येतौ धृतव्रतौ ॥१५४

न तयोरन्तरं किञ्चित् प्रजाधर्माभिरक्षणे।
तस्मान्न ब्राह्मणो दद्यात् कुर्वाणो धर्मतः कृषिम् ॥१५५

ग्रामेशस्य नृपस्यापि कियन्तमप्यसौ बलिम्।
अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि कृषिकृच्छुद्धिकारणम् ॥१५६

संशुद्धः कर्षको येन स्वर्गलोकमवाप्नुयात्।
सर्वसत्वोपकाराय सर्वयज्ञोपसिद्धये ॥१५७

नृपस्य कोशवृद्ध्यर्थं जायते कृषिकृन्नरः ।
कुर्यात्कृषिं प्रयत्नेन सर्वसत्वोपजीविनीम् ॥१५८

पितृ-देव-मनुष्याणां पुष्ट्ये स्यात् कृषोवलः ।
वयांसि चान्यसत्वानि क्षुत्तृष्णापीडिताः प्रजाः ॥१५६

उपयुञ्जन्ति सस्यानि क्षेत्रजातानि नित्यशः ।
पुष्ट्यर्थं मुष्टिमेकां वा ददत्पापं व्यपोहति ॥१६०

यस्य क्षेत्रस्य यावन्ति सस्यान्यदन्ति प्राणिनः ।
तावन्तोऽपि विमुच्यन्ते पातकात् कृषिकारकाः ॥१६१

कृताग्निकार्यदेहोऽपि ब्राह्मणोऽन्यतमोऽपि वा ।
आददानः परक्षेत्रात् पथि गच्छन्न लिप्यते ॥१६२

क्षेत्री विमुच्यते दोषात् नियतं कृषिसम्भवात् ।
गृहीतं क्षेत्रिणो धान्यं निवेदयति वाण्वपि ॥१६३

अनिवेदिते तदर्धं स्यात् पातकं कर्षुकस्य च।
भावशुद्धावतो धर्मो ह्यनेन तद्विशोधयेत् ॥१६४

मुष्टिं तु कल्पयन्धान्यं सर्वपापं व्यपोहति ।
यत्किञ्चिदर्थिने दद्याद्भिक्षामात्रं च भिक्षवे ॥१६५

अन्नं सुसंस्कृतं वापि तेन सीरी विशुद्ध्यति ।
सीतायज्ञं च यः कुर्यात् सिद्धसस्ये खलागते ॥१६६

अनन्तकृतपापोऽपि मुक्तो भवति कर्षुकः ।
खलयज्ञं प्रवक्ष्यामि तत्कुर्वाणा द्विजातयः ॥१६७

विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः स्वर्गौकस्त्वमवाप्नुयुः ।
चतुर्दिक्षु खले कुर्यात्प्राच्यमतिघनावृतिम् ॥१६८

सेकद्वारं पिधानं च विदध्याच्चैव सर्वतः।
खरोष्ट्राजोरणांस्तत्र विशतस्तु निवारयेत् ॥१६९

श्व-शूकर-शृगालादि-काकोलूक-कपोतकान्।
त्रिसन्ध्यं प्रोक्षणं कुर्यादानीताभ्युक्षणाम्बुभिः ॥१७०

रक्षां च भस्मना कुर्याज्जलधाराभिरक्षणम।
त्रिसन्ध्यमर्चयेत्सीतां पाराशरमृषिं स्मरन् ॥१७१

प्रेत-भूतादिनामानि न वदेच्च तदग्रतः।
सूतिकागृहवत्तत्र कर्तव्यं परिरक्षणम ॥१७२

हरन्त्यरक्षितं यस्माद्रक्षांसि सर्वमेव हि।
प्रशस्तदिनपूर्वाह्णे नाऽपराह्णे न सन्ध्ययोः ॥१७३

धान्योन्मानं सदा कुर्यात् सीतापूजनपूर्वकम्।
यजेत खलभिक्षाभिः काले रोहिण एव हि ॥१७४

भक्त्या सर्वं प्रदत्तं हि तत्समस्तमिहाक्षयम्।
खलयज्ञो दक्षिणैषा ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ॥१७५

भागधेयमयीं कृत्वा तां गृह्णन्त्वीह मामिकाम्।
शतक्रत्वादयो देवाः पितरः सोमपादयः ॥१७६

सनकादिमनुष्याश्च ये चान्ये दक्षिणाशनाः।
एतानुद्दिश्य विप्रेभ्यो प्रदद्यात् प्रथमं हली ॥१७७

विवाहे खलयज्ञे च सङ्क्रान्तौ ग्रहणेषु च।
पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं भवति चाक्षयम् ॥१७८

अन्येषामर्थिनां पश्चात्कारुकाणां ततः परम्।
दीनानामप्यनाथानां कुष्ठिनां कुशरीरिणाम् ॥१७९

क्लीबा-ऽन्ध-बधिरादीनां सर्वेषामपि दीयते ।
वर्णानां पतितानां च दद्भुक्तानि तर्पयेत् ॥१८०

चाण्डालांश्च श्वपाकांश्च प्रीणात्युच्चावचांस्तथा ।
ये केचिदागतास्तत्र पूज्यास्तेऽतिथिवद्द्विजाः ॥१८१

स्तोकशः सीरिभिः सर्वैर्वर्णिभिर्गृहमेधिभिः ।
दत्वा सूनृतया वाचा क्रमेणाथ विसर्जयेत् ॥१८२

तत्कृत्वा स्वगृहं गत्वा श्राद्धमाभ्युदयं चरेत् ।
शरद्धेमन्त-वासन्त-नवान्नैः श्राद्धमाचरेत् ॥१८३

नो ऽदत्वान्न तदश्नीयादश्नंश्चेदघमश्नुते ।
कृषावुत्पाद्य धान्यानि खलयज्ञं समाप्य च ॥१८४

सर्वसत्वहिते युक्त इहामुत्र सुखी भवेत् ।
कृषेरन्यत्र नो धर्मो न लाभः कृषितोऽन्यतः ॥१८५

सुखं न कृषितोऽन्यत्र यदि धर्मेण वर्तते ।
अवस्त्रत्वं निरन्नत्वं कृषितो नैव जायते ॥१८६

अनातिथ्यं च दुःखित्वं गोमतो न कदाचन ।
निर्धनत्वमसत्यत्वं विद्यायुक्तस्य कर्हिचित् ॥१८७

अस्थानित्वमभाग्यत्वं न सुशीलस्य कर्हिचित् ।
वदन्ति मुनयः केचित् कृष्यादीनां विशुद्धये ॥१८८

लाभस्यांशप्रदानं च सर्वेषां शुद्धिकृद्भवेत् ।
प्रतिग्रहात् चतुर्थांशं वणिग् लाभात् तृतीयकम् ॥१८९

कृषितो विंशतिं चैव ददतो नास्ति पातकम् ।
राज्ञो दत्वा च षड्भागं देवतानां च विंशकम् ॥१९०

त्रयस्त्रिंशंच विप्राणां कृषिकर्मा न लिप्यते ॥
कृष्या यथोत्पाद्य यवादिकानि
धान्यानि भूयांसि मखान्विधाय ।
मुक्तो गृहस्थोऽपि पराशरः प्राक्
तस्या मया कश्चिदवादि शेषः ॥१६१
देवा मनुष्याः पितरश्च सर्वे
साध्याश्च यक्षाश्च सकिन्नराश्च ।
गावो द्विजेन्द्राः सह सर्वसत्वैः
कृष्यन्नतृप्तानि मनाक् करोति ॥१६२
यश्चैतदालोच्य कृषिं विदध्यात्
लिप्येन्न पापेन स भूभवन ॥
सीरेण तस्यातिविदारितापि
स्याद्भूतधात्री धनदानदात्री ॥१६३
षट्कर्माणि कृषिं ये तु कुर्युर्ज्ञात्वा विधिं द्विजाः ।
तेऽमराद्विवरप्राप्ताः स्वर्गलोकमवाप्नुयुः ॥१६४
षट्कर्मभिः कृषिः प्रोक्ता द्विजानां गृहमेधिनाम् ।
गृहं च गृहणीमाहुस्तद्विवाहो मयोच्यते ॥१६५

इति श्रीवृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां स्मृत्यां कृषिकर्मसीतायज्ञोपधर्मो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥

—❀❀—

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ कन्याविवाहवर्णनम् ।

स्वयं च वाहितैः क्षेत्रैर्धान्यैश्च स्वयमर्जितैः ।
कुर्याद्विवाहयोगादि पञ्चयज्ञांश्च नित्यशः ॥१
अष्टौ विवाहा नारीणां संस्कारार्थं प्रकीर्तिताः ।
ब्राह्मादिकक्रमेणैतान्सम्प्रवक्ष्याम्यतः पृथक् ॥२
जात्यादिगुणयुक्ताय पुंस्त्वे सति वराय च ।
कन्याऽलङ्कृत्य दीयेत विवाहो वैधसः स्मृतः ॥३
रेतो मज्जति यस्याप्सु मूत्रं च ह्लादि फेनिलम् ।
स्यात् पुमाँल्लक्षणैरेतैर्विपरीतस्तु षण्ढकः ॥४
यो यज्ञे वर्तमाने तु ऋत्विजे कर्म कुर्वते ।
कन्याऽलङ्कृत्य दीयेत विवाहः स तु दैविकः ॥५
वराय गुणयुक्ताय विदुषे सदृशाय च ।
कन्या गोद्वयमादाय दीयेताऽऽर्षः स उच्यते ॥६
कन्या चैव वरश्चोभौ स्वेच्छया धर्मचारिणौ ।
स्यातामिति च यत्रोक्त्वा दानं कार्यविधिस्त्वयम् ॥७
एतावद्देहि मे द्रव्यमित्युक्त्वा प्राग्वराय च ।
यत्र कन्या प्रदीयेत स वै दैत्यविधिः स्मृतः ॥८
यत्रान्योन्याभिलाषेण उभयोर्वर-कन्ययोः ।
तयोस्तु यो विवाहः स्याद्गान्धर्वः प्रथितः स तु ॥९
युद्धे हत्वा बलात् कन्या यत्राऽऽच्छिद्याऽपहृत्य च ।
उह्यते स तु विद्वद्भिर्विवाहो राक्षसः स्मृतः ॥१०

सुप्ता वापि प्रमत्ता वा छलात् कन्या प्रगृह्यते।
सर्वेभ्यः स तु पापिष्ठः पैशाचः प्रथितोऽष्टमः ॥११

आद्या आद्यस्य षट् प्रोक्ता धर्म्याश्चत्वार एव हि।
चत्वारोऽन्ये द्वितीयस्य आद्यस्य च द्वयस्य च ॥१२

पञ्चमश्च तथा षष्ठः स्मृतौ तौ त्रि-चतुर्थयोः।
द्वितीयस्यापि ये प्रोक्ता एतयोस्ते न चाष्टमः ॥१३

वैधसाद्यनुरूपेण द्वितीयः परयोः स्मृतः।
सर्वे सप्तममेकस्य द्वितीयस्यैव कीर्तिताः ॥१४

अन्त्यावत्यधमौ चोक्तावुद्वाहौ शक्तिसूनुना।
तथा युगस्वरूपेण प्रोक्तो दैत्यस्तु मानुषः ॥१५

तार्यन्ते प्राक्ततोऽधस्ताच्चतुरोऽऽद्यविवाहजैः।
स्वात्मना द्विगुणान् वंश्यान् दश-सप्त-त्रयश्च षट् ॥१६

स्त्रीणामाजन्मशर्मार्थं वंशशुद्धौ प्रयत्नवान्।
वरं हि वरयेद्विद्वाञ्ज्ञात्यादिगुणसंयुतम् ॥१७

जाति-विद्या-वयः-शक्तिरारोग्यं बहुपक्षता।
अर्थित्वं वित्तसम्पत्तिरष्टावेते वरे गुणा ॥१८

जातिर्विद्या च रूपं च शीलं चैव नवं वयः।
अरोगित्वं विशेषेण पुंस्त्वे सत्यपि लक्षयेत् ॥१९

जातिं रूपं च शीलं च वयो नवमरोगिताम्।
स्वाचारत्वं विशेषेण संलक्ष्य वरमाश्रयेत् ॥२०

सज्जातिं रूप-वित्तं च तथाऽग्रवयसं दृढम्।
सन्तोषजननं स्त्रीणां प्रज्ञावानाश्रयेद्वरम् ॥२१

न जातिं न च विद्यां च वित्तं नाऽचरणं स्त्रियः।
किन्तु ताः प्रीतिमिच्छन्ति तस्मात् प्रीतिकरं श्रयेत् ॥२२
पित्रा यत्र सगोत्रत्वं मात्रा यत्र सपिण्डता।
न च तामुद्वहेत्कन्यां दारकर्मण्यनादृताम् ॥२३
कन्यायाश्च वरस्यापि यत्रोभयोर्भवेद्रतिः।
तथा कन्यां वरो धीमान्वरयेद्वंशशुद्धये ॥२४
नाना मतानि सर्वेषां सतां सन्ति वरम्प्रति।
सन्तानस्य विशुध्यर्थं जात्यादिषु च नाऽन्यतः ॥२५
दूरस्थानामविद्यानां मोक्षधर्मानुयायिनाम्।
शूराणां निर्धनानां च न देया कन्यकाः बुधैः ॥२६
नाऽतिदूरे न चाऽसन्न अत्याढ्ये चाऽतिदुर्बले।
वृत्तिहीने च मूर्खे च षट्सु कन्या न दीयते ॥२७
वर्जयेदतिरिक्ताङ्गीं कन्यां हीनाङ्गरोगिणीम्।
अतिलोम्नीं हीनलोम्नीमवाचमतिवाग्युताम् ॥२८
पिता पितामहो भ्राता माता मातामहोऽपि वा।
कन्यादाः स्युः क्रमेणैते पूर्वाऽभावे परः परः ॥२९
अधिकारी यदा न स्यात्तदाऽऽख्याय नृपस्य सा।
तद्गिरा च स्वयं गम्यं कन्यापि वरयेद्वरम् ॥३०
पिङ्गलां कपिलां कृष्णां दुष्टवाक्काकनिःस्वनाम्।
स्थूलाङ्ग-जङ्घ-पादां च सदा चाऽप्रियवादिनीम् ॥३१
त्यजेन्नग-नदीनाम्नीं पक्षि वृक्षर्क्षनामिकाम्।
अहि-प्रेष्या-ऽन्त्यनाम्नीं च तथा भीषणनामिकाम् ॥३२

स्वजातिमुद्वहेत् कन्यां सुरूपां लक्षणान्विताम्।
अरोगिणीं सुशीलां च तथा भ्रातृमतीमपि ॥३३

सर्वावयवसम्पूर्णामसगोत्रां कुलोद्भवाम्।
हंस-मातङ्गगमनां सुमृद्वंगी सुलोचनाम् ॥३४

सलज्जां शुभनासां च पतिप्रीतिकरीमपि।
श्वश्रू-श्वशुर-गुर्वादिशुश्रूषाकारिणीं प्रियाम् ॥३५

अव्यङ्गां कुलजातां तामनभिशस्तवंशजाम्।
प्रस्वेदशुभगन्धां च शुभमिच्छन्समुद्वहेत् ॥३६

विप्रः स्वामपरे द्वे तु राजा स्वामपरे तथा।
वैश्यः स्वाञ्च चतुर्थीं च क्रमेणैवं समुद्वहेत् ॥३७

पितृतः सप्तमीमेके मातृतः पञ्चमीमपि।
उद्वहेदिति मन्यन्ते कुलधर्मान् समाश्रिताः ॥३८

उक्तलक्षणकन्यायाः कृत्वा पाणिग्रहं द्विजः।
धर्म्योद्वाहेन केनापि समाऽऽदध्याद्धुताशनम् ॥३९

दायाद्यकाले वा दद्यात्तदुक्तं कर्मकृद्द्विजैः।
यदा वापि भवेत् भक्तिः सम्पत्तिर्वा यदा भवेत् ॥४०

ऋतावृत्तौ स्त्रियं गच्छेत्स्त्रीच्छया च वरं स्मरन्।
सर्वं तदिच्छया कुर्याद्यथोभयोर्भवेद्धृतिः ॥४१

भोज्या-ऽलङ्कार-वासोभिः पूज्याः स्युः सर्वदा स्त्रियः।
यथा ता नैव शोचन्ति मित्यं कार्यं तथा नृभिः ॥४२

आयुर्वित्तं यशः पुत्राः स्त्रीप्रीत्या स्युर्नृणां सदा।
नश्यन्ते ते तदप्रीतौ तासां शापादसंशयम् ॥४३

स्त्रियश्च यत्र पूज्यन्ते सर्वदा भूषणादिभिः।
देवाः पितृ-मनुष्याश्च मोदन्ते तत्र वेश्मनि ॥४४
स्त्रियस्तुष्टाः श्रियः साक्षाद्रुष्टाश्च दुष्टदेवताः।
वर्धयन्ति कुलं तुष्टा नाशयन्त्यपमानिताः ॥४५
नाऽपमान्याः स्त्रियः सद्भिः पति-श्वशुर-देवरैः।
भ्रात्रा पित्रा च मात्रा च तथाबन्धुभिरेव च ॥४६
स्त्रियाश्च पुरुषस्यापि यत्रोभयोर्भवेद्धृतिः
तत्र धर्मा-ऽर्थकामाः स्युस्तदधीना यतस्त्वमी ॥४७
षट्कर्माणि नृणां तेषां येषां भार्या पतिव्रता।
पतिलोकं तु ता यान्ति तपसा येन योगवित् ॥४८
पतिव्रता तु साध्वी स्त्री अपि दुष्कृतकारिणम्।
पतिमुद्धृत्य याति द्यां केकीव पतितोरुगाम् ॥४९
जीवन्वापि मृतो वापि पतिरेव प्रभुःस्त्रियाः।
नान्यच्च दैवतं तासां तमेव प्रभुमर्चयेत् ॥५०
मनसापि हि दुष्टा स्त्री यान्यभावा प्रियं पतिम्।
सा याति नरकं घोरं तद्द्रोहादगुतोऽपि च ॥५१
नियोज्य गृहकृत्येषु सर्वदा ता नृभिः स्त्रियः।
गृहार्थासक्तचित्तास्तास्तदेवार्हन्ति शोचितुम् ॥५२
स्त्रीणामष्टगुणः कामो व्यवसायश्च षड्गुणः।
लज्जा चतुर्गुणा तासामाहारश्च तदर्धकः ॥५३
न वित्तं नैव जातिश्च नाऽपि रूपमपेक्षते।
किन्तु ताभिः पुमानेष इति मत्वैव भुज्यते ॥५४

विकुर्वाणाः स्त्रियो भर्तुरायुष्य-धननाशकाः।
अनायासेन तास्तस्य परासक्ता भवन्ति हि ॥५५
नारीणां च नदीनां च गतिर्न ज्ञायते बुधैः।
कुलं कूलप्रपाते च कालक्षेपो न विद्यते ॥५६
चेष्टा-चारित्र-चित्राणि देवा नैव विदुः स्त्रियाम्।
किं पुनः प्राणिमात्रास्तु सर्वथा नष्टबुद्धयः ॥५७
तस्मात्ताः सर्वथा रक्ष्याः सर्वोपायैर्नृभिः सदा।
श्वशुरैर्देवराद्यैस्ताः पितृ-भ्रात्रादिभिस्तथा ॥५८
विवाहात् प्राक् पिता रक्षेद् यौवने तु पतिस्ततः।
रक्षेयुर्वार्धके पुत्रा नास्ति स्त्रीणां स्वतन्त्रता ॥५९
स्वातन्त्र्येण विनश्यन्ति कुलजा अपि योषितः।
अस्वातन्त्र्यमतः स्त्रीणां प्रजापतिरकल्पयत् ॥६०
अशौचाश्च सशौचाश्च अमेध्या अपि पावनाः।
दुर्वाचोऽपि सुवाचस्तास्तस्मादन्वेषयेन्न ताः ॥६१
शौचं वाचं च मेध्यत्वं सोम-गन्धर्व-पावकाः।
ददुस्तासां वरानेतांस्तस्मान्मेध्यतराः स्त्रियः ॥६२
भर्तारो वो भविष्यन्ति युष्मच्चित्तानुसारिणः।
यथेच्छाकामिनः सर्वे तासामिन्द्रो वरं ददौ ॥६३
तस्मात्तदिच्छया प्रीतिं पुमानिच्छेत्तथा स्त्रियः।
रक्षणीयास्ततस्तास्तु सर्वभावेन योषितः ॥६४
सामाह मृकूथमित्याद्यैर्देवैर्न्यस्ता नृणां तनौ।
अर्धकाया नराणां ताः स्त्रीणां नातः पृथक् व्रतम् ॥६५

न दिवापि स्त्रियं गच्छेदिच्छंस्तदिच्छयापि च ।
न पर्वसु न सन्ध्यासु नाऽऽद्यर्त्तुचतुरात्रिषु ॥६६
वन्ध्याष्टमे ऽधिवेत्तव्या नवमे च मृतप्रजा ।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥६७
नोदक्यां न दिवा गच्छेत् सगर्भां च व्रतस्थिताम् ।
अधिगच्छेदविद्वान्यस्तदायुः क्षयमेति च ॥६८
न वक्त्रेऽभिगमं कुर्यान् पाणिग्राही स्वयोषितः ।
कुर्याच्चेत्पितरस्तस्य पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥६९
भार्याधीनं सुखं पुंसां भार्याधीनं गृहं धनम् ।
भार्याधीना सुखोत्पत्तिर्भार्याधीनः शुभोदयः ॥७०
यत्र भार्या गृहं तत्र भार्याहीनं गृहं वनम् ।
न गृहेण गृहस्थः स्याद्भार्यया कथ्यते गृही ॥७१
गृही स्याद्गृहधर्मेण स वै पञ्चमखादिकः ।
तद्धीनो न गृहस्थःस्यात्कुर्यात्तं यत्नतस्ततः ॥७२
पञ्चयज्ञविधानेन कुर्यात्पञ्च महामखान् ।
श्रौते वा यदि वा स्मार्त्ते पञ्चयज्ञान्न हापयेत् ॥७३
कुर्युः पञ्चमहायज्ञान् सूनादोषापनुत्तये ।
पञ्चसूना भवन्त्यत्र सर्वेषां गृहमेधिनाम् ॥७४
कण्डन्युदककुम्भी च चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
यदाऽऽदौ वेदमारभ्य स्नात्वा भक्त्या द्विजोत्तमः ॥७५
अध्यापयेद्द्विजांश्छिष्यान्स वै ब्रह्ममखः स्मृतः ।
यत् स्नात्वाऽहरहः सर्वान्देवांश्च मनुजान्पितॄन् ॥७६

तर्पयेदम्भसा भक्त्या पितृयज्ञः स वै मतः।
श्रौते वा यदि वा स्मार्ते यज्जुहोति हुताशने ॥७७
विधिवन्नित्यशो विप्रः स तु दैवमखः स्मृतः।
दशस्वाशासु यः कुर्याद्धुतशेषाद्बलिं द्विजः ॥७८
इन्द्रादिभ्यस्तथाऽन्येभ्यः स वै भूतमखो मतः।
समायातातिथिं भक्त्या यद्भोजयति नित्यशः ॥७९
अन्यानभ्यागतांश्चैव सा मनुष्येष्टिरुच्यते।
एवं पञ्चमखान् कुर्वन्मधु-मांसाऽऽज्य-पायसैः ॥८०
स सन्तर्प्य पितृन्देवान्मनुष्यान् स्वर्गमाप्नुयात्।
गृहस्था य उपासीरन् वाचं धेनुं चतुस्तनीम् ॥८१
स्वर्गौकसां पितॄणां च पूज्यास्तेऽतिथिवद्दिवि।
चत्वारस्तु स्तना एते ये चतुर्वेदसंज्ञिताः ॥८२
स्वाहाकारो वषट्कारो हन्तकारस्तथा स्वधा।
देवानां भागधेयौ द्वौ अन्ये च मनुजन्मनाम् ॥८३
पितॄणां च चतुर्थस्तु इति वेदनिदर्शनम्।
इति निर्वर्त्य विधिवत्सकलं कर्म नैत्यकम् ॥८४
प्राणाग्निहोत्रविधिना भुञ्जीतान्नमघापहम्।
अदत्वा पोष्यवर्गस्य ह्यकृत्वाऽध्यापनादिकम् ॥८५
असाक्षिकं च योऽश्नीयात्सोऽश्नीयात्किल्बिषं द्विजः।
प्राङ्मुखादिक्रमेणाऽश्नन्नायुः कीर्तिं श्रियो ऋतम् ॥८६
अविधिर्विधिगत्यासु यत्तदश्नन्ति राक्षसाः।
अथ प्राणाग्निहोत्रस्य श्रूयतां द्विजसत्तमाः ॥८७

वक्ष्यमाणो विधिः पुण्यः प्रेत्य चेह च पावनः ।
यो विधिर्दैवताभ्यस्तः संसारबन्धनाशकृत् ॥८८

तद्विदस्तु दिवं यान्ति मुक्ता दैवाद्दणादपि ।
उद्धरेद्यद्विदित्वाश्नन्पुरुषानेकविंशतिम् ॥८६

सर्वेष्टिफलभाग्यायाद्वैधसं क्षयमक्षयम् ।
यः कालाकालविद्विप्रो नैनःस्पर्शी स कर्हिचित् ॥६०

सोऽस्पृष्टैना विशेत्तत्र यद्गत्वा नैति संसृतौ ।
दश पञ्चांगुलव्यासं नासिकाया बहिः स्थितम् ॥६१

जीवो यत्र विशुद्ध्येयत सा कला षोडशी स्मृता ।
सर्वमेतत्तया व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥६२

ब्रह्मविद्येति विख्याता वेदान्ते च प्रतिष्ठिता ।
न वेदं वेदमित्याहुर्वेद्यन्नाम परं पदम् ॥६३

तत्पदं विदितं येन स विप्रो वेदपारगः ।
आहुतिः सा परा ज्ञेया सा च शान्तिः प्रकीर्तिता ॥६४

गायत्री सा च विज्ञेया सा च सन्ध्या प्रकीर्तिता ।
तज्जाप्यं तच्च वै ज्ञेयं तद्व्रतं तदुपासितम् ॥६५

तां कलां यो विजानाति स कलाज्ञो द्विजः स्मृतः ।
तत्तुरीयपदं शान्तं यस्मिँल्लीनमिदं जगत् ॥६६

तज्ज्ञात्वा परमं तत्वं न भूयः पुरुषो भवेत् ।
प्राणमार्गास्त्रयः प्रोक्तास्तिस्रो नाड्यः प्रकीर्तिताः ॥६७

ईडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयका ।
ईडा च वैष्णवी नाडी ब्रह्माणी पिङ्गला स्मृता ॥६८

सुषुम्ना चेश्वरी नाडी त्रिधा प्राणवहाः स्मृताः।
उत्तरं दक्षिणं ज्ञेयं दक्षिणोत्तरसंज्ञितम् ॥९९
मध्ये तु विषुवं ज्ञेयं पुटद्वयविनिःसृतम्।
संक्रांति-विषुवे चैव यो विजानाति विग्रहे ॥१००
नित्यमुक्तः स योगी च ब्रह्मवादिभिरुच्यते।
मध्याह्ने चार्धरात्रे च प्रभातेऽस्तमये तथा ॥१०१
विषुवन्तं विजानीयात्पुटद्वयविनिःसृतम्।
हृत्पुण्डरीकमरणीं मनो मन्थानमेव च ॥१०२
प्राणरज्ज्वा न्यसेदग्निमात्माध्वर्युः प्रतिष्ठितः।
ज्वालयेत्पूरकेणाऽग्निं स्थापयेत्कुम्भकेन तु ॥१०३
रेचकेणोर्ध्ववक्त्रेण ततो होमं करोति यः।
यत्तद्धृदि स्थितं पद्ममधोनालं व्यवस्थितम् ॥१०४
तस्मिन्विकसिते पद्मे प्राणो वायुर्विसर्पति।
वामहस्तधृते पात्रे दक्षिणे चाम्भसि स्थिते ॥१०५
सनादमुच्चरेद्विप्रो अच्छिन्नाग्रं तु पूरयेत्।
पूरणात् पूरकं प्राहुर्निश्चलं कुम्भकं भवेत् ॥१०६
निर्गच्छति शनैर्वायू रेचकं तं विनिर्दिशेत्।
स्वाहान्तैः प्रणवाद्यैश्च स्वस्वनाम्ना च वायुभिः ॥१०७
जीवात्मा योजितः षष्ठः षडाहुत्या हुतं भवेत्।
जिह्वादत्तं ग्रसेदन्नं दन्तैश्चैव न तत् स्पृशेत् ॥१०८
दशनैः स्पृष्टमात्रेण पुनराचमनं चरेत्।
मुख आहवनीयोऽग्निर्गार्हपत्यस्तथोदरे ॥१०९

हृदये दक्षिणाग्निश्च गृह्याग्निश्चापि दक्षिणे ।
सभ्यश्चोत्तरतश्चिन्त्य इत्यग्निस्मरणक्रमः ।।११०
प्राणाद्येवाग्निहोत्रादि चिन्तयेत्तद्वदेव तु ।
होतारं प्राणमित्याहुरुद्गातारमपानकम् ।।१११
ब्रह्माणं व्यानमित्येके उदानोऽध्वर्युमित्यपि ।
समानं चेह यज्वानमिति ऋत्विक्क्रमं बुधः ।।११२
अहङ्कारं पशुं कृत्वा प्रणवं यूपमित्यपि ।
बुद्धिरित्यरणिः पृथ्वी लोमानि च कुशाः स्मृताः ११३
मनो विभक्ता स्वग्जिह्वा इति तज्ज्ञाः प्रचक्षते ।
कृत्वा त्रिमात्रमोङ्कारं हुङ्कारं च तथा पुनः ।।११४
उत्तिष्ठ जननाथाऽग्ने हरिलोहितपिङ्गल ।
सप्तपरिधये तुभ्यं क्षुद्वह्निदैवतं च यत् ।।११५
विजिह्व जाठरायाऽग्ने स्वाहाप्राणाय व्यत्ययः ।
इन्द्रगोपकवर्णाय त्रिजिह्वायाग्निदैवतम् ।।११६
ॐ स्वाहेति अपानाय स्वाहाकारान्तमुच्चरेत् ।
गोक्षीरसमवर्णाय पर्जन्यं वह्निदैवतम् ।।११७
स्वाहोदानाय सोङ्कारमनलाय परार्चिषे ।
ताडित्समानवर्णाय वाय्वग्निदैवताय ते ।।११८
ॐ स्वाहा च समानाय ॐ स्वाहा चाह वेधसे ।
तर्जनी-मध्यमा-ऽङ्गुष्ठैर्लग्ना प्राणस्य चाहुतिः ।।११९
कनिष्ठा-ऽनामिका-ऽङ्गुष्ठैर्व्यानस्य परिकीर्तिता ।
मध्यमा-ऽनामिका-ङ्गुष्ठैरपानायाहुतिः स्मृता ।।१२०

मध्यमा-ऽनामिकास्त्वन्यामुदाने जुहुयाद्बुधः।
समाने सर्वैरुद्धृत्य आहुतिः स्यात्समानतः ॥१२१
जलं पीत्वा तु तृप्यन्ति रेचयेच्च शनैः शनैः।
ततोऽन्यद्द्रव्यमश्नीयात्पूरणायोदरस्य च ॥१२२
विधिं प्राणाग्निहोत्रस्य ये द्विजा नैव जानते।
अपानेन तु भुञ्जन्ति तेषां मुखमपानवत् ॥१२३
यो ज्ञात्वा तु विधिं भुङ्क्ते यथोक्तमिदमाचरेत्।
इहामुत्र च पूज्यत्वं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१२४
त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य दातुरप्यक्षयं भवेत्।
दातुरपि हि यत्पुण्यं भोक्तुश्चैव हि तत्फलम् ॥१२५
दाता चैव तु भोक्ता च तावुभौ स्वर्गगामिनौ।
यो जानाति विधिं चेमं स भवेद्ब्रह्मवित्तमः ॥१२६
एकं पिबति गण्डूषं त्यजेदर्धं धरातले।
स हतः पितृ-दैवत्यमात्मानं नरकं व्रजेत् ॥१२७
रहस्यं सर्वशास्त्रेषु सर्वशास्त्रेषु दुर्लभम्।
ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानं न कस्यचित् प्रकाशयेत् ॥१२८
विप्राणामग्निहोत्रस्य ये द्विजा नैव जानते।
ज्ञानानि योऽप्रकास्यानि पुंसामविदुषां वदेत् ॥१२९
स प्रणाश्य फलं तेषामात्मानं नरकं नयेत्।
योऽज्ञात्वा ह्यप्रकाश्यानि पुंसामविदुषां वदेत् ॥१३०
प्राणायामफलं हत्वा आत्मानं नरकं नयेत्।
योऽश्नीयाद्विधिवद्विप्रः कृतपात्रपरिग्रहः ॥१३१

पूजितान्नमवाग् जुष्ठं सापोशानंससाक्षिकम् ।
वाग्यतो न्यस्तपात्रे च विप्र-क्षत्र-विशां क्रमात् ॥१३२

वाग्यतो न्यस्तपात्रस्त्रीन् ग्रासानष्टावपि द्विजः ।
तस्य त्रिरात्रं पुण्याग्निर्दानेऽपि कवयो विदुः ॥१३३

चतुस्त्रिकोणं वृत्तं च विप्र-क्षत्र-विशां क्रमात् ।
प्राहुः परिहृतं सन्तस्तद्धीनान्नं तु राक्षसम् ॥१३४

गृह्णीयात्प्रागपोशानं तथा भुक्त्वा सकृत्त्वपः ।
अनग्नममृतं तत्स्याद्भुक्तमन्नं द्विजन्मनाम् ॥१३५

काले भुक्त्वा समुत्थाय प्रेक्ष्य विप्रं समीक्ष्य च ।
अहःपतिं तत्र स्थित्वा चिन्तयेद्बहु कृत्यकम् ॥१३६

भार्या भोजनवेलायां भिक्षां सप्तऽथ पञ्च वा ।
दत्वा शेषं समश्नीयात्सापत्य-भृत्यकैः सह ॥१३७

निर्वर्त्य सकलं सापि किंचित्स्थित्वा सुखेन तु ।
स्वस्त्रीयरतिकार्येषु सापि स्यात्तत्परा पुनः ॥१३८

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां हुत्वा चैव हुताशनम् ।
किञ्चित्पश्चात्समश्नीयात्सायं प्रातरिति श्रुतिः ॥१३९

स्वाध्यायमभ्यसेत्किञ्चिद्यामद्वयं शयीत च ।
शयानो मध्यमौ यामौ ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१४०

सुशयने शयीताथ एकान्ते च स्त्रियासह ।
गोपनं मैथुनादीनां वदन्ति मुनिपुङ्गवाः ॥१४१

ऋतुक्षपासु पुत्रार्थी आधानविधिना द्विजः ।
प्रसाद्य भस्मना योनिमिति मन्त्रनिदर्शनात् ॥१४२

कृत्वाऽऽधानविधानं तु स्त्रीयोगमभ्यसेत्पुनः ।
मन्थेदविकृतो योनौ विकाराद्विकृताः प्रजाः ॥१४३

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय प्रातः सन्ध्यामुपक्रमेत् ।
आसूर्यदर्शनात् प्रातः सायं चैवर्क्षदर्शनात् ॥१४४

बहिःसन्ध्यामुपासीत सम्प्राप्तावम्भसः सदा ।
उपासिता बहिःसन्ध्या विशिष्टफलदा भवेत् ॥१४५

अनृतं मद्यगन्धं च दिवा मैथुनमेव च ॥
पुनाति वृषलस्यान्नं सन्ध्या बहिरुपासिता ॥१४६

सिन्दूरारुणभं भाति नभो यावद्वितारकम् ।
उदयेऽस्तमये भानोस्तावत्सन्ध्येति शक्तिजः ॥१४७

आधानतो द्वितीये तु मासे पुंसवनं भवेत् ।
सीमान्तोन्नयनं षष्ठे कार्यं मासेऽष्टमे ऽपि वा ॥१४८

जातस्य जातकर्म स्याद्विधिवच्छ्राद्धपूर्वकम् ।
दिने चैकादशे नामकर्म स्यात् च द्विजन्मनाम् ॥१४९

तुर्ये निष्क्रमणं मासे षष्ठेऽन्नप्राशनं तथा ।
चूडाकर्म तृतीयेऽब्दे कार्यं वा कुलधर्मतः ॥१५०

सर्वं स्त्रियां विमन्त्रं तु कार्यं कायविशुद्धये ।
यस्य नस्युर्द्विजस्यैताः क्रियाश्चैव कथंचन ॥१५१

स व्रात्यःसन् परित्याज्यो द्विजो यस्माद् द्विजन्मनाम् ।
मुञ्जमौर्ण-शणानां तु त्रिवृता रशना स्मृता ॥१५२

कार्पास-शणमेषौर्णान्युपवीतानि वर्णशः ।
पलाश-वट-पीलूनां दण्डाश्च क्रमशः स्मृताः ॥१५३

कार्ष्णं च रौरवं बास्तमजिनानि द्विजन्मनाम्।
शिरो-ललाट-नासान्ताः क्रमाद्दण्डाः प्रकीर्तिताः ॥१५४

अव्रणाः सत्वचो ऽदग्धा उक्ताः शुभकरा नृणाम्।
गायत्र्या त्रिष्टुप्-जगत्या त्रयाणामुपनायनम् ॥१५५

गायत्र्यामविशेषो वा मुञ्जादिष्वपरेषु च।
तत्सवितुस्तां सवितुर्विश्वा रूपाणि वा क्रमात् ॥१५६

औपनायनिका मन्त्रा विप्रादीनामुदाहृताः।
ब्राह्मणो विप्रगेहेषु नृपस्तेषूत्तमेषु च ॥१५७

वैश्यो विप्र-नृपेष्वेषु कुर्याद्भिक्षां स्ववृत्तये।
एकान्नं न द्विजोऽश्नीयाद्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ॥१५८

भिक्षाव्रतं द्विजातीनामुपवाससमं स्मृतम्।
प्रतिग्रहो न भिक्षा स्यान्न तस्याःपरपाकता ।१५६

सोमपानसमा भिक्षा अतोऽश्नीत स भिक्षया।
भिक्षया यस्तु भुञ्जीत निराहारः स उच्यते ॥१६०

भिक्षामनभिशस्तेषु स्याचारेषु द्विजेषु च।
भिक्षेत नित्यं क्रमशो गुरोः कुलं विवर्जयेत् ॥१६१

स्वसारं मातरं चापि मातृष्वसारमेव च।
भिक्षेत प्रथमां भिक्षां या चान्या न विमानयेत् ॥१६२

'भवति भिक्षां मे देहि' 'भिक्षां भवति देहि मे'।
'भिक्षां मे देहि भवति' क्रमेणैवमुदाहरेत् ॥१६३

द्वादशाब्दं व्रतं धार्यं षट्त्र्यब्दं तु श्रुतिम्प्रति।
आदित्याब्दे त्यजेत्तद्वै दत्त्वा तु गुरवे वरम् ॥१६४

त्रयस्तु स्नातकाः प्रोक्ताः विद्याव्रतोपसेविनः ।
विद्यां समाप्य यःस्नायाद्विद्यास्नातक उच्यते ॥१६५

समाप्य च व्रतं यस्तु व्रतस्नातक उच्यते ।
यज्ञं समाप्य यः स्नाति स द्विनामाऽभिधीयते ॥१६६

द्वयं समाप्य यःस्नायात्स द्विनामाऽभिधीयते ।
अष्टैक-द्वादशाब्दानि सगर्भाणि द्विजन्मनाम् ॥१६७

मुख्यकालो व्रतस्यैव ह्यन्य उक्तो विपर्यये ।
द्विगुणाब्देषु कर्तव्या क्रमादुपनतिर्द्विजैः ॥१६८

हीनगायत्रिका व्रात्या उक्तकालादनन्तरम् ।
नाध्याप्या नैव चोद्वाह्या व्यवहारविवर्जिताः ॥१६९

न याज्या नार्यकार्येषु प्रयोज्यास्त इति श्रुतिः ।
क्लीवन्निर्लोम वक्त्रा ये निर्लोमदेह-वक्षसः ॥१७०

उष्बोरस्काऽनपत्याश्च अदेश्यास्तेऽपि गर्हिताः ।
येऽजस्रं विहितं कुर्युः प्राप्नुयुस्ते सदा शुभम् ॥१७१

दीर्घायुष्यमदारिद्र्यं सुप्रजास्त्वमरोगिता ।
अगर्हितत्वं लोकेऽत्र विदुरनिषिद्धकारिणः ॥१७२

क्षीणायुस्त्वं दरिद्रत्वमप्रजास्त्वं च रोगिता ।
गर्हितत्वं च लोकेषु विदुर्निषिद्धकारिणः ॥१७३

प्रातर्वा यदि वा सायं नाद्यादन्नमनर्चितम् ।
नानाद्यमनपोशानं शुभप्रेप्सुर्द्विजन्मना ॥१७४

आपोशानं विना नाद्यान्नाद्यादन्नमनर्चितम् ।
अनाद्यं न दिवा सायं शुभमिच्छन् समश्नुते ॥१७५

षोडशाब्दानि विप्रस्य द्वाविंशतिर्नृपस्य च ।
चतुर्विंशतिरन्यस्य व्रात्यास्ते स्युरतःपरम् ॥१७६

उपनेया न ते विप्रैर्नाध्याप्याः शूद्रधर्मिणः ।
व्यवहार्या नैव याज्या इति धर्मविदो विदुः ॥१७७

स्त्रीणामुद्वाह एको वै वेदोक्तः पावनो विधिः ।
स्त्री-पुंसोर्यत्र विन्यासस्तयोरन्योन्यमुच्यते ॥१७८

स्वस्मिन्यस्माद्बिभर्त्येषा पतिं, बिभर्ति सोऽपि ताम् ।
अतो भार्या च भर्ता चेत्यत्र वेदो निदर्शनम् ॥१७९

पतिर्विशति यज्जायां गर्भो भूत्वेह मातरम् ।
तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते ॥१८०

जायोक्ता तेन भर्ता वै यदस्यां जायते पुनः ॥१८१

इयमाभवनं भार्या बीजमस्यां निषिच्यते ।
देवा ऊचुर्मनुष्यांश्च स्वभार्या जननी तु वः ॥१८२

आत्मना जायते ह्यात्मा सा चैव पतितारिणी ।
भार्या जाया जनन्येषा इति वेदे प्रतिष्ठिता ॥१८३

यस्मात्स त्राति पुन्नाम्नो नरकात् पुत्र उच्यते ।
सर्वां संसृतिमाहृत्य स याति ब्रह्मणैकताम् ॥१८४

पिता जातस्य पुत्रस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम् ।
सर्वं तेन फलं प्राप्तमैहिकामुष्मिकं च यत् ॥१८५

किं दण्डैरजिनैस्तीर्थैस्तपोभिः किं समाधिभिः ।
पुमांसः पुत्रमिच्छन्त्यूर्ध्वं स वै लोके वदावदः ॥१८६

प्राणोऽन्नमस्मिन् शरणं हि वासो रूप्यं हिरण्यं पशवो विवाहाः।
सखा च यज्वा कृपणश्च पुत्री ज्योतिः परं पुत्र इहाप्यमुत्र ॥१८७

स पुण्यकृत्तमो लोके यस्य पुत्राश्चिरायुषः।
विशेषेण हि धर्मज्ञाः स परं ब्रह्म विन्दति ॥१८८

पुत्रेण प्राप्यते स्वर्गो जातमात्रेण तु ध्रुवम्।
तस्मादिच्छन्ति सर्वे हि पशवोऽपि वयांसि च ॥१८९

जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः।
पुत्रस्यापि च पुत्रत्वं यत्त्राति नरकार्णवात् ॥१९०

यः पिता स तु पुत्रः स्यात् जायैव हि जनन्यपि।
न पृथक्त्वं विदुस्तज्ज्ञाश्चयोश्चाऽपरयोरपि ॥१९१

अयं हि पन्थाः पुरुषस्य तस्य ध्रुवं भवेत्पुत्रजन्मेह यस्य।
तद्वीक्ष्य चोर्ध्वं पशवो वयांसि पुत्रार्थिनो मातरमारुहन्ति ॥१९२

जनिष्यमाणानिच्छन्ति पितरः स्वकुले सुतान्।
कश्चिद्गत्वा गयायां नोऽवश्यं पिण्डान् प्रदास्यति ॥१९३

यक्ष्यत्यन्योऽश्वमेधेन नीलं मोक्ष्यति गोवृषम्।
एष्टव्यं पितृभिः सर्वं पुत्रेभ्यः सकलं फलम् ॥१९४

शुद्धः शौर्यैकचित्तो वा प्राणान्मोक्ष्यति संयुगे।
दानदो वा कुरुक्षेत्रे ज्ञानी वाथ भविष्यति ॥१९५

जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरि भोजनात्।
गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥१९६

पुच्छे शिरसि यः शुक्लः शुक्लायाल्लोहितं वपुः।
देवाद्यभीष्टो नीलोऽयमुत्सृष्टः पावनो वृषः ॥१९७

रक्तो वा यदि वा शुक्लः सुविषाणः शुभेक्षणः।
यो न हीनातिरिक्ताङ्गस्तं गोसहितमुत्सृजेत् ॥१९८

दुहितापि तथा साध्वी श्वशुरयोरुपास्तिकृत्।
पतिव्रता च धर्मज्ञा पित्रोर्द्युगतिकृद्भवेत् ॥१९९

यः पिता स च वै पुत्रस्तत्समा दुहिताऽपि च।
पुत्रश्च दुहिता चोभौ पितुः सन्तानकारकौ ॥२००

तत्सुतः पावयेद्वंशान्त्रीन्वै मातामहादिकान्।
दौहित्रः पुत्रवत्स्वर्ग मुक्तौ शास्त्रैश्चतौ समौ ॥२०१

आधानादिकसंस्काराः प्रोक्ता ये वै द्विजन्मनः।
कर्तव्याश्च स्वशाखोक्ताः केचित्कुलक्रमेण च ॥२०२

चत्वारिंशच्च ते सर्वे निषेकाद्याः प्रकीर्तिताः।
मखदीक्षा च विविधा तथैवान्त्येष्टिकर्म च ॥२०३

कुलाचारोऽपि कर्तव्य इतिशास्त्रविदो विदुः।
देशाचारस्तथा धर्म इति प्राह पराशरः ॥२०४

अयं हि परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः।
हीनाचारश्च पुरुषो निन्द्यो भवति सर्वशः ॥२०५

क्लेशभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च।
आचारे व्यवहारे च दुराचारो विपर्ययः ॥२०६

नृणामाचरतो धर्मः स्यादधर्मो विपर्ययात्।
तस्मादाद्ये ऽनुवर्तेत व्यत्ययं तु विवर्जयेत् ॥२०७

आचारवन्तो मनुजा लभन्ते
आयुश्च वित्तं च सुतांश्च सौख्यम्॥

धर्मं तथा शाश्वतमीशलोकम्
अत्रापि विद्वज्जनपूज्यतां च ॥२०८
वेदाः सहाङ्गैस्सपुराणविद्याः
शास्त्राणि वेद्यानि च तद्विहीनम् ।
कुर्युर्न वै तान्यपि संस्मृतानि
नरं पवित्रं प्रवदन्ति वेदाः ॥२०६
येऽधीतवेदाः क्रियया विहीनाः
जीवन्ति वेदैर्मनुजाधमास्तान् ।
वेदास्त्यजेयुर्निधनस्य काले
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥२१०
आचारहीननरदेहगताश्च वेदाः
शोचन्ति किं नु कृतवन्त इतिस्म चित्ते ।
यन्नोऽभवद्वपुषि चास्य शुभप्रहीणे
स्थानं तदत्र भगवान् विधिरेव शोच्यः ॥२११
कर्तव्यं यत्नतः शौचं शौचमूला द्विजातयः ।
शौचाचारविहीनानां सर्वाः स्युर्निष्फलाः क्रिया ॥२१२
तत्सद्भिर्द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।
विण्मूत्रशोधनं बाह्यं चित्तशुद्धिस्तथाऽऽन्तरम् ॥२१३
मृद्भिरद्भिरनालस्यं तत्कर्तव्यं द्विजातिभिः ।
भावशुद्धिः परं शौचमाहुराभ्यन्तरं बुधाः ॥२१४
गन्धलेपापहं बाह्यं शौचमाहुर्मनीषिणः ।
यस्य पुंसस्तु तच्छ्राचं शौचैस्तस्य किमन्यकैः ॥२१५

वाङ्-मनो-जलशौचानि सदा येषां द्विजन्मनाम् ।
त्रिभिः शौचैरुपेतो यः स स्वर्ग्यो नात्र संशयः ॥२१६

स्त्रियं रिरंसुर्द्रविणं जिहीर्षुर्वधं चिकीर्षुर्मनुजः परस्य ।
विवक्षुरत्यन्तमवाच्यवाचं कथं स शुद्धिं समुपैति शौचात् ? ॥२१७

किं निष्कामस्य नारीभिः किं गतासोश्च भेषजैः ।
जितेन्द्रियस्य किं शौचैर्निष्फलं मूर्खदानवत् ॥२१८

न गतिर्मूर्खदानेन न तारोऽम्बुनि चाश्मनः ।
तस्मात्तस्य न दातव्यं सह दात्रा स मज्जति ॥२१६

यथा भस्म तथा मूर्खो विद्वान्प्रज्वलिताग्निवत् ।
होतव्यं च समिद्धेऽग्नौ जुहुयात् को नु भस्मनि ॥२२०

यथा शूद्रस्तथा मूर्खो शूद्रश्च भस्मवत्तथा ।
शूद्रेण सह संवासं मूर्खे दानं विवर्जयेत् ॥२२१

ग्रहीता यो न चेद्विद्वान् तं दाता रोहिको यथा ।
आत्मानं तारयेत्तं च नदीं वैतरणीं द्विजः ॥२२२

यो मूर्खो विशदाचारः षट्कर्माभिरतः सदा ।
स नयन् स्वर्गमात्मानं वृद्धांश्चैव न पीडयेत् ।

न विद्या न तपो यस्य ह्यादत्ते च प्रतिग्रहम् ।
निपातयन् स दातारमात्मानमप्यधो नयेत् ॥२२४

हेम-भूमि-तिलान् गाश्च अविद्वानाददाति यः ।
भस्मीभवति सोऽह्नाय दातुःस्यान्निस्फलं च तत् ॥२२५

तस्मादविद्वान्नादद्यादल्पशोऽपि प्रतिग्रहम् ।
विषतत्त्वापरिज्ञानी विषेणाल्पेन नश्यति ॥२२६

सवं गवादिकं दानं पात्रे दातव्यमर्चितम् ।
विद्वद्भिर्न त्वपात्रे तु गतिमिच्छद्भिरात्मनः ॥२२७

हस्ति-कृष्णाजिनाद्यास्तु गर्हिता ये प्रतिग्रहाः ।
सद्भिस्तान्न गृह्णीयुर्गृह्णानास्तु पतन्ति ते ॥२२८

कृष्णाजिनप्रतिग्राही हयानां शुक्रविक्रयी ।
नवश्राद्धस्य यो भोक्ता न भूयः पुरुषो भवेत् ॥२२९

यो गृह्णाति कुरुक्षेत्रे ग्रामं गां द्विमुखीं गजम् ।
नवश्राद्धान्नभुग्यश्च वर्ज्या निर्माल्यवद् द्विजाः ॥२३०

एते यान्त्यन्धतामिस्रं यावन्मनुसहस्रकम् ॥२३१

विष्णोश्च वह्नेश्च रवेश्च जाता पृथ्वी च राज्ञश्च मुनीश गौश्च ।
काले सुपात्रे विधिना प्रदत्ताः प्राप्नोति लोकत्रयमेतदुक्तम् ॥२३२

वेदविद्वान्सदाचारः सदा वसति सन्निधौ ।
भोजने चैव दाने च वर्जनीयो न सत्तमैः ॥२३३

अत्यासन्नानधीयानान्ब्राह्मणान्यो व्यतिक्रमेत् ।
भोजने चैव दाने च हिनस्त्यासप्तमं कुलम् ॥२३४

अनृचोऽपि निराचाराः प्रतिवासनिवासिनः ।
अन्यत्र हव्य-कव्याभ्यां भोज्याःस्युरुत्सवादिषु ॥२३५

प्रोक्तप्रतिग्रहाभावे प्राप्तायां बृहदापदि ।
विप्रोऽश्नन्प्रतिगृह्णन्वा यतस्ततोऽपि नाघभाक् ॥२३६

गुर्वादिपोष्यवर्गार्थं देवाद्यर्थं च सर्वतः ।
प्रत्याददाद् द्विजाग्र्यस्तु भृत्यर्थमात्मनोऽपि च ॥२३७

दधि-क्षीरा-ऽऽज्य-मांसानि गन्ध-पुष्पा-ऽम्बु-मत्स्यकान् ।
शय्या-ऽऽसनाशनं शाकं प्रत्याख्येयं न कर्हिचित् ॥२३८

अपि दुष्कृतकर्मभ्यः समादद्यादयाचितम् ।
पतितादिस्तदन्येभ्यः प्रतिग्राह्यमसंशयम् ॥२३६

शक्तः प्रतिग्रहीतुं यो वेदवृत्तस्सुसंवृतम् ।
लभ्यमानं न गृह्णाति स्वर्गस्तस्यालपकं फलम् ॥२४०

प्रतिग्रहमृणं वापि याचितं यो न यच्छति ।
तत्कोटिगुणग्रस्तोऽसौ मृतो दासत्वमृच्छति ॥२४१

दाता च न स्मरेद्दानं प्रतिग्राही न याचते ।
उभौ तौ नरकं यातौ दाता चापि प्रतिग्रही ॥२४२

अपात्रस्य हि यद्दत्तं दानं स्वल्पमपि द्विजाः ।
ग्रहीता तत्क्षणाद्याति भस्मत्वं चाप्यवारितः ॥२४३

वदन्ति कवयः केचिद्दान-प्रतिग्रहौप्रति ।
प्रत्यक्षलिङ्गमेवेह दातृ-याचकयोरतः ॥२४४

दातृहस्तो भवेदूर्ध्वं ग्रहीतुश्च भवेदधः ।
दातृ-याचकयोर्भेदो हस्ताभ्यामेव सूचितः ॥२४५

सून्यादीनां चतुर्णां च यथा निन्दितभूपतेः ।
न विद्वान् प्रतिगृह्णीयात्प्रतिगृह्णन्व्रजत्यधः ॥२४६

दुष्टा दशगुणं पूर्वात् सूनि-चक्र-यथ मद्यकृत् ।
वेश्या निषिद्धनृपतिः प्रतिग्रहे परः क्रमात् ॥२४७

परपाकं वृथा मांसं देवानामपि दूषितम् ।
अनुपाकृतमांसं च नाद्यं च लशुनादिकम् ॥२४८

न भोक्तव्यमभोज्यान्नं कन्द-मूलादिकं च यत् ।
न पातव्यमपेयं च द्विजैरत्यन्तगर्हितम् ॥२४६

सत्यं युक्तं सदा ब्रूयाच्छनैर्धर्मं समाचरेत् ।
यमान्सनियमान्कुर्याद्गार्हस्थ्यं व्रतमाचरन् ॥२५०

मातृ-पितॄनुपाध्यायान् गुरून्विप्रान्सदाऽर्चयेत् ।
एतांच्छ्रेष्ठांस्तथा चान्यान्नित्यं विप्राभिवन्दनम् ॥२५१

दमं सेवेत सततं दानं दद्याच्च सर्वदा ।
दयां च सर्वदा कुर्यात्तद्विना नरकाश्रयः ॥२५२

दाम्यन्स सर्वदाऽऽत्मानं मनो दाम्यं सदा द्विजैः ।
दयध्वमिति चैवैषां श्रुतिर्वाजसनेयिकी ॥२५३

यन्विदं (यत्निधा) कारकं कुर्यात्स्तनयित्नुर्ध्वनिं दिवि ।
ददेद्धेति दमं दानं दयामिति च शिक्षयेत् ॥२५४

रसा रसैः समा ग्राह्या देया अपि च नान्यथा ।
न रसैर्लवणं ग्राह्यं समतो हीनतोऽपि वा ॥२५५

तिला अपि समा देया धान्यैरन्यैर्द्विजातिभिः ।
प्रपीड्या नैव यंत्रेषु ब्रूयुरेतन्मनीषिणः ॥२५६

तिलवत्सर्ववस्तूनि सस्नेहानि द्विजातिभिः ।
अप्रपीड्यानि यंत्रेषु ब्रूयुरेतन्मनीषिणः ॥२५७

विक्रयव्यपदेशेन दुग्ध-दध्यादिसर्पिषाम् ।
शुश्रूष्यान्न तिरस्कुर्यादुपास्यान्नावधीरयेत् ॥२५८

लोभात्कुर्याद्द्विजन्मा यः स तु शूद्रसमस्त्र्यहात् ।
न निन्द्यांश्च समभ्यर्च्यान्न विक्रीणीत गर्हितान् ॥२५६

अदेयानि न वै दद्यादत्याज्यानि न वै त्यजेत् ।
अभाष्यान्नैव भाषेच्च हीनाङ्गाद्यांश्च न क्षिपेत् ।।२६०

न संवदेच्च पित्राद्यैः पतिताद्यैर्न संविशेत् ।
न मतिं नीचवर्णाय दद्यादुच्छिष्टमेव च ।।२६१

मतिं शूद्रस्य यो दद्याद्यश्चैनं पर्युपासते ।
न किञ्चित्तस्य चाख्येयं व्रतादि नियमादिकम् ।।२६२

आचक्षाणस्तु तद्धर्मं नरकाग्नौ प्रपच्यते ।
नाद्यादन्नं निषिद्धस्थं स्वप्याद्वा नार्द्ध रात्रिषु ।।२६३

वेदविद्यावितानानि विक्रीणीत न कर्हिचित् ।
नापत्यानि रसाद्यानि भूवृत्तिं चान्वये सति ।।२६४

नापः पिबेत् स्वपाणिभ्यां न च कण्डूतिकृद्भवेत् ।
विदिक्-प्रत्यगुदग्रस्तु शयीताह्नि न सन्ध्ययोः ।।२६५

पादुकादि च पालाशं न वृक्षादिनिकृन्तनम् ।
नोत्सृज्यं ष्ठीवनाद्यं च कदाचिद्वै गवादिषु ।।२६६

पद्भ्यां स्पृश्यं गवाद्यं नो नोच्छिष्टं न च तद्गतिः ।
न लंघ्यं वत्स-तंत्र्यादि वाय्वग्न्योर्नान्तरा गतिः ।।२६७

न द्वयोर्विप्रयोर्नाम्न्योः सौरभेय्योः पति-स्त्रियोः ।
विप्राग्न्योर्विप्रपिण्डानां नोग्रोक्षणोर्विष्णु-तार्क्ष्ययोः ।।२६८

सौरभेयोर्जलाग्न्योश्च माहेयी-जलयोरपि ।
भानु-व्योमादिकानां तु न कुर्यादन्तरा गतिम् ।।२६९

भोजनादिषु नासक्तां पश्येन्न विगतांशुकाम् ।
न गच्छेत्स्त्रीं रजोयुक्तां न चाश्नीयात्तया सह ।
न गच्छेत्स्त्रीं रोगयुक्तां प्रसुप्यान्न तया सह ।।२७०

उत्तरीयं विना नैव न नग्नो ऽधः शयीत च ।
न गेहे चैव मार्गादौ न निषिद्धककुन्मुखः ॥२७१

नोपगङ्गं सुरार्चादि न च विष्ठागृहान्तिके ।
अतिकालातियाने च शुभमिच्छन्विवर्जयेत् ॥२७२

ज्येष्ठेन्द्रचाप-भद्राद्या मूलनाम्ना न निर्दिशेत् ।
इन्द्रचापं धयन्ती गौर्न ख्यातव्ये परस्य ते ॥२७३

वर्जयेद्धावनं चैव पादयोः कांस्यभाजने ।
पैशुन्यं मर्मभेदं च न वदेन्म्लेच्छभाषितम् ॥२७४

प्राकृतं च कुशास्त्राणि पाषण्डं हैतुकानि च ।
न श्रोतव्यानि विप्रेण यातनाकारणानि च ॥२७५

न करं मस्तके दद्यान्मस्तकं न करे तथा ।
न जानुनोः शिरो धार्यं नाऽप्रावृतशिरा भ्रमेत् ॥२७६

वैणाश्च बद्धाश्च कदर्यचोराः
क्लीबाभिशस्ता गणिका तु या च ।
यो वृद्धजीवी गणदीक्षका ये
तेषां न भोज्यं ह्यशनं द्विजातैः ॥२७७

क्रूरातुरा वृद्ध-चिकित्सकाश्च
या पुंश्चली यौ च विरोधि शत्रू ।
व्रात्योग्रमत्ता अबलाजिताश्च
अग्राह्यमेषामशनं द्विजस्य ॥२७८

ये दाम्भिका ये च सुवर्णकारा
उच्छिष्टभोजी पतितश्च यश्च ।

ये पुत्रभार्या बहुयाजका ये
विप्रेण चैषां न हि भोज्यमन्नम् ।।२७९

ये सोम शस्त्रास्त्र कृताम्बु तक्र-
क्षीराज्य मांसं लवणाजिनानि ।
क्षौमानि लाक्षा च तिलान्फलानि
विक्रेयुरेषामशनं न भोज्यम् ।।२८०

जीवन्ति वृत्या रसदानपानां
कर्मारका येऽपि च तन्तुवायाः ।
राजा नृशंसो रजकः कृतघ्नो
भोज्याशना नैव विहिंसकाश्च ।।२८१

ये चैलधावाश्च सुराकृतो ये
पैशून्यवाचो ह्यनृतंवदाश्च ।
ये बन्दिनो येऽपि च चाक्रिकाश्च
विप्रस्य चैतेऽपि न भोज्यसस्याः ।।२८२

मध्वासव मधूच्छिष्ट दधि क्षीर रसौदनान् ।
मनुष्योपल धूपांश्च कुश मृत्पुष्प वीरुधः ।।२८३

कौशेय केश कुतपान्नीरं विषरसांस्तथा ।
शाकैकशफ पिण्याक गन्धानौषधिमूलकाः ।।२८४

विक्रीणन्ति य एतानि वस्तूनि मनुजाधमाः ।
तेषामन्नं न भोक्तव्यं तथोपपतिवेश्मनः ।।२८५

योऽपचस्य कदर्यस्य भुञ्जीतान्नं द्विजाधमः ।
तत्क्षणाच्छूद्रवत्स स्यान्मृतो विट्शूकरो भवेत् ।।२८६

योऽन्नं वार्द्धुषिकस्याद्यादजापालादिकस्य च।
अन्यस्यापि निषिद्धस्य सोऽनन्तं नरकं व्रजेत् ॥२८७

पाणिगृहीतभार्यायां सत्यां यस्तु नराधमः।
शूद्रीहस्तेन भुञ्जीत पतितः स सदैव तु ॥२८८

त्यक्ता येनोढभार्या तु त्यक्तः स पितृ दैवतैः।
त्यक्तो देवैः स पापीयांच्छूद्रादप्यधमः स्मृतः ॥२८९

यः शूद्रीं भजते नित्यं शूद्री तु गृहमेधिनी।
वर्जितः पितृदेवैस्तु रौरवं यात्यसौ द्विजः ॥२९०

यः शूद्र्यां च स्वयं जातो ह्यन्यस्यां सोऽपि वै पुनः।
अन्यस्यां च पुनः सोऽपि किमस्य प्रेत्य चिन्तनम् ॥२९१

सर्वान् भुञ्जीत नरकान्त्रिंशतिं त्वेकवर्जितान्।
रौरवादीन्क्रमेणैव पापिष्ठो यावदम्बरम् ॥२९२

हेमन्तशिशिरत्वोंश्च प्रोष्ठपद्याः परस्य च।
पञ्चस्वपरपक्षेषु कार्याः साग्निभिरष्टकाः ॥२९३

हेमन्ते शिशिरे चैका एकैकाथ तथा परा।
प्रोष्ठपद्यां द्विजास्तिस्रो ह्यष्टका इति केचन ॥२९४

दर्शश्च पौर्णमासश्च तथैवाऽऽग्रयणद्वयम्।
चातुर्मास्यव्रतान्येव कार्याणि साग्निकैर्द्विजैः ॥२९५

अनूचानकृतं कुर्युः सदैव व्रतचारिणः।
अनूचानकुले जाताः सदैव व्रतचारिणः।
अग्निहोत्ररता नित्यं माता पित्रादिपूजकाः ॥२९६

प्रतिग्रहनिवृत्ताश्च जप होमपरायणाः।
वृत्तवन्तश्च ये विप्राः स्नातकास्ते प्रकीर्तिताः ॥२९७
सङ्क्रान्तिरर्कवारश्च व्यतीपातो युगादयः।
शुभर्क्ष-दिन-योगेषु कार्याः साग्निभिरष्टकाः ॥२९८
न शूद्राद्भिक्षितेनैतत्कर्तव्यं मर्म सद्द्विजैः।
चण्डालत्वमवाप्नोति यज्ञार्थं शूद्रयाचकः ॥२९९
लब्धं यज्ञाय यो विप्रो न दद्याद्यज्ञकर्मणि।
स वायसोऽथ वा गृध्रः काको वाऽथ प्रजायते ॥३००
शिलोंच्छवृत्तिर्विप्रः स्यादथ वैकाहिकाशनः।
त्र्यहाहिकाशनो वास्यात् कुम्भीकुशूलधान्यकः ॥३०१
पूर्वपूर्वतरः श्रेयान् तेषां सद्भिः प्रकीर्तितः।
सोमपः स्यात् त्रिवर्षान्नस्तत्पूर्वकृतसम्प्राशनः ॥३०२
सोमेष्टिं पशुयज्ञं च कुर्वीत प्रतिवासरम्।
इष्टिर्वैश्वानरी या तु कर्तव्यैतदसम्भवे ॥३०३
सत्यामर्थस्य सम्पत्तौ न कुर्याद्धीनदक्षिणम्।
तत्कृतं च भवेद्व्यर्थं प्राप्नुयात्पशुयोनिताम् ॥३०४
श्रद्धापूतं प्रदातव्यं पात्रे दानं समर्चितम्।
याचिऽतेऽपि हि दातव्यं पूतं च श्रद्धया धनम् ॥३०५
शूद्रान्नं ब्राह्मणोऽश्नन्वै मासं मासार्धमेव च।
तद्योनावेव जायेत सत्यमेतद्विदुर्बुधाः ॥३०६
आशूदरस्थशूद्रान्नो मृतः श्वाचोपजायते।
द्वादशं दश वाष्टौ च गृध्र शूकर पुल्कसाः ॥३०७

उदरस्थितशूद्रान्नो ह्यधीयानोऽपि नित्यशः।
जुह्वन्वापि जपन्वापि गतिमूर्ध्वां न विन्दति ॥३०८

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम्।
वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं स्मृतम् ॥३०९

आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते।
तस्मादामं च पक्वं च शूद्रस्य परिवर्जयेत् ॥३१०

तस्माच्छूद्रं न भिक्षेरन्यज्ञार्थं सद्द्विजातयः।
श्मशानमेव यच्छूद्रस्तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥३११

कणानामथ वा भिक्षां कुर्याच्चेद्वृत्तिकर्शितः।
सच्छूद्राणां गृहे कुर्वन्न तत्पापेन लिप्यते ॥३१२

विशुद्धान्वयसञ्जातो निवृत्तो मांस-मद्यतः।
द्विजभक्तिर्वणिग्वृत्तिस्सच्छूद्रः सम्प्रकीर्तितः ॥३१३

उदक्यास्पृष्टसङ्घुष्टं वाङ्क्लिं वाप्युदक्यया।
श्वस्पृष्टं शकुनोत्सृष्टं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥३१४

उच्छिष्टं च पदास्पृष्टं-शुक्लं च पतितेक्षितम्।
पर्युषितं चिरस्थं च केश-कीटाद्युपाहतम् ॥३१५

पङ्क्त्युच्छिष्टं गवाघ्रातं प्रयत्नेन विवर्जयेत्।
नाश्नीरन्नेतदशनं शमिच्छन्तो द्विजातयः ॥३१६

शूद्राणामपि भोज्यान्नाःस्युःसीरि-नापितादयः।
सस्नेहमशनं भोज्यं चिरस्थमपि यद्भवेत् ॥३१७

अनाक्ता अपि भोज्याः स्युः सद्यःश्रितयवादयः।
गर्भिण्यवत्ससूतिक्या गवादेर्वर्जयेत्पयः ॥३१८

स्त्रीणामेकशफोष्ट्रीणां तथारण्यकमाविकम्।
प्रसूता ब्राह्मणी गौश्च महिष्योजास्तथैव च ॥३१६

दशरात्रेण शुद्ध्यन्ति भूमिसस्यं नवं पयः।
शाकादिकं च विट्जातं कवकानि च वर्जयेत् ॥३२०

मांसं कीटादिभिर्जुष्टं प्रयत्नेन विवर्जयेत्।
ये वयः क्रव्यमश्नन्ति तथा विष्ठाभुजश्च ये ॥३२१

शुक-टिट्टिभ-दात्यूहाः कपोत-पिक-सारिकाः।
सेधाद्यांश्च पञ्चनखान् सिंहाद्यान्मत्स्यकांस्तथा ॥३२२

धर्मशास्त्रोदितानद्यात्सर्वाकारांश्च वर्जयेत्।
भक्ष्यं प्राणात्यये मांसं श्राद्ध-यज्ञोत्सवेष्वपि ॥३२३

कृत्वा च विधिवच्छ्राद्धं पश्चात्तत् स्वयमश्नुते।
नाद्यादविधिना मांसं मृत्युकालेऽपि धर्मवित् ॥३२४

यदैवाऽव्ययसम्पत्तिस्तदैवामन्त्रयेद् द्विजान्।
यत्र वा तत्र वा काले नाद्यं त्वविधिनाऽऽमिषम् ॥३२५

भक्षयन्नरके तिष्ठेत्पशुलोमसमाः समाः।
गृहस्थोऽपि हि यो नाद्यात्पिशितं तु कदा च न ॥३२६

स साक्षान्मुनिभिः प्रोक्तो योगी च ब्रह्मलोकगः।
न स्वयं च पशुं हन्याच्छ्राद्धकालेऽप्युपस्थिते ॥३२७

क्रव्यादैः सारमेयाद्यैर्हतं मृगादिमाहरेत्।
एतच्छाकवदिच्छन्ति पवित्रं द्विजसत्तमाः ॥३२८

समर्थो यस्य यस्तु स्यादन्नं दत्वातु देहिनाम्।
सतामिति निरातङ्को लोकदृष्टं निगद्यते ॥३२६

अन्नादेरपि भक्ष्यस्य स्नेह मद्या ऽऽमिषस्य च।
महाफला निवृत्तिःस्यात्प्रवृत्तिः स्वर्गसाधना ॥३३०
एकोऽब्दशतमश्वेन यजेत पशुना द्विजः।
नान्यस्तु मांसमश्नाति स्वर्गप्राप्तिस्तयोः समाः ॥३३१
हेमराजत-शङ्खानां पात्राणां वैणवस्य च।
चर्मणो रज्जुवस्त्राणां शुद्धिर्जायेत वारिणा ॥३३२
स्फ्यादीनां यज्ञपात्राणां धन्यानां वाससामपि।
अन्येषां चयरूपाणां प्रोक्षणात् शुद्धिरिष्यते ॥३३३
मार्जनान्मखपात्राणां हस्तेन मखकर्मणि ॥
अम्भोजपत्रकैरुष्णैः शुद्ध्यतः कौशिकाविके ॥३३४
श्रीफलैरंशुपट्टानां सारिष्टैः कुतपस्य च।
मृण्मयानि पुनः पाकैः क्षौमाणि सितसर्षपैः ॥३३५
शुद्ध्येत कारुहस्तस्थं पण्यं यत्स्यात्प्रसारितम्।
भैक्ष्यं च प्रोक्षणाच्छुद्धेत्स्पृष्टिः साक्षान्न यस्य तु ॥३३६
स्त्रीमुखं च सदा शुद्धं भूमिर्लेपविवर्जिता।
अपरा दहनाद्यैश्च गृहं मार्जन-लेपनैः ॥३३७
द्रवद्रव्याणि शुद्ध्यन्ति वह्निना प्लावनेन च।
क्रव्यादाद्यैर्हतं मासं सर्वदा शुचि कीर्तितम् ॥३३८
तृप्तिकृत्सौरभेयाश्च स्वभावस्थं महीगतम्।
वदन्ति सूरयो वारि पवित्रमिव सर्वदा ॥३३९
गौर्वह्नि-भानवच्छाया जलमश्वं वसुन्धरा।
विप्रुषो मक्षिका वायुर्न दुष्यन्ति कदा च न ॥३४०

शुचिः प्रस्थापने वत्सो अजाश्वौ मुखतस्तथा ।
शुचिः प्रस्रवणे वत्सस्तथाजाश्वौ मुखे शुची ।
न तु गौर्मुखतो मेध्या न च गोमुखजा मलाः ॥३४१
सोम-भास्करयोर्भाभिः पथशुद्धिः प्रकीर्तिता ।
ओष्ठाधरौ श्मश्रुकरौ सस्नेहौ भोजनादनु ॥३४२
नदुष्येच्छक्तिजः प्राह बाल-वृद्धौस्त्रियोमुखम् ॥३४३
स्नात्वा पीत्वा च भुक्त्वा च सुप्त्वा तप्त्वा तथैव च ।
गत्वा रथ्यादिके चैव शुद्धिराचमनेन तु ॥३४४
नापो मूत्र-पुरीषाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा ।
न स्त्री दुष्यति जारेण न विप्रो वेदकर्मणा ॥३४५

पद्माश्मलोहाः फल-काष्ठ-चर्म-
भाण्डस्थतोयैः स्वयमेव शौचात् ।
पुंसां निशास्वध्वनि चाऽसखानां
स्त्रीणां च शुद्धिर्विहिता सदापि ॥३४६

नभसः पंचदश्यां तु पंचम्यां च तथाऽपरे ।
नभस्यस्य चतुर्दश्यामुपाकर्म यथोदितम् ॥३४७
तद्विदः केचिदिच्छन्ति नभसः श्रवणेन तु ।
हस्तेन वाथ पञ्चम्यामध्यायानां वदन्ति तत् ॥३४८
यच्छाखयोपनीतः स्यात् ब्रह्मचारी द्विजोत्तमः ।
तच्छाखाविहितं तस्य उपाकर्मादि कीर्त्यते ॥३४९
अतो वेदाधिकारित्वं वेदपाठस्य कीर्तने ।
अनुपाकृतविप्रादेर्वेदाध्ययनदुष्कृतम् ॥३५०

मुञ्जोपवीताजिनदण्डकाष्ठं त्याज्यं न तत्स्याद्व्रतचारिणापि ।
अक्लिष्टमेको व्रतलोपपापं संस्कारमन्यं पुनरर्हयेयुः ॥३५१

ओषधीनां तु सद्भावे स्वशाखाविहितं तु यत् ।
रोहिण्यां च सहस्तस्य उपाकर्माणि कुर्वते ॥३५२

न भवेदनुपाकर्मा ब्राह्मणः स्नातको व्रती ।
कर्मच्युतो भवेद्व्रात्यो व्रात्यानिष्कृतिकृच्छुचिः ॥३५३

अथाऽतः स्यादनध्यायो मृतगुर्वादिषु त्र्यहम् ।
मित्रकादिष्वहोरात्रमधीत्यारण्यकः शुचिः ॥३५४

अष्टकासु तथाष्टम्यां पूर्णिमास्यां शशिक्षये ।
मन्वादौ युगपक्षादाविंद्रचापोच्छ्रयेषु च ॥३५५

चातुर्मास्ये द्वितीयायां चतुर्दश्यामहर्निशम् ।
अहो रात्रे नृपे संस्थे व्रतिनि श्रोत्रिये यतौ ॥३५६

अत्र त्र्यहमनध्यायमिच्छन्ति चापरे द्वयम् ।
अशौचे सूतकान्ते च यावच्छुद्धिस्तयोर्भवेत् ॥३५७

देशान्तरगते प्रेते श्रुतेऽपि स्यादहर्निशम् ।
गुर्वादौ वा नृपत्यादौ इतिवासिष्ठजोऽब्रवीत् ।
प्रतिगृह्य त्वहोरात्रं भुक्त्वा श्राद्धिकमेव च ।
तज्ज्ञा ब्रूयुरनध्यायानृतुसन्धावहर्निशम् ॥३५८

पश्चाद्यैरन्तरायातैरहोरात्रं विदुर्बुधाः ।
अकालगर्जिते वृष्टावग्निदाहे च सप्त सा ॥३६०

सामेषु दुःखितानां च स्वरादीनां च निःस्वने ।
पतित-श्याव-शूद्रा-न्त्यसन्निधाने न कीर्तयेत् ॥३६१

आत्मन्यशुचि देशे तु विद्युत्स्तनितरोहिते ।
मृधे च कलहे देशविप्लवे लोकविग्रहे ॥३६२

पांशुवर्षेऽम्बुमध्ये च दिग्दाह-ग्रामदाहयोः ।
नीहारे च भवेद्विद्वान्सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥३६३

धावंश्च न पठेद्विद्वान्पूतिगन्धस्तथैव च ।
विशिष्टे चागते गेहे गात्रासृङ्निर्गमे तथा ॥३६४

भोजनायोपविष्टस्य ह्युत्थितस्यार्द्रपाणिनः ।
वान्तेऽऽचान्ते तथाऽजीर्णे महारात्रेऽतिमारुते ॥३६५

रजोवृष्टौ च यानादौ आरूढस्य तथा द्विजः ।
एतानन्यांश्च तत्कालाननध्यायान्विदुर्बुधाः ॥३६६

यो वर्जयेदनध्यायान्वेदाध्ययनकृद्द्विजः ।
भवन्ति तस्य सफला वेदाः प्रोक्ताः फलप्रदाः ॥३६७

ये चैतेषु पठंत्यज्ञाः पाठलोभेन लोभिताः ।
न शाश्वता भवेद्विद्या निष्फला चैव जायते ॥३६८

यः पठेद्विधिवद्वेदान् व्रती चेन्द्रियसंयमी ।
ब्रह्मत्वमिह लोकेऽपि ऐश्वर्यसुखभाग्भवेत् ॥३६९

जनानां शृण्वतां मार्गे गच्छन्यस्तु पठेद्द्विजः ।
निष्फलास्तस्य वेदाश्च वेदविप्लवदोषभाक् ॥३७०

यः पठेत्स्वरहीनं तु लक्षणेन विवर्जितम् ।
सङ्कीर्णग्राममध्ये तु स भवेद्वेदविप्लवी ॥३७१

ये स्वाध्यायमधीयीरन् अनध्यायेषु लोभतः ।
वज्ररूपेण ते मन्त्रास्तेषां देहे व्यवस्थिताः ॥३७२

नाक्रामेदमरादीनां च्छायां च परयोषिताम् ।
वान्त-ष्ठीवन-विण्मूत्र-कार्पासा-ऽस्थि-कपालिकाः ॥३७३

नावज्ञेयाः कदापि स्युर्नृप-विप्रोरगादयः ।
श्रियं कामं समाकांक्षेन्न स्पृशेन्मर्म कस्यचित् ॥२७४

नित्यं वर्तेत चाजस्रं धर्मार्थौ च सदाऽर्जयेत् ।
न कञ्चित्ताडयेद्धीमान्सुतं शिष्यं च ताडयेत् ।
ताडयेन्नाभितोऽधस्तान्न तानन्यत्र ताडयेत् ॥३७५

आचारेण सदा विद्वान्वर्तेत यो जितेंद्रियः ।
स ब्रह्मपरमाप्नोति वरेण्योऽमुत्र चेह च ॥२७६

आचारमूलं श्रुतिशास्त्रवित्तम्
आचारशाखाश्च तदुक्तकृत्यम् ।
आचारपर्णानि हि तन्नियोग
आचारपुष्पाणि यशोधनानि ॥३७७

आचारवृक्षस्य फलं हि नाकस्तस्माच्च सुस्वादुरसश्च मुक्तिः ।
तस्मादनन्तं फलदं तु तत्वमाचारमेवाश्रय यत्नपूर्वम् ॥३७८

ये धर्मशास्त्रे विहिताश्च केचिद्धर्मा द्विजाग्र्योरपि ते च सर्वे ।
यत्नेन कार्याः पितृ-देवभक्तैः श्राद्धानि कार्याण्यथ तानि वक्ष्ये ३७९

यत्नेन धर्मो गृहमेधिविप्रैः प्रीतेन वाचा वपुषा च कार्यः ।
आयुःप्रजा श्रीर्भुवि पूजितत्वं तस्माल्लभन्ते दिवि देवभोगान्३८०

इति श्रीबृहत्पराशीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां
धर्मस्मृत्यां षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥

—❀—

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ श्राद्धवर्णनम् ।

श्राद्धं वृद्धावचन्द्रेभच्छाया-ग्रहण-सङ्क्रमे ।
व्यतीपात-विषुवत्कृष्णपक्ष-पात्रार्थलब्धिषु ॥१

अष्टका ह्ययने द्वे च श्राद्धम्प्रति यदा रुचिः ।
पुण्य श्राद्धस्य कालोऽयमृषिभिः परिकीर्तितः ॥२

युगादिषु च कर्तव्यं मन्वन्तरादिकेऽपि च ।
श्राद्धकालो ह्ययं प्रोक्तो मन्वाद्यैर्धर्मकर्तृभिः ॥३

नवान्ने नवतोये च नवच्छन्ने तथा गृहे ।
नावैक्षवेषु चेहन्ते पितरो हि मघास्विव ॥४

काणः पौनर्भवो रोगी पिशुनो वृद्धिजीविकः ।
कृतघ्नो मत्सरो क्रूरो मित्रध्रुक् कुनखी गदी ॥५

विद्धप्रजननःश्वित्रि-श्यावदन्तावकीर्णिनः ।
हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो विक्लवः परनिन्दकः ॥६

क्लीवा-ऽभिशस्त-वाग्दुष्ट-भृतकाध्यापकास्तथा ।
कन्यादूषी वणिग्वृत्तिर्विनाग्निः सोमविक्रयी ॥७

भार्याजितोऽनपत्यश्च कुण्डाशी कुण्डगोलकः ।
पित्रादित्यागकृत्स्तेनो वृषलीपति-तर्जकौ ॥८

अनुक्तवृत्तिस्त्वज्ञातः परपूर्वापतिस्तथा ।
अजापालो माहिषिकः कर्मदुष्टाश्च निन्दिताः ॥९

यो ऽसत्प्रतिग्रहग्राही यश्च नित्यं प्रतिग्रही ।
ग्रहसूचक-दूतौ च पितृश्राद्धेषु वर्जिताः ॥१०
एकादशाहे भुञ्जन्तः शूद्रान्नरससंयुताः ।
गुरुतल्पगो ब्रह्मघ्नो यस्य चोपपतिर्गृहे ॥११
प्रेतस्पृक् तैलनिर्णेक्ता बहुयाजक-याचकौ ।
बक-काकविडाला-ऽश्व-शूद्रवृत्तिश्च गर्हितः ॥१२
वाग्दुष्ट-बालदम्भकौ नित्यमप्रियवाक् च यः ।
आसक्तो द्यूतकामादावतिवाक् चैव दूषितः ॥१३
निराचारश्च ये विप्राः पितृ-मातृविवर्जिताः ।
विद्वांसोऽपि हि नाभ्यर्च्याः पितृश्राद्धेषु सत्तमैः ॥१४
न वेदैः केवलैर्वापि तपसा केवलेन वा ।
सद्वृत्तैरेव सा प्रोक्ता पात्रता ब्राह्मणस्य च ॥१५
यत्र वेदास्तपो यत्र यत्र वृत्तं द्विजाग्रगे ।
पितृश्राद्धेषु तं यत्नाद्विद्वान्विप्रं समर्चयेत् ॥१६
वेदशास्त्रार्थविच्छान्तः शुचिर्धर्ममनाः सदा ।
गायत्रीब्रह्मचिन्ताकृत्पितृश्राद्धेषु पावनः ॥१७
रथन्तरं बृहज्ज्येष्ठसामवित्त्रिसुपर्णकः ।
त्रिमधुश्चापि यो विप्रः पितृश्राद्धेषु पूजितः ॥१८
मातामहश्च दौहित्रो भागिनेयोऽथ मातुलः ।
मातृस्वस्रेयतज्जश्च तथा मातुलजोऽपि वा ॥१९
जामाता श्वशुरो बन्धुर्भार्याभ्राता च तत्सुतः ।
सुवृत्ताश्च सदाचाराश्चैते श्राद्धेषु पावनाः ॥२०

ऋत्विग्गुरुरुपाध्याय आचार्यः श्रोत्रियोऽपरः।
एते श्राद्धेषु वै पूज्याः ज्ञाति-सम्बन्धि-बान्धवाः ॥२१

अग्निहोत्री च यो विप्र आवसथ्याग्निकोऽपि च।
पितृ-मातृपरावेतौ भोक्तव्यौ हव्य-कव्ययोः ॥२२

कृष्येकवृत्तिजीवी यो भक्तो मात्रादिकेषु च।
षट्कर्मनिरतः पूज्यो हव्य-कव्ये सदैव हि ॥२३

क्षत्रवृत्तिः सदाचारो मात्रादिभक्तितत्परः।
शुचिः षट्कर्मयुक्तश्च हव्य-कव्येषु पूजितः ॥२४

युगानुरूपतो यस्तु विद्याचारदिसंयुतः।
स पूज्योऽनभिशस्तश्च षट्कर्मनिरतो द्विजः ॥२५

इत्युक्तगुणसम्पन्नान्ब्रह्मणान्पूर्ववासरे।
निमन्त्रयेत तान् भक्त्या नियोगाख्यानपूर्वकम् ॥२६

सव्येन देवतार्थं तु पित्रर्थमपसव्यवान्।
ततस्तैश्चरितव्यं स्यादुक्तं पितृव्रतं द्विजैः ॥२७

जितेन्द्रियैस्तु भाव्यं स्यादहोरात्रमतन्द्रितैः।
तस्मिन्नहनि प्रातर्वा यत्र श्राद्धमुपस्थितम् ॥२८

निमन्त्रयेत तान्भक्तया तैश्च भाव्यं जितेन्द्रियैः।
विप्रोरः-पार्श्व-पृष्ठस्थाः पितृ-मातामहादयः ॥२९

भुञ्जन्ति क्रमशः श्राद्धे तथा पिण्डाशिनोऽपि च।
निमन्त्रितो द्विजः श्राद्धे न शयीत स्त्रियासह ॥३०

अध्वानं न तु वै यायान्न ब्रूयादनृतं वचः।
नाधीयीत दिवा स्वापं न कुर्वीत न संवदेत् ॥३१

न म्लेच्छ-पतितैः सार्धं न वदेच्च निषिद्धकम् ॥
प्राङ्मुखौ दैविकौ विप्रौ विप्रास्त्रय उदङ्मुखाः ॥३२

एकैको वोभयत्र स्यादसम्पत्ताविति क्रमः।
पात्रं वा दैविकं कृत्वा विप्र एकस्तु पैतृके ॥३३

इति वा निर्वपेच्छ्राद्धं निर्धनश्चान्यदाचरेत्।
गत्वारण्यममानुष्यमूर्ध्ववाहुर्विरौत्यदः ॥३४

निरन्नो निर्धनो देवाः पितरो माऽनृणं कृथाः।

न मेऽस्ति वित्तं न गृहं न भार्या
श्राद्धं कथं वः पितरः करोमि।
वने प्रविश्येह रुतं मयोच्चैर्
भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥३५

श्राद्धर्णमेतद्भवतां प्रदत्तं
मह्यं दयध्वं पितृदेवताद्याः।
आख्याय चोत्क्षिप्य भुजावितस्ततो
दिवा च रात्रिं समुपोष्य तिष्ठेत् ॥३६

भवेन्नरस्तेन कृतेन तेषा-
मृणेन मुक्तः पितृदेवतानाम्।
निर्वित्त-निर्भाग्य-निराश्रयाणां
श्राद्धस्य मार्गः कथितो मुनींद्रैः ॥३७

मयाऽऽख्यातं रुदित्वा वः पितरः श्राद्धदेवताः।
श्राद्धर्णस्य विमुक्तोऽहं महिताः पितरो मया ॥३८

कृतोपवासस्तत्राह्नि श्राद्धर्णान्मुच्यते द्विजः ।
एतच्चापि न यः कुर्यात्पितरस्तेन वै हताः ॥३९
सम्पत्तावर्थ-पात्राणामेकैकस्य त्रयस्त्रयः ।
पित्रादेर्ब्राह्मणाः प्रोक्ताश्चत्वारो वैश्वदैविके ॥४०
द्वौ वापि दैविके विप्रौ चैकैको वा न दोषभाक् ।
स्यान्मातामहिकेऽप्येवमेकोऽपि वैश्वदैविके ॥४१
नत्वैवैकं तु सर्वेषामाश्वलायनमतस्थितः ।
पितॄणामर्चयेद्विप्रमत्रपिण्डा निदर्शनम् ॥४२
न मातामहिकं श्राद्धं श्रौतमुक्तं तु साग्निकैः ।
अनग्निकस्तु तत्कुर्यादिति केचिन्मतं विदुः ॥४३
साग्निकैरपि कार्यं स्याच्छ्राद्धं मातामहं द्विजैः ।
षट्दैवत्यमिति ह्येके एके तु पार्वणद्वयम् ॥४४
अपुत्रस्य पितृव्यस्य तत्पुत्रैर्भ्रातृजो भवेत् ।
स एव तस्य कुर्वीत पिण्डदानोदकक्रियाः ॥४५
पार्वणं तेन कार्यं स्यात्पुत्रवद्भ्रातृजेन तु ।
पितृस्थानेषु तं कृत्वा शेषं पूर्ववदुच्चरेत् ॥४६
श्राद्धं पत्यापि कार्यं स्यादपुत्रायास्तु योषितः ।
तस्यापि हि तया कार्यमेकत्वं हि तयोर्यतः ॥४७
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य कुर्वीत ज्येष्ठो भ्राताऽनुजस्य च ।
दैवहीनं तु तत्कुर्यादिति धर्मविदो विदुः ॥४८
पितुः पुत्रेण कर्तव्या पिण्डदानोदकक्रिया ॥
पुत्राभावे तु पुत्री च तदभावे सहोदरः ॥४९

मित्रादीनां च कर्तव्यं समीहन्ते यतोऽप्यमी ।
नावज्ञेयास्तु ते सर्वे कृते तु स्यान्महाफलम् ॥५०
पितामहस्तदन्यो वा यस्य जीवन् भवेद्द्विजः ।
प्रत्यक्षास्तेऽपि वै पूज्याः संस्थित्यर्थं यतश्च तत् ॥५१
विद्यमानत्रयाणां स्यात्प्रत्यक्षः पूज्य एव सः ।
गौतमस्य मतं ह्येतदिति वासिष्ठजोऽब्रवीत् ५२
विद्यमाने तु पितरि श्राद्धं कर्तुमुपस्थितः ।
पितृवत्पितृपित्रादेः कुर्याच्छ्राद्धमसंशयम् ॥५३
पुत्रिकायाः सुतः श्राद्धं निर्वपेन्मातुरेव सः ।
तत्पितुर्निर्वपत्यस्मात्तृतीयं तु पितुःपितुः ॥ ५४
अत एव द्विजः पुत्रीमुद्वहेन्न कथं च न ।
उद्वोढुः पुत्रः पुत्रोऽसौ पुत्रोऽसौ मातुरेव हि ॥५५
पुत्रश्च दुहितुःपुत्रः समौ तौ धार्मिके पथि ।
अर्थाहृतौ च विप्रोक्तौ तुल्यौ तौ शक्तिजोऽब्रवीत् ॥५६
मुख्यं यथा पितुःश्राद्धं तथा मातामहस्य च ।
पुत्र-दौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते ॥५७
दौहित्रः पावनः श्राद्धे कालस्तु कुतपस्तथा ।
तथा कृष्णास्तिला विद्धन्निति शास्त्रविदो विदुः ॥५८
काम्यमाभ्युदयं चैव द्विविधं पार्वणं स्मृतम् ।
यथाकामं तु काम्यं स्याद्वृद्धावभ्युदये स्मृतम् ॥५९
क्षत्रियायां तु यो जातो वैश्यायां च तथा सुतः ।
ब्राह्मणस्य पितुस्तौ तु निर्वपेतां द्विजाग्र्यवत् ॥६०

क्षत्रियस्य सुतश्चैव तथा वैश्यसुतोऽपि च ।
शृतान्नेन द्विजांस्तर्प्य श्राद्धद्वयं च निर्वपेत् ॥६१

आमान्नेन तु शूद्रस्य तूष्णीं च द्विजपूजनम् ।
कृत्वा श्राद्धं तु निर्वाप्य सजातीनाशयेत्तथा ॥६२

यः शूद्रो भोजयेद्विप्रांच्छृतपाकाशनेन तु ।
स तद्विप्रकृतैनोभिर्लिप्यते शक्तिजोऽब्रवीत् ॥६३

शूद्रपाकं द्विजेभ्यश्च विभवान्धो ददाति यः ।
कृमी भवति पाताले स युगानेकविंशतिम् ॥६४

भोजितेन तु विप्रेण यत्पापं तस्य जायते ।
तेनासौ लिप्यते मूढो यः शूद्रो भोजयेद् द्विजान् ॥६५

योऽहंमन्यो द्विजाग्र्यांस्तु शूद्रश्रितेन भोजयेत् ।
स गच्छेन्नरकं घोरं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥६६

यत्किंचित्किल्बिषं विप्रे कृतपूर्वं तु तिष्ठतिं ।
तेनासौ लिप्यते पापी यः शूद्रो भोजयेद् द्विजान् ॥६७

शूद्रोच्छिष्टं तु यो भुङ्क्ते मतिपूर्वं द्विजाधमः ।
कृमित्वं याति विष्ठायां युगानि ह्येकविंशतिः ॥६८

शूद्रोच्छिष्टं तु यो भुङ्क्ते पञ्चाहानि द्विजाधमः ।
स तद्विष्ठाकृमित्वं तु प्राप्नोति हि शतं समाः ॥६९

अतो न भोजयेद्विप्रान्निर्वपेन्नैव पूजयेत् ।
शूद्रान्नं भोजनाद्युक्तं इति पाराशरोऽब्रवीत् ॥७०

न भोजयेत् स्त्रियं श्राद्धे यद्यपि व्रतचारिणीम् ।
पात्रं तस्यै समर्प्यं स्यादिति धर्मविदब्रवीत् ।
द्विजन्मानो न कुर्वीरंच्छ्राद्धमामाशनेन तु ॥७१

यदैव स्युः प्रवासस्था भार्या यत्र न सन्निधौ।
व्यवधानेन भार्याया ग्रहणे पुत्रजन्मनि।
कुर्यादामाशनश्राद्धमिति पाराशरोऽब्रवीत्॥७२
अग्नौकरणपिण्डांश्च कुर्यादामाशनेन तु।
सतिलैर्दधिमध्वाज्यसम्पृक्तैः सक्तुशैरपि॥७३
यवाद्यं संस्कृतान्नेन द्रव्यं वापि च निर्वपेत्।
जलेन पयसा वापि न स्याद्श्राद्धकृद्यथा॥७४
आमान्नेन द्विजैः कार्यं न कदाचिदपि द्विजाः।
श्रपयित्वा द्विजौकस्सु तथापि पाकमाश्रयेत्॥७४
न कुर्यात्परपाकेन नैकपाकेन तु द्वयम्।
नैकश्राद्धे द्वयं कुर्यान्न च कुर्यात्परान्नभुक्॥७५
पित्रादीनां सगोत्रा ये तथा मातामहस्य च।
तेषामेकेन पाकेन कार्यं पिण्डविवर्जितम्॥७६
केचित्सापिण्ड्यमिच्छन्ति समगोत्रतयाऽनघ।
अपि मातामहो न स्याद्भिन्नगोत्रतया तथा॥७७
पृथक्कर्तुमशक्यं स्यादर्थ-पात्राद्यसम्भवे।
अवश्यं तत्र कर्तव्यमेकदैवमतः श्रयेत्॥७८
येषां नोद्वाहसंस्कारा ह्यन्यसंस्कार संस्कृताः।
साङ्कल्पिकं भवेत्तेषां श्राद्धं कार्यं मृतेऽहनि॥७६
केचित्सापिण्ड्यमिच्छन्ति ब्रह्मसंस्कारवत्तया।
आद्यो हि ब्रह्मसंस्कारस्तस्मात्पिण्डः प्रदीयते॥८०

पर्वस्वपि निमित्तेषु कर्तव्यं पिण्डसंयुतम् ।
पितॄणां त्रिविधा यस्माद्गतिः प्रोक्ता मुनीश्वरैः ॥८१

वैश्वदेवः सदा कार्यो श्राद्धे च समुपस्थिते ।
पाकशुद्ध्यर्थ मेवैतत्पूर्वमेव विधीयते ॥८२

वैश्वदेवोग्रतश्चैव श्राद्धकाले विशेषतः ।
पाकशुद्धिस्तु विज्ञेया भुक्तोच्छिष्टं तु वर्जयेत् ॥८३

सम्प्राप्ते पार्वणश्राद्धे एकोद्दिष्टे तथैव च ।
अग्रतो वैश्वदेवः स्यात् पश्चादेकादशेऽहनि ॥८४

एकोद्दिष्टे विशेषेण प्रागेव ह्यग्निपूजनम् ।
कालस्तु कुतपस्तस्य रौहणः पार्वणस्य च ॥८५

वामतश्चासनं दद्यात्पितृकार्येषु सत्तमः ।
दैविकं दक्षिणं तद्वदिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥८६

आसने चासनं दद्याद्वामे वा दक्षिणेऽपि वा ।
पितृकार्येषु वामं तु दैवे कर्मणि दक्षिणम् ८७

पितृश्राद्धेषु यो दद्याद्दक्षिणं दर्भमासनम् ।
नाश्नन्ति पितरस्तस्य सार्धानि वत्सराणि षट् ॥८८

तस्माद्वामत एवात्र पितृकर्मणि चासनम् ।
दैविके दक्षिणं तद्वदिति वासिष्ठजोऽब्रवीत् ॥८६

कुत्र काले च कर्तव्यं श्राद्धं तत्पैतृकं प्रभो ! ।
वदस्व निश्चयं तत्र विवदन्त्यपरेऽत्र तु ॥६०

पञ्चदशमुहूर्ताहस्तत्प्रागर्धदिनं स्मृतम् ।
अपरार्धं स्मृता रात्रिस्तन्मध्यः कुतपो मतः ॥६१

यथा यथा च ह्रस्वत्वं पुंसः स्थानेन सम्भवेत् ।
तथा तथा पवित्रः स्यात्कालः श्राद्धार्चनादिषु ॥९२
छायेयं पुरुषस्यैवं तत्पादाधो भवेद्यथा ।
आधानश्राद्धदानादेः स कालोऽक्षयकृत्स्मृतः ॥९३
अयुतं तु मुहूर्तानामर्धं ह्यष्टदशाधिकम् ।
त्रिंशद्भिस्तैरहोरात्रमिति माध्यन्दिनी श्रुतिः ॥९४
मध्याह्ने तु गते सूर्ये न पूर्वे न च पश्चिमे ।
तुल्याग्रसंस्थिते चैव सोष्टमो भाग उच्यते ॥९५
दिवसस्याष्टमे भागे मन्दो भवति भास्करः ।
स कालः कुतपो ज्ञेयस्तत्र दत्तं तु चाक्षयम् ॥९६
मध्याह्नचलितो भानुः किञ्चिन्मन्दगतिर्भवेत् ।
स कालो रोहिणो नाम पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥९७
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रोहिणं तु न लङ्घयेत् ।
अकाले विधिना दत्तं न देव-पितृगामि तत् ॥९८
अब्दवृद्धिर्भवेद्यत्र तत्राऽऽब्दमुभयात्मकम् ।
श्राद्धं तत्र च कुर्वीत मासयोरुभयोरपि ॥९९
नवन्ध्यं दिवसं कुर्यान्मासयोरुभयोरपि ।
पिण्डवर्जमसङ्क्रान्ते सङ्क्रान्ते पिण्डसंयुतः ।
षष्टिभिर्दिवसैर्मासस्त्रिंशद्भिः पक्ष उच्यते ॥१००
संक्रान्तिरहितः पक्षस्तत्र कार्यं विपिण्डिकम् ।
सिनीवाली मतिक्रम्य यदा सङ्क्रमते रविः ।
युक्तः साधारणैर्मासैः स काल उत्तरो भवेत् ॥१०१

सङ्क्रान्तिवर्जितः कालः समलः पापसम्भवः ।
रक्षसां भागधेयोऽसौ उत्सवादिविवर्जितः ॥१०२
तत्र नैमित्तिकं कार्यं श्राद्धं पिण्डविवर्जितम् ।
नित्यं तु सततं कार्यमिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥१०३
अहोभिर्गुणितैर्यत्स्यात्तत्कार्यं यत्र सर्वदा ।
तिथि-नक्षत्र-योगाश्च जातकर्मादिकाश्च ये ॥१०४
नैमित्तिकाश्च ये चान्ये कार्यास्तेऽपि मलिम्लुचे ।
तीर्थस्नानं गजच्छायं द्विमुखीं गोप्रदानवत् ॥१०५
मलिम्लुचेऽपि कर्तव्यं सपिण्डीकरणादिकम् ।
आग्रयणममावास्यामष्टकाग्रहसङ्क्रमम् ॥१०६
अधिमासेऽपि कार्यं स्यादिति पाराशरोऽब्रवीत् ।
नित्यं च नित्यशः कार्यमिष्टीः काम्याश्च वर्जयेत् ॥१०७
वार्षिकं पिण्डवर्जं स्यादन्यस्मिन्पिण्डसंयुतम् ।
इष्टिराग्रयणं श्राद्धमन्वाहार्यं च सर्वदा ॥१०८
कर्तव्यं सततं विप्रैरिष्टीःकाम्याश्च वर्जयेत् ।
दैवे कर्मणि सम्प्राप्ते तिथिर्यत्रोदितो रविः ।
सा तिथिः सकला ज्ञेया विपरीता तु पैतृके ॥१०९
वृद्धिमद्दिवसे कार्यं श्राद्धमाभ्युदिकं द्विजैः ।
क्षीयमाणे दिने कार्यं श्राद्धं विद्वन्! क्षयाह्निकम् ॥११०
मित्रे चैव सगोत्रे च पितृ-मातृसहोदरे ।
आसनं नैव दातव्यं भोक्तव्या एवमेव ते ॥१११
ब्राह्मणं न सगोत्रं च पूजयेत्पितृकर्मणि ।
नोपतिष्ठति तत्तेषां किन्तु स्याच्च निराशता ॥११२

स्वगोत्रं भोजयेद्यस्तु पितृश्राद्धेषु वै द्विजः।
हताः स्युः पितरस्तेन न भुक्तमुपतिष्ठते ॥११३
श्राद्धं कुर्वन्द्विजोऽज्ञानात् स्वगोत्रं यस्तु भोजयेत्।
स कुरपितृदेवस्सन्नरकं प्रतिपद्यते ॥११४
तस्मान्न गोत्रिणं विप्रं भोजयेद्विधिपूर्वकम्।
ज्ञातिमत्वेन भोज्यास्ते उद्धितैस्तु द्विजोत्तमैः ॥११५
दक्षिणाप्रवणे देशे श्राद्धं कुर्यात्तु पैतृकम्।
पितृणां पावनो देशः स प्रोक्तोऽक्षयतृप्तिकृत् ॥११६
देशे काले च पात्रे च विधिना हविषा च यत्।
तिलैर्दर्भैश्च मन्त्रैश्च श्राद्धं स्याच्छ्रद्धयान्वितम् ॥११७
तैजसानि तु पात्राणि हव्यार्थं भोजनाय च।
मृत्पाषाणमयान्येके अपराण्यपरे विदुः ॥११८
पलाश-पद्म-पत्राणि अनिषिद्धानि यानि च।
तानि श्राद्धेषु कार्याणि पितृ-देवहितानि च ॥११९
वृद्धिश्राद्धेषु मन्यन्ते मृण्मयानि तु केचन।
शौनकस्य मतं ह्येतद्यथा कार्यं तु मृण्मयम् ॥१२०
एकद्रव्याणि कार्याणि पात्राणि भोजनार्घयोः।
त्रीणि पैतृकपात्राणि द्वे दैवे वैश्वदैविके ॥१२१
एकस्य वैश्वदेवानि पैतृकाण्येकवस्तुनः।
इति वा तानि कार्याणि भेदमेकत्र वर्जयेत् ॥१२२
वटा-ऽश्वत्था-ऽर्कपत्रेषु कुम्भी-तिन्दुकयोरपि।
कोविदार-करञ्जेषु न भुञ्जीत कदाच न ॥१२३

सुरभी-नागकर्णाद्यैः करवीर-करञ्जकैः ।
बिल्वैर्यस्त्वर्चयेद्विद्वान् पितॄन् श्राद्धे ष्वगर्हितैः ।
तद्भुञ्जन्तेऽसुराः श्राद्धं निराशैः पितृभिर्गतैः ॥१२४
सर्वाणि रक्तपुष्पाणि निषिद्धाण्यपराणि च ।
वर्जयेत् पितृकार्येषु केतकी कुसुमानि च ॥१२५
गो-रम्भा-भृङ्गराजाद्यैर्मल्लिकाकुब्जकैरपि ।
समर्चयेद्द्विजान् श्राद्धे हव्य-कव्योदितैर्द्विजः ॥१२६
न दद्याद्गुग्गुलं श्राद्धे द्विजानां पितृदैवते ।
धूपाभावे गुडो देयो घृतदीपं द्विजोत्तमाः ॥१२७
कुङ्कुमाद्यं चन्दनं च देयं गन्धविमिश्रितम् ।
ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥१२८
निराशाः पितरो यान्ति यस्तु कुर्यात्त्रिपुण्ड्रकम् ।
पवित्रं यदि वा दर्भं करे कृत्वा द्विजान्नरः ॥१२९
समालभेद्द्विजानज्ञस्तच्छ्राद्धमासुरं भवेत् ।
गन्धाश्च विविधा देयाः कर्पूरागरुमिश्रिताः ॥१३०
शक्त्या वस्त्राणि देयानि तदभावे च निष्क्रयम् ।
दीपश्च सर्पिषा देयस्तिलतैलेन वा पुनः १३१
नकाष्ठतैलैरन्यैस्तु कदाचित् सार्षपाऽऽतसैः ॥१३२
देशधर्मं समाश्रित्य वंशधर्मं तथापरे ।
सूरयः श्राद्धमिच्छन्ति पार्वणं च क्षयाह्न्यपि ॥१३२
स्त्रीणामपि पृथक् श्राद्धं ते मन्यन्ते स्वधर्मतः ।
मातामहस्य गोत्रेण मातुस्तेन सपिण्डताम् ॥१३३

मातामह्या सहेच्छन्ति मातुस्तेऽपि सपिण्डताम्।
स्त्रीणां स्त्रीगोत्रसम्बन्धात्पुंगोत्रेण नृणां यतः॥१३४
सपिण्डी करणे काले श्राद्धद्वयमुपस्थितम्।
देवाद्यं प्रथमं कुर्यात्पितृणां तदनन्तरम्॥१३५
देवाद्यं पार्वणं प्रोक्तं प्रेतश्राद्धमथापरम्।
एकत्वं तु ततः पश्चात्कृत्वा विप्रांश्च भोजयेत्॥१३६
पितॄणामर्घ्यपात्राणि प्रेतपात्रमथापरम्।
प्रेतपात्रं तु तत्कृत्वा पितृपात्रेषु योजयेत्॥१३७
ये समाना इति द्वाभ्यां पूर्ववच्छेषमाचरेत्।
सपिण्डीकरणं यस्य कृतं न स्याद्द्विजन्मनः॥१३८
अदैवं तस्य देयं स्यात्पिण्डमेकं तु निर्वपेत्।
सपिण्डीकरणं चैतत्क्रियाश्चैव क्षयाह्निकम्॥१३९
एकादशाह्निकं त्वाद्यं मासि मासि च मासिकम्।
वर्षे वर्षे च कर्तव्यं मृतेऽहनि च तत्पुनः॥१४०
नाऽपुत्रस्य सपिण्डत्वं केचिदिच्छन्ति तद्विदः।
विशेषतोऽनपत्यस्य सत्यप्यत्राधिकारिणि॥१४१
विद्यमानः पिता यस्य सचेद्यदि विपद्यते।
तदन्तरा सपिण्डत्वं वदन्ति श्राद्धवादिनः॥१४२
आभ्युदयिकसम्पत्तावर्चां प्रागेव कारयेत्।
कुर्यात्परिजनेनैतत्स्वयं वापि द्विजोत्तमः॥१४३
सन्न्यसन्सर्वकर्माणि तच्छ्राद्धाय च तद्दिनम्।
अग्निदाहदिनं चैके केचिन्मृतदिनं विदुः॥१४४

विदेशस्थे श्रुताहस्तु कृष्णा वा द्वादशी सिता ।
संग्रामे संस्थितानां च प्रेतपक्षे शशिक्षये ॥१४५

अग्नि-सर्पादिमृत्यूनां षण्मासोपरि सत्क्रिया ।
तेषां पार्वणमेवोक्तं क्षयाहेऽपि च सत्तमैः १४६

चन्द्रक्षया-ऽनाशक-संयुगेषु यः प्रेतपक्षे मृतवान् सपिण्डः ।
सपिण्डनानन्तरमाब्दिकानि भवन्ति तेषामिह पार्वणानि ॥१४७

अग्नि-सर्पादिमृत्यूनां षण्मासोपरि सत्क्रियाः ।
क्षयाह्निकानि कार्याणि ब्रूयुर्धर्मविदो जनाः ॥ } १४८

अब्दादूर्ध्वं चरन्त्येके कृत्वा च वैष्णवं बलिम् ।
विष्ण्वर्चनं विना नार्वाग्प्रदत्तमुपतिष्ठति ॥१४९

विद्युता वृक्षपातेन सर्पेण महिषेण वा ।
इत्यादिकेन मृत्युः स्यात्तिथौ यत्र च तत्र वै ॥१५०

तन्निमित्तस्य तृप्त्यर्थं मासि मासि क्षयाह्निकम् ।
कर्तव्यमवधौ यावत्ततः कुर्वीत सत्क्रियाम् ॥१५१

अनाशकमृतानां च क्षयाहेऽपि च पार्वणम् ।
सन्न्यासवद्धि मन्यन्ते केचिद्विदुरदैविकम् ॥१५२

एकोद्दिष्टमदैवं स्यात्तथैकार्घ्यपवित्रकम् ।
आवाहना-ऽग्नौकरणहीनं तदपसव्यवत् ॥१५३

पूर्वोत्तरप्लवे देशे श्राद्धं स्यान्मातृपूर्वकम् ।
सित-पितादिपिष्टेन चर्चिते भूतले च तत् ॥१५४

उद्दिष्टक्रतुकालस्य तत्प्रागेव विधीयते ।
आभ्युदयिकदैवानि पूर्वाह्णे स्युरितिस्मृतिः ॥१५५

तिलाक्षतोदकैर्युक्तान्यासनानि प्रदक्षिणात्।
परिहृत्यादि पृष्ठेन कृत्वा च शान्तिपूर्वकम् ॥१५६
व्रीहयो यव-गोधूमा अक्षताश्चहताः स्मृताः।
अक्षतामलकैः पिण्डान्दधि-कर्कन्धुमिश्रितैः ॥१५७
नान्दीमुखेभ्यो देवेभ्यः प्रदक्षिणकुशासनम्।
पितृभ्यस्तन्मुखेभ्यश्च प्रदक्षिणमिति स्मृतिः ॥१५८
कर्कन्धुभिर्यवैः पुष्पैः शमीपत्रैस्तिलैस्तथा।
तेभ्यो ह्यर्घ्यः प्रदातव्यः पितृभ्यो दैवतैस्सह ॥१५६
मातामहानामप्येवं षट्दैवत्यं श्रिये द्विजः।
माङ्गल्यपूर्वकं सर्वं गन्धाद्यपि च धारयेत् ॥१६०
तृप्तिकृत्पितृ-मातॄणां धूपो देयश्च गुग्गुलः।
घृताभिघारधूपो वा यथा स्यात्परिपूर्णता ॥१६१
दीपाश्च बहवो देयाः विप्रं प्रतिघृतेन च।
तैलेन येन केनापि नवनीतेन चैव हि ॥१६२
मालत्या शतपत्र्या वा मल्लिका-कुन्दयोरपि।
केतक्या पाटलाया वा स्रजो देया न लोहिताः ॥१६३
वासांसि च यथाशक्त्या दद्यात्तेभ्योऽपि निष्क्रयम्।
परिपूर्णं यथा तत्स्यात्तथा कार्यं भवेदिति ॥१६४
सुवेष-भूषणैस्तत्र सालङ्कारैस्तथा नरैः।
कुङ्कुमाद्यनुलिप्ताङ्गैर्भाव्यं तु ब्राह्मणैः सह ॥१६५
स्त्रियोऽपि स्युस्तथाभूता गीत-नृत्यादिहर्षिताः।
दुन्दुभीनादहृष्टाङ्गा मङ्गलध्वनिकारिकाः ॥१६६

सोमसदोऽग्निष्वात्ताश्च तथा बर्हिषदोऽपि च ।
सोमपाश्च तथा विद्वंस्तथैव च हविर्भुजः ॥१६७

आज्यपाश्च तथा वत्स तथाह्यन्ये सुकालिनः ।
एते चान्ये च पितरः पूज्याः सर्वे द्विजातिभिः ॥१६८

वसवश्च तथा रुद्रास्तथैवादितिसूनवः ।
देवता अपि यज्ञेषु स्वायम्भुवा हि कीर्तिताः १६९

एते च पितरो दिव्यास्तथा वैवस्वतादयः ।
एतत्पौत्रप्रपौत्राश्च असंख्याः पितरः स्मृताः ॥१७०

एते श्राद्धेषु सन्तर्प्या उत्पन्नानैर्द्विजातिभिः ।
सन्तर्पिता इमे सर्वान्प्रीणयन्ति नृणां पितॄन् ॥१७१

प्रागेव केतितान्विप्रान् स्नातान्काले समागतान् ।
दत्वाद्यर्यान् कृतसच्छौचानाचान्तानुपवेशयेत् ॥१७२

ये स्पृशन्तस्तु खान्यद्भिराचामन्ति पिबन्ति च ।
तेषां न जायते शुद्धिराचमन्त्यसृजा हि ते ॥१७३

सर्वाणि स्वानि वक्त्राणि कायच्छिद्राणि चात्मनः ।
तैराचान्तैर्भवेच्छुद्धिरशुचिस्त्वन्यथा भवेत् ॥१७४

व्याहृत्य वैष्णवान्मन्त्रान् स्मृत्वा च वेदमातरम् ।
शान्तस्वान्तो द्विजान्पृच्छेत्करिष्ये श्राद्धमित्यथ ॥१७५

करवै करवाणीति पृष्टा ब्रूयुर्द्विजाह्यतः ।
अनुज्ञायै वचो ह्येतत् कुरुष्व क्रियतां कुरु ॥१७६

ततो दर्भासनं दद्याद्देवेभ्यः सयवं पुनः ।
दक्षिणं जानु मन्त्रास्य दक्षिणं च तथासनम् ॥१७७

पात्रद्वयमतोऽर्घ्यार्थं तैजसं चैकवस्तुजम्।
सापं च सपवित्रं तत्समभ्यर्च्य विधानतः ॥१७८

प्राङ्मुखोऽमरतीर्थेषु शन्नो देव्योदकं क्षिपेत्।
यवोसीति यवांस्तत्र तूष्णीं पुष्पाणि चन्दनम् १७९

यवोऽसि पुण्यामृतमिश्रितोऽसि
समस्तधान्यप्रभुरस्यमुत्र।
मरुन्मनुष्य-पितृवंशतृप्त्यै
क्षितावतीर्णोऽसि हितोऽसि पुंसाम् ॥१८०

उत्पाद्यपूर्वकमिमानमृतेन वेधा
भूयः प्रसन्नमनसा तदुपासितःसन्।
चिक्षेप तान्वरुणलोकहिताय शिक्ताः
तेनामृता वरुणदैवतका बभूवुः ॥१८१

अनीतवान्निधिरिमान्वरुणस्य लोकात्
अन्नप्रभून्भुवि यवान्सुरलोकतृप्त्यै।
तत्पिष्टपक्कहविषा पितृदेवतानां
तृप्ता वसन्ति दिवि ते वरदानवाचः ॥१८२

ततः सव्यं करं न्यस्य विप्रदक्षिणजानुनि।
देवानावाहयिष्येऽहमिति वाचमुदीरयेत् ॥१८३

आवाहयेत्यनुज्ञातो विश्वेदेवास आगतम्।
विश्वेदेवाः शृणुतेममिति मन्त्रद्वयं पठेत् ॥१८४

सोमेन सह राज्ञेति केचित्पठन्त्यदोऽपि च।
व्याहृत्य मन्त्रमावाह्य हस्ते दत्वा पवित्रकम् ॥१८५

अर्चयेत्तं द्विजं पुष्पैर्दद्यादर्घ्यं करे पुनः ।
विश्वेभ्यस्त्वेष देवेभ्यस्तुभ्यमर्घ्यः प्रदीयते ॥१८६
या दिव्या इति मन्त्रेण पाणौ विप्रस्य तं क्षिपेत् ।
अपसव्यमतः कृत्वा निर्वर्त्य वैश्वदैविकम् ॥१८७
आपो भूमिगताः केचिद्दादित्येत्यभिमन्त्र्य च ।
पुनस्ताभिः कराभ्यां च कुर्वन्ति मुखमार्जनम् ॥१८८
उदकं गन्ध-धूपांश्च वासांसि चन्दनं स्रजः ।
दत्त्वाऽपसव्यवद्भूत्वा दद्यात्पितृकुशासनम् ॥१८६
सोदकान्द्विगुणं भुग्नान्सतिलान्सकुशानपि ।
गोकर्णमात्रकान्साग्रान्प्रदद्याद्वामपार्श्वतः ॥१६०
चतुर्थ्यंतं सगोत्रं च पितृनाम च शर्मवत् ।
उच्चार्य परयोस्तद्वदिदं तुभ्यं कुशासनम् ॥१६१
पित्रर्थमर्घ्यपात्राणि सम्पूज्य दक्षिणामुखः ।
तिलोसीत्येतदुच्चार्य यवस्थाने तिलान्क्षिपेत् ॥ १६२
भूलग्नसव्यजानुः सन्पितृतीर्थेन चाऽत्वरः ।
पितृध्यानमनाः कुर्यात्पितृकार्यमशेषतः ॥१६३
आवाहयिष्ये पित्रादीननुज्ञाऽऽवाहयेति च ।
उशन्तस्त्वेति प्रोदीर्य तथाऽयन्तु न इत्यपि ॥१६४
अन्येऽप्यपहतासुरा इत्यादपि पठन्ति हि ।
अन्नविघ्नव्यपोहार्थं वक्तव्यमिति केचन ॥१६५
प्राग्वद्विप्रार्चनं कार्यं प्राग्वदर्घ्यप्रसेचनम् ।
प्राग्वन्मंत्रं समुच्चार्य प्राग्वच्च मुखमार्जनम् ॥१६६

एते तिलास्तु विधिना शशिलोकतस्तु
प्राहृत्य भोजनहितेन शुभाय धन्याः।
क्षिप्त्वा मलानि पुरुषस्य च तर्पणाद्यैर्
ये घ्नन्ति तेषु भुवि सत्सु कुतो भयं स्यात् ॥१६७

तिलोऽसि तारापतिदैवतोऽसि
हितोऽस्यशेषपितृ-देवतानाम्।
कर्तासि तृप्तिं परमां पितॄणां
मुक्त स्ततस्त्वं विधिसम्भवोऽसि ॥१६८

अर्घ्यपात्राणि सर्वाणि कृत्वा तान्याद्यपात्रके।
पितृभ्यःस्थानमसीति न्युब्जं कुर्यादधश्च तत् ॥१६६
यस्तूद्धरेत्तदज्ञानादर्घ्यपात्रं तु पैतृकम्।
तद्धि श्राद्धमभोज्यं स्यात्क्रुद्धैः पितृगणैर्गतैः ॥२००
आश्रित्य प्रथमं पात्रं तिष्ठन्ति पितरो नृणाम्।
श्राद्धे तस्मान्न तद्विद्वानुद्धरेत्प्रथमं सुधीः ॥२०१
वाचयेत्परिपूर्णं तु वासो दत्वा विधानतः।
नत्वा सर्वान्द्विजान्पृच्छेत्करिष्येऽग्नाविति द्विजः ॥२०२
अस्त्वेतत्परिपूर्णं तु ब्रूयुरेते द्विजातयः।
ससर्पि पात्रमादाय सपिधानं विधानतः ॥२०३
कुरुष्वेति ह्यनुज्ञातो जुहोत्यग्नौ ततः पुनः।
भोजने पितृविप्राणामिति मन्त्रमुदीरयेत् ॥२०४
अग्निशब्दं चतुर्थ्येकवचनान्तं समुच्चरेत्।
कव्यवाहनशब्दं च सोमं पितृमदित्यपि ॥२०५

पंक्तिमूर्धन्यमेवात्र पृच्छेदिति हि केचन ।
पितृश्राद्धे प्रधानत्वात्सामस्त्येनाथ वा पुनः ॥२०६

तूष्णीं यत्र तु होमादौ प्रजापतिस्तु तत्र तु ।
तृतीयं मनसा दद्याद्यमायास्त्विति वा पुनः ॥२०७

अहन्येवास्मिंस्तस्मिन्वा संवादोभून्मनोर्गिरः ।
अहव्या वाग्यतो ध्याणी अभूद्यज्ञे प्रजापतेः ॥२०८

अग्नावाहुतयः प्रोक्तास्तिस्र एव मनीषिभिः ।
अग्निवद्विप्रपात्रेषु पश्चात्तज्जुहुयाद्द्विजः ॥२०६

अग्नौकरणशेषं तु पितृपात्रेषु दापयेत् ।
प्रतिपाद्य पितॄणां तु दद्याद्वै वैश्वदैविके ॥२१०

यश्चाग्नौकरणं दद्यात्पितृविप्रकरेषु च ।
तेनोच्छेषितमेतत्स्यात्समाप्तिस्तावतैव तु ॥२११

पितरः करवक्त्राश्च वह्निवक्त्राश्च देवताः ।
अतःपाणौ न तद्देयं पात्रे देयं कुशान्विते ॥२१२

वैश्वदेविकविप्राणां पात्रे वा यदि वा करे ।
अनग्निकस्तु तद्दद्यात्प्रथमं वैश्वदैविके ॥२१३

हुतशेषमशेषाणां पात्रे दद्याद्द्विजोत्तमः ।
पृच्छेत्सर्वांश्च यत्कृत्यं सामान्येन द्विजोत्तमान् ॥२१४

दत्वाऽग्नौकरणं चान्यत् विप्राणां तृप्तिकृद्धविः ।
परिवेष्यमिति ब्रूयुस्ततो विधिरनन्तरम् ॥२१५

प्रागग्नौकरणं दद्याद्दत्वा चान्यत्तु तृप्तिकृत् ।
एकीकृतं तु भुञ्जानाः प्रीणयन्ति नृणां पितॄन् ॥२१६

परिवेष्य हविः सर्वं तदर्थं यच्च वै श्रृतम् ।
अभिमन्त्र्य ततः पात्रे आपोशानप्रदानवत् ॥२१७
अन्नपूर्णस्य पात्रस्य कर्तव्यमभिषेचनम् ।
अपो दत्वा तु सङ्कल्प्यमेष श्राद्धविधिर्वरः ॥२१८
वर्जितानि न देयानि पितृप्रीति विजानता ।
हविष्याणि प्रदेयानि वक्ष्यमाणानि वर्जयेत् ॥२१९
निष्पावान् राजमाषांश्च कुलित्थान् कोरदूषकान् ।
मसूरान् शीतपाकं च पुलाकं शणमर्कटाः ॥२२०
आढक्यः सितसिद्धार्थं वल्लानि छिन्नधान्यकम् ।
पिण्याकं परिदग्धं च मथितं च विवर्जयेत् ॥२२१
नापि नीरस-निर्गन्धं करञ्जं सर्वसक्तुकम् ।
अप्रोक्षितं च यत्किञ्चित्पर्युषितं विवर्जयेत् ॥२२२
लोहितान्वृक्षनिर्यासान्प्रत्यक्षलवणानि च ।
कृतकृष्णानि लवणं सर्वाः पलाण्डुजातयः ॥२२३
कृष्णजीरक-वंशाग्रास्तृणानि च विवर्जयेत् ।
कुम्भिका-यूप-पालङ्क्यः कटूफलं तण्डुलीयकम् ॥२२४
नीलिका च सितच्छत्रा शोभाञ्जन-कुसुम्भिकाः ।
कोविदार-करञ्जौ च सुमुखां मूलकं तथा ॥२२५
कूष्माण्डं गौरवृन्ताकं बृहत्याश्च फलानि च ।
करीरफल-पुष्पाणि विडङ्गं मरिचानि च ॥२२६
जम्भारिका सुजम्बीरा सुषवी बीजपूरकाः ।
जम्ब्वलाबूनि पिप्पल्यः पटोलं पिन्डमूलकम् ॥२२७

मसूराञ्जनपुष्पं च श्राद्धे दत्वा पतत्यधः।
विषच्छद्महतं मांसमन्यच्च चिरसंस्थितम् ॥२२८
नित्यं श्राद्धेऽपि वर्ज्यं स्याद्विड्वराह-चकोरयोः।
स्वायम्भुवादिभिः सर्वैर्मुनिभिर्धर्मदर्शिभिः ॥२२९
निषिद्धानि न देयानि पितृणामहितानि च।
एकेन किञ्चित् अपरेण किञ्चित् किञ्चिच्च किञ्चिच्च परैर्मुनीन्द्रैः।
श्राद्धे निषिद्धं ह्यशनादि विद्वन्सर्वं पितृणां ननु किञ्च देयम् ॥२३०
सौवीर-तिलैर्लवणादिकैस्तत्पात्रस्य शुद्धिर्भवतीह यैस्तु।
तद्बीजपूरान्मरिचादियोगात्सिद्धं प्रदेयं ननु दुष्यतीह ॥२३१
श्राद्धे तु यस्य द्विज दीयमानं पित्रादिकस्येह भवेन्मनुष्यैः।
यद्वस्तु यस्येह मनस्यभीष्टमासीत्पुरा तस्य तदेव देयम् ॥२३२
दातुश्च यस्मिन्मनसोऽभिलाषः श्रद्धा भवेत्तत्र तु दीयमाने।
श्राद्धेऽपि देयं विधिवत्तदेव तद्दत्तमक्षय्यमिति प्रवादः ॥२३३
आनीतमम्भो निशि यत्कथञ्चित् यत्पाणिदत्तं भवतीह विद्वन्।
हेमाम्बुनिक्षेपहरिस्मृतिभ्यामच्छिद्रतामेति पराशरोक्तिः ॥२३४
यत् क्षीरसारैक्षवखण्डयोगाच्छाखाभिधेयं भवतीह विद्धम्।
प्राण्यङ्गभूपान्मरिचादियोगात् पाकस्य सिद्धिं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥२३५
व्रीहयो यव-गोधूमा मुद्गा माषास्तिलास्तथा।
नीवारः श्यामकाद्यं च अकृष्टसम्भवानि च ॥२३६
आरण्यकालशाकादि प्रतिषिद्धापराणि च।
माहेयीक्षीरमध्वादि खड्गादिपिशितानि च ॥२३७

शर्करा-गुड-खण्डादि संशुद्धं क्षौद्रमेव च।
पितृश्राद्धे हविर्मुख्यं यद्वा तद्वाप्यलाभतः॥२३८
यद्देहिनामत्र शरीरपुष्ट्यै धाता ससर्जाशननाम किञ्चित्।
तत्सर्वधान्यान्नमिति ह्यवादि त्रेधा मुनीन्द्रेण पराशरेण॥२३९
शामावरक्ष्यादिककम्बुजाति यत्किञ्चिदस्मिंस्तुषसारभूतम्।
आरण्यजं वा कृषिसम्भवं वा सस्यं तदुक्तं मुनिनाऽशनेषु॥२४०
काण्डोद्भवं यत्त्वशनेषु किञ्चित् पङ्कोद्भवं वा स्थलसम्भवं वा।
यत्तुच्छसारं बहुसारमस्मिन्सर्वाणि धान्यानि च शूकवन्ति॥२४१
यत्सर्वसारं सतुषं च भक्ष्यं निःशूकशूकान्वितमत्र किञ्चित्।
आप्यायनं देहभृतां च सद्यस्तत्प्रोक्तमन्नं ह्यशनेन सद्भिः॥२४२
प्रतिश्रुतं च भुक्तं च कटुतिक्तं च यत्तथा।
केचिदूचुरदेयानि यत् खातप्रतिरोपितम्॥२४३
तुण्डिकेरान्यलाबूनि लिङ्गाख्यानि च यानि तु।
श्राद्धे नित्यमदेयानि प्राह सत्यवतीपतिः॥२४४
सोङ्कारया वै गायत्र्या दशावर्तितया जलम्।
पूतं तु तेन तत् प्रोक्ष्यं सर्वमन्नं विशुद्धये॥२४५
शुद्धवत्योथ कूष्माण्ड्यः पावमान्यस्तरत्समाः।
पूतं तु वारिणैताभिरन्नशोधनमुत्तमम्॥२४६
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण गायत्र्या च प्रयत्नवान्।
प्रोक्षयेदशनं सर्वं शूद्रदृष्ट्यादिशुद्धये॥२४७
गृहाग्नि-शिशु-देवानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।
तावन्न दीयते किञ्चिद्यावत् पिण्डान्न निर्वपेत्॥२४८

काञ्जिकं दधि तक्रं च शृतं चाशृतमेव वा।
पूर्वाह्ले न प्रदातव्यं एकोद्दिष्टेऽथ पार्वणे ॥२४६

आपिण्डदानतो दद्याद्यत्किञ्चिच्छ्राद्धवासरे।
तेनैव पितरो यान्ति श्राद्धं गृह्णन्ति नैव च ॥२५०

परिवेषयेत्समं सर्वं न कार्यं पंक्तिभेदनम्।
पंक्तिभेदी वृथापाकी नित्यं ब्राह्मणनिन्दकः।
आदेशी वेदविक्रेता पञ्चैते ब्रह्मघातकाः ॥२५१

यद्येकपङ्क्त्यां विषमं ददाति स्नेहाद्भयाद्वा यदि चार्थलोभात्।
वेदैश्च दृष्टं ऋषिभिश्च गीतं तद्ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति ॥२५२

देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च वह्निमभ्यागतांस्तथा।
अनभ्यर्च्य तु भुञ्जानो वृथापाक इति स्मृतः ॥२५३

पृथ्वी ते पात्रमित्येतद्द्यौरपीति पिधानकम्।
एतद्वै ब्राह्मणस्यास्ये जुहोमि चामृतेऽमृतम ॥२५४

इदं विष्णुरिति ह्येतन्मन्त्रमुच्चार्य चापरे।
द्विजाङ्गुष्ठं च तत्रान्ने निवेशयन्ति तद्विदः ॥२५५

जप्त्वा व्याहृतिभिः सार्धं गायत्रीं मधुमतीरिति।
सङ्कल्प्यान्नमपोशानं ब्रूयाच्च मधुमद्विति ॥२५६

आपोशानं प्रदेयान्नं न तत्संकल्पयेद्द्विजः।
सङ्कल्पान्नरके याति निराशैः पितृभिर्गतैः ॥२५७

आपोशानोदके विप्रपाणौ तिष्ठति यो द्विजः।
सङ्कल्पं कुरुतेऽज्ञानात् स्युस्तस्य पितरो हताः ॥२५८

जप्त्वा वै वैष्णवान्मन्त्रान्विप्रान्ब्रूयाद्यथासुखम् ।
भुञ्जीरन्वाग्यतास्तेतु पितृ-देवहितैषिणः ॥२५६

अत्युष्णमशनं कार्यं वचो वाच्यं पितृष्वदः ।
शूद्रं च शूकर-ध्वाङ्क्ष-कुक्कुटानपनाययेत् ॥२६०

भुञ्जते ब्राह्मणा यावत्तावत्पुण्यं जपेज्जपम् ।
पावमान्यानि वाक्यानि पितृसूक्तानि चैव हि ॥२६१

ततस्तृप्तान् द्विजान्पृच्छेत्तृप्तास्थेत्ययनुशासनम् ।
तृप्तास्मेति द्विजा ब्रूयुस्तदन्नं विकिरेद्भुवि ॥२६२

सकृत्सकृत्त्वपो दत्वा शेषमन्नं निवेदयेत् ।
यथानुज्ञा तथा कृत्वा पिण्डांस्तदनु निर्वपेत् ॥२६३

यद्यद्भुक्तं द्विजैरन्नं तत्तदादाय विस्तरः ।
स्थालीपाकं तिलोपेतं दक्षिणाशामुखस्ततः ॥२६४

अवनिज्य तिलान्दर्भान्पिण्डार्थमवनीतले ।
तस्मिंश्च निर्वपेत्पिण्डान् गोत्रनामकपूर्वकान् ॥२६५

ये देवलोकं पितृलोकमापुः प्राप्तास्तथैवं नरकं नरा ये ।
अग्नौ हुतेन द्विजभोजनेन तृप्यन्ति पिण्डैर्भुवि तैः प्रदत्तैः २६६

यदन्नं लेपरूपं तु क्रमात्तेषु च निक्षिपेत् ।
प्रक्षाल्य सलिलं तत्र अवनेजनवत्पुनः ॥२६७

निवृत्तानर्चयेत्पिण्डान् पुष्प-गन्धविलेपनैः ।
दीप-वासः प्रदानेन पितॄनर्च्य समाहितः ॥२६८

वासो वस्त्रदशां दद्याद्विधिवन्मन्त्रपूर्वकम् ।
केचिद्दद्यादविकं लोम केचिन्मतं न तत्त्विति ॥२६९

पञ्चाशद्वार्षिको यस्तु दद्याल्लोम स्वमंशुकम् ।
तदवश्यं प्रदेयं स्याद्विधिसम्पूर्णताकृते ॥२७०
पवित्रं यदि वा दर्भं करात्तत्र विनिःक्षिपेत् ।
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य प्रोक्षणादिकमाचरेत् ॥२७१
निर्वपन्त्यपरे पिण्डान् प्रागेव द्विजभोजनात् ।
खादयेयुः शकुन्तास्तान्पितॄणां तृप्तितत्पराः ॥२७२
मातामहानामप्येवं विप्रानाचामयेदथ ।
वाचयेत द्विजान्स्वस्ति दद्याच्चैवाक्षयोदकम् ॥२७३
दक्षिणा हेम देवानां पितॄणां रजतं तथा ।
शक्त्या दद्यात्स्वधाकारं व्याहरेच्छ्राद्धकृद् द्विजः ॥२७४
तिष्ठन्पिण्डान्तिके ब्रूयाद्वाचयिष्ये स्वधामिति ।
वाच्यतामिति विप्रोक्तिः प्रवदेद्गोत्रपूर्वकम् ॥२७५
स्वधोच्यतामिति ब्रूयादस्तु स्वधेति तद्वचः ।
ऊर्जं वहन्तीरुच्चार्य जलं पिण्डेषु सेचयेत् ॥२७६
याः काश्चिद्देवताः श्राद्धे विश्वशब्देन जल्पिताः ।
प्रीयतामिति च ब्रूयाद्विप्रैरुक्तमिदं जपेत् ॥२७७
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ।
श्रद्धा च नो माऽव्यगमद्बहु देयं च नोऽस्त्विति ॥२७८
न्युब्जपिण्डार्घ्यपात्राणि कृत्वोत्तानानि संश्रवात् ।
क्षिप्त्वा पिण्डेष्वतो विप्रान्पितृपूर्वं विसर्जयेत् ॥२७९
वाजे वाजे इति ह्युक्त्वा आमावाजस्य तान् बहिः ।
ब्रूयात्प्रदक्षिणीकृत्य क्षमध्वमित्यथाप्यपि ॥२८०

पिण्डानां मध्यमं पिण्डं पितॄन्ध्यायन् समाहितः।
प्राशयेत्पुत्रकामां तु भार्यां तच्छ्राद्धकृन्नरः ॥२८१

स्नुषा वापि सगोत्रा वा पुत्रकामा द्विजाज्ञया।
आधत्त पितरो गर्भं व्याहरेयुर्द्विजातयः ॥२८२

महारोगगृहीतो वा तद्रोगोपशमाय च।
घ्नन्तु मे पितरो रोगमित्युक्त्वा प्राशयेच्चरुम् ॥२८३

अन्यानप्सु हुताशे वा क्षिपेत्पिण्डान्द्विजाय वा।
अजाय वा प्रदद्याच्च पश्चाद्विप्रविसर्जनम् ॥२८४

उद्धारं पैतृकादेके पाकान्मातामहाय च।
एकेनैव हि चैकेऽपि षट्दैवत्यादिति श्रुतिः ॥२८५

उद्धारं पितृकादेके पाकान्मातामहाय तु।
एकेनैव हि गच्छन्ति भिन्न गोत्रास्तथा द्विजाः ॥२८६

निदध्युः पृथगुद्धृत्य पात्रे पिण्डार्थमोदनम्।
तथा पाकमपीच्छन्ति भिन्नगोत्रतया द्विजाः ॥२८७

आब्दिके ऽक्षय्यस्थाने तु वक्तव्यमुपतिष्ठताम्।
अभिरम्यतां स्वधास्थाने विप्रोक्तिरभिरताः स्मह ॥२८८

ऊर्ध्वन्तुप्रोष्ठपद्यास्तु प्रतिपदादिकाश्च याः।
पुण्यास्तास्तिथयः सर्वा दशापि सहपञ्चभिः ॥२८९

तेषां चतुर्दशी प्रोक्ता ये शस्त्रेण हता नराः।
पितृभे च त्रयोदश्यां गयाश्राद्धादिकं फलम् ॥२९०

न तत्र पातयेत्पिण्डान् सन्तानेप्सुः कदाचन।
पिण्डदानेन कवयो वंशक्षयं वदन्ति हि ॥२९१

सन्तानेप्सुस्त्रयोदश्यां न पिण्डान् पातयेन्नरः ।
पातयेत्तमनिच्छंश्च प्राह सत्यवतीपतिः ॥२६२
मघायुक्तत्रयोदश्यां पिण्डनिर्वपणं द्विजः ।
स सन्तानो नैव कुर्यादित्यन्ये कवयो विदुः ॥२६३
यः सङ्क्रमे भानुदिने च कुर्यादुपोषणं पारणकं द्विजन्मा ।
पिण्डप्रदानं पितृभे च तद्वज्ज्येष्ठो विपद्येत सुतोऽनुजो वा २६४
पुत्रदा पञ्चमी कर्तुस्तथैवैकादशी तिथिः ।
सर्वकामा त्वमावास्या पञ्चम्यूर्ध्वं शुभाः स्मृताः ॥२६५
अन्नं क्षीरं घृतं क्षौद्रमैक्षवं कालशाकवत् ।
एतैस्तु तर्पितैर्विप्रैस्तर्पिताः पितरो नृणाम् ॥२६६
देशः पर्व च कालश्च हविः पात्रं च सत्क्रियाः ।
पितृ-दैविकचित्तत्वं योगश्चेतिपितृभादिभिः ॥२६७
शौचं च पात्रशुद्धिश्च श्रद्धा च परमा यदि ।
अन्नं तत्तृप्तिकृच्छ्राद्ध एतत्खलु न चाऽमिषे ॥२६८
यस्तु प्राणिवधं कृत्वा मांसेन तर्पयेत् पितॄन् ।
सोऽविद्वांश्चंदनं दग्ध्वा कुर्यादङ्गारविक्रयम् ॥२६६
क्षिप्त्वा कूपे यथा किञ्चिद्बाल आदातुमिच्छति ।
पतत्यज्ञानतः सोऽपि मांसेन श्राद्धकृत्तथा ॥३००
सर्वथाऽन्नं यदा न स्यात्तदैवामिषमाश्रयेत् ।
ब्राह्मणश्च स्वयं नाद्यात्तच्च श्वादिहतं यदि ॥३०१
अथान्यत् पापमृत्यूनां शुद्ध्यर्थं श्राद्धमुच्यते ।
कृतेन तेन येषां तु प्रदत्तमुपतिष्ठति ॥३०२

दन्ति-शृङ्गि-गर-व्याल-नीराग्नि-बन्धनैस्तथा ।
विद्युन्निर्घात-वृक्षैश्च विप्रैश्च स्वात्मना हताः ॥३०३

व्रणसञ्जातकीटैश्च म्लेच्छैश्चैव हतास्तथा ।
पापमृत्यव एवैते शुभगत्यर्थमुच्यते ॥३०४

नारायणबलिः कार्यो विधानं तस्य चोच्यते ।
ऊर्ध्वं षण्मासतः कुर्यादेके उर्ध्वं तु वत्सरात् ॥३०५

तेषां पापव्यपोहार्थं कार्यो नारायणो वलिः ।
धौतवासाः शुचिः स्नात एकादश्यामुपोषितः ॥३०६

शुक्लपक्षे तु सम्पूज्य विष्णुमीशं यमं तथा ।
नदीतीरं शुचिर्गत्वा प्रदद्याद्दश पिण्डकान् ॥३०७

क्षौद्रा-ऽऽज्य-तिलसंयुक्तान् हविषा दक्षिणामुखः ।
अभ्यर्च्य पुष्प धूपाद्यैस्तन्नाम-गोत्रपूर्वकान् ॥३०८

विष्णुध्यानमनाः कुर्यात्ततः स्तानम्भसि क्षिपेत् ।
निमन्त्रयेत विप्रांश्च पंच सप्ताऽथ वा नव ॥३०९

द्वादश्यां कुतपे स्नातान्धौतवस्त्रान्समागतान् ।
कृष्णाराधनकृद्भक्त्या पादप्रक्षालितांच्छुभान् ॥३१०

दक्षिणाप्रवणे देशे शुचिस्तानुपवेशयेत् ।
द्वौ दैवे तु त्रयः पित्र्ये प्राङ्मुखोदङ्मुखान्द्विजान् ॥३११

आसना-ऽऽवाहनार्घ्यं च कुर्यात पार्वणवद्द्विजः ।
भोजयेद्भक्ष्य-भोज्यैश्च क्षौद्रैक्षवाज्य-पायसैः ॥३१२

तृप्तान् ज्ञात्वा ततो विप्रांस्तृप्तिं पृच्छेद्यथाविधि ।
भोज्येन तिलमिश्रेण हविष्येण च तान् पुनः ॥३१३

पञ्च पिण्डान्प्रदद्याद्वै दैवं रूपमनुस्मरन् ।
विष्णु-ब्रह्म-शिवेभ्यश्च त्रींन्पिण्डांश्च यथाक्रमम् ॥३१४

यमाय सानुगायाथ चतुर्थं पिण्डमुत्सृजेत् ।
मृतं सञ्चिन्त्य मनसा गोत्र-नामकपूर्वकम् ॥३१५

विष्णुं स्मृत्वा क्षिपेत्पिण्डं पञ्चमञ्च ततः पुनः ।
दक्षिणाभिमुखश्चैव निर्वपेत्पञ्च पिण्डकान् ॥३१६

आचम्य ब्राह्मणःपश्चात्प्रोक्षणादिकमाचरेत् ।
हिरण्येन च वासोभिर्गोभिर्भूम्या च तान्द्विजान् ॥३१७

प्रणम्य शिरसा पश्चाद्विनयेन प्रसादयेत् ।
तिलोदकं करे दत्वा प्रेतं संस्मृत्य चेतसि ।
गोत्रपूर्वं क्षिपेत्पाणौ विष्णुं बुद्धौ निवेश्य च ॥३१८

बहिर्गत्वा तिलाम्भस्तु तस्मैदद्यात्समाहितः ।
मित्रभृत्यैर्निजैः सार्द्धं पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः ॥३१६

एवं विष्णुमते स्थित्वा यो दद्यात्पापमृत्यवे ।
समुद्धरति तं प्रेतं पराशरवचो यथा ॥३२०

सर्वेषां पापमृत्यूनां कार्यो नारायणो बलिः ।
तस्मादूर्ध्वं च तेभ्यो हि प्रदत्तमुपतिष्ठति ॥३२१

एवं श्राद्धैः समस्तान्यः सन्तर्पयति वै पितॄन् ।
ददत्यनुत्तमांस्तस्य पितरस्तर्पिता वरान् ॥३२२

विद्या-तपोसुखान्पुत्रान्पूज्यत्वमथ योषितः ।
सौभाग्यैश्वर्य-तेजश्च बलं श्रैष्ठ्यमरोगताम् ॥३२३

यशः शुचित्वं कुप्यानि सिद्धिं चैवात्मवाञ्छिताम् ।
यशश्च दीर्घमायुश्च तथैवानुत्तमां मतिम् ॥३२४

अथान्यत्किञ्चिदाख्यामि पितृणां तु हिताय वै ।
कृतेन स्वल्पकेनापि प्राप्नुवन्ति विधेः फलम् ॥३२५

उच्छिष्टस्य विसर्गार्थं विधिस्तात्कालिको हि यः ।
श्राद्धज्ञैर्विहितं यत्प्राक् पितॄणां हितकाङ्क्षिभिः ॥३२६

आदाय सर्वमुच्छिष्टमवनेजनवद्बुधः ।
तत्रैव निक्षिपेत् भूमौ तिल-दर्भसमन्वितम् ॥३२७

नरकेषु गता ये वै अपमृत्युमृता मम ।
एतदाप्यायनं तेषां चिरायास्त्विवति चोच्चरेत् ॥३२८

करस्य मध्यतो देवाः करपृष्ठेतु राक्षसाः ।
पात्रस्यालम्भनादौ च तस्मात्तं न प्रदर्शयेत् ॥३२९

दर्भाश्च स्वयमानेया दक्षिणाप्रवणोद्भवाः ।
तर्पणाद्युज्झिता ये वै इत्याद्यांश्च विवर्जयेत् ॥३३०

न कुशं कुशमित्याहुर्दर्भमूलं कुशः स्मृतः ।
छिन्ना दर्भा इति प्रोक्तास्तदग्रं कुतपः स्मृतः ॥३३१

हरिता यज्ञिया दर्भाः पीतकाः पाकयाज्ञिकाः ।
सकुशाः पितृदैवत्याच्छिन्ना वै वैश्वदैविकाः ॥३३२

दर्भमूले स्थितो ब्रह्मा दर्भमध्ये जनार्दनः ।
दर्भाग्रे शङ्करस्तस्थौ दर्भा देवत्रयान्विताः ॥३३३

अहन्येकादशे श्राद्धे प्रतिमासं तु वत्सरम् ।
प्रति संवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं तु सर्वदा ॥३३४

एकस्य प्रथमं श्राद्धमर्वागब्दाच्च मासिकम् ।
प्रतिसंवत्सरं चैव शेषं त्रिपुरुषं स्मृतम् ॥३३५

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतैः ।
माता-पित्रोः पृथक्कार्यमेकोद्दिष्टं क्षयाहनि ॥३३६

सपिण्डिकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं द्विजः ।
एकोद्दिष्टं प्रकुर्वीत पित्रोरप्यत्र पार्वणम् ॥३३७

चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणे कृते ।
एकोद्दिष्टविधानेन तत्कुर्याच्छस्त्रपातिते ॥३३८

पित्रादयस्त्रयो यस्य शस्त्रपातास्त्वनुक्रमात् ।
सम्भूतैः पार्वणं कुर्यादष्टकानि पृथक् पृथक् ॥३३९

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पितुर्यः प्रपितामहः ।
स तु लेपभुगित्येव प्रलुप्तः पितृपिण्डतः ॥३४०

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं कुर्यात्पार्वणवत्सदा ।
प्रतिसंवत्सरं विद्वच्छागलेयो विधिः स्मृतः ॥३४१

सपिण्डता तु कर्तव्या पितुः पुत्रैः पृथक् पृथक् ।
स्वाधिकारप्रवृत्तत्वादितरः श्राद्धकर्तृवत् ॥३४२

तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं वा परपन्थिकम् ।
सपिण्डीकरणे कुर्यादकृते तु निवर्तते ॥३४३

यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं भवेत् ।
प्रतिमासं तस्य कुर्यात् प्रतिसंवत्सरं तथा ॥३४४

अर्वाक् संवत्सराद्वृद्धौ पूर्णे संवत्सरेऽपि च ।
ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तु तेषां पृथक्क्रिया ॥३४५

एकपिण्डीकृतानां तु पृथक्त्वं नोपपद्यते।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं मृते कृष्णचतुर्दशीम् ॥३४६

अर्वाक्संवत्सरादूर्ध्वं मृते कृष्णचतुर्दशीम्।
ये सपिण्डीकृतास्तेषां पृथक्त्वेनोपपद्यते।
पृथक्त्वकरणे तस्य पुनः कार्या सपिण्डता ॥३४७

स्त्रियं श्वश्र्वा पतिर्मात्रा तयासह सपिण्डयेत्।
तत्सद्भावे पितामह्या तन्मात्रा चापरे विदुः ॥३४८

नान्यथा तु पितामह्या मातामह्यास्तथाऽपरे।
उदकं पिण्डदानं च सहभर्त्रा प्रदीयते ॥३४९

अपुत्रा ये मृताः केचित्स्त्रियो वा पुरुषाऽपि वा।
तेषामपि च देयं स्यादेकोद्दिष्टं च पार्वणम् ॥३५०

अपुत्राश्च मृता ये च कुमाराः संस्कृता अपि।
तेषां समानता न स्यान्न स्वधा नाभिरम्यताम् ॥३५१

भर्त्रा सपिण्डता स्त्रीणां कार्येति कवयो विदुः।
स्वस्रा सहापरे तस्यास्तन्मात्रा चापरे विदुः ॥३५२

अनपत्येषु प्रेतेषु न स्वधा नाभिरम्यताम्।
एकोद्दिष्टेषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् ॥३५३

मित्र-बन्धु-सपिण्डेभ्यः स्त्री-कुमारस्य चैवहि।
दद्याद्धै मासिकं श्राद्धं संवत्सरं तु नान्यथा ॥३५४

अप्रत्ययगतश्चैव कुल-देशव्यवस्थया।
यो यथा क्रियया युक्तः स तयैव हि निर्वपेत् ॥३५५

दार्ढ्यार्थं दृश्यते रूढिर्मानवं लिङ्गमेव च ।
दृढीकृत्वा च विद्वद्भिर्लोकरूढिर्गरीयसी ॥३५६

विकल्पेषु च सर्वेषु स्वयमेकैकमादितः ।
अङ्गीकरोति यं कर्ता स विधिस्य नेतरः ॥३५७

बहून् हि याजयेद्यस्तु वर्णवाह्यांश्च नित्यशः ।
म्लेच्छांश्च शौण्डिकांश्चैव स विप्रो बहुयाजकः ॥३५८

यश्च धैर्येण दुष्टात्मा गो-सुवर्णापहारकः ।
सङ्गृहीतासवर्णस्त्रिः स विप्रो गण उच्यते ॥३५६

वर्तते यश्च चौर्येण सुवर्णेनोपहारकः ।
सङ्ग्रहीतसवर्णस्त्रि स विप्रो गौण उच्यते ॥३६०

मृते भर्तरि या नारी रहस्यं कुरुते पतिम् ।
तस्य वैस्रावयेद्गर्भं सा नारी गणिका स्मृता ॥३६१

अन्यदत्ता तु या कन्या पुनरन्यत्र दीयते ।
अपि तस्या न भोक्तव्यं पुनर्भूः सा प्रकीर्तिता ॥३६२

कौमारं पतिमुत्सृज्य यात्वन्यं पुरुषं श्रिता ।
पुनः पत्युर्गृहं गच्छेत्पुनर्भूः सा द्वितीयका ॥३६३

असत्सु देवरेषु स्त्री बान्धवैर्या प्रदीयते ।
सवर्णाय सपिण्डाय सा पुनर्भूस्तृतीयका ॥३६४

प्राप्ते द्वादश वर्षेऽत्र या रजो न बिभर्ति हि ।
धारितं तु तया रेतो रेतोधाः सा प्रकीर्तिता ॥३६५

या भर्तुर्व्यभिचारेण कामं चरति नित्यशः ।
तस्या अपि न भोक्तव्यं सा भवेत्कामचारिणी ॥३६६

पतिं हित्वा तु या नारी गृहादन्यत्र गच्छति।
वरेषु रमते नित्यं स्वैरिणी सा प्रकीर्तिता ॥३६७

भर्तुः शासनमुल्लंघ्य स्वकामेन प्रवर्तते।
दीव्यन्ती च हसन्ती च सा भवेत्कामचारिणी ॥३६८

पतिं विहाय या नारी सवर्णमन्यमाश्रयेत्।
वर्तते ब्राह्मणत्वेन द्वितीया स्वैरिणी तु सा ॥३६९

मृते भर्तरि या याति क्षुत्पिपासातुरा परम्।
तवाहमिति सम्भाष्य तृतीया स्वैरिणी तु सा ॥३७०

देश-कालाद्यपेक्ष्यैव गुरुभिर्या प्रदीयते।
उत्पन्नसाहसाऽन्यस्मै चतुर्थी स्वैरिणी तु सा ॥३७१

आसु पुत्रास्तु ये जाता वर्ज्यास्ते हव्य-कव्ययोः।
तथैव पतयस्तासां वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥३७२

श्राद्धं तैश्च न कर्तव्यं प्रतिलोमविधानतः।
वैश्वश्राद्धं पितृश्राद्धं प्रतिलोमविधानतः।
वर्णाश्रमवहिःस्थास्ते संकीर्णजन्मसम्भवाः ॥३७३

मातॄणां च पितॄणां च स्वीयानां पिण्डदाः स्मृताः।
उपपतिसुतो यस्तु यश्चैव दीधिषूपतिः ॥३७४

परपूर्वपतेर्जाताः सर्वे वर्ज्याः प्रयत्नतः।
अजापालादिजाताश्च विशेषेण तु वर्जयेत् ॥३७५

मृतानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात्।
इतरेषु च वर्णेषु तपः परममुच्यते ॥३७६

भर्तुश्चित्यां समारोहेद्या च नारी पतिव्रता।
अहन्येकादशे प्राप्ते पृथक्पिण्डे नियोजयेत् ॥३७७
श्रौतैश्च स्मार्तमंत्रैश्च दम्पत्यावेकतां गतौ।
एकमृत्युगतौ चैव वह्नावेकत्र तौ हुतौ ॥३७८
एकत्वं च तयोर्यस्माज्जातमाद्यावसानिकम्।
एकादशाहिकं श्राद्धमेकमेव स्मृतं बुधैः ॥३७९
आरुह्य भर्तुश्चितिमंगना या प्राप्नोति मृत्युं बहु सत्वयुक्ता।
एकादशाहे तु तयोर्विधेयं श्राद्धं पृथक्स्वर्गमपेक्ष्य सद्भिः ॥३८०
एकत्वमिच्छन्ति पतिप्रहीणा एकादशाहादिषु ये नृनार्यः।
ते स्वर्गमार्गं विनिहत्य कुर्युः स्त्रीसत्वघातान्नरकेऽधिवासम् ॥३८१
समानमृत्युना यस्तु मृतो भर्ता च योषिताम्।
तस्याः सपिण्डता तेन पिण्डमेकत्र निर्वपेत् ३८२
स्त्रीपात्रं पतिपात्रे तु सिंचयेदेकमेव हि।
श्राद्धे त्रिपुरुषे त्रीणि तत्प्रत्यक्षं पितॄन्प्रति ॥३८३
पत्या सह परासुत्वात्तेनैवास्याः सपिण्डता।
पितामह्यापि चान्यत्र ह्येतदाह पराशरः ॥३८४
अन्यप्रीतौ न चान्यस्य तृप्तिः कुत्रापि दृश्यते।
एवं धीमानमुत्रापि तस्मान्नैकत्वमाश्रयेत् ॥३८५
एकत्वाश्रयणे धर्मो नार्या लुप्तो भवेद्ध्रुवम्।
तस्याः सुकृतसामर्थ्यात्पत्युः स्वर्गमिहेष्यते ॥३८६
भर्त्रा सह मृता या तु नाकलोकमभीप्सती।
साऽऽद्यश्राद्धे पृथक्पिण्डा नैकत्वं तु बुधैः स्मृतम् ॥३८७

पतिमृत्युः स्त्रियो मृत्युर्निमित्तमेव जायते ।
निर्निमित्तो न वैमृत्युर्मृत्युना चैकता भवेत् ॥३८८

भर्त्रासह मृता भार्या भर्तारं सा समुद्धरेत् ।
तस्याः पतिव्रताधर्मः पिण्डैक्येन हतो भवेत् ॥३८९

बलीयस्त्वेन धर्मस्य तुच्छत्वाच्चागसस्तथा ।
धर्मेण लुप्यते पापमेकत्वे समता तयोः ॥३९०

नैकत्वं तु तयोरस्माद्धक्तव्यं श्राद्धकर्मणि ।
पृथगेवहि कर्तव्यं श्राद्धमेकादशाहिकम् ॥३९१

यानि श्राद्धानि कार्याणि तान्युक्तानि पृथक् पृथक् ।
कर्तव्यं यैस्तु तेऽप्युक्ता विशेषं च निबोधत ॥३९२

औरसाद्याः स्मृताः पुत्रा मुनिभिर्द्वादशैव तु ।
यथा जात्यनुसारेण वर्णानामनुसारतः ॥३९३

पिण्डप्रदाः क्रमेण स्युः पूर्वाभावे परः परः ।
यस्माद्यो जायते पुत्रः स भवेत्तस्य पिण्डदः ॥३९४

तस्मात्तस्मादपीहन्ते मृताः प्रेतत्वमागताः ।
तस्मादवश्यमेवं हि श्राद्धं कार्यं विधानतः ॥३९५

शूद्रस्य दासिजः पुत्रः कामतस्तु स पिण्डदः ।
जात्या जातः सुतो मातुः पिण्डदः स्यात्सुतोऽपि च॥३९६

जनकस्य न किञ्चित्स्यादर्थात्कामप्रवर्तनात् ।
वायुभूताश्च पितरो दत्ताभिकांक्षिणः सदा ।
तस्मात्तेभ्यः सदा देयं नृभिर्धर्मरतैः सदा ॥३९७

ये खाण्ड-मांस-मधु-पायस-सर्पिरन्नैर्-
देशे च कालसहिते च सुपात्रदत्तैः।
प्रीणन्ति देव-मनुजान्पितृवंशजातान्
तेषां नृणां तु पितरो वरदा भवन्ति ॥३६८
मया श्राद्धविधिः प्रोक्तो वर्णानां पितृतृप्तिकृत्।
एवं दास्यति यः श्राद्धं वरान्सर्वानवाप्स्यति ॥३६६

इति श्रीवृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां संहितायां श्राद्धाधिकारो नाम सप्तमोऽध्यायः समाप्तः।

—:❀::❀:—

अष्टमोऽध्यायः

॥ अथ शुद्धिवर्णनम् ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शुद्धिं पराशरोदिताम्।
सूतके वाप्यशौचे वा यथावत्तां निबोधत ॥१
प्रसवं सूतकं प्राहुरशौचं शावमुच्यते।
यावत्कालं च यन्मात्रं तथा तावन्निगद्यते ॥२
केषां चित्तेन वै मासं केषां चिन्मरणान्तिकम्।
सद्यः शौचास्तथा चान्ये अन्ये चैकाहिकाः स्मृताः ॥३
त्रि-षट्-दश-दशद्वाभ्यां दशापि सह पञ्चभिः।
तान्येव त्रिगुणान्याहुर्दिनान्येव मनीषिणः ॥४

वक्ष्यमाणं निबोधध्वमुक्तक्रममिदं द्विजाः ।
शक्तिजो यन्मुनीनां च प्राग् ब्रवीत्कलिधमवित् ॥५

विष्णुध्यानरतानां च सदैव ब्रह्मचारिणाम् ।
गृहमेधिद्विजानां तु तथैव व्रतचारिणाम् ॥६

वेदतत्वार्थवेत्तॄणां नित्यस्नानकृतां तथा ।
अतत्संसर्गिणामेषां नाशौचं नापि सूतकम् ॥७

संसर्ग वर्जयेद्यत्नात्संसर्गो दोषकारणम् ।
कुर्यान्नान्नादिसंसर्गं वर्जने स्यादकिल्विषी ॥८

वदन्ति मुनयः प्राच्याः संसर्गो दोषकारणम् ।
असंसर्गः स्वकर्मस्थो द्विजो दोषर्न लिप्यते ॥६

दानोद्वाहेष्टि-संग्रामे देशविप्लवकादिके ।
सद्यः शौचं द्विजातीनां सूतकाशौचयोरपि ॥१०

दातॄणां व्रतिनामेके कवयः सत्रिणामपि ।
सद्यः शौचसदोषाणामूचुर्धर्मविदः कलौ ॥११

सर्वमंत्रपवित्रस्तु अग्निहोत्री षडङ्गवित् ।
राजा च श्रोत्रियश्चैव सद्यः शौचाः प्रकीर्तिताः ॥१२

देशान्तरगते जाते मृते वाऽपि सगोत्रिणि ।
शेषाहानि दशाहार्वाक् सद्यः शौचमतः परम् ॥१३

सत्यप्येकनिवासे तु सद्यः शौचं विशोधनम् ।
पिण्डनिर्वर्तने जाते मृते घापि सगोत्रजे ॥१४

सद्यः शौचं विधातव्यमर्वाक् च दश जन्मनः ।
बान्धवादिषु विज्ञेयमन्यदूर्ध्वं विधीयते ॥१५

नाऽऽशौच-सूतके स्यातां नृपतीनां कदा च न ।
यज्ञकर्मप्रवृत्तस्य ऋत्विजो दीक्षितस्य च ॥१६

पृथक्पिण्डमृते बाले निर्दशेऽन्यत्र च श्रुते ।
जाते वापि च शुद्धिः स्यात्सद्यः शौचादसंशयम् ॥१७

सवेदः साग्निरेकाहाद् ब्राह्मणः शुद्धिमाप्नुयात् ।
तथैकाहो नृपे संस्थे तथैव ब्रह्मचारिणि ॥१८

दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च आपत्काल उपस्थिते ।
उपसर्गान्मृते वापि सद्यः शौचं विधीयते ॥१९

गो-विप्रार्थविपन्नाना माहवेषु तथैव च ।
ते योगिभिः समा ज्ञेया सद्यः शौचं विधीयते ॥२०

विप्रे संस्थे व्रतादर्वाक् श्रोत्रिये च तथा द्विजे ।
अनूचाने गुरौ चैव आचार्ये चापि संस्थिते ॥२१

असंस्कृतस्त्रियां राज्ञि श्रोत्रिये निधनं गते ।
त्रिरात्रमप्यशौचं स्यात्तथैवोदकदायिनः ॥२२

विद्वाननग्निको विप्रस्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् ।
मनीषिणः परे ब्रूयुरसपिण्डे अहं मृते ॥२३

प्रेतीभूतं च यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।
नियतं ह्यनुगच्छेत त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥२४

षड्रात्रं नवरात्रं च शवस्पृशां विशुद्धिकृत् ।
त्र्यहं चैव विशुद्ध्यर्थं धर्मशास्त्रविदो विदुः ॥२५

अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः ।
पदे पदे यज्ञफलमनुपूर्वं लभन्ति ते ॥२६

अशुचित्वं न तेषां तु पापं वाऽशुभकारणम् ।
जलाव-गाहनात्तेषां सद्यः शौचं विधीयते ॥२७
असगोत्रमसम्बन्धं प्रेतीभूतं तथा द्विजम् ।
ऊढ्वा दग्ध्वा द्विजाः सर्वे स्नानान्ते शुचयः स्मृताः ॥२८
एकरात्रं वदन्त्येके सद्यः स्नानं तथाऽपरे ।
गोग्राहादिमृतानां च मुनयः शुद्धिकारणम् ॥२६
हतः शूरो विपद्येत शत्रुभिर्यत्र कुत्रचित् ।
स मुक्तो यतिवत्सद्यः प्रविशेत्परवेधसि ॥३०
संन्यासो युद्धसंस्थश्च सम्मुखं शत्रुभिर्नरः ।
सूर्यमण्डलभेत्ताराविति प्राहुर्मनीषिणः ॥३१
पराङ्मुखे हते सैन्ये यो युद्धाय निवर्तते ।
तत्पदानीष्टितुल्यानि स्युरित्याह पराशरः ॥३२
वदने प्रविशेद्येषां लोहितं शिरसः पतत् ।
सोमपानेन ते तुल्या बिन्दवो रुधिरस्य वै ॥३३
सन्यासेन मृता ये वै प्रधने ये तनुत्यजः ।
मुक्तिभाजो नरास्तेस्युरिति वेदोऽपि कीर्तयेत् ॥३४
सद्यः शौचं विधातव्यं शुद्धिरेवं विधीयते ।
नोच्यन्ते ते मृता लोके सो ब्रह्मवपुर्गमाः ॥३५
सन्ध्याचारविहीनानां सूतकं ब्राह्मणे ध्रुवम् ।
अशौचं वा दशाहं स्यादिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥३६
राज्ञां तु द्वादशाहः स्यात्पक्षो वैश्यस्य पावनः !
वृषभस्य तथा मासस्त्र्यहादेष्वपि धर्मतः ॥३७

क्षपा च पक्षिणी सद्भिर्मातुलादिषु कीर्तिताः ।
गर्भस्रावे च पाते च रात्रयो माससम्मिताः ॥३८

स्रावं गर्भस्य विद्वांसो मासादर्वाक् चतुर्थकात् ।
पातमूर्ध्वं वदन्त्येके तत्राधिक्यं च सूतकम् ॥३९

ऋणि-व्यसनि-रोगार्त-पराधीन-कदर्यकाः ।
तृष्णावन्तो निराचाराः पितृ-मातृविवर्जिताः ॥४०

स्त्रीजिताश्चानपत्याश्च देव-ब्राह्मणवर्जिताः ।
परद्रव्यं जिघृक्षन्तः सद्यः सूतकिनः सदा ॥४१

सूतके मृतशौचे वा अन्यदापद्यते यदि ।
पूर्वेणैवतु शुद्ध्येत जाते जातं मृते मृतम् ॥४२

एक पिण्डाश्च दायादाः पृथक्दार-निकेतनाः ।
जन्मन्यपि मृते वापि तेषां वै सूतकं भवेत् ॥४३

भृगु-वह्नि-प्रपाते च देशान्तरमृतेषु च ।
बाले प्रेते च सन्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते ॥४४

अजातदन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिर्गताः ।
न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥४५

विवाहोत्सव-यज्ञेषु कर्तारो मृत-सूतके ।
पूर्वसंकल्पितानर्थान्भोज्यान्तानब्रवीन्मनुः ॥४६

शिल्पिनः कारुकाश्चैव दासी-दासास्तथैव च ।
इत्यादीनां न ते स्यातामनुगृह्णन्ति यान् द्विजाः ॥४७

पिता पुत्रेण जातेन दद्याच्छ्राद्धं यथाविधि ।
पितॄणां विधिवद्दानं दत्तं तत्राप्यनन्तकम् ।
तत्राप्यनन्तकं दानं कर्तव्यं पुत्रजन्मनि ॥४८

प्रसवे च द्विजातीनां न कुर्यात्सङ्करं यदि ।
दशाहाच्छुध्यते माता अवगाह्य पिता शुचिः ॥४९
अतिमानादतिक्रोधात्स्नेहाद्वा यदि वा भयात् ।
उद्बध्य म्रियते यस्तु न तस्याग्निः प्रदीयते ॥५०
न स्नायान्नोदकं दद्यान्नापि कुर्यादशौचताम् ।
सर्पेण शृंगिणा वापि जलेन चाग्निना तथा ॥५१
न स्नानादौ विपन्नस्य तथाचैवात्मघातिनः ।
अर्वाक् द्विहायनादग्निं न दद्यान्मृतकस्य च ॥५२
किन्तु तान्निखनेद्भूमौ कुर्यान्नैवोदकक्रियाम् ।
सर्पादिप्राप्तमृत्यूनां वह्निदाहादिकाः क्रियाः ॥५३
षण्मासे तु गते कार्या मुनिः प्राह पराशरः ।
शास्त्रदृष्टं बुधैः कार्यमस्थिसञ्चयनादिकम् ॥५४
तत्कृत्वा तूकदिवसैः शुद्धिमर्हति धर्मतः ।
अन्यायमृतविप्राणां ये वोढारो भवन्ति हि ॥५५
अग्निदाश्चैव ये तेषां तथोदकादिदायिनः ।
उद्बन्धनमृतस्यापि यश्छिन्द्याद्रज्जुपाशकम् ॥५६
ते सर्वे पापसंयुक्ताः प्रायश्चित्तस्य भाजनाः ॥५७

यः सूतकाशौचविशुद्धिकृत्स्याद्व्याख्याय कालं तमनुक्रमेण ।
पराशरस्यात्मजनिःसृता या वाचयास्ततो निष्कृतयो द्विजास्ते ॥५८

सूतकाशौचयोरुक्तः शुद्धिरन्थाऽनुपूर्वशः ।
सर्वेनसां विशुध्यर्थं प्राश्चित्तं यथाब्रवीन ॥५९

मनुर्वा याज्ञवल्क्यस्तु वसिष्ठः प्राह निष्कृतिम् ।
सा कृतादिषु वर्णानां सति धर्मे चतुष्पदे ॥६०

मानसा वाचिका दोषास्तथा वै कार्यकारिताः ।
धर्माधीना नृणां सर्वे जायन्ते तेऽप्यनिच्छताम् ॥६१

तेषामुपरताक्षाणां प्रत्यहं शुभमिच्छताम् ।
शक्तिजो निष्कृतिं प्राह युगधर्मानुरूपतः ॥६२

विकृतव्यवहाराणां पापो निष्कृतिकृद्द्विजः ।
कति विप्रैः कथं रूपैरिति वाच्या भवेद्धि सा ॥६३

तद्रूपं च प्रवक्ष्यामि यावद्भिः सा द्विजैर्भवेत् ।
यथाविधाश्च विप्रास्युरिति विद्वन् प्रकीर्त्यते ॥६४

पर्षद्दशावरा प्रोक्ता ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
सा यद्रूपा स धर्मः स्यात् स्वयम्भूरित्यकल्पयत् ॥६५

वेद-शास्त्रविदो विप्रा यं ब्रूयुः सप्त पंच वा ।
त्रयो वाऽपि स धर्मः स्यादेको वाऽध्यात्मवित्तमः ॥६६

संयमं नियमं वाऽपि उपवासादिकं च यत् ।
तद्गिरा परिपूर्णं स्यान्निष्कृतिर्व्यावहारिकी ॥६७

न लक्षेणापि मूर्खाणां न चैवाऽधर्मवादिनाम् ।
विदुषां नापि लुब्धानां न चापि पक्षपातिनाम् ॥६८

श्रुता-ध्ययनसम्पन्नः सत्यवादी जितेंद्रियः ।
सदा धर्मरतः शान्त एकः पर्षत्वमर्हति ॥६९

न सा वृद्धैर्न तरुणैर्न सुरूपैर्धनान्वितैः ।
त्रिभिरेकेन पर्षत् स्याद्द्विद्विर्विदुषापि च ॥७०

वयसा लघवोऽपि स्युर्वृद्धा धर्मविदो द्विजाः ।
शिशवोऽपि हि मध्यस्थाः सर्वत्र समदर्शनाः ॥७१

न सा वृद्धैर्भवेद्विप्रैर्वृद्धाः स्युर्धर्मवादिनः ।
यत्र सत्यं स धर्मः स्याच्चच्छलं यत्र न गृह्यते ॥७२

नसा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।
धर्मो वृथा यत्र न सत्यमस्ति सत्यं न तद्यन्न हृदानुविद्धम् ॥७३

निष्कृतौ व्यवहारे च व्रतस्याशंसने तथा ।
धर्मं वा यदि वाऽधर्मं परिषत्प्राह तद्भवेत् ॥७४

स्त्रीणां च बाल-वृद्धानां क्षीणानां कुशरीरिणाम् ।
उपवासाद्यशक्तानां कर्तव्योऽनुग्रहश्च तैः ॥७५

ज्ञात्वा देशं च कालं च व्ययं सामर्थ्यमेव च ।
कर्तव्योनुग्रहः सद्भिर्मुनिभिः परिकीर्तितः ॥७६

लोभान्मोहाद्भयान्मैत्र्याद्यपि कुर्युरनुग्रहम् ।
नरकं यान्ति ते मूढाः शतधा वाप्तवाचिनः ॥७७

प्रविश्य पर्षदं ते वै सभ्यानामग्रतः स्थिताः ।
यथाकालं प्रकुर्युस्ते प्रायश्चित्तं तदीरितम् ॥७८

किन्त्वयं याचते देवा वदन्तोऽत्र द्विजातयः ।
सर्वं कुर्वन्ति नियमं गतपातं न संशयः ॥७९

प्रसादो द्विविधो ज्ञेयो दैव्यश्चासुर एव च ।
क्रीडयापि च तत्रैव देया तथ्य ते द्विजाः ॥८०

व्यवहारे गोसमैस्तु प्रब्रूयाद्वापि दैवत ।
यथाकृतं च तत्पापं तत्तथैव निवेदयेत् ॥८१

यस्तेषामन्यथा ब्रूयात्स पापीयान्न संशयः।
सत्यमसत्यमेवात्र विपर्यस्तं वदेद्यतः ॥८२

स एवानृतवादी स्यात्सोऽनन्तं नरकं व्रजेत्।
ज्योतिषं व्यवहारं च प्रायश्चित्तं चिकित्सितम् ॥८३

अजानन् यो नरो ब्रूयात्साहसं किमतः परम् ?।
व्यवहारश्च तैः प्रोक्तो मन्वाद्यैर्धर्मवादिभिः ॥८४

प्रजाभिर्नतु सर्वाभिर्मान्यैश्चैव तु मानवैः।
तच्छोधकप्रमाणानि लिखितादीनि तैर्विना ॥८५

जलादीनि च दिव्यानि साक्ष्योक्तशपथानि च।
अन्ये जनपदाचारा कुलधर्मस्तथापरः।
परिषद्ब्राह्मणैर्मध्या निर्णतव्या यथाविधि ॥८६

जन्मजात्यनुसारेग देश-कालादिधर्मतः।
कर्तव्यः सत्तमैः सर्वैर्माननीयश्च वादिभिः ॥८७

गो-ब्राह्मणहतादीनां तथा दम्भादिकारिणाम्।
तप्तकृच्छ्रेण शुद्धि स्यादिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥८८

भोजयेद्ब्राह्मणान्पश्चात्सवृषा गौश्च दक्षिणा।
जायन्ते पापनिर्मुक्ताः शक्तिसूनोर्यथा वचः ॥८९

अनाशकान्निवृत्ता ये ब्रह्मचर्यात्तथा द्विजाः।
बैडालिकास्ते विज्ञेयाः सर्वधर्मविवर्जिताः ॥९०

सर्वत्र प्रावशन्तो ये ये च बैडालिकैः समाः।
तेषां सर्वाण्यपत्यानि पुल्कसैः सह पातयेत् ॥९१

स्त्रीणां च बाल-वृद्धानां क्षयीणां कुशरीरिणाम्।
उपवासाद्यशक्तानां कर्तव्योऽनुग्रहश्च तैः ॥९२
ज्ञात्वा देशं च कालं च वयः सामर्थ्यमेव च।
कर्तव्योऽनुग्रहः सद्भिर्मुनिभिः परिकीर्तितः ॥९३
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी गुर्वङ्गनागमः।
एतेषां निष्कृतिं ब्रूयादेतत्संसर्गिणामपि ॥९४
द्वादशाब्दं च विचरेत् ब्रह्मघ्नस्तत्कपालधृक्।
सर्वत्र ख्यापयन्कर्म भिक्षां विप्रेषु संचरन् ॥९५
दृष्ट्वा सेतुं समुद्रस्य स्नात्वा वै लवणांभसि।
ब्राह्मणेषु चरन् भिक्षां स्वकर्म ख्यापयन्छुचिः ॥९६
मुण्डितस्तु शिखावर्ज्यः सकौपीनो निराश्रयः।
चीर चीवरवासा वै त्रिः स्नायी सन् शुचिर्व्रती ॥९७
संयताक्षश्चरेच्छ्रान्तश्छत्रोपानद्विवर्जितः।
ब्रह्मघ्नोऽस्मीत्यहं वाचमिति सर्वत्र वै वदेत् ॥९८
गवां च विंशतिं दद्याद्दक्षिणां वृषसंयुताम्।
ब्राह्मणेभ्यो निवेद्यैताः शुचिराख्याय भूपतेः ॥९९
पूर्वोक्तप्रत्यवायानां प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम्।
ब्राह्मणानां प्रसादेन तीर्थेषु गमनेन च ॥१००
गोशतस्य प्रदानेन शुध्यन्ति नात्र संशयः।
अवभृथेऽश्वमेधस्य स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥१०१
आख्याय नृपतेर्वाऽपि तेन संशोधितः शुचिः।
महापापानि सर्वाणि कथयित्वा महीपतेः ॥१०२

निष्कृतिं तद्गिरा दद्यादन्यथा तेऽपि तत्समाः।
रोगार्ताङ्गं द्विजं वापि मार्गे खेदसमन्वितम्।
दृष्ट्वा कृत्वा निरातंकं ब्रह्मघ्नः शुद्धिमाप्नुयात् १०३
असंख्यातं धनं दत्त्वा विप्रेभ्यो वापि शुध्यति।
अरण्ये निर्जने जप्त्वा शुध्येद्वै वेदसंहिताम् ॥१०४
सुरापस्य प्रवक्ष्यामि निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ।
सुरापस्तु सुरां तप्तां पयो वा जलमेव वा ॥१०५
तप्तं गोमूत्रमाज्यं वा मृतः पीत्वा विशुध्यति।
जटी वा चैलवासी वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥१०६
यद्यज्ञानात् पिबेद्विप्रो द्विजातिर्वा सुरां पुनः।
पुनः संस्कारकरणाच्छुद्ध्येयदाह पराशरः ॥१०७
स्तेयं कृत्वा सुवर्णस्य शुद्ध्यै सर्वं द्विजातये।
समर्प्य, मुसलं राज्ञे ख्यापयेत्स्तेयकर्मकृत् ॥१०८
शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव च।
खादिरं लगुडं वापि हन्यादेकेन तं नृपः ॥१०६
जीवन्नपि भवेच्छुद्धो मुक्तो वा तेन पाप्मना।
मृतश्चेत्प्रेत्य संशुध्येदिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥११०
अयः प्रतिकृतिं कृत्वा वह्निवर्णां च तां धमेत्।
गुर्वंगनागमं तस्यां लोहमय्यां तु शाययेत् ॥१११
वृषणौ पुनरुत्कृत्य नैर्ऋत्यामुत्सृजेत्तनुम्।
स मृतः शुद्धिमाप्नोति नान्यतस्तस्य निष्कृतिः ॥११२

संवत्सरं चरेत् कृच्छ्रं प्रजापत्यमथापि वा।
चान्द्रायणं चरेद्वापि त्रीन्मासान् नियतेंद्रियः ॥११३

व्रते तु क्रियमाणे वै विपत्तिः स्यात्कथंचन।
स मृतोऽपि भवेच्छुद्ध इति धर्मविनिर्णयः ॥११४

अनिर्दिष्टस्य पापस्य तथोपपातकस्य च।
तच्छुध्यैपावनं कुर्याचांद्रं व्रतं समाहितः ॥११५

तिष्ठेन्मासं पयोऽशित्वा पराकं वा चरेद्व्रतम्।
अनिर्दिष्टस्य पापस्य शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ॥११६

ब्राह्मणः क्षत्रियं हत्वा गवां दद्यात्सहस्रकम्।
वृषेणैकेन संयुक्तं पापादस्मात्प्रमुच्यते ॥११७

त्रीणि वर्षाणि शुद्ध्यर्थं ब्रह्मघ्नस्य व्रतं चरेत्।
चान्द्रायणानि वा त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि वाऽऽचरेत् ॥११८

वैश्यं हत्वा द्विजश्चैवमब्दमेकं व्रतं चरेत्।
गवां ह्येकशतं दद्याच्चरेच्चान्द्रायणानि च ॥११९

कृच्छ्राणि त्रीणि वा कुर्याद्वचनाद्विदुषामसौ।
ये हन्युरप्रदुष्टां स्त्रीं चातुर्वर्णां द्विजातयः।
शूद्रहत्या व्रतं ते तु चरन्तः शुद्धिमाप्नुयुः ॥१२०

शूद्रां ये चानुलोम्येन निहन्त्यव्यभिचारिणीम्।
मुनयः शुद्धिमिच्छन्ति चन्द्रव्रतेन केचन ॥१२१

व्यभिचारात्तु ते हत्वा योषितो ब्राह्मणादयः।
तिलधेनुं बस्तमविं क्रमाद्दद्युर्विशुद्धये ॥१२२

साध्वीनां तु नरो दत्वा गवां चैव सहस्रकम् ।
चीर्णेन शुद्धिमाप्नोति योषाहत्याव्रतं चरेत् ॥१२३

अथ गोघ्नस्य वक्ष्यामि निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ।
यथा यथा विपत्तिः स्याद्गवां तथोपपद्यते ॥१२४

गोघाती पंचगव्याशी गोष्ठशायी च गोनुगः ।
मासमेकं व्रतं चीर्त्वा गोप्रदानेन शुद्ध्यति ॥१२५

एकपादे तु लोमानि द्वये श्मश्रुनिकृन्तनम् ।
पादत्रये शिखावर्जं सशिखं तु निपातने ॥१२६

सशिखं वपनं कृत्वा द्विसन्ध्यमवगाहनम् ।
गवां मध्ये वसेद्रात्रौ दिवा गाः समनुव्रजेत् ॥१२७

तिष्ठन्तीभिश्च तिष्ठेत व्रजन्तीभिःसह व्रजेत् ।
पिबन्तीभिः पिबेत्तोयं संविशन्तीभिश्च संविशेत् ॥१२८

शृंग-कर्णादिसंयुक्तं चर्मोत्कृत्य तदावृतः ।
विप्रौकःसु चरेद्भिक्षां स्वकर्म ख्यापयन्व्रती ॥१२६

गौघ्नस्य देहि मे भिक्षामिति वाचमुदीरयेत् ।
मासमेकं व्रतं कृत्वा गोप्रदानेन शुद्ध्यति ॥१३०

चौर व्याघ्रादिकेभ्यश्च सर्वप्राणैः समुद्धरेत् ।
गर्तप्रपात-पंकाच्च तथान्यादपकारतः ॥१३१

भोजयेद्ब्राह्मणान्पश्चात्पुष्प धूपादिपूर्वकम् ।
दद्याद्गां च वृषं चैकं ततः शुद्ध्यति किल्बिषात् ॥१३२

मुनयः केचिदिच्छन्ति विचित्रासु विपत्तिषु ।
यथासम्भवतस्तासु पृथक् पृथक् विनिष्कृतिम् ॥१३३

शस्त्र-वस्त्राश्म-मृत्पिण्ड यष्टि-मुष्टि-प्रधावनम् ।
योक्त्रेण तारणं रोधो बन्धनं विद्युदग्नयः ॥१३४

ग्रह-पङ्क-प्रपातश्च वद्धव्याघ्रादिभक्षणम् ।
क्षुत्तृट्-रोगचिकित्सा च तथाऽतिदोह-वाहने ॥१३५

मृत्युस्थानानि चैतानि गवामति प्रधावनम् ।
प्रब्रूयात्पृथगेतेषु प्रायश्चित्तं पराशरः ॥१३६

उपेक्षणं च पङ्कादौ तथोपविषभक्षणे ।
वक्ष्यमाणक्रमेणैतच्छृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥१३७

शस्त्रेण त्रीणि कृच्छ्राणि तदर्धं वा समाचरेत् ।
अश्मना द्वे चरेत्कृच्छ्रे मृत्पिण्डे नापि कृच्छ्रकम् ॥१३८

यष्ट्याघाते चरेत्कृच्छ्रे साक्षान्मुष्ट्या तु तच्चरेत् ।
योक्त्रेण पादमेकं तु तारणे पादमेव च ॥१३९

रोधने कृच्छ्रपादे द्वे कृच्छ्रमेकं तु बन्धने ।
कूपपाते चरेत्कृच्छ्रमर्धं वाप्यां समाचरेत् ॥१४०

गोशत्कृत्पिण्डघाते च प्राजापत्यं चरेद्द्विजः ।
क्षुत्तृड्रोगचिकित्सासु कृच्छ्रमुत्प्रेक्षणे चरेत् ॥१४१

पतितां पङ्कलग्नां वा अवलिप्तां च यो नरः ।
स्वस्य चान्यस्य चोपेक्ष्य सार्धं कृच्छ्रं चरेच्छुचिः ॥१४२

एका चेद्बहुभिर्बद्धा क्ष्वेडिता चेन्म्रियेत गौः ।
पादं पादं चरेयुस्ते इति पाराशरोऽब्रवीत् ॥१४३

सुबद्धां येऽवलिप्ताङ्गां पश्यन्तो नोपकुर्वते ।
घातनोत्प्रेक्षणं प्रोक्तं चरेयुस्ते व्रतं नराः ॥१४४

या गर्तादौ विपद्येत क्ष्वेडिता सम्प्रपत्य वा।
पादे क्ष्वेडितयोरुक्तं तत्कर्ता व्रतमाचरेत् ॥१४५

प्रबद्धा रज्जुदोषेण गोर्विपद्येत यस्य सः।
व्रतपादं चरेच्छुद्ध्यै किंचिद्दद्याच्च दक्षिणाम् ॥१४६

योगामपालयन् दुह्यादति वा वाहयेद्वृषम्।
यदि म्रियेत तद्दोषात्तदा कृच्छार्द्धमाचरेत् ॥१४७

घासं यो न क्षुधार्तस्य तृषार्तस्य न वा जलम्।
स्वीकृतस्य न चेद्द्यात्स तत्पादव्रतं चरेत् ॥१४८

या तु बद्धा चिकित्सार्थं विशल्यकरणाय च।
औषधादिप्रदानाय विपत्तौ नास्ति पातकम् ॥१४९

विद्युत्पातादि—दाहाभ्यां कुण्डस्य पतनादिभिः।
गोभिर्विपत्तिमापन्नैस्तत्र दोषो न विद्यते ॥१५०

पालयन्पश्यतोऽरण्ये गौस्तु व्याघ्रादिभिर्हता।
अकुर्वतः प्रतीकारं कृच्छ्रार्धं तस्य पावनम् ॥१५१

शृण्वन् शून्येषु पालेषु तथान्यारण्यगामिषु।
पाले संभाषयत्युच्चैर्हन्यात्तत्र न दोषभाक् ॥१५२

गर्भिणी गर्भशल्या तु तद्गर्भं तु विशल्यतः।
यत्नतो गौर्विपद्येत तत्र दोषो न विद्यते ॥१५३

गर्भस्य पातने पादं द्वौ पादौ गात्रसंभवे।
पादोनं व्रतमाचष्टे हत्वा गर्भमचेतनम् ॥१५४

अङ्ग प्रत्यंगभूतेन तद्गर्भे चेतनान्विते।
द्विगुणं गोव्रतं कुर्यादेषा गोघ्नस्य निष्कृतिः ॥१५५

वत्साद्युत्त्रासने गोश्च गलदामकदोषतः।
पादयोर्बंधने चैव पादोनं व्रतमाचरेत् ॥१५६
घण्टाभरणदोषेण गौश्चेद्वंधमवाप्नुयात्।
चरेदर्धं व्रतं तत्र भूषणार्थं च यत्कृतम् ॥१५७
गोविपत्ति–बधाशङ्की कुर्याद्यो नैव निष्कृतिम्।
सतद्रोरोमतुल्यानि नरकाण्याविशेत्समाः ॥१५८
यःस्नात्वा पापसम्भीत विप्रारा ग्नतत्परः।
तद्वक्तां निष्कृतिं कुर्याद्व्रतैनाः सोऽश्नुते शुभम ॥१५९
अन्यत्प्राणिवधस्याथ प्रवक्ष्यामि विशोधनम्।
गजादिवधशुद्ध्यर्थं यद्व्रतं या च दक्षिणा ॥१६०
हस्तिनं तुरगं हत्वा वृषभं खरमेव च।
वृषान्यं वा शतगुणं वृषं दद्याद्यथाक्रमम् ॥१६१
क्षणाद्रोनिष्क्रयं कृत्वा परगोवधकृन्नरः।
तस्याथ निष्कृतिं कुर्याद्वधशुद्धिमपेक्षया ॥१६२
हंसं श्येनं कपिं गृध्रं जल-स्थलशिखण्डिनम्।
भासं च हत्वा स्युर्गावः शुद्ध्यै देयाः पृथक् पृथक् ॥१६३
हंस-सारस-चक्राह्व-मयूर-मद्गु-कुक्कुटान्।
आटी-पारावत-क्रौंच-शुकहा नक्तभोजनात् ॥१६४
मेषा-ऽजघ्नो वृषं दद्यात्प्रत्येकं शुद्धये द्विजः।
मनीषिणो वदन्त्येनां प्राणिनां वधनिष्कृतिम् ॥१६५
क्रौंच-सारस-हंसादिशिखि-सारसकुक्कुटान्।
शुक-टिट्टिभसंवघ्नो नक्ताशी बकहा शुचिः ॥१६६

पारावत-कपोतघ्नः सारि-तित्तिर-चाषहा।
त्रिसंध्यांतर्जले प्राणानायम्य स्याच्छुचिर्द्विजः ॥१६७

काकं गृध्रं च श्येनं च अन्यं क्रव्यादपक्षिणम्।
हत्वा स्यादुपवासेन शुद्धिमाह पराशरः ॥१६८

मार्जारं मूषकं सर्पं हत्वाऽजगर-डिण्डिभौ।
शर्कराभोजनं दण्डमायसं च ददन् शुचिः ॥१६९

मेषं च शशकं गोधां हत्वा कूर्मं च शल्लकम्।
वार्ताकं गृंजनं जग्ध्वा ऽहोरात्रोपोषणाच्छुचिः ॥१७०

वृकं च जंबुकं हत्वा तरक्षर्क्षौ तथा द्विजः।
त्रिरात्रोपोषितः शुद्ध्येत्तिलप्रस्थप्रदानतः ॥१७१

द्विजः शाखामृगं हत्वा सिंहं चित्रकमेव च।
कृत्वा सप्तोपवासान्स दद्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥१७२

महिषोष्ट्रगजाऽश्वानां हत्वा चान्यतमं द्विजः।
त्रिः स्नात्वा चोपवासेन शुद्धः स्याद्द्विजपूजनात् ॥१७३

वराहं यदि वा रोहं हत्वा मृगमकामतः।
अफालकृष्टभोजी सन् नक्तेनैकेन शुद्ध्यति ॥१७४

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि अस्पृश्यस्पर्शनादिषु।
अभक्ष्यभक्षणादौ च निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ॥१७५

उदक्या ब्राह्मणी स्पृष्ट्वा मातंगपतितेन च।
चान्द्रायणेन शुद्ध्येत द्विजानां भोजनेन च ॥१७६

कापालिकादिकां नारीं गत्वाऽगम्यां तथा पराम्।
भुक्त्वा विप्रस्तद्दिनं स्याच्छुद्धिःचंद्रव्रतेन तु ॥१७७

कामतस्तु द्विजः कुर्यादुक्तस्त्रीगमनं यदि ।
चंद्रव्रतद्वयं शुध्यै प्राह पाराशरो मुनिः ॥१७८

दुग्धं सलवणं सक्तून् सदुग्धान्निशि सामिषान् ।
दन्तच्छिन्नान्सकृद्दंतान्पृथक् पीतजलानि च ॥१७९

योऽद्यादुच्छिष्टमाज्यं तु पीतशेषं जलं पिवेत् ।
एकैकशो विशुद्ध्यर्थं विप्रः चंद्रव्रतं चरेत् ॥१८०

वासांसि धावतो यत्र पतन्ति जलविन्दवः ।
तदपुण्यं जलस्थानं नरकस्य शिलान्तिकम् ॥१८१

तत्र पीत्वा जलं विप्रः श्रान्तस्तृट्परिपीडितः ।
तदेनसो विशुद्ध्यर्थं कुर्याचान्द्रायणं व्रतम् ॥१८२

नटीं शैलूषिकीं चैव रजकीं वेणुवादिनीम् ।
गत्वा चान्द्रायणं कुर्यात्तथाचर्मोपजीविनीम् ॥१८३

गां नृपं चैव वैश्यं च शूद्रं वाप्यनुलोमजम् ।
क्षत्रियादिस्त्रियं गत्वा विप्रश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१८४

ब्राह्मणान्नं ददच्छूद्रः शूद्रान्नं ब्राह्मणो ददन् ।
द्वावप्येतावभोज्यान्नौ चरेतां शशिनो व्रतम् ॥१८५

विप्रेणामंत्रितोऽविप्रः शूद्राहूतश्च योऽश्नुते ।
आमंत्रयितृ-भोक्तारौ शुद्ध्येतामैन्दवेन तु ॥१८६

सामानार्षां च यो गच्छन्मात्रा सह सगोत्रजाम ।
मातुलस्य सुतां चैव विप्रश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१८७

पीतशेषं जलं पीत्वा भुक्तशेषं तथा घृतम् ।
अत्त्वा मूत्र-पुरीषे तु द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१८८

सूनिहस्ताच्च गोमांसमन्यामध्यमकामतः।
पीत्वा चंद्रव्रतं कुर्यात्पावनं शुद्धिदं परम् ॥१८९
साग्निः सत्पंचयज्ञान्यो न कुर्वीत द्विजाधमः।
परपाकरतो नित्यं आत्मपाकविवर्जितः ॥१९०
अदाता च सदा लुब्धः श्वपचः परिकीर्तितः।
यो द्विजोऽस्यान्नमश्नाति स कुर्यादैन्दवं व्रतम् ॥१९१
गणिका-गणयोरन्नं यदन्नं बहुयाजकम्।
सीमान्तोन्नयने भुक्त्वा द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१९२
अजानन् सम्यगश्नीयात्पुत्रजन्मनि यो द्विजः।
सोऽभक्ष्यसममश्नाति द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१९३
महापातकिनामान्नं योद्यादज्ञानतो द्विजः।
अज्ञानात्तप्तकृच्छ्रं तु ज्ञानाच्चान्द्रायणं चरेत् ॥१९४
प्रपात-विष-वह्न्यम्बु-प्रव्रज्योद्बन्धनाशकात्।
च्युतो हतश्च हंता च प्रत्यवासनिकाः स्मृताः ॥१९५
केचिदेतद्विशुद्ध्यर्थमिच्छन्ति व्रतमैन्दवम्।
दक्षिणां सवृषां गां च दद्युश्च द्विजभोजनम् ॥१९६
गृहद्वारेऽतिथौ प्राप्ते तस्यादत्वा समश्नुते।
अभोज्यमशनं तच्च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१९७
सव्यहस्तस्थिते दर्भे यो द्विजः समुपस्पृशेत्।
असृक्पानेन तुल्यं च पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१९८
भुक्त्वा शय्यागतः पीत्वा विप्रश्चान्द्रायणं चरेत्।
अभक्ष्येण समं तद्धि प्रायश्चित्तं समं भवेत् ॥१९९

आसनारूढपादः सन्वस्त्रस्यार्धमधः कृतम्।
धरामुखेन यो भुंक्ते द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥२००

उद्धृत्य वामहस्तेन यत्किंचित्पिबते द्विजः।
सुरापानेन तत्तुल्यं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥२०१

स्पृष्टेन तेन संस्नायाद्यदि तच्छृतमश्नुते।
चरन् चान्द्रायणं शुद्ध्यै त्रीणि कृच्छ्राणि वा द्विजः ।२०२

अश्नीयाद्येन स्पृष्टेन उच्छिष्टं चाश्नुते हि सः।
चरेच्चान्द्रायणं शुद्ध्यै त्रीणि कृच्छ्राणि च द्विजः ॥२०३

चान्द्रायणं नवश्राद्धे पाराको मासिके मतः।
न्यूनाब्दे पादकृच्छ्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके ॥२०४

स्नानमन्येषु कुर्वीत प्राणायामं जपं तथा।

यःस्वैरिणीनां च पुनर्भुवां च यः कामचारिद्विजयोषितां च।
रेतोधृतां पाकमनाय दद्याद्विप्रः स चंद्रव्रतकृच्छ्रुचिः स्यात् ॥

वेश्मन्यज्ञातचांडालो द्विजातेर्यदि तिष्ठति।
ब्रह्मकूर्चं चरेन्मासं त्रिः स्नायी नियतेन्द्रियः २०६

स्नेहांश्च घृततैलादीन्वस्त्राणि चासनानि च।
बहिः कृत्वा दहेद्गेहं संशुद्धो भोजयेद्द्विजान् ॥२०७

गोविंशतिं वृषं चैकं तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्।
इमं च निष्क्रयं ब्रूयुः केऽपि चांद्रायणत्रयम् ॥२०८

अल्पपापस्य शुद्ध्यर्थं चरेत्सांतपनं व्रतम्।
इमं च निष्क्रयं दद्यादित्येके मुनयो विदुः ॥२०९

महापातक शुध्यर्थं सर्वा निष्कृतयो नरैः।
नृप-ग्रामेशविदितैः कुर्वाणैः शुद्धिराप्यते ॥२१०
सुरामूत्र-पुरीषाणां लीढा त्वेकमकामतः।
पुनः संस्कारकरणाच्छुद्धेयदाह पराशरः ॥२११
अभक्ष्यभक्षणो विप्रस्तथैवापेयपानकृत्।
व्रतमन्यत्प्रकुर्वीत वदन्त्यन्ये द्विजोत्तमाः ॥२१२
कुशा-ऽब्जा-ऽश्वत्थ-पालाश-बिल्वोदुन्बरवारिणा।
पीतेन जायते शुद्धिः षड्रात्रेण न संशयः ॥२१३
द्रोण्यम्बूशीर-कुम्भाभः श्वस्पृष्टं केशवारि च।
पीत्वारण्ये प्रपातोऽयं पंचगव्यं पिबंच्छुचिः ॥२१४
भाण्डस्थितमभोज्यान्नं पयो-दधि-घृतं पिबन्।
द्विजातेरुपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुध्यति ॥२१५
तत्तोयपीतजीर्णांगः तप्तकृच्छ्रं चरेद्द्विजः।
वांते तु तज्जले सद्यः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२१६
रजकाद्यंबुपानेन प्राजापत्यं बुधैः स्मृतम्।
वान्ते जले तदर्धं तु शूद्रः स्यात्पादकृच्छ्रकृत् ॥२१७
चाण्डालकूपपानेन महदेनः प्रजायते।
गोमूत्रयावकाहाराः शुद्धेयुर्दिवसैस्त्रिभिः ॥२१८
घृतं दधि तथा दुग्धं गोष्ठे वाऽशौचसूतके।
अभिचारस्य तद्भुक्त्वा भुक्त्वा वा शूद्रभोजनम् ॥२१६
द्रुपदां वा तिजो जप्त्वा मानस्तोकमथापि वा।
क्षुधातिपीडितः पश्चादिति प्राह पराशरः ॥२२०

सूतकान्नं द्विजो भुक्त्वा त्रिरात्रोपोषणाच्छुचिः।
तोयपाने त्वसौ कुर्यात्पंचगव्यस्य चाशनम् ॥२२१
द्रोणाढकं तदर्धं वा प्रस्थं प्रस्थार्धमेव वा।
घृतमुच्छिष्टसंस्पृष्टं प्रोक्षणाच्छुचितामियात् ॥२२२
चरुपक्वं शृतं पक्वं अन्नं काकाद्युपाहृतम्।
तद्ग्रासस्थानसंत्यागात्पूतं हेमाम्बुसिंचनात् ॥२२३
केचिद्वदन्ति तज्ज्ञास्तु तस्याग्निनावचूडनम्।
केचित्प्रणवयुक्तेन वारिणा प्रोक्षणं विदुः ॥२२४
केश-कीटकसंदुष्टं अन्नं मक्षिकयापि च।
मृद्भस्मवारिणा तत्र क्षेप्तव्यं शुद्धिकारणम् ॥२२५
उदक्या ब्राह्मणी स्पृष्टा क्षत्रिण्यापि ह्युदक्यया।
अर्धकृच्छ्रं चरेत्पूर्वा तदर्धमपरा चरेत् ॥२२६
प्राजापत्यं विशःपत्या विट्पत्नी पादमाचरेत्।
शूद्रास्पृष्टा चरेत्कृच्छ्रं शूद्री दानेन शुद्ध्यति ॥२२७
ब्राह्मण्या ब्राह्मणी स्पृष्टा वेदक्योदक्यया च ते।
चरेतां पादकृच्छ्रे द्वे कृते स्नाने विशुद्ध्यति ॥२२८
ब्राह्मणी क्षत्रियां स्पृष्ट्वा ब्राह्मणीव्रतमाचरेत्।
अपरा क्षत्रियायास्तु वक्तव्यमेवमन्ययोः ॥२२९
रजस्वला तु संस्पृष्टा श्व-विट्-शूद्रैश्च वायसैः।
स्नानं यावन्निराहारं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥२३०
उदक्या ब्राह्मणी स्पृष्टा मेद-मातंग-भिल्लकैः।
गोमूत्रयावकाहारा षड्रात्रेण च शुद्ध्यति ॥२३१

उच्छिष्टो ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा द्विजातिस्त्रीं रजस्वलाम्।
प्राजापत्येन संशुद्ध्येच्चीर्णकृच्छ्रेण वा पुनः ॥२३२

वदन्ति कवयः केचिदेतद्दोषविशुद्धये।
प्राणायामशतं चास्य पंचगव्यस्य भक्षणात् ॥२३३

उच्छिष्टो ब्राह्मणः स्पृष्टो ब्राह्मण्युदक्यया चरेत्।
प्राजापत्यं च गायत्रीमयुतं नियतं सकृत् ॥२३४

क्षत्रिण्यादिभिरुच्छिष्टैः संस्पृष्टो व्रतमाचरेत्।
अनुच्छिष्टस्तु तत्स्पर्शे स्नानकर्म यतः स्मृतम् ॥२३५

रजकादिकसंस्पर्शे द्विजन्मोदक्ययोषितः।
प्राजापत्यं चरेद्विप्रा अन्याश्चरेयुरंशतः ॥२३६

उदक्यां ब्राह्मणीं गत्वा क्षत्रियो वैश्य एव च।
त्रिरात्रोपोषितः प्राश्य गव्यमाज्यं शुचिर्भवेत् ॥२३७

क्षत्रिणीं चैव वैश्यां च जानन् गत्वा तु कामतः।
चरेत्सान्तपनं विप्रस्तत्पापस्य विमोक्षकृत् ॥२३८

वैश्यां च क्षत्रियो गत्वा वैश्यश्च शूद्रिणीं तथा।
प्राजापत्यं चरेतां ताविति प्राह पराशरः ॥२३९

उच्छिष्टा ब्राह्मणी स्पृष्टा शुना वा वृषलेन वा।
अशुद्धा वा भवेत्तावद्यावन्नस्यादुपोषणम्।
शुद्धा भवति सा तावद्यावत्पश्यति शीतगुम् ॥२४०

विप्रोष्य स्वजनीं वेश्यां महिष्युष्ट्रीमजां खरीम्।
प्राजापत्यं चरेद्गत्वा ह्येकैकस्य विशुद्धये ॥२४१

शूद्रीं तु ब्राह्मणो गत्वा मासं मासार्धमेव वा।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्धेन विशुध्यति ॥२४२

नृपोऽप्यस्वजनां गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत्।
वैश्यपत्नीमसौ गत्वा कृत्वा सांतपनं शुचिः ॥२४३

शूद्रीं तु क्षत्रियो गत्वा गोमूत्रयावकाशनः।
दशभिर्दिवसैः शुद्ध्येद्वैश्यःसोऽप्येवमेव हि ॥२४४

उत्तमागमनेऽनार्याः सर्वे ते स्युः कराग्निना।
महापथं च संत्राज्याः खरयानेन योषितः ॥२४५

चाण्डालीमेव भिल्लानामभिगम्य सकृत्स्त्रियम्।
चाण्डाल-मेद-भिल्लानामभिगम्य स्त्रियं नरः।
शुद्ध्यै पयोव्रतं कुर्यान्मासार्धमघमर्षणम् ॥२४६

पतितां च द्विजाग्र्यस्त्रीं प्राजापत्यं चरेद्द्विजः।
तैलिकस्य स्त्रियं गत्वा तथा मद्यकृतःस्त्रियम् ॥२४७

अज्ञानाभिगतौ स्त्रीणां पुंसामनुलोमजस्य च।
इमां निष्कृतिमिच्छन्ति घृतयोनिं च केचन ॥२४८

पितृव्य-भ्रातृजायां च मातृष्वसारमेव च।
भगिनीं चैव धात्रीं च गत्वा कृच्छ्रं समाचरेत् ॥२४९

षण्मासान् केचिदिच्छन्ति संगम्यैता विशुद्धये।
कृच्छ्रं धर्मविदो विप्राः शुद्धिं तत्त्वार्थवेदिनः ॥२५०

गुरुपत्नीं द्विजो गत्वा मातृष्वसृ-दुहितृषु।
क्षिपेच्छुद्ध्यर्थमात्मानं सुसमिद्ध-हुताशने ॥२५१

उपाध्याय-नृपा-ऽऽचार्य-शिष्य-योषिद्गमी नरः ।
षण्मासान्कृच्छ्रचरणाच्छुद्धिमाह पराशरः ॥२५२

कृतचाण्डालसंस्पर्शः शकृन्मूत्रकरो द्विजः ।
षड्रात्रोपोषणाच्छुद्ध्येद्भुत्वा ऽऽचान्तो नवद्युभिः ॥२५३

उर्ध्वोच्छिष्टस्य संशुद्ध्यै केचित्प्राजापतिव्रतम् ।
वराकं पञ्चगव्यं च केचिदाहुर्मनीषिणः ॥२५४

उच्छिष्टो ब्राह्मणः स्पृष्ट उच्छिष्टेन द्विजेन तु ।
आचम्यैव तु शुध्येतां विष्णुनामानुकीर्तनात् ॥२५५

क्षत्रियेण तु संस्पृष्टो ब्राह्मणो नक्तभोजनात् ।
वैश्येन चैव संस्पृष्टो नक्ताशी पंचगव्यपः ॥२५६

शूद्रेण तु च संस्पृष्टो एकरात्रोपवासकृत् ।
उच्छिष्टैः पुनरेतैस्तु प्रोक्तं द्विगुणमर्हति ॥२५७

उच्छिष्टः शूद्रसंस्पृष्टः शुना वापि द्विजोत्तमः ।
उपोष्य पंचगव्येन शुद्धिः स्यादपरे विदुः ॥२५८

अनुच्छिष्टोऽपि यत्स्पर्शात्स्नाति वर्णी विशुद्धये ।
उच्छिष्टः तस्य संस्पर्शे चरेत्प्राजापतिव्रतम् ॥२५९

रजकाद्यन्त्यजैः स्पृष्टः शुद्ध्यैत्तस्यार्धमाचरन् ।
उदक्या ब्राह्मणी कृच्छ्रात्प्राजापत्यादथापरे ॥२६०

उदक्या ब्राह्मणी स्पृष्टा शुना वा वृषलेन वा ।
तावत्तिष्ठेन्निराहारा स्नात्वा कालेन शुद्ध्यति ॥२६१

उदक्या सूतिका म्लेच्छसंस्पर्शेऽस्तमिते रवौ ।
दिवाहृताम्बुनास्नात्वा शुद्ध्येद्विप्राग्निसन्निधौ ॥२६२

वदन्त्यपां पवित्रत्वं दिवा सूर्यांशु-मारुतैः ।
चन्दयित्वा पवित्रत्वं मन्दार्करश्मि-वायुभिः ।
मुनयो धर्मवेत्तारो रात्रौ चंद्रांशु-रश्मिभिः ।।२६३
सकृच्च ब्राह्मणः प्राश्य षडहं पंचगव्यकम् ।
हेम्नो दद्याच्च षण्मासान्दत्वा गां च विशुध्यति ।।२६४
पंचाहेन नृपः शुद्ध्येत्पंचमासान्ददच्च गाः ।
चतुर्भिर्दिवसैर्वैश्यश्चतुर्मासान् गवा सह ।।२६५
त्र्यहेण तु चतुर्थस्तु ददन्मासत्रयं च गाम् ।
सकृत्स्पर्शाद्भवेच्छुद्ध एतदाह पराशरः ।।२६६
रक्तं निःसार्य विप्रस्य कामतोऽकामतोऽपि वा ।
गायत्र्यष्टसहस्रेण जप्तेन तु भवेच्छुचिः ।।२६७
यो यस्य हरते भूमिं हेम गामश्वमेव वा ।
स तं यत्नात्प्रसाद्यापि तदुक्तः शुद्धिमाप्नुयात् ।।२६८
आख्याय भूभृते वापि तेन संशोधितः शुचिः ।
द्रव्यदण्डाद्विमुक्तिर्वा तपसा वा शुचिर्नरः ।।२६९
निराहाराज्जायते च एतदाहुर्मनीषिण ।
विनिर्गता यदा शूद्रादुदक्यान्ते व्यवस्थिताः ।।२७०
तदा द्विजैस्तु द्रष्टव्य इतिधर्मविदो विदुः ।
दुःस्वप्नदर्शने चैव वान्ते वा क्षुरकर्मणि ।
मैथुने कटधूमे च सद्यः स्नानं विधीयते ।।२७१
चितां च चितिकाष्ठं च यूपं चण्डालमेव च ।
स्पृष्ट्वा देवलकं चैव सवासा जलमाविशेत् ।।२७२

श्व-जंबुक-वृकाद्यैश्च यदि दष्टो भवेन्नरः ।
सचैलो जलमाविश्य दत्वाज्यं शुद्धिमर्हति ॥२७३

शुनो घ्राणावलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च ।
यतीनां दर्शनं कार्यमग्निना चोपचूलनम् ॥२७४

अवज्ञां तु गुरोः कृत्वा नक्तं तस्य च भोजनम् ।
नक्षत्रदर्शनं त्वन्य इति प्राह पराशरः ॥२७५

कुमारी तु शुना स्पृष्टा जम्बुकेन वृकेण वा ।
यां दिशं व्रजते सूर्यस्तां दिशं सा विलोकयेत् ॥२७६

दिवसे तु यदा ग्रामे शुना स्पृष्टो भवेद्द्विजः ।
विप्रं प्रदक्षिणीकृत्य घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥२७७

चातुर्वर्ण्यात्तु या नारी कृताभिगमनापि च ।
प्रक्षाल्य नाभितो ऽधस्तादाचान्तस्तु शुचिर्नरः ॥२७८

विप्रे मैथुनिनि स्नानं केचिद्वाञ्छि शिरोविना ।
नाभि यावत् विशास्तद्वल्लिंगशौचोऽन्त्यजः शुचिः ॥२७९

अभिगच्छन्सुतार्थं च ऋतावृत्तौ स्त्रियं द्विजः ।
न च कुर्वीत स स्नानं नाभेरधस्तु शोधयेत् ॥२८०

त्वङ्कारं तु गुरोः कृत्वा हुंकारं तु गरीयसः ।
प्रसाद्यैतावनश्नन्स्यात्स्नात्वा शुद्धो द्विजोत्तमः ॥२८१

विवादे शास्त्रतो जित्वा जयो यस्य न जायते ।
श्मशाने जायते तस्य तमोभावेन दुष्कृतम् ॥२८२

ताडयित्वा तृणेनापि स्कन्धे वाऽऽबध्य रज्जुना ।
कलहादपि निर्जित्य तं प्रसाद्य विशुध्यति ॥२८३

अवगूर्य चरेत् कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽसृक्पाते कृच्छ्रोऽस्यान्तरशोणिते ॥२८४
प्रेतमूढ्वा च दग्ध्वा च शुद्धिः स्नानाद्द्विजन्मनाम्।
उपवासेन चैकेन ब्रह्मकूर्चं च पावनम् ॥२८५
प्रेतीभूतं च यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः।
अनुगच्छेन्नीयमानं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥२८६
त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम्।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥२८७
अंगुल्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यक्षलवणं तथा।
मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणम् ॥२८८
कृत्वाऽन्यतममेतेषां शुध्यर्थमात्मनो हितम्।
चरेच्छशिव्रतं विप्र इति प्राहुर्मनीषिणः ॥२८९
केचिद्वदन्ति मुनयः कृच्छ्रं सान्तपनं तथा।
तदूर्ध्वं पादकृच्छ्रं वा प्राहुरन्ये द्विजोत्तमाः ॥२९०
अर्धोच्छिष्टो द्विजोऽज्ञानाद्यात्यघं नहि किंचन।
भुक्त्वाऽनाचम्य वा कुर्याद्विण्मूत्रं केह निष्कृतिः ? ॥२९१
नक्तोपवासी बाह्ये तु अन्यत्र द्विगुणं चरेत्।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा गायत्र्याः शुद्धिमर्हति ॥२९२
अर्धोच्छिष्टो द्विजः स्पृष्टः शुना वा वृषलेन वा।
नक्षत्रदर्शनेऽश्नीयात्पंचगव्यपुरस्सरम् ॥२९३
अर्धोच्छिष्टाश्च विप्राद्याः श्वोच्छिष्टैः शूद्रसंस्पृशः।
उपवासेन शुद्ध्येयुः पंचगव्यस्य पानतः ॥२९४

श्व-काकी-काकसंस्पृष्टो भुञ्जानो ब्राह्मणश्च यः ।
तदन्नस्य परित्यागं कृत्वा स्नानेन शुध्यति ॥२६५

विना यज्ञोपवीतेन भोजनं कुरुते यदि ।
अथ मूत्र-पुरीषे वा रेतः सेचनमेव वा ॥२६६

त्रिरात्रोपोषितो विप्रः पादकृच्छ्रं तु भूमिपः ।
अहोरात्रोषितो वैश्यः शुद्धिरेषा पुरातनी ॥२६७

विप्रः क्षुत्कृत्य निष्ठीव्य कृत्वा चानृतभाषणम् ।
वचनं पतितैः कृत्वा दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥२६८

विप्रस्य दक्षिणे कर्णे नित्यं वसति पावकः ।
अंगुष्ठे दक्षिणे पाणौ तस्मात्तेन च स स्पृशेत् ॥२६९

प्रेक्षणं शशिनोऽर्कस्य ब्रह्मेश-विष्णुसंस्मृतिम् ।
गायत्र्याः शत साहस्रं सर्वपापहरं स्मृतम् ॥३००

गायत्र्यष्टसहस्रं तु ब्रह्महत्याविशोधनम् ।
शूद्रवधे द्विजाग्र्यस्य गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥३०१

राज्ञः पंचसहस्रं तु स्याद्विशश्च तदर्धकम् ।
योगेन गतशीलस्तु यदि वा स्यात्सदा नरः ॥३०२

विप्रश्च सम्मताचारस्तावुभौ सर्वदा शुची ।
मक्षिकां सन्ततीर्धारा विप्रुषो ब्रह्मविन्दवः ।
स्त्रीमुखं बालवृद्धौ च न दुष्यन्ति कदाचन ॥३०३

आत्मस्त्रीह्यात्मबालश्च आत्मवृद्धस्तथैव च ।
आत्मनः शुचयः सर्वे परेषामशुचीनि तु ॥३०४

उत्पन्नमातुरे स्नानं दशकृत्त्वस्त्वनातुरः।
स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्ध्येत्स आतुरः ॥३०५

विवाहोत्सव-यज्ञेषु संग्रामे जलसंप्लवे।
पलायने तथाऽरण्ये स्पर्शदोषो न विद्यते ॥३०६

आद्यसङ्गी समो दोषी सङ्गसङ्गी तदर्धतः।
तत्सङ्गी तृतीयभागी तुरीयस्तु न दोषभाक् ॥३०७

आद्यस्प्रष्टुर्भवेत्स्नानं द्वितीयस्यापि तत्स्मृतम्।
शिरः प्रोक्षणमन्येषामन्यत्राऽऽचमनं स्मृतम् ॥३०८

पलाश-शिंशिपाकाष्ठदन्तधावनकृन्नरः।
दिवाकीर्तिसमस्तावद्यावद्गां नैव पश्यति ॥३०९

पद्माश्म-लोहं फल-काष्ठ-चर्म-
भाण्डस्थतोयैः स्वयमेव शौचात्।
पुंसां निशास्वध्वनि निःसखानां
स्त्रीणां च शुद्धिर्विहिता सदैव ॥३१०

स्नानं स्पृष्टेन येन स्यात्काष्ठ द्यैर्यदि तत्स्पृशेत्।
नावारोहणवत् स्पर्शे तत्रोपस्पर्शनाच्छुचिः ॥३११

म्लेच्छ-लूताशनास्पर्शे क्षेत्रे वा यदि वा स्थले।
उपस्पृशेत् शिरः प्रोक्ष्य संशुद्धो जायते द्विजः ॥३१२

वस्त्रसंस्पर्शने तस्य सचैलाङ्गावगाहनम्।
अङ्गस्पर्शनवत्तस्य वदन्ति द्विजसत्तमाः ॥३१३

चाण्डालोदकसंस्पृष्टः शुद्धः स्नानेन जायते।
तथा तद्भाण्डसंस्पर्शे स्नानमाहुर्मनीषिणः ॥३१४

उदक्या स्पर्शने स्नानमंशुकेनान्तराऽपि वा ।
तत्स्पृष्टेऽपि भवेत्स्नानं तुल्याः सर्वा रजस्वलाः ॥३१५

संस्पर्शे मेद-भिल्लानां तथैव ब्रह्मघातिनाम् ।
पतितानां च संस्पर्शे स्नानमेव विधीयते ॥३१६

रजस्वलादिसंस्पर्शे उपस्पर्शनमेव च ।
उदक्यायास्त्रितोयेऽह्नि केचिदाचमनं विदुः ॥३१७

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थे तु विशुध्यति ॥३१८

पुरुहूतः पुरा दैत्यं त्रिशीर्षाख्यं जघान यत् ।
तद्वधे ब्रह्महत्यायाः स्त्रीणां स प्रददौ फलम् ॥३१६

आसां तत्प्रभृति स्त्रीणामस्पृश्यत्वं सदा भवेत् ।
अंशैर्दिनत्रयं ह्येतच्छुक्र गुर्वादिकल्पितम् ॥३२०

शबराश्च पुलिन्दाश्च कैवर्ताश्च नटास्तथा ।
एतान् रजकसन्तुल्यान् केचिदाहुर्मनीषिणः ॥३२१

रजक्याद्यभिगम्यत्वे वैश्या गो-मूत्र यावकम् ।
चरन्ति षड्गुणाहोभिः कृच्छ्रं वा द्विगुणं भवेत् ॥३२२

ब्रह्म क्षत्रिय विड्जाता शूद्रास्तेऽनुक्रमेण तु ।
क्रमातिक्रमतश्चान्ये म्लेच्छान्त्यवर्णसंभवाः ॥३२३

भोज्याशनास्तु सच्छूद्रा अभोज्यान्नाः परे स्मृताः ।
आमाशनानि भोज्यानि शृतमुच्छिष्टमुच्यते ॥३२४

दास नापित गोपाल कुलमित्रा ऽर्धसीरिणः ।
भोज्यान्ना नापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥३२५

पर्युषितं चिरस्थं च भोज्यं स्नेहसमन्वितम्।
यव गोधूम माषाणां स्नेह गोरसविक्रयः ॥३२६
आपद्गतो द्विजोऽश्नीयाद्गृह्णीयाद्वा यतस्ततः।
न स लिप्येत पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥३२७
ज्ञापितं शूद्रगेहेऽन्नं कटु पक्वं च यद्भवेत्।
नीत्वा नद्यन्तिके तद्वै प्रोक्ष्य भुंजन्न दोषभाक् ॥३२८
गायत्र्योङ्कारपूताभिः केचिदद्भिश्च प्रोक्षणम्।
मन्यन्ते विष्णुमन्त्रेण कलिधर्मं समाश्रिताः ॥३२६
आमं मांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसम्भवाः।
म्लेच्छभाण्डस्थिता ह्येते निष्क्रान्ताः शुचयः स्मृताः ॥३३०
आभीरभाण्डसंस्थानि पयो दधि घृतानि च।
तावत्पूतं हि तद्भाण्डं यावत्तत्र तु तिष्ठति ॥३३१
पूतानि सर्वपण्यानि कारुहस्तस्थितानि च।
अदत्तानि च भक्ष्याणि यत्नतस्तु द्विजातिभिः ॥३३२
सर्वस्वोपस्करैर्युक्ता शय्या रक्तांशुकानि च।
पुष्पाणि चैव शुध्यन्ति प्रोक्षितानि च संशयः ॥३३३
अलेपं मृण्मयं भाण्डं भाण्डसंचयमेव च।
प्रोक्षणादेव शुध्येत सलेपमग्नितापनात् ॥३३४
कास्यं च भस्मना शुध्येत् मद्यमांसविवर्जितम्।
सुरा मूत्र पुरीषाभ्यां शुध्यते ताप लेपनैः ॥३३५
अलिप्तं मद्य मुत्राद्यैस्ताम्रमम्लेन शुध्यति।
रजसा स्त्री मनोदुष्टा नद्यश्च वेगसंयुता ॥३३६

अवेगमपि यद्भूरि सरिद्वारि ह्रदे च यत्।।।
सकृदस्पृश्यसंस्पृष्टं न दुष्यति च तत् ह्रदः ।।३३७
सत्येन पूयते वाणी धर्मः सत्येन वर्धते।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यमात्मशुध्यै द्विजातिभिः ।।३३८
रथ्याकर्दमतोयानि नावः पथि तृणानि च।
मारुतार्केण शुध्यन्ति निशि चंद्रर्क्षमारुतैः ।।३३६
यथासम्भवमुक्तानि प्रायश्चित्तानि सत्तम।
उक्तानुक्तानि सर्वाणि ज्ञातव्यानि द्विजातिभिः ।।३४०
प्रायश्चित्तं न यत्प्रोक्तं धर्मशास्त्रप्रवक्तृभिः।
द्विजैस्तत्र प्रकल्प्यं स्याद्धर्मशास्त्रार्थचिन्तकैः ।।३४१

उक्ता मया निष्कृतयः समासात्
संशुद्धये वर्णचतुष्टयस्य।
व्रतानि तेषां विहितानि यानि
वक्ष्याम्यतस्तानि निबोधयेति ।।३४२

इति श्री वृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां मनुस्मृत्यां
प्रायश्चित्तनिर्णयो नाम अष्टमोऽध्यायः।

-ooo-

नवमोऽध्यायः ।

॥ अथ व्रतोपवासविधिवर्णनम् ॥

व्रतान्यथ प्रवक्षामि ह्यैन्दवादिक्रमेण तु ।
पापक्षयः कृतैर्यैः स्याद्धर्मार्थे तु महोदयः ॥१
चन्द्रवृध्याऽश्नीयात् ग्रासान् शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत् ।
चन्द्रक्षये न भोक्तव्यं यवमध्यं शशिव्रतम् ॥२
विपरीतक्रमेणाश्नन्नादावादाय ह्रासयेत् ।
वर्धयेदन्यपक्षे तु पिपीलीमध्यमैन्दवम् ॥३
अष्टावष्टौ समश्नीयात्सव्रती प्रतिवासरम् ।
अष्टग्रासिकमित्येतच्चान्द्रायणमथापरम् ॥४
शतद्वयं तु पिंडानां चत्वारिंशत्समन्वितम् ।
मासेनैवोपभुजीत चांद्रायणमथापरम् ॥५
चतुरः प्रातरश्नीयात्सायं ग्रासांश्च तावता ।
शिशुचांद्रायणं तज्ज्ञैः प्रोक्तं पापप्रणोदनम् ॥६
मध्यन्दिने यदश्नीयादष्टौ ग्रासान् दिनंप्रति ।
चान्द्रायणं यतीनां तु व्रतज्ञैः परिकीर्तितम् ॥७
शिखण्डसम्मितान् ग्रासान् चन्द्रव्रतो प्रयोजयेत् ।
दोषः स्यादन्यथाभावे तस्मादुक्तं समाश्रयेत् ॥८
एकभुक्तैश्च नक्तैश्च तथैवाऽयाचितैरपि ।
उपवासैश्चतुर्भिश्च कृच्छ्रः षोडशाभिर्दिनैः ॥९

उष्णं जलं पयः सर्पिरेकैकं च त्र्यहं पिवेत् ।
वायुभक्षस्त्र्यहं तिष्ठेत्तप्तकृच्छ्रोऽयमुच्यते ॥१०

पलमेकं जलं पीत्वा पलमेकं तथा पयः ।
पलमेकं तथाज्यस्य मानमेतत्प्रकीर्त्तितम् ॥११

एतत्तु त्रिगुणं तज्ज्ञैर्महासांतपनं स्मृतम् ।
प्राजापत्यं च कृच्छ्रं च पराकस्त्रिगुणो महान् ॥१२

पद्मोदुम्बर-राजीव-बिल्वपत्रं कुशोदकम् ।
प्रत्येकं प्रत्यहं प्राश्य पर्णकृच्छ्रः प्रकीर्तितः १३

प्रत्येकं प्रत्यहं गव्यं मूत्रं शकृत्पयो दधि ।
घृतं कुशोदकं पीत्वा उपवासश्च तत्समः ॥१४

एभिः सप्ताशनैरुक्तं दिव्यं सान्तपनं द्विजैः ।
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं मुनिभिः परिकीर्तितः ॥१५

एतत्तु त्रिगुणं तज्ज्ञैर्महासान्तपनं स्मृतम् ।
प्राजापत्यं च कृच्छ्रं च पराकस्त्रिगुणो महान् ॥१६

एकभुक्तं च नक्तं च अयाचितविशेषणे ।
पादकृच्छ्रोऽयमुद्दिष्टः त्रिघ्नं प्राजापतिव्रतम् ॥१७

अयमेवातिकृच्छ्रः स्यात्पाणिपूता(रा)न्नभोजनः ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिः ॥१८

दिनैर्द्वादशभिः प्रोक्तः पराकः समुपोषितैः ।
एक-द्व्यह-त्र्यहादीनि नक्तं चैव यथाश्रुतम् ॥१९

सम्प्राश्य तिलपिण्याकं तक्रं तोयं कुशोदकम् ।
पञ्चमे ह्युपवासः स्यात्सौम्यकृच्छ्रोऽयमुच्यते ॥२०

चान्द्रायणे च कृच्छ्रे च त्रिकालं स्नानमाचरेत्।
स्नानद्वयं तु कर्तव्यं व्रतेष्वेवापरेषु च ॥२१
शक्तिं ज्ञात्वा शरीरस्य स्नानं कर्यं तथा व्रतम्।
असामर्थ्ये तु कायस्य याच्यः पर्षदनुग्रहः ॥२२
ब्रह्मकूर्चं प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम्।
कृतेन येन मुच्यन्ते प्राणिनः सर्वकिल्बिषैः ॥२३
नीलिकायास्तु गोमूत्रं कृष्णायाः शकृदुद्धरेत्।
पयस्त्वतिसुवर्णायाः पीतायाश्च तथा दधि ॥२४
कपिलाया घृतं तद्वन्महापातकनाशनम्।
अभावे सर्ववर्णायाः कपिलायाः समुद्धरेत् ॥२५
पलानि पञ्च मूत्रस्य अङ्गुष्ठार्धं तु गोमयम्।
क्षीरं सप्तपलं ग्राह्यं तथा दध्नः पलत्रयम् ॥२६
घृतं चाष्टपलं ग्राह्यं पलमेकं कुशाम्भसः।
मन्त्रैः सर्वाणि चैतानि अभिमन्त्र्याथ मिश्रयेत् ॥२७
गायत्र्या चैव गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्।
आप्यायस्वेति वै क्षीरं दधिक्राव्णस्तथा दधि ॥२८
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्।
निष्पन्नं पंचगव्यं च पात्रेषु क्रमतः पिबेत् ॥२९
मध्यमेन पलाशस्य तत्पत्रेण पिबेद्द्विजः।
द्वितीयं पद्मपत्रेण ब्रह्मपत्रेण चापरे ॥३०
चतुर्थं ताम्रपात्रेण तत्पिबेद्व्रतकृद्द्विजः।
आलोड्य प्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेन च ॥३१

उद्धृत्य प्रणवेनैव प्राशयेत्प्रणवेन तु ।
विष्णुं संस्नापयेद्भक्त्या पंचगव्येन चार्चयेत् ॥३२

कूष्माण्डैर्जुहुयान्मंत्रैः पञ्चगव्यं हुताशने ।
सव्याहृत्या च गायत्र्या तथैव प्रणवेन च ॥३३

ब्रह्मकूर्चमिदं प्रोक्तं व्रतं पंचदिनात्मकम् ।
पञ्चगव्यं च सम्प्राश्य पंचरात्रोपवासकृत् ॥३४

नक्तेन वा समश्नीयाद्यावच्छक्त्या दिनानि च ।
पाञ्चाह्निकं पारणकं व्रतस्यास्य प्रकीर्तितम् ॥३५

निर्दहेत्सर्वपापानि ब्रह्मकूर्चमिदं स्मृतम् ।
अन्ये वदन्ति कत्रय उपवासविना व्रतम् ॥३६

जप-होमादि कर्तव्यं देवतार्चनमेव वा ।
पञ्चगव्यं च होतव्यं पञ्चगव्यं समश्नियात् ॥३७

ब्राह्मणान् भोजयेत्तावद्यावत्कुर्यादिदं व्रतम् ।
यत्वगस्थिगतं पापं विद्यते पुरुषस्य च ॥३८

ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं समिद्धोऽग्निरिवेन्धनम् ॥३९

यावन्ति पापानि भवन्ति पुंसां दैवादकामादपि कामतो वा ।
उक्तानि तेषां मुनिना व्रतानि शुध्यर्थमेतान्यपराणि चैवम् ॥४०

धर्मार्थमेतानि कृतानि पुंसां दद्युर्दिवौकस्त्वविमुक्तसिद्धिः ।
अत्रापि पूज्यत्वमशेषलोकैस्तेजःशरीरी विचरन् विभाति ॥४१

यस्यास्ति भीतिः पुरुषस्य पापादिच्छेच्च कर्तुं क्षयमेनसां च ।
प्रीत्येव तं च व्रतदानजप्यं प्रोदिश्यमेतन्न तदन्यतस्तु ॥४२

वदन्ति दानं मुनयः प्रधानं कलौ युगे नान्यदिहास्ति किञ्चित् ।
विशोधनं सर्वमिहापि पूज्यं वदामि तस्मादथ दानधर्मान् ॥४३

इति बृहत्पाराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां संहितायां ऐन्दवादिव्रतनिर्णयो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

—❀❀—

दशमोऽध्यायः ।

॥ अथ सर्वदानविधिवर्णनम् ॥

दानानि विधिना सार्धं जगौ यानि पराशरः ।
व्यासस्य तानि वक्ष्यामि श्रूयतां द्विजसत्तमाः ॥१
दानेन प्राप्यते स्वर्गो दानेन सुखमश्नुते ।
इहामुत्र च दानेन पूज्यो भवति मानवः ॥२
न दानात् परमो धर्मस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
तस्माद्दानं प्रदातव्यं यथाशक्त्या सदा नरैः ॥३
मुमुक्षवोऽपि योगीशा भिक्षादानोपजीविनः ।
अन्नं तोय-समायुक्तं पृथगेते तथैव च ॥४
तोयमन्नं च वाञ्छन्ति किं पुनः सानुरागिणः ।
सर्वोपस्करसंयुक्तं गृहं च गृहमातृकम् ॥५
वृषादियुक्तं सीरं च वृषमेकं तथैव च ।
गृह्याग्निना प्रदानेन गोप्रदानं तथैव च ॥६

सौरभेयीं द्विवक्त्रां च तिलधेनुमतः परम्।
घृतधेनुं पयोधेनुं हेमधेनुं सुविस्तरम्॥७
कृष्णाजिनप्रदानं च वाजिस्यंदनमेव च।
एकवाजिप्रदानं च तथा तस्य परिग्रहः॥८
सुखासनानि यानानि हस्ति रथं तथा गजम्।
एकहस्तिप्रदानं च कन्यादानफलं तथा॥९
भूमिदानफलं चैव तुलापुरुषमेव च।
हेम-रूप्यप्रदानं च मणिकादिसमन्वितम्॥१०
त्रपु-सीसक-ताम्रादिसर्वधातुप्रदानवत्।
नक्षत्र-तिथि-योगेषु यद्यत्तद्दानजं फलम्॥११
विद्यादानफलं चैव प्राणदानं तथैव च।
अभयादिकदानानि प्रतिग्रहे यथा विधिः॥१२
इष्टा पूर्तौ फलोपेतौ सर्वं विस्तरतो मया।
शक्तिसूनोः श्रुतं पूर्वं क्रमात्कथयतः शृणु॥१३
गोहिरण्यादिदानानां सर्वेषामप्यनुत्तमम्।
अन्नदानमपेक्षन्ते सर्वेऽपि हि दिवौकसः॥१४
अन्नार्थं मातरिश्वायमन्नार्थं च तथाऽनलः।
अन्नार्थं सविता देवो वाति ज्वलति भासते॥१५
अन्नकामः ससर्जेदं विधिरप्यखिलं जगत्।
अन्नात्परतरं तत्वं न भूतं न भविष्यति॥१६
दद्यादहरहस्तस्मादन्नं विप्राय मानवः।
शृतं वा यदि वा चामं स स्वर्गे सुख मेधते॥१७

शोभनान् संभृतान् कुम्भान् पक्वान्नपरिपूरितान् ।
अपूपैर्मोदकाद्यैश्च दत्वा दिवि सुखं वसेत् ॥१८

मणिकं कलशान्वाऽपि यः पूरयति शक्तितः ।
सुशुभाद्भिर्द्विजौकस्तु संपूर्णांशो दिवं व्रजेत् ॥१९

द्विजान् यः पाययेत्तोयं अन्यानपि पिपासितान् ।
प्रपां तु कारयेद्ग्रीष्मे देवलोकमवाप्नुयात् ॥२०

यद्वातृणादिकं दद्याद्वर्षासु च प्रतिश्रयम् ।
पादाभ्यङ्गं तथैधांसि शीते प्रावरणानि च ॥२१

उपानत् पादुके चैव ददत्कामानवाप्नुयात् ।
सप्तधान्यसमायुक्तं सर्वं स्नेहसमन्वितम् ॥२२

सर्वोपस्करसंयुक्तं सर्वालंकारभूषितम् ।
हिरण्य-गो-वृषा-ऽश्वैश्च तूली-शय्योपधानकैः ॥२३

वरस्त्रीभूषणैर्युक्तं सकांस्यं ताम्रभाजनम् ।
कण्डण्यादिसमायुक्तं ददत् पात्राय मानवः ॥२४

पक्वेष्टकचितं कृत्वा सर्वलक्षणसंयुतम् ।
मृण्मयं वा तथा सद्मः कृत्वा चाश्ममयं तथा ॥२५

दत्वा स्थानमवाप्नोति प्राजापत्यमसंशयम् ।
प्राकारा यत्र सौवर्णा गृहाण्युच्चैस्तराणि च ॥२६

माणिक्य-गारुडैर्वज्रै र्मौक्तिकैर्भूषितानि च ।
देवकन्यासहस्रेण स वृतो गीत-नृत्यकैः ॥२७

सेव्यमानोऽप्सरसङ्घैः प्राजापतिसमं वसेत् ।
अनड्वाहौ च धूर्वाहौ बलवन्तौ सुलक्षणौ ॥२८

तरुणौ सुविषाणौ च घंटाभरणभूषितौ ।
अदुष्टावेकवर्णौ तु सशिरौ दक्षिणान्वितौ ।।२६
य आहूय द्विजाग्र्याय दद्याद्भक्त्या तु मानवः ।
सोऽनडुद्रोमतुल्यानि स्वर्गे वर्षाणि तिष्ठति ।
अप्सराभिर्वृतो नित्यं सेव्यमानः सुरासुरैः ।।३०
एकोऽपि हि वृषो देयो धूर्वहः शुभलक्षणः ।
अरोगश्चापरिक्लिष्टो यस्मात्स दशगोसमः ।।३१
एकेन दत्तेन वृषेण यस्माद्भवन्ति दत्ता दश सौरभेयाः ।
माहेय्यतो यद्धरणीसमानात्तस्माद्वृषात् पूज्यतमोऽस्ति नान्यः ।।
गृष्टिदानं प्रवक्ष्यामि यथा देयं द्विजातिभिः ।
यो विधिर्दक्षिणायाश्च तथा सर्वं निबोधत ।।३३
एकरात्रोषितः स्नातो गोदाता पञ्चगव्यपः ।
पञ्चामृतेन संस्नाप्य सम्पूज्य गरुडध्वजम् ।।३४
सवत्सां वस्त्रसंयुक्तां सितयज्ञोपवीतिनीम् ।
सुविषाणां सुरूपां च सर्वलक्षणसंयुताम् ।।३५
हेमकल्पितश्रृंगां च सुरूप्यचरणाग्रकाम् ।
पयस्विनी सुशीलां च हिरण्योपरिसंस्थिताम् ।।३६
प्रत्यङ्मुखाय विप्राय गृष्टिं तां च उदङ्मुखीम् ।
त्वमिमां प्रतिगृह्णीयाः प्रीतोऽस्तु केशवोऽनया ।
इति दत्वोदकं हस्ते पदान्यष्टौ विसर्जयेत् ।।३७
व्यावर्तेत ततःपश्चात्प्रणम्य शिरसा द्विजम् ।
अनेन विधिना धेनुं यो विप्राय प्रयच्छति ।।३८

स विष्णुप्रीणनाद्याति विष्णुलोकमसंशयम्।
आत्मनः पुरुषान् सप्त प्रागधस्ताच्च सप्त च।
आत्मानं सप्तजन्मोत्थात्पापाद्विमोचयेन्नरः ॥३६

पदे पदे तु यज्ञस्य गोर्वत्सस्य च मानवः।
फलमाप्नोति विप्रेन्द्राः शुश्रावैतत्पुरा हरेः ॥४०

सर्वकामसमृद्धात्मा सर्वलोकेषु पूजितः।
नाम्नाप्यघौघहन्ता च यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४१

इक्ष्वाकुणा तथा चान्यैर्बहुधा वसुधाधिपैः।
यैर्या नृभिरियं दत्ता जग्मुस्तेऽपि च विष्टपम् ॥४२

पश्यन्ति दीयमानां ये ये भवन्त्यनुमोदकाः।
तेऽपि पापाद्विनिर्मुक्ता विष्णुलोकमवाप्नुयुः ॥४३

पादद्वयं मुखं योऽन्यां प्रसवन्त्याः प्रदृश्यते।
तदा च द्विमुखी गौः स्याद्देया यावन्न सूयते ॥४४

क्षोणीतुल्या तदा सा गौः सर्वैरुक्ता मुनीश्वरैः।
सापि प्राग्विधिना देया सकांस्यदोहना द्विजाः ॥४५

एकत्र पृथिवी सर्वा सशैल-वन-कानना।
तस्या गौर्ज्यायसी साक्षादेकत्रोभयतोमुखी ॥४६

गोर्वत्सस्य च लोमानि यावत्संख्यानि सत्तमाः।
तावत्सङ्ख्यानि वर्षाणि ध्रुवं ब्रह्मजने वसेत् ॥४७

अरोगामपरिक्लिष्टां धेनुं गामथ वापि च।
दत्वा स्वर्गमवाप्नोति यावदाभूतसंक्षयम् ॥४८

तिलधेनुं प्रवक्ष्यामि प्रीणनाय हरेरिमाम्।
यथा तुष्यति गोविन्दो दत्तया नु गवाऽनघ ॥४६

ब्रह्मादिवर्णहा गोघ्नः पितृ-मातृसुहृद्वधात्।
अग्निदो गुरुहा चैव तथैव गुरुतल्पगः ॥५०

सर्वपापसमायुक्तो युक्तो यश्चोपपातकैः।
सर्वैः पापैः प्रमुच्येत तिलधेन्वा प्रदत्तया ॥५१

अनुलिप्ते महीपृष्ठे वस्त्राजिनसमावृते।
धर्मज्ञाः केचिदिच्छन्ति कुतपे च तिलास्तृते ॥५२

आस्तीर्य त्वाविकं भूमौ तत्र कृष्णाजिनं पुनः।
तिलांस्तु प्रक्षिपेत्तत्र कृष्णाढकचतुष्टयम् ॥५३

कुर्यादुत्तरतोऽभ्यर्णे आढकेन तु वत्सकम्।
सर्वरत्नैरलङ्कुर्यात्सौरभेयीं सवत्सकाम् ॥५४

कार्ये हेममये शृङ्गे चरणा राजतास्तथा।
मिष्टान्नरसनां कुर्याद्गंधघ्राणवतीं शुभाम्।
आस्यं गुडमयं तस्याः सास्ना सूत्रमयी तथा ॥५५

ताम्रपृष्ठेक्षुपादा च कार्या मुक्ताफलेक्षणा।
प्रशस्तपत्रश्रवणा फलदन्तवती तथा ॥५६

शुभ्रस्रङ्मयलाङ्गूला नवनीतस्तनान्विता।
नारिङ्गैर्बीजपूरैश्च जम्बीरैर्नारिकेलकैः ॥५७

बदरा-ऽऽम्रकपित्थैश्च मणिमुक्ताफलार्चिताम्।
सितवस्त्रयुगच्छन्नां सितच्छत्रसमन्विताम् ॥५८

इत्थंविधां च तां कुर्यात् श्रद्धया परयान्वितः।
कांस्योपदोहनां दद्यात्केशवः प्रीयतामिति ॥५९

कुर्याच्च गृष्टिवद्विद्वान् इमामप्युत्तरामुखीम्।
सम्यगुच्चार्य विधिना दत्वैतेन द्विजोत्तमः ॥६०

सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः पितरं सपितामहम्।
प्रपितामहं तथा पूर्वं पुरुषाणां चतुष्टयम् ॥६१

पुत्रपौत्रमधस्ताच्चेत्तथैव च चतुष्टयम्।
द्विजेन्द्रास्तारयन्त्येतान् तिलधेनुप्रदा नराः ॥६२

यश्च गृह्णाति विधिवत्पुरुषान् सोऽपि तावत।
चतुर्दश तथा ये च ददतश्चानुमोदकाः ॥६३

दीयमानां च पश्यन्ति तिलधेनुं च ये नराः।
शृण्वंति ये च तां भक्त्या दीयमानां द्विजोत्तमाः ॥६४

तेऽप्यशेषाघनिर्मुक्ताः प्रयान्ति विष्णुलोकताम्।
प्रशान्ताय सुशीलाय तथाऽमत्सरिणे बुधः।
तिलधेनुं नरो दद्याद्वेदस्नाताय धर्मिणे ॥६५

त्रिरात्रं सतिलाहारस्तिलधेनुं ददाति यः।
एकरात्रं पुनर्भक्त्या तिलानत्ति प्रयत्नतः ॥६६

दातुर्विशुद्धपापस्य तस्य पुण्यवतो द्विजाः।
चान्द्रायणादप्यधिकं शस्तं तत्तिलभक्षणम् ॥६७

एवं प्रतिग्रहीतापि आदत्ते विधिना द्विजः।
स तारयति दातारमात्मानं च न संशयः ॥६८

प्रतिग्रहसुदीप्ताग्निदग्धविप्रमुखेरिताः ।
न स्फुरन्तीह मन्त्राश्च जप-होमादिकेषु च ॥६९

न दानं दीयते तस्य न तं कर्मणि योजयेत् ।
निष्फलं तत्कृतं कर्म मृतस्यौषधदानवत् ॥७०

अथातः संप्रवक्ष्यामि घृतधेनुमपि ॰ द्विजाः ।
ये न सा विधिना देया तं प्रवक्षाम्यशेषतः ॥७१

वदामि धेनुं घृतपूरकल्प्यां विधिं च वस्तूनि च यैः प्रकल्प्या ।
तस्याः प्रदानेन फलं हि यच्च क्रिया च पात्रं त्वनुपर्व यच्च ॥७२

गोक्षीर-सर्पिर्मधु-खण्ड-दध्ना संस्नाप्य विष्णुं शुभवारिणा च ।
संपूज्य पुष्पैश्च विलेप्य गन्धै(दद्यान्निवेद्यं)र्दत्वा नैवेद्यं च सधूप-दीपम् ॥

घृतं च वह्निर्घृतमेव सोमो घृतं च सूर्यो घृतमेव वारि ।
प्रदेहि तस्मात् घृतमेव विद्वन्! घृते प्रदत्ते सकलं प्रदत्तम् ॥

घृतेन गव्येन तु पूर्णकुम्भं प्रकल्प्यते गौः करकेन वत्सः ।
हिरण्यगर्भां मणि-रत्नशोभां कुरुष्व कर्पूरसुचारुनासाम् ॥७५

शृङ्गे च कृष्णागरुदारवे च सौवर्णनेत्रे पटसूत्रसास्ना ।
क्षौमं च पुच्छं गुड-दुग्धवक्त्रं जिह्वा च तस्या वरशर्करायाः ॥७६

द्राक्षोत्थैश्चैव खर्जूरैरन्यैः स्वादुफलैरपि ।
उरस्तस्याः प्रकर्तव्यं पृष्ठं ताम्रं च धीमता ॥७७

इक्षुयष्टिमयाः पादाः शफा रौप्यमयास्तथा ।
धान्यैश्च सप्तभिः पार्श्वे लोमानि सितसर्षपैः ॥७८

कांस्यदोहा प्रकर्तव्या सितवस्त्रावृता तथा ।
सितच्छत्रसमायुक्ता सितचामरभूषिता ॥७९

वत्सस्य कुर्यादिति भूषणानि प्रोक्तानि सर्वाण्यपि यानि धेनोः।
अङ्गानि सर्वाणि च तद्वदस्य छत्रं सवस्त्रं च तथैव विप्राः ॥८०
गृहाण चैनां मम पापहत्यै दुस्तारसंसारपयोधिपोत।
संसारतारो भव भूमिदेव ! स्वर्गं प्रदेह्यक्षयमङ्ग विद्वन् ॥८१
विष्णुः सुरेशो घृतरश्मिरस्याः प्रीतोऽस्तु दानेन वरं ददातु।
व्याहृत्य चैतन्निजहस्ततोयं दत्वा क्षमस्वेति च वाग्विधेया ॥८२
दात्रा द्विजेनात्र तु पूर्वमुक्तं संप्राश्य सर्पिर्व्रतमात्मशुध्यै।
कायं प्रमुक्तोऽखिलकिल्विषैस्तु प्राप्नोति कामान् घृत-दुग्धमिश्रान् ॥

घृत-क्षीरवहानद्यो यत्र पायसकर्दमाः।
तेषु लोकेषु विप्रेन्द्र स पुण्येषूपजायते ॥८४
पितुरूर्ध्वं तु ये सप्त पुरुषास्तस्य येऽप्यवः।
तेषु तान् द्विजलोकेषु स नयेद्धतकिल्बिषः ॥८५
सकामानां प्रियं गृष्टिः कथिता तव सत्तम !।
विष्णुलोके नरा यान्ति सकामा घृतधेनुदाः।८६
जलधेनुं प्रवक्ष्यामि प्रीयते दत्तया यया।
देवदेवो हृषीकेशः सर्वशः सर्वभावनः ॥८७
जलकुम्भं द्विजश्रेष्ठ सुवर्णरजतस्थितम्।
रत्नगर्भमशेषैस्तु ग्राम्यैर्धान्यैः समन्वितम् ॥८८
सितवस्त्रयुगच्छन्नं दूर्वा-पल्लवशोभितम्।
कुष्ठ-मांसी-मुरोशीर-वालकामलकैर्युतम् ॥८९
प्रियंगुपत्रसंयुक्तं सितयज्ञोपवीतिनम्।
सोपानत्कं च सच्छत्रं दर्भविष्टरसंस्थितम् ॥९०

चतुर्भिः संवृतैः पात्रैस्तिलपूर्णैश्चतुर्दिशम्।
स्थगितं दधिपात्रेण घृत-क्षौद्रवता मुखे ॥६१

उपोषितः समभ्यर्च्य वासुदेवं सुरेश्वरम्।
पुष्प-धूपोपहारैश्च यथाविभवसंभवम् ॥६२

तस्मिन् कुम्भे लिखेद्धेनुं सवत्सां यक्षकर्दमैः।
प्रतिष्ठां तत्र कुर्वीत मंत्रैर्वेदचतुष्टयैः ॥६३

सङ्कल्प्य जलधेनुं च समभ्यर्च्य जनार्दनम्।
पूजयेद्वत्सकं तद्वत्कृतं जलमयं बुधः ॥६४

अत्रोचुरपरे केचित्पूजयेत् घृतवत्सकम्।
पञ्चांशेन तु कुम्भस्य चतुर्थांशेन चापरे।
एवं सम्पूज्य गोविन्दं जलधेनुं सवत्सकाम् ॥६५

सितवस्त्रधरः शान्तो वीतरागो विमत्सरः।
दद्याद्विप्राय तां विप्रः प्रीतये जलशायिनः ॥६६

जलशायी जगज्ज्योतिः प्रीयतां केशवो मम।
इति चोच्चार्य विप्रेन्द्रो विप्राय प्रतिपादयेत् ॥६७

अपक्वाशनिना स्थेयमहोरात्रमतः परम्।
अनेन विधिना दत्वा जलधेनुं द्विजोत्तमाः ॥६८

सर्वाह्लादमवाप्नोति यद्यत् ध्यायति मानवः।
शरीरारोग्य-दीर्घायुः प्रशस्यः सर्वकामुकः ॥६९

नृणां भवति दत्तायां जलधेन्वां न संशयः।
इमामपि प्रशंसन्ति जलधेनुं द्विजोत्तम! ॥१००

ये नरास्तेन वै यान्ति विष्णुलोकमसंशयम् ।
हेमा-ऽऽज्याम्भ-तिलैर्विद्वन् धेनुर्यद्यपि कल्पिता ।
तथापि ते च भक्ष्याः स्युर्धर्मशास्त्रमतादृताः ॥१०१
भक्षणीयं च यद्वस्तु धेन्वंगेषु प्रकल्पितम् ।
तस्यादृश्यं तदभ्येति वेदमन्त्रैः प्रतिष्ठितम् ॥१०२
पुनः संवृतमन्त्रेषु तदाकुंचनमुद्रया ।
कृते विसर्जने तेषां वस्तुरूपं पुनर्भवेत् ॥१०३
अथान्यत्संवक्ष्यामि दानाना मुत्तमं परम् ।
यद्दत्वा मानवो याति सायुज्यं परवेधसः ॥१०४
धेनुर्देया सुवर्णस्य कारयित्वा द्विजातये ।
यां दत्वा प्राङ् महीपाला ब्रह्मणः सदनं गताः ॥१०५
सा चतुर्भिस्त्रीभिर्वापि शुद्धवर्णपलैर्द्विजः ।
पलाभ्यामपि च द्वाभ्यां पलेनैकेन वा पुनः ॥१०६
हीनं तु नैव कर्तव्यं सत्यां सम्पदि सद्द्विजाः ।
हीनं तु कुर्वतो दानं दातुस्तन्निष्फलं भवेत् ॥१०७
चतुर्थांशेन धेन्वास्तु हैमं वत्सं प्रकल्पयेत् ।
सर्वरत्नैरलङ्कुर्यात् वक्ष्यमाणक्रमेण तु ॥१०८
राजतं वत्सकं कुर्याद्व्रूयुरन्ये च तद्विदः ।
अलङ्काराश्च सर्वेऽपि गोवद्रत्नैः प्रकल्पयेत् ॥१०९
सकाशाद्वासुदेवस्य यां शुश्राव युधिष्ठिरः ।
दत्वा प्राप्तो हरेर्लोकं सा मयेयमुदीरिता ॥११०

मुक्ताफलशफा कार्या प्रवालकविषाणिका।
पद्मरागाक्षियुग्मा च घृतपात्रस्तनान्विता ॥१११
कर्पूरा-ऽगरुललाटा शर्करारदना स्मृता।
मिष्टान्नमुखसंयुक्ता शंखश्रृंगांतरा तथा ॥११२
जात्यशुक्तिललाटा च द्राक्षादिरसना तथा।
सुपद्मयुग्मपार्श्वा सा क्षौमसास्नावती तथा ॥११३
इक्ष्वंघ्रिगुडजानुश्च पञ्चगव्यगुदा स्मृता।
नारीकेलैश्च कर्तव्यौ कर्णौ पृष्ठं च कांस्यकम् ॥११४
सप्तपट्टसूत्रलाङ्गूला सप्तधान्यसमावृता।
फल-पुष्पोपसम्पन्ना छत्रोपानत्समन्विता ॥११५
सुवर्णधेनुमार्याय विप्राय प्रतिपादयेत्।
अश्वमेधसहस्रस्य दत्वा फलमवाप्नुयात् ॥११६
कुलानां हि सहस्रं तु स्वर्गं नयत्यसंशयम्।
किमन्यैर्बहुभिर्दानैरलं हेमगवाऽनया ॥११७
हेमधेनुप्रदानेन कृतकृत्यो हि वर्तते।
हिरण्यगर्भो भगवान् प्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥११८
उपवासी विशुद्धात्मा दत्वा सोम-रविग्रहे।
दीयमानां च पश्यन्ति ये नरा हेमगामिमाम् ॥११९
पठ्यमानां च श्रृण्वन्ति तेऽपि यान्ति त्रिविष्टपम्।
यत्रास्ते लिखिता गेहे स्वर्णदानस्य संस्तुतिः।
रक्षो भूत-पिशाचाद्यास्ततो नश्यन्ति सद्द्विजाः ॥१२०

एता मयोक्तास्तव वत्स ! सर्वा गृष्ट्यादिका विस्तरतोऽत्र गावः।
इक्ष्वाकुभूभृत्प्रभृतिक्षितीशा जग्मुर्दिवं या विधिवच्च दत्वा ॥१२१

कृष्णाजिनस्य दानस्य प्रवक्ष्यामि शुभं विधिम्।
प्रमाणं च विधिर्यस्य यस्मै विप्राय दीयते ॥१२२
वैशाख्यां पूर्णिमायां च कार्तिक्यामथ वापि च।
उभयोस्तत्प्रदातव्यं रवि-सोमग्रहेऽपि च ॥१२३
अक्लिष्टमच्छिद्रमलोमकं च सघ्राणरंध्रं सशफं सशेफम्।
साण्डप्रदेशं सविषाणवक्त्रं शस्तं प्रदाने सितकृष्णचर्म ॥१२४
एवमेतद्विधं चर्म गृहीत्वा द्विज पावनम्।
कल्पयेद्धेनुवत्तच्च हेमशृंगादिकं तथा ॥१२५
शृङ्गे हेममये तस्य शफाश्च रजतस्य च।
मुक्ताफलैश्च लाङ्गूलं कुर्यात् शाठ्यं विवर्जयेत् ॥१२६
अनुलिप्ते महोपृष्ठे प्रसृते कुतपेंऽशुके।
तत्र प्रसारयेन्मार्गं तिलैस्तदपि पूरयेत् ॥१२७
वदन्ति तद्विदः सर्वे चतुर्द्रोणैस्तु पूरयेत्।
पुंसो नाभिप्रमाणं तु अपरे कवयो विदुः ॥१२८
नाभिमात्रं वदन्त्यन्ये राशिं कुर्यादिति द्विजः।
तिलैश्च पूरयेत् पश्चादजिनं च समन्ततः ॥१२९
हेमनाभं च तं कुर्यात् हेम्ना कर्षेण त द्विजः।
शक्त्या वापि प्रकर्तव्यं मनःशुद्धिर्यथा भवेत् १३०
सौवर्णं क्षीरपूर्णं तु पात्रं प्राच्यां निधापयेत्।
राजतं दधिपूर्णं तु तथा दक्षिणतो द्विजः ॥१३१

ताम्रमाज्यभृतं पात्रं पश्चिमायां दिशि स्मृतम्।
क्षौद्रपूर्णं तथा कांस्यं चतुर्दिक्षु क्रमेण तु ॥१३२
शक्त्या वापि च कर्तव्यं वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्।
दद्याद्वेदविदे चैव ब्राह्मणायाहिताग्नये ॥१३३
परिधाप्याऽहते वस्त्रे अलङ्कृत्य च भूषणैः।
चतस्रो गृष्ट्यः कार्या इत्यन्ये कवयो विदुः ॥१३४
वदन्ति मुनयो गाथां मार्गमाहात्म्यवेदिनः।
नानाविधांश्च विद्वांसः पुराणार्थविदो विदुः ॥१३५
यस्तु कृष्णाजिनं दद्यात्सखुरं शृंगसंयुतम्।
तिलैः प्रच्छाद्य वासोभिः सर्वरत्नैरलङ्कृतम् ॥१३६
ससमुद्रगुहा तेन सशैल-वन-कानना।
चतुरस्रा भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ॥१३७
कृष्णाजिने तिलान् दत्वा हिरण्य-मधु-सर्पिषा।
ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥१३८
यः कृष्णाजिनमास्तीर्य हेमरत्नयुतैस्तिलैः।
वस्त्रावृतं सोपवासो विष्णोरायतने तथा ॥१३६
वैशाख्यां पूर्णिमायां वा कार्तिक्यां वा समाहितः।
दद्याद्विप्रे तपोयुक्ते सद्वृत्ते च यतेन्द्रिये ॥१४०
आहिताग्नौ सन्ताने प्रदद्याद्भूरिदक्षिणम्।
यावन्त्यजिनलोमानि तिला वस्त्रस्य तन्तवः ॥१४१
तावन्त्यब्दसहस्राणि दाता विष्णुपुरे वसेत्।
विशेषमपरे ब्रूयुर्विषुवायनयोर्द्वयोः ॥१४२

तद्व्रणं बहिर्लोम प्राग्ग्रीवं तु प्रसारयेत् ।
चतसृषु तथा दिक्षु सुवर्ण-रजतानि च ॥१४३

निधाय शक्त्या पात्राणि क्षीराद्यैः पूरितानि च ।
तस्य पश्चात्समिद्धाग्निं परिसंमुह्य तं पुनः ॥१४४

पर्युक्ष्य च परस्तीर्य महाव्याहृतिभिस्तथा ।
साज्यान् हुत्वा तिलांस्तत्र विप्राय प्रतिपादयेत् ॥१४५

नाभिं स्पृशन्नदीतोयं मार्गं गृह्णाम्यहं त्विदम् ।
धीमान् दद्याद्द्विजेन्द्राय वाचयित्वा प्रतिग्रहम् ॥१४६

पश्चाद्वस्त्रादिकं दद्यादेषा प्रतिग्रहे स्थितिः ।
यमगीतामथो गाथामुदाहरन्ति तद्विदः ।
दातॄणां सत्तमानां तु विशेषप्रतिपत्तये ॥१४७

गो-भू-हिरण्यसंयुक्तं मार्गमेकं ददाति यः ।
स सर्वपाप कर्मापि सायुज्जं ब्रह्मणो व्रजेत् ॥१४८

प्रोक्तेन चैतेन मुनीश मार्गं दद्याद्द्विजेन्द्रे विधिना प्रयुक्तन् ।
पापानि हत्वा स पुरातनानि प्रयाति वेधोवपुर्वैव योगी ॥१४९

सुखासनं च यो दद्याज्जवनाख्यमथोत्तमम् ।
देवयानैर्दिवं याति स्तूयमानः सुरासुरैः ॥१५०

यो रथं हयसंयुक्तं हेमपुष्पैरलङ्कृतम् ।
कृतरज्जुं च पट्टाद्यैर्नेत्रपट्टकृतैरपि ॥१५१

तत्सर्वं स्थगितैर्वस्त्रैः पट्टिपट्टालकैः शुभैः ।
मुक्ताफलैस्तथानेकैर्मणिभिश्चोपशोभितम् ॥१५२

हयौ चैव शुभैर्वस्त्रैर्भूषितावत्यलङ्कृतौ।
तौ भूषणैरलङ्कृत्य मुखयन्त्रसुशोभितौ ॥१५३
सपर्याणौ कशायुक्तौ ग्रीवाभरणभूषितौ।
शुभलक्षणसंयुक्तौ तरुणौ तत्र योजयेत् ॥१५४
रवि-सोमग्रहे दद्याच्छुभे वाऽन्यत्र पर्वणि।
अयनयोर्द्विजाग्र्याय स प्राप्नोत्यर्कलोकताम् ॥१५५
वसेद्रविसमं तत्र सेव्यमानः स दैवतैः।
एकं वापि हयं दत्वा सर्वालङ्कारभूषितम् ॥१५६
सुलक्षणं युवानं च सोऽश्विलोकमवाप्नुयात्।
दद्यादश्वरथं यस्तु हेमरत्नविभूषितम् ॥१५७
दिव्यवस्त्रपरिच्छन्नं नेत्रपट्टादिभिः शुभैः।
सौवर्णैरर्धचन्द्रैश्च राजतैर्वा विभूषितम् ॥१५८
शुभैर्मुक्ताफलैरन्यैर्नीलवज्रादिभिस्तथा।
गजौ सुलक्षणोपेतौ सुशीलौ नीरुजावपि ॥१५६
शुभदन्तौ सुरूपौ च हेमलङ्कारधारिणौ।
दिव्यवस्त्रैः परिच्छन्नौ कर्णशंखावलम्बिनौ ॥१६०
पट्ट-नेत्रादिकक्षौ तौ विशिष्टमणिमण्डितौ।
ईदृग् रथं च संयोज्य पताकाभिर्विभूषितम् ॥१६१
शोभितं पुष्पमालाभिः शङ्ख-दुन्दुभिनिःस्वनैः।
चतुर्वेदाय विप्राय त्रिवेदाय तथा पुनः ॥१६२
शुचये च द्विवेदाय श्रोत्रियाय कृतेष्टये।
अलङ्कृत्य समालाभिः परिधाप्य सुवाससी ॥१६३

तस्य हस्तोदकं दद्यात्प्रीयतां केशवो मम।
एवं हस्तिरथं दद्यात्समभ्यर्च्य द्विजातये।
निहत्य सर्वपापानि विष्णुलोके महीयते ॥१६४
वसेच्चतुर्भुजस्तत्र सेव्यमानश्चतुर्भुजैः।
अनन्तकालमातिष्ठेच्छङ्ख-चक्र-गदाधरः ॥१६५
पश्यन्तीह रथं ये तु दीयमानं नरा द्विज !।
तेऽपि विष्णुपुरं यान्ति वासिष्ठजवचो यथा ॥१६६
एकमपीह यो दद्याद्धस्तिनं च सभूषणम्।
सवस्त्रं हेमरदनं नखैरजतकल्पितैः ॥१६७
मणि-मुक्ताफलैर्युक्तं सुवर्ण-रजतान्वितम्।
पूर्वोक्ताय तु विप्राय चतुर्वेदाय वा द्विजाः ॥१६८
यो दद्याद्विधिवत्सोऽपि सदा विष्णुपुरं वसेत्।
विधिवद्यश्च गृह्णाति सर्वमेव प्रतिग्रहम् ॥१६९
दातृलोकमवाप्नोति पराशरवचो यथा।
अलङ्कृत्य तु यः कन्यां ब्राह्मोद्वाहेन यच्छति ॥१७०
अन्योद्वाहेन केनापि गजदानशतं लभेत्।
गजदानस्य यत्पुण्यं तस्माच्छतगुणं फलम् ॥१७१
कन्यादा विधिवत्सर्वं प्राप्नुवन्ति ह्यसंशयम्।
पुत्रदानं च वाञ्छन्ति केचिद्वत्स मनीषिणः ॥१७२
कन्यादानात्परं ब्रूयुः पुत्रदानं शतोत्तरम्।
भूमिं सस्यवतीं दद्यात यस्तु विप्राय मानवः ॥१७३

स मूल-शूकतुल्यानि विष्णुलोके सदा वसेत्।
षड्भिस्तु सहितान् विप्रान्वंशानुभयतो दश।
तानेव द्विगुणान्याहुरिति केचिन्निवर्तनम् ॥१७४

दशहस्तैर्भवेद्वंशश्चतुर्भिस्तैस्तु विस्तरः।
दैर्घ्येऽपि दशभिर्वंशैर्गोचर्म परिकीर्तितम् ॥१७५

अपि गोचर्ममात्रेण भूमिं दद्याद्द्विजातये।
विष्णुलोकमवाप्नोति केचिदाहुर्मनीषिणः ॥१७६

पञ्चहस्तकदण्डानां चत्वारिंशद् दशाहता।
पञ्चभिर्गुणिता सा तु निवर्तनमिति स्मृतम् ॥१७७

बालवत्सकधेनूनां सहस्रं यत्र तिष्ठति।
तद्वै निवर्तनं ज्ञेयं इति केचिद्वदन्ति हि ॥१७८

ताम्रपट्टे पटे वाऽपि लेखयित्वा च शासनम्।
ग्रामं विप्राय वा दद्याद्दशसीरक्षितिं पुनः ॥१७९

सीरस्यैकस्य वा दद्यात्तस्य पुण्यं किमुच्यते।
भूम्यंशुकणिकातुल्याः समा विष्णुपुरे वसेत् ॥१८०

भूमिदानात्परो धर्मस्त्रैलोक्येऽपि न विद्यते।
पादैकमात्रदानेन तस्य विष्णुपुरे स्थितिः ॥१८१

तस्य दानात्परो धर्मस्तद्धृतेः पातकं परम्।
तस्मात्तां यत्नतो दद्याद्धरणं च विवर्जयेत् ॥१८२

इहैव भूमिदानस्य प्रत्यक्षं चिह्नमीक्ष्यते।
क्षितिदः स्वर्गतो भ्रष्टः क्षितिनाथः पुनर्भवेत् ॥१८३

भुनक्ति च पुनर्भोगान् यथा दिवि तथा भुवि।
गजैरश्वैर्नरैर्युक्तो हेम-रत्नविभूषितः ॥१८४

वरस्त्रीगणसंसेव्यः स्तूयमानः स्वबन्धुभिः।
छत्रालङ्कारसंयुक्तो गीतवाद्योत्सवादिभिः ॥१८५

इत्यादि भूमिदानस्य चिह्नं ते वत्स ! कीर्तितम्।
वित्तेनाऽपि हि यः क्रीत्वा भूमिं विप्राय यच्छति ॥१८६

यावत्तिष्ठति सा भूमिस्तावत्स्वर्गे महीयते।
गृहभूमिं च यो दद्याद्द्द्यादाश्रममात्रकम् ॥१८७

गृहोपकरणं दत्वा गृहदानफलं लभेत्।
हस्तमात्रां च यो दद्याद्भूमिं विप्राय मानवः ॥१८८

किष्कुमात्रां च यो दद्याद्भूमिं वेदविदे नरः।
तस्यापि हि महापुण्यं दद्यादंगुलमात्रकम् ॥१८९

नैतस्मात्परमं दानं किंचिदस्ति धरातले।
पुण्यं फलं प्रवक्ष्यामि विशेषेण तु तच्छृणु ॥१९०

यत्र हैमानि सद्मानि मणिभिर्भूषितानि च।
प्राकारा यत्र सौवर्णाश्चतुर्द्वाराः सतोरणाः ॥१९१

दिव्याश्चाप्सरसो यत्र तासां सङ्ख्या ह्यनेकशः।
सुपर्वाणौकसा युक्तौ ग्रीवाभरणभूषितौ ॥१९२

दृष्ट्वैव कामदेवोऽपि भवेत्कामातुरः क्षणात्।
सुकेशा सुललाटाश्च बालचन्द्रोपमभ्रुवः ॥१९३

सुनासा-कर्ण-गण्डाश्च शुभोष्ठाधरपल्लवाः।
सुग्रीवा भुजपाल्यग्राः पीनोत्तुङ्गस्तनास्तथा ॥१९४

सुमध्योरुनितम्बाश्च सुश्रेण्यश्च शुभोरुकाः ।
सुजानु-जङ्घ-गुल्फाश्च सुपादाः सुनखास्तथा ॥१९५

केन रूपेण ता वर्ण्या भवन्त्यप्सरसो द्विजाः ।
वैष्णव्यो गणिकास्सर्वा दिव्यस्रग्वस्त्रभूषणाः ॥१९६

दिव्यानुलेपलिप्ताङ्गा दिव्यालङ्कारभूषिताः ।
मन्मथोऽपि हि ता दृष्ट्वाभवेत्कामातुरः स्वयम् ॥१९७

मुनीनामपि चेतांसि या दृष्ट्वा चुक्षुभुः क्षणात् ।
वर्ण्यन्ते ताः कथं देव्यो या लक्ष्मीप्रतिमोपमाः ॥१९८

वैष्णवाप्सरसां सङ्घैर्वृतश्चामरधारिभिः ।
गीयमानश्च गन्धर्वैस्तूयमानश्च दैवतैः ॥१९९

वसेद्विष्णुपुरे तावद्यावद्विष्णुरजः क्षितौ ।
पुण्यं च भूमिदानस्य कथितं तव वत्सक ! ॥२००

मेरुर्धरित्री कुलपर्वताश्च पाथोऽर्णवः स्वर्गतलादिकादिः ।
देयानि सर्वाणि च सर्वकामैः प्रोक्तानि दानानि पुराणविद्भिः ॥२०१

आत्मतुल्यं सुवर्णं वा रजतं द्रव्यमेव च ।
यो ददाति द्विजाग्र्येभ्यस्तस्याप्येतत्फलं भवेत् ॥२०२

ब्रह्महत्यादिपापैस्तु यदि युक्तो भवेन्नरः ।
स तत्पापविनिर्मुक्तः प्रोक्ते विष्णुपुरे वसेत् ॥२०३

तुलापुरुष-भूमी च दीयमाने च ये नराः ।
पश्यन्ति तेऽपि यान्ति द्यां ये च स्युरनुमोदकाः ॥२०४

गुडं वा यदि वा खण्डं लवणं चापि तोलितम् ।
यो ददात्यात्मना तुल्यं नारी वा पुरुषोऽपिवा ॥२०५

पुमान्प्रद्युम्नवत् स स्यान्नारी स्यात्पार्वतीसमा।
सौभाग्यरूपसंयुक्तो भुञ्जीताऽन्ते त्रिविष्टपम् ॥२०६
हिरण्यं दक्षिणायुक्तं सवस्त्रं भूषणान्वितम्।
अलङ्कृत्य द्विजाग्र्यं तं परिधाप्य च वाससी ॥२०७
खण्डादि तोलितं पश्चाद्विप्राय प्रतिपादयेत्।
सर्वकामसमृद्धात्मा चिरकालं वसेद्दिवि ॥२०८
उष्ट्र खराजौ महिषं च मेषमश्वं करेणुं महिषीमजां च।
ब्रूयुः खरोष्ट्रीभविकां मुनीन्द्राः हेमादियुक्तं सकलं च दानम् ॥२०६
वराणि रत्नानि च हैम-रूप्यं शुभानि वासांसि च कांस्यताम्रे।
उपाधिमात्रं करभादि कृत्वा हेमादिदानं द्विज दीयते हि ॥२१०
केचिद्वदन्ति चैतानि कृत्वा हेममयानि च।
सर्वोपस्करयुक्तानि देयानि हेमधेनुवत् ॥२११
अर्चयित्वा हृषीकेशं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम्।
अग्निशुद्धं सुवर्णं च विप्रायाहूय यच्छति ॥२१२
स मुक्त्वा विष्णुलोकं तु यदाऽऽगच्छति संसृतौ।
तदाऽसौ तेन पुण्येन धनयुक्तो द्विजो भवेत् ॥१३
यो रूप्यमुत्तमं दद्यादर्थिने ब्राह्मणाय च।
सोऽतीव धनसंयुक्तो रूपयुक्तश्च जायते ॥२१४
माणिक्यानि विचित्राणि नानानामानि यो नरः।
तथा ताम्रं च कांस्यं च त्रपु वा सीसकादिकम् ॥२१५
यो दद्याद्भक्तितो विप्रः सोमलोकमवाप्नुयात्।
स सम्भुज्य तु तं लोकं रूपवानिह जायते ॥२१६

घृतं ददाति यो विप्रः सोऽत्यन्तं सुखमश्नुते ।
भोजनाभ्यञ्जनार्थं वा भवेत्सोऽपि सुखी नरः ॥२१७

सततं तैलदानेन भोजनाभ्यञ्जनाय च ।
स्निग्धदेहोऽतितेजस्वी रूपयुक्तः प्रजायते ॥२१८

मृगनाभि च कर्पूरं तगरं चन्दनादिकम् ।
गन्धद्रव्याणि यो दद्याद्धनी भोगी स जायते ॥२१९

ताम्बूलं पुष्पमालाश्च पुष्पस्याभरणानि च ।
यो दद्याद्वेषवान्भोगी धनयुक्तः स जायते ।
सुमतिर्वीर्यवांश्चैव धनयुक्तश्च सर्वदा ॥२२०

शिशिरर्तौ च यो दद्यादनलं सेन्धनं नरः ।
स समिद्धोदराग्निः सन् प्रज्ञासूर्ययुतो भवेत् ॥२२१

यो दद्याद्दुर्लभानां च नित्यमेधांसि मानवः ।
श्रियायुक्तो भवेदत्र सङ्ग्रामे चापराजितः ॥२२२

अथ किं बहुनोक्तेन दानधर्मविवेचने ।
यद्यदिष्टतमं यस्य तत्तस्मै प्रतिपादयेत् ॥२२३

तिलान् दर्भांश्च नित्यार्थं तृणान्यास्तरणाय च ।
भुक्त्वा स तु सुखं स्वर्गे जामश्चात्र भवेद्भुवि ॥२२४

गुडमिक्षुरसं खण्डं दुग्ध-खर्जूर-खाद्यकान् ।
फलानि दत्वा सर्वाणि स्वादूनि मधुराणि च ॥२२५

सर्वाणि फलशाकानि लवणानि तथा द्विज ! ।
स्थाल्यादिगृहपाकं च दत्वा गोत्राधिको भवेत् ॥२२६

कूष्माण्डं त्रपुषं दत्वा वृन्ताकादि पटोलकान्।
शुभानि कन्दमूलानि सुहृष्टः पुत्रवान् भवेत्॥२२७
बदरा-ऽऽम्र-कपित्थानि खर्जूर-दाडिमानि च।
चिञ्चाञ्चामलकं दत्वा पुत्रवानिह जायते॥२२८
या नारी द्विज! चैतानि द्विजे भक्त्योपपातयेत्।
सर्वं तस्या भवेत्तद्धि धेनुदानसमन्वितम्।
सुपुत्रा सुभगा पुष्टा पार्वतीवेह जायते॥२२९
योऽर्थिने तृण-काष्ठानि ब्राह्मणायोपपादयेत्।
सर्वं दत्तं भवेत्तस्य धेनुदानसमं फलम्॥२३०
भोजनाच्छादने दत्वा दत्वा चोपानहौ द्विजः।
स्वर्गलोकं तु सम्भुज्य पूर्णकामोऽत्र जायते॥२३१
याः पण्यनार्योऽतिसकामपुंसं कामोपभुक्त्यै निजदत्तदेहाः।
गीर्वाणचेतोहररूपवत्यः पौरंदरास्ता गणिका भवन्ति॥२३२
गृहं वा मठिकं वाऽपि शयना-ऽऽसन-विष्टरम्।
दत्वा च कशिपुं विद्वान् विप्रान् यः पाठयेन्नरः॥२३३
महीदानादिकं व्यास! विद्यादानं शताधिकम्।
विद्यार्थिनां च विप्राणां पादाभ्यङ्गमुपानहौ॥२३४
यो ददाति द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मलोकं स गच्छति।
आदावारभ्य वेदांस्तु शास्त्रं वाऽन्यतमं द्विजः॥२३५
अध्यापयेद् द्विजान् शिष्यान् विद्यादानं तदुच्यते।
उपाध्यायं निवेश्याग्रे तस्य कृत्वा च वेतनम्॥२३६

विद्यां भक्त्या प्रयच्छेद्यः परब्रह्मण्यसौ विशेत् ।
विद्यार्थिने च विप्राय यो दद्याद्भोजनं द्विजः ॥२३७
पादाभ्यङ्गं तथा स्नानं सोऽपि विद्यांशभाग्भवेत् ।
यः स्वयं पाठयेद्विप्रान् स्नात्वा भक्त्या च स द्विजः ॥२३८
साक्षात् ब्रह्म समभ्येति भूयो नायाति संसृतौ ।
ऋचं वा यदि वार्धं च पादं पादार्धमेव च ॥२३६
अध्यापयति तस्याऽपि नास्ति शिष्यस्य निष्कृतिः ।
मन्त्ररूपं च यो दद्यादेकं वाऽपि शुभाक्षरम् ।
तस्य दानस्य वै शिष्यो निष्कृतिं कर्तुमक्षमः ॥२४०

यद्विप्र शिष्यप्रतिपादितेन विद्याप्रदानेन न तुल्यमस्ति ।
दानं धरित्र्यामविनाशि किंचित्तस्मात्प्रदेयं सततं तदेव ॥२४१

रोगार्तस्यौषधं पथ्यं यो ददाति नरो यदि ।
अन्यस्यापि च कस्यापि प्राणदः स तु मानवः ॥२४२
किं रत्नैर्भूषणैर्दत्तैर्गोभिर्वासोभिरेव च ।
किं वित्तैर्भूषणैर्वस्त्रैरत्नैर्गोभिस्तुरंगमैः ।
आदत्तैः प्राणहीनेन प्राणदानमतोऽधिकम् ॥२४३
अन्नं प्राणो जलं प्राणः प्राणश्चौषधमुच्यते ।
तस्मादौषधदानेन दाता सुरसमो द्विजाः ॥२४४
प्राणदानं च यो दद्यात्सर्वेषामपि देहिनाम् ।
स याति परमं स्थानं यत्र देवश्चतुर्भुजः ॥२४५
यो दद्यान्मधुरां वाचमाश्वासनकरीमृताम् ।
रोग-क्षुधादिनार्तस्य स गोमेधफलं लभेत् ॥२४६

क्लीबाऽन्ध-बधिरादीनां रोगार्त-कृशरीरिणाम्।
तेषां यद्दीयते दानं दयादानं तदुच्यते ॥२४७

ये यच्छन्ति दयादानं सानुकम्पेन चेतसा।
तेऽपि तद्दानधर्मेण विष्णुलोकमवाप्नुयुः ॥२४८

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तिथि-मासगतं द्विज !।
यत्प्रदाने मुनिश्रेष्ठ ! विशिष्टं फलमिष्यते ॥२४६

मासे मार्गशिरे दानं पूर्णचन्द्रतिथौ नरः।
विधिना तत्प्रवक्ष्यामि यत्प्रदानं महत्फलम् ॥२५०

कांस्यस्य पात्रमक्लिष्टं लवणप्रस्थपूरितम्।
हिरण्यनाभं वस्त्रेण कुसुम्भेन च छादितम् ॥२५१

स्नातः स्नाताय विप्राय सवस्त्रं प्रतिपाद्य च।
सौभाग्य-रूप-लावण्ययुक्तो भवति वै नरः ॥२५२

गौरसर्षपकल्केन पौष्यामुत्सादितो नरः।
स पुनरभिषेक्तव्यः कुम्भेन गव्यसर्पिषा ॥२५३

सर्वगन्धोदकैस्तीर्थैः फल-रत्नसमन्वितैः।
ससुवर्णमुखं कृत्वा प्रदद्यात्तद्द्विजन्मने ॥२५४

घृतेन स्नापयेद्विष्णुं भक्त्या सम्पूजयेद्धरिम्।
घृतं च जुहुयाद्वह्नौ घृतं दद्याद्द्विजातये ॥२५५

छत्रं वासोयुगं दद्यात्सोपवासः समाहितः।
कर्मणा तेन धर्मज्ञः पुष्टिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥२५६

माघ्यां कुर्वन् तिलैः श्राद्धं मुच्यते सर्वपातकैः।
शुभं शयनमास्तीर्य फाल्गुन्यां सद्द्विजातये ॥२५७

रूप-द्रविणसंयुक्तो भार्यां रूपवतीं लभेत्।
नरः प्राप्नोति धर्मज्ञः प्रमाणं राजवेश्मनि ॥२५८
नारी च शुभभर्तारं रूप-सौभाग्यसंयुतम्।
प्राप्नोति विपुलान्भोगान्नात्र कार्या विचारणा ॥२५९
पौर्णमासीषु चैतासु मासर्क्षसंयुतासु च।
एतेषामेव दानानां फलं दशगुणं लभेत् ॥२६०
महापूर्वासु चैतासु फलमक्षय्यमश्नुते।
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य चैत्रे वस्त्रप्रदो नरः ॥२६१
अक्षयान् लभते भोगान्नाकलोकेऽविनश्वरे।
इत्येतत्कथितं विप्र फलं चैत्रस्य सत्तम ॥२६२
दद्याद्धेमं च वैशाखे द्वादश्यां यो नरः सिते।
शुक्ले छत्रोपानहौ च विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥२६३
आस्तीर्य शयनं दत्वा प्रणम्य भोगशायिनम्।
आषाढशुक्लद्वादश्यां श्वेतद्वीपमवाप्नुयात् ॥२६४
श्रावणे वस्त्रदानेन विष्णुसायुज्यमृच्छति।
गोदः प्रयाति गोलोकं मासे भाद्रपदे द्विजः ॥२६५
प्रीणयेदश्वशिरसं यश्च दत्वा तथाश्विने।
विष्णुलोकमवाप्नोति कुलमुद्धरते स्वकम् ॥२६६
कंबलस्य प्रदानेन कार्तिक्यां भोगमाप्नुयात्।
प्रदानं लवणानां तु मार्गशीर्षे महाफलम् ॥२६७
धान्यानां च तथा पौषे दारूणामप्यनन्तरम्।
फाल्गुने सर्वगन्धानां भवेद्दानं महाफलम् ॥२६८

भगर्क्षसंयुता चैत्रे द्वादशी तु महाफला।
मासे तु माधवे शुक्लद्वादशी करसंयुता ॥२६६

वायव्येन युता शुक्ले शुचौ मूलेन वैष्णवी।
नभस्याश्विनयोः पुण्या श्रावणयजर्क्षसंयुता ॥२७०

पौष्णर्क्षसंयुता चोर्जे मार्गे च कृत्तिकायुता।
सहस्ये तिष्यकोपेता तपस्यादित्यसंयुता ॥२७१

पश्येद्गुर्वर्क्षसंयुक्ता द्वादशी पावनः स्मृता।
नक्षत्रयुक्तास्वेतासु दत्तं दानाद्यनंतकम् ॥२७२

मेषं च मेषसंक्रान्तौ गोवृषं वृषसङ्क्रमे।
शयना-ऽऽसनदानं च मिथुनोपगमे तथा ॥२७३

कर्कप्रवेशे सक्तून् हि प्रदद्याच्छर्करां तथा।
सिंहप्रवेशे पात्राणां तैजसानां तथैव च ॥२७४

कन्याप्रवेशे वस्त्राणां सुरभीणां तथैव च।
तुलाप्रवेशे धान्यानां बीजानामपि चोत्तमम् ॥२७५

कीटप्रवेशे वस्त्राणां वेश्मनां दानमेव च।
धनुःप्रवेशे शस्त्राणां यानानां तु तथैव च ॥२७६

झषप्रवेशे सर्वेषामन्नानां दानमुत्तमम्।
कुम्भप्रवेशे दानं तु गवामर्थे तृणस्य च।
मीनप्रवेशेऽम्लानानां माल्यानामपि चोत्तमम् ॥२७७

नान्यथैतानि मया द्विजेन्द्राः प्रोक्तानि कालेषु नरः प्रदाय।
प्नोति कामान्मनसा विमृष्टान् तस्मात्प्रशंसन्ति हि कालदानम् ॥२७८

अशौचे सूतके चैव न देयं न प्रतिग्रहः ।
सतोरपि तयोर्देया सदा चाभयदक्षिणा ॥२७६
रात्रौ दानं न दातव्यं दातव्यमभयं द्विजैः ।
इमानि त्रीणि देयानि विद्या-कन्याप्रतिग्रहः ॥२८०
देवानामतिथीनां च गवामपि च पूजनम् ।
रात्रावपि हि कर्तव्यमिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥२८१
शुचिः सन्नशुचिर्वाऽपि दद्याद्गृह्णीत चोभयम् ।
अभयस्य दानकालोऽयं यदा भयमुपस्थितम् ॥२८२
अन्यप्रतिग्रहो विद्वन् ग्राह्यश्च शुचिना द्विज ।
अशौचे सूतके वाऽपि न तु ग्राह्या भवन्ति ते ॥२८३
अभ्यक्तेन च धर्मज्ञ ! तथा मुक्तशिखेन च ।
स्नात्वाऽऽचम्य पयः स्पृश्य गृह्णीत प्रयतः शुचिः ॥२८४
द्रव्यस्य नाम गृह्णीयाद्दाता तथा निवेदयेत् ।
तोयं दत्वा तथा दाता दाने विधिरयं स्मृतः ॥२८५
प्रतिग्रहीता सावित्रं सर्वं मन्त्रमुदीरयेत् ।
साध्यं द्रव्येण तत्सर्वं तद्द्रव्यं च सदैवतम् ॥२८६
समापय्य ततः पश्चात्कामं स्तुत्वा प्रतिग्रहम् ।
प्रतिग्रही पठेदुच्चैः प्रतिगृह्य द्विजोत्तमात् ॥२८७
मन्दं पठेच्च राजन्यो उपांशु च तथा विशः ।
मनसा च तथा शूद्रात्कर्तव्यं स्वस्तिवाचनम् ॥२८८
सोङ्कारं ब्राह्मणो ब्रूयान्निरोङ्कारं महीपतिः ।
उपांशु च तथा वैश्यः स्वस्ति शूद्रे तथैव च ॥२८६

न दानं यशसे दद्यान्न भयान्नोपकारिणे।
न नृत्यगीतशीलेभ्यो हासकेभ्यश्च धार्मिकः ॥२६०

पात्रभूतोऽपि यो विप्रः प्रतिगृह्य प्रतिग्रहम्।
असत्सु विनियुञ्जीत तस्मै देयं न तद्भवेत् ॥२६१

सञ्चयं कुरुते यस्तु समादाय इतस्ततः।
धर्मार्थं नोपयुञ्जीत न तं तस्करमर्चयेत् ॥२६२

यस्मै दित्सा द्विजाय स्यादुररीकृत्य तं नरः।
दानं च हृदि सञ्चिन्त्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ॥२६३

वदन्ति मुनयो गाथां परोक्षे दानसत्फलम्।
परोक्षमक्षयं दानं प्रत्यक्षात्कोटिशो भवेत् ॥२६४

पात्रं मनसि सञ्चित्य गुणवन्तमभीप्सितम्।
अप्सु ब्राह्मणहस्ते वा भूमौ वापि जलं क्षिपेत् ॥२६५

दानकाले तु सम्प्राप्ते पात्रे चासन्निधौ जलम्।
अन्यविप्रकरे दद्याद्दानं पात्राय दीयते ॥२६६

विष्णुर्भूर्वरुणो यत्र गृहीत्वाह करोदकम्।
तद्दानं ब्रह्मसम्प्राप्तमक्षय्यमिति विष्णुगीः ॥२६७

लक्ष्मीभ्रष्टाय यद्दत्तं दरिद्रायार्थिने द्विजाः।
तदक्षयं समुद्दिष्टमिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥२६८

राज्यभ्रष्टं च राजानं भूयो राज्ये निवेशयेत्।
विष्णुलोकं चिरं भुक्त्वा भूयो भूमिपतिर्भवेत् ॥२६९

प्रतिश्रुत्य द्विजायार्थं यो न यच्छति तं पुनः।
न च स्मारयते विप्रस्तुल्यं तदुपपातकम् ॥३००

प्रतिश्रुत्य च यत्किञ्चिद् द्विजेभ्यो न प्रयच्छति।
स वै द्वादश जन्मानि शृगालयोनिमाप्नुयात् ॥३०१

गृष्ट्यादीनथ वक्ष्यामि यथालक्षणलक्षितान्।
मानं भूमितिलादीनां यथावत्तन्निबोधत ॥३०२

अजातदन्ता या तु स्याद्गर्भदन्तसमन्विता।
वर्षादर्वाक् चतुर्थाच्च वत्सिकेति निगद्यते ॥३०३

सुशीला च सुवर्णा च नीरोगा च पयस्विनी।
सवत्सा प्रथमं सूता गृष्टिर्गौरभिधीयते ॥३०४

अरोगा याऽपरिक्लिष्टा प्रसववत्यथ सूतिका।
सूता याऽतिपयोयुक्ता सा गौः सामान्यतः स्मृता ॥३०५

पूर्वोक्तगुणसंयुक्ता प्रत्यग्रप्रसवा तथा।
साथ गौर्धेनुरित्युक्ता वसिष्ठजवचो यथा ॥३०६

पञ्चगुञ्जो भवेन्माषः कर्षः षोडशभिश्च तैः।
तैश्चतुर्भिः पलं प्रोक्तं दाने मानं च पुण्यदम् ॥३०७

भद्रं नरैकहस्ताभिः प्रसृतीभिश्चतसृभिः।
मानकं तैश्चतुर्भिश्च सेतिकेति प्रकीर्तिता ॥३०८

ताभिश्चतसृभिः प्रस्थश्चतुर्भिराढकश्च तैः।
द्रोणश्चतुर्भिस्तैरुक्तो धान्यमानमिति स्मृतम् ॥३०९

तिलप्रसृतिभिर्भाण्डं चतुर्भिर्यत्प्रपूर्यते।
तैश्चतुर्भिश्च कर्षो हि तैश्चतुर्भिश्च वै पलम् ॥३१०

पलैश्च तैश्चतुर्भिः स्यात् श्रोपाटी तच्चतुष्टयम्।
करकं चतसृभिस्ताभिश्चतुर्भिस्तैर्घटः स्मृतः ॥३११

इत्यन्यैर्मुनिभिः प्रोक्तं घृतगौस्तिलगौः समाः।
किञ्च वो बहुनोक्तेन दानस्य तु पुनः पुनः ॥३१२
दीयते यद्दरिद्राय कुटुम्बिने तदक्षयम्।
सुकृद्बुधाय विप्राय भक्त्या परमया वसु ॥३१३
दीयते वेदविदुषे तदुपतिष्ठति यौवने।
अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि दानानि निष्फलानि तु ॥३१४
तथा निष्फलजन्मानि यथावत्तन्निबोधत।
वृथा जन्मानि चत्वारि वृथा दानानि षोडश ॥३१५
पृथक् तानि प्रवक्ष्यामि निबोध त्वं द्विजोत्तम !।
अपुत्रस्य वृथा जन्म ये च धर्मबहिष्कृताः ॥३१६
दरिद्रस्य वृथा जन्म व्याधितस्य तथैव च।
अपुण्यस्थाने यद्दत्तं वृथा दानं प्रकीर्तितम् ॥२१७
(पण्यस्थानेषु यद्दत्तं वृथा दानं तदुच्यते।)
आरूढपतिते दानं अन्यायोपार्जितं च यत्।
व्यर्थमब्राह्मणे दानं पतिते तस्करेऽपि च ॥३१८
गुरोरप्रीतिजनके कृतघ्ने ग्रामयाजके।
ब्रह्मबन्धौ च यद्दानं यद्दत्तं वृषलीपतौ ॥३१९
वेदविक्रयिणे चैव यस्य चोपपतिर्गृहे।
स्त्रीजिते चैवं यद्दत्तं व्यालग्राहे तथैव च ॥३२०
परिचारके तु यद्दत्तं वृथा दानानि षोडश।
तमोवृत्तश्च यो दद्याद्भयात्क्रोधात्तथैव च ॥३२१
विद्धत्र दानं तत्सर्वं भुङ्क्ते गर्भस्थ एव हि।

ईर्ष्यया मन्युना दानं यद्दानमर्थकारणात्।
यो ददाति द्विजातिभ्यो बालभावे तदश्नुते ॥३२२
स्वयं नीत्वा च यद्दानं भक्त्या पात्रे प्रदीयते।
अप्रमेयगुणं तद्धि उपतिष्ठति यौवने ॥३२३
यत्सद्विप्राय वृद्धाय भक्त्या च परया वसु।
दीयते वेदविदुषे तदुपतिष्ठति वार्द्धके ॥३२४
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु सर्वदानानि सत्तमाः।
दातव्यानि द्विजातिभ्यः स्वर्गमार्गमभीप्सता ॥३२५
भूमेः प्रतिग्रहं कुर्याद्भूमिं कृत्वा प्रदक्षिणाम्।
करे गृह्य तथा कन्यां दास दास्यौ तथा द्विजः ॥३२६
करं तु हृदि विन्यस्य धर्म्यो ज्ञेयः प्रतिग्रहः।
आरुह्य च गजस्योक्तः कर्णेऽश्वस्य सटासु च ॥३२७
तथा चैकशफानां च सर्वेषामविशेषतः।
प्रतिगृह्णीत गां शृङ्गे पुच्छे कृष्णाजिनं तथा ॥३२८
कर्णजाः पशवः सर्वे ग्राह्याः पुच्छे विचक्षणैः।
प्रतिग्रहं तथोष्ट्रस्य आरुह्यैव तु पादुके ॥३२९
ईषायां तु रथोऽक्षे वा छत्रं दण्डे विधारयेत्।
द्रुमाणमथ सर्वेषां मूले न्यस्तकरो भवेत् ॥३३०
आयुधानि समादाय तथाऽऽमुच्य विभूषणम्।
धर्मध्वजस्तथा स्पृष्ट्वा प्रविश्य च तथा गृहम् ॥३३१
अवतीर्य तु सर्वाणि जलस्थानानि यानि तु।
उपविश्य च शय्यायां स्पर्शयित्वा करेण वा ॥३३२

द्रव्याण्यन्यानि चादाय स्पृष्ट्वा वा ब्राह्मणः पठेत्।
कन्यादाने तु न पठेत् द्रव्याणि तु पृथक् पृथक् ॥३३३

प्रतिग्रहाद् द्विजश्रेष्ठ तत्रैवान्तर्भवन्ति ते।
द्रव्याणामथ सर्वेषां द्रव्यसंश्रयणान्नरः ॥३३४

वाचयेज्जलमादाय ॐकारेण प्रतिग्रहम्।
प्रतिग्रहस्य यो धर्म्यं न जानाति द्विजो विधिम्।
स द्रव्यस्तेयसंयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ॥३३५

अथापि वक्ष्यामि विधेर्विशेषान् वाजिप्रदाने च प्रतिग्रहे च।
दातृ-ग्रहीत्रोरपि येन पुण्यं स्वर्गाय जायेत शृणुध्वमेतत् ॥३३६

गृह्णीत योऽश्वं विधिवद् द्विजेन्द्राः कुर्यादसौ पञ्चदिनानि पूर्वम्।
पञ्चोपचारैरुत विष्णुपूजां कूष्माण्डमन्त्रैर्घृत-दुग्धहोमम् ॥३३७

यद्ग्राम इत्यादि मरुत्वतीयं सोङ्कारभूरादिभिरन्वितं च।
प्रत्येकमष्टौ जुहुयाद् द्विजाग्र्यः सौर्येण मन्त्रेण च तद्वदष्टौ ॥३३८

षष्ठ्या प्रयुक्तं त्रिशतं जुहोति कुर्याच्च गायत्रिजपं सहस्रम्।
पश्चात्स गृह्णन् तुरगं द्विजाग्र्यस्तथा स्वमात्मानमजं नयेत् ॥३३९

दाताऽपि चतद्व्रतमाविदध्याद् द्विजाग्र्यत्रत्प्राक्तनपापशुध्यै।
द्वावप्यमू सूर्यजनं लभेते सर्वत्र पूज्यौ द्विज वृन्दमध्ये ॥३४०

अश्वप्रतिग्रहविधिं च प्रतिग्रहं च जानाति योऽश्वस्य पुराणगाथाः।
स एव धन्यः स च पूजनीयः इहैव लोके द्विज-देवमान्यः ॥३४१

विशेषपूज्यप्रतिपादनाय तिथौ प्रदत्तं द्विज यत्र यत्र।
प्रागुक्तमेतत्पुनरुच्यते यत्तच्छ्रूयतामत्र हि कथ्यमानम् ॥३४२

श्रावणे शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां प्रीयते हरिः ।
गोप्रदानेन विप्रेन्द्र वदन्त्येतन्मनीषिणः ।।३४३
पौषे शुक्ले तथा वत्स द्वादश्यां घृतधेनुकाम् ।
घृतार्चैः प्रीणनायालं प्रदद्यात्फलदायिनीम् ।।३४४
तथैव माघद्वादश्यां प्रदत्ता तिलगौर्द्विजाः ।
केशवं प्रीणयत्याशु सर्वान् कामान् प्रयच्छति ।। ३४५
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां जलधेनुकाम् ।
दत्त्वा विप्राय विधिना प्रीणयत्यम्बुशायिनम् ।।३४६
यत्र वा तत्र वा काले यद्वा तद्वा प्रदीयते ।
विशेषार्थमिदं प्रोक्तं नान्यत्काले निषेधनम् ।।३४७
विष्णुमुद्दिश्य विप्रेभ्यो निःस्वेभ्यो यत्प्रदीयते ।
भवेत्तदक्षयं दानं मुत्तमत्वात्परैरिदम् ।।३४८
काले पात्रे तथा देशे धनं न्यायार्जितं तथा ।
यद्दत्तं ब्राह्मणश्रेष्ठे तदनन्तं प्रकीर्तितम् ३४६
चन्द्रे वा यदि वा सूर्ये दृष्टे राहौ महाग्रहे ।
अक्षय्यं कथितं सर्वं तदप्यर्के विशिष्यते ।।३५०
द्वादशीसु च शुक्लासु विशेषात् श्रवणेन च ।
यत्र यदीयते किञ्चित्तदनंतं प्रजायते ।।३५१
विशेषाद्बुधयुक्तेषु पक्षान्त्येषु च सर्वदा ।
तृतीयासु च सर्वासु शुक्लासु च विशेषतः ।।३५२
वैशाखे शुक्लपक्षे तु विशेषादपि मानवः ।
आषाढी कार्तिकी चैव फाल्गुनी तु विशेषतः ।।३५३

तिस्रश्चैताः पौर्णमास्यो दाने विप्र महाफलाः।
व्यतीपातेषु सर्वेषु समर्क्षेषु द्विजोत्तम ! ॥३५४

ग्रहसङ्क्रमकालेषु तीव्ररश्मेर्विशेषतः।
तुला-मेषप्रवेशेषु योगेषु मिथुनस्य च ॥३५५

रवेर्महाफलं दानं तेभ्योऽपि स्यान्महाफलम्।
यदा भानुः प्रविशति मकरं द्विजसत्तमाः ॥३५६

आषाढेऽश्वयुजे चैव पौषे चैत्रे तथैव च।
द्वादशीप्रभृति प्रोक्तं पुण्यं दिनचतुष्टयम् ॥३५७

मिथुनं च तथा कन्यां धन्विनं मीनमेव च।
प्रवेशे भास्करे पुण्यं कथितं द्विजसत्तमाः।
षडशीतिमुखं नाम दाने दिनचतुष्टयम् ॥३५८

अच्छिन्ननाले यद्दत्तं पुत्रे जाते द्विजोत्तमाः।
संस्कारे चैव पुत्रस्य तदक्षय्यं प्रकीर्तितम् ॥३५९

इष्टयश्च विविधाः प्रोक्तास्ताश्च कार्या यथोदिताः।
सर्वा अपि हि सद्विप्रैरिष्टधर्ममभीप्सुभिः ॥३६०

सत्सद्ममेविद्विजनाकलब्धिसिद्ध्यर्थमुक्तानि क्रियन्ति विप्राः।
दानानि वक्ष्याम्यथ पूर्त्तधर्मं स्याद्येन पुंसां विहितेन पुण्यम् ॥३६१

ब्रह्मेश-हरि-सूर्याणां स्कन्देभास्या-ऽश्विनां तथा।
मातृणां च ग्रहाणां च गृहाणि कारयेन्नरः ॥३६२

इष्टकादशकं वाऽपि यश्चापयति विष्णवे।
अनेन विधिना कुर्याद्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥३६३

एवं यः सर्वदेवानां मन्दिरं कारयेन्नरः ।
स याति वैष्णवं लोकं प्राप्यं योगशतैः कृतैः ॥३६४

समाचरति यो भग्न सुधाभिधवलं यदि ।
कुरुते देवहर्म्यं च विशिष्टैर्लेप-चित्रकैः॥३५

सम्मार्जयति यश्चापि यतो यश्चानुलेपयेत् ।
प्रदीपं तत्र यो दद्यात्स याति विष्णुलोकताम् ॥३६६

पूजयेद्विधिना यस्तु पञ्चोपचारसंयुतः ।
स विष्णुलोकमभ्येति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३६७

यावन्त्यश्चेष्टकास्तत्र चिता देवस्य सद्मनि ।
तावन्त्यब्दसहस्राणि तत्कर्ता स्वर्गमाविशेत् ॥३६८

सन्निहत्य-तडागानि पुष्करिण्यश्च दीर्घिकाः ।
तथा कूपाश्च वाप्यश्च कर्तव्या गृहमेधिभिः ॥३६६

खातमात्रं प्रकर्तव्यमकाहिकमपि क्षितौ ।
यावत्पोत्रा जलं गौस्तु तृषार्ता वितृषा भवेत् ॥३७०

पिबन्ति सर्वसत्वानि तृषार्तान्यम्भसामिह ।
वर्षाणि बिन्दुतुल्यानि तत्कर्ता दिवमावसेत ॥३७१

उपकुर्वन्ति यावन्ति गण्डूषाणि क्रियासु च ।
कुर्वन्ति स्नान-शौचादि तथैवाचमनान्यपि ॥३७२

तावत्सङ्ख्यानि वर्षाणि लक्षाणि दिवि मोदते ।
अपां स्रष्टा वसेत्स्वर्गे सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥३७३

आरामाश्चापि कर्तव्याः शुभवृक्षैः सुशोभिताः ।
अश्वत्थोदुम्बर-प्लक्ष-चूत-राजाद-नीवरैः ॥३७४

जम्बू-निम्ब-कदम्बैश्च खर्जूरैर्नारिकेलकैः।
बकुलैश्चम्पकैर्हृद्यैः पाटला-ऽशोक-किंशुकैः ॥३७५

द्रुमैर्नानाविधैरन्यैः फल-पुष्पोपयोगिभिः।
जाती-जपादिपुष्पैस्तु शोभिताश्च समन्ततः ॥३७६

फलोपयोगिनः सर्वे तथा पुष्पोपयोगिनः।
आरामेषु च कर्तव्याः पितृ-देवोपयोगदाः ॥३७७

गाथामुदाहरन्त्यत्र तद्विदः कवयोऽपरे।
वृक्षरोपकलोकानां उक्ता या पुष्पवाटिकाः ॥३७८

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दशचिंचिणीश्च।
षट्चम्पकं तालशतत्रयं च पञ्चाम्रवृक्षैर्नरकं न पश्येत् ॥३७९

कपित्थ-विल्वामलकीत्रयं च पंचाम्रवापी नरकं नयाति ॥३८०

यावन्ति खादन्ति फलानि वृक्षात्क्षुद्व्हिदग्धास्तनुभृद्गणाद्याः।
वर्षाणि तावन्ति वसन्ति नाके वृक्षैकवापास्त्रिदशौकसेव्याः ॥३८१

यावन्ति पुष्पाणि महीरुहाणां दिवौकसां मूर्ध्नि धरातले वा।
पतन्ति तावन्ति च वत्सराणां कल्पानि वृक्षैर्दिवमारुहन्ति ॥३८२

यत्कालपक्वैर्मधुरैरजस्रं शाखाच्युतैः स्वादुफलैर्नगाद्याः।
सर्वाणि सत्वानि च तर्पयेयुस्तं श्राद्धदानेन च वृक्षनाथान् ॥३८३

उद्दिश्य विष्णुं जगतामधीशं नारायणं यः सुकृतं करोति।
आनन्त्यमाप्नोति कृतं तु तस्मादनन्तरूपो भगवान्पुराणः ॥३८४

दानानि सर्वाण्यभिधाय विद्वन्निष्टं च पूर्तं गृहमेधिकर्म।
कुर्वन्ति शान्ति मनुजाः शुभाय वक्ष्यामि तस्मादथ सर्वशान्तिम् ॥३८५

उक्तानि सर्वदानानि इष्टापूर्तञ्च सत्तमाः।
अतः परं प्रवक्ष्यामि गणेशादिकशान्तयः ॥३८६

इति बृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां स्मृत्यां दानधर्मेषु पूर्तविनिर्णयो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

....

अथैकादशोऽध्यायः।

अथ विनायकशान्तिविधिवर्णनम्।

शान्तीनामथ सर्वासां ग्रहशान्तिः परा स्मृता।
ग्रहेभ्योऽपि गणेशस्तु तस्य शान्तिरथोच्यते ॥१
यदि पुण्यकृतकर्माणि भवन्ति फलदानि हि।
तदा धर्मोऽर्थ-कामास्तु संसिध्येरन्सदा नृणाम् ॥२
तन्नृभिः क्रियमाणानां सर्वेषां कर्मणाममुम्।
विघ्नार्थमसृजद्ब्रह्मा शङ्करश्च विनायकम् ॥३
तेनोपहतपुंसां तु कर्म स्यान्निष्फलं कृतम्।
स्त्रीणामपि तथा सर्वं क्रियमाणं तु निष्फलम् ॥४
जलावगाहनं स्वप्ने क्रव्यादारोहणं तथा।
खरोष्ट्र-म्लेच्छसंसर्गो मुण्ड-काषायवाससम् ॥५
पश्यन्त्यात्मनमेवेह सीदन्तं प्रतिवासरम्।
यानि कुर्वन्ति कर्माणि तानि स्युः क्लेशदानि च ॥६

राजपुत्रो न राज्याप्त्या वराप्त्या न तु कन्यका।
अन्तर्वत्नी अपत्याप्त्या आचार्यत्वेन च द्विजः ॥७

अधीयानास्तु विद्याप्त्या कृषिकृत् सस्यसम्पदा।
वणिग्वर्तनलाभेन युज्यते निर्धनश्च सन् ॥८

तस्मात्तदुपशान्त्यर्थं समभ्यर्च्य गणेश्वरम्।
स्नपनं कारयेत्तस्य विधिवत्पुण्यवासरे ॥९

चतुर्थ्यां शुक्लपक्षे तु अयने चोत्तरे शुभे।
पुण्यार्थं सर्वसिध्द्यर्थं कुर्याच्छान्ति विनायकीम् ॥१०

स्वासनासीनं संस्थाप्य आरक्तार्षभचर्मणि।
सितसर्षपकल्केन साज्येनाच्छादितस्य च ॥११

विलिप्तशिरसस्तस्य गन्धैः सर्वैस्तथौषधैः।
अष्टौ वा चतुरो वापि स्वस्तिवाच्यान् द्विजान् शुभान् ॥१२

एकवर्णैश्चतुर्भिश्च पुम्भिः कुम्भैश्च यज्जलम्।
समानीतं क्षिपेत्तत्र वक्ष्यमाणमृदस्तथा ॥१३

अश्वेभस्थान-वल्मीक-ह्रद-सङ्गममृत्तिकाः।
रोचनां गुग्गुलं गन्धान् तस्मिन्नंभसि तान् क्षिपेत् ॥१४

एतद्धै पावनं स्नानं सहस्राक्षमृषिस्मृतम्।
तेन त्वां शतधारेण पावमान्यः पुनन्त्वमुम् ॥१५

नवभिः पावमानीभिः कुम्भं तमभिमन्त्रयेत्।
शक्रादिदशदिक्पाला ब्रह्मेश-केशवादयः ॥१६

आपस्ते घ्नन्तु दौर्भाग्यं शान्तिं ददतु सर्वदा।
सुमित्रियान इत्याद्यैर्मन्त्रैरेकेऽभिषेचनम् ॥१७

वदन्ति वदतां श्रेष्ठा दौर्भाग्यस्योपशान्तये ।
समुद्रा गिरयो नद्यो मुनयश्च पतिव्रताः ॥१८

दौर्भाग्यं घ्नन्तु मे सर्वे शान्तिं यच्छन्तु सर्वदा ।
पाद-गुल्फोरु-जङ्घा-ऽऽन्त्र-नितम्बोदर-नाभिषु ॥१६

स्तनोर-बाहु-हस्ताग्र-ग्रीवा-अंसाङ्गसन्धिषु ।
नासा-ललाट-कर्णभ्रु केशान्तेषु च यत् स्थितम् ॥२०

तदापो घ्नन्तु दौर्भाग्यं शान्तिं यच्छन्तु सर्वदा ।
स्नातस्य मस्तके दर्भान् साज्येन परिगृह्य च ॥२१

जुहुयात्सार्षपं तैलमौदुम्बरस्रुवेण तत् ।
मितश्च सम्मितश्चैव तथा सालकटङ्कटौ ॥२२

कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यन्तैस्वाहासमन्वितैः ।
नामभिश्च बलिं दद्यान्मन्त्रैर्नमः स्वधान्वितैः ।
चतुष्पथं समाश्रित्य शूर्पे कृत्वा कुशांस्तथा ॥२३

निधाय तेषु दर्भेषु शुक्लाऽशुक्लांश्च तण्डुलान् ।
ओदनं पललोपेतं पक्वामान्मत्स्यकानपि ॥२४

तथा मांसं च कुल्माषान् तथैव त्रिविधां सुराम् ।
पूरिकाण्डेरकापूपान्फलानि मूलकं स्रजः ॥२५

गणेशमातुः पार्वत्याः कुर्यादुपस्थितिं पुनः ।
दूर्वा-सर्षप-पुष्पैश्च पूर्णमर्घाञ्जलिं क्षिपेत् ॥२६

सौभाग्यसम्भिके देहि भगं रूपं यशोऽपि च ।
श्रियं पुत्रांश्च कामांश्च तथा शौर्यं च देहि मे ॥२७

गणेशमातर्हे बाले यत्किञ्चिन्मदभीप्सितम्।
एकनाम्नैव तद्देवि देहि गौरि ! वरान् वरान् ॥२८

ततस्तु वाससी शुक्ले परिधायाऽहते शुभे।
सितचन्दनलिप्ताङ्गः सितस्रग्भूषणान्वितः ॥२६

तानन्यांश्च द्विजान् सर्वान् भोजयेद्विविधाशनैः।
वस्त्रयुग्मं गुरोर्दद्यात्तेषु तस्य वराशिषः ॥३०

एतेन सम्पूज्य गणाधिनाथं विघ्नोपशान्त्यै जननीं तथास्य।
स्मार्तोक्तसम्यग्विधिना स कामान्प्रप्नोति चान्यान्मनसा यदिच्छेत्॥३१

स्नात्वा विधायार्चनमम्बिकायाः सम्पूज्य लोकान्सखिबन्धुमिश्रान्।
आचार्यवृद्धान्वनिताः कुमारीः प्रध्वस्तविघ्नः श्रियमेति गुर्वीम् ॥३२

स्मृत्युक्तमन्त्रैर्विधिवत्प्रयुक्तैर्नित्यं शिवानन्दनपूजनं च।
कृतान्तरायान्विनिहत्य सर्वान् कुर्यादथातो ग्रहयागमेनम् ॥३३

इति विनायकशान्तिविधिवर्णनम्।

॥ अथ ग्रहशान्तिविधिवर्णनम् ॥

मुनीनां व्यासमुख्यानां शक्तिसूनुः पुरोऽब्रवीत्।
शुभाय ग्रहपूजाया वदतस्तन्निबोधत ॥३४

यद्वर्णा यत्सुता विद्वन् जाता देशेषु येषु च।
तेषां तदधिदैवत्यं समिधो दक्षिणा च या ॥३५

यस्य यत्र च दिग्भागे मण्डलं स्याद्विवस्वतः।
होमकर्मणि ये विप्रा या संख्या समिधामपि ॥३६

अग्निकुण्डप्रमाणं तु प्रमाणं समिधामपि।
सर्वमेव यथोद्देशं वक्ष्यामि द्विजसत्तम ॥३७
रक्तः कश्यपजो भानुः शुक्लो ब्रह्मसुतः शशी।
रक्तो रौद्रसुतो भौमः पीतः सोमसुतो बुधः ॥३८
पीतो ब्रह्मसुराचार्यः शुक्लो शुक्रो भृगूद्वहः।
कृष्णः शनी रवेः पुत्रः कृष्णो राहुः प्रजापतिः ॥३९
कृष्णः केतुः क्रूरानूत्थः कृष्णा पापाश्रयोऽप्यमी।
कालिङ्गोऽर्को यामुनः सोम आवन्त्यो भौम उच्यते ॥४०
मागधो बुध इत्युक्तः सैन्धवस्तु बृहस्पतिः।
सैन्धवो दानवाचार्यः सौरिः सौराष्ट्रदेशजः ॥४१
राहुः सिंहलदेशोत्थो मध्यदेशभवोऽग्निजः।
जन्मदेशा इमे प्रोक्ता ग्रहजातकवेत्तृभिः ॥४२
शम्भुं रविमुमां चन्द्रं स्कन्दं भौमं हरिं बुधम्।
ब्रह्माणं च गुरुं विद्यात्च्छक्रं शुक्रं यमं शनिम् ॥४३
कालं राहुं चित्रगुप्तं केतुमित्यधिदैवतम्।
एतद्विज्ञाय यः कुर्यात्तत्सर्वं सफलं भवेत् ॥४४
अर्कस्त्वर्काय होतव्यः सर्वव्याधिविनाशनः।
सुधांशवे च सोमाय पलाशः सार्वकामिकः ॥४५
खदिरश्चार्थलाभाय मङ्गलाय विवेकेभिः।
स्वरूपकृदपामार्गो होतव्यश्च बुधाय वै ॥४६
प्रभाप्रदस्तथाश्वत्थो होतव्योऽमरमन्त्रिणे।
ऊर्ज्जासौभाग्यकृद्दूर्वा दैत्यामात्याय सद्द्विजैः ॥४७

शमी पापोपशान्त्यर्थं होतव्या मन्दगामिने।
दीर्घायुर्धर्मकृद्दूर्वा होतव्या राहवे द्विज ॥४८
धर्मविद्यार्थकृद्दर्भैः सद्भिर्मन्त्रैर्वह्निसूनवे।
दधिक्षीराऽऽज्यसंमिश्राः समिधः शुभवृद्धये ॥४९
प्रादेशमात्रकाः सर्वा अष्टावष्टोत्तरं शतम्।
अष्टाविंशतिरेकैकं संख्यैषा प्रतिदैवतम् ॥५०
वृद्धौ तु फलभूयस्त्वमुक्तादन्यत्तु राक्षसम्।
नवभवनकं लेख्यं चतुरस्रं तु मण्डलम् ॥५१
ग्रहास्तत्र प्रतिष्ठाप्या वक्ष्यमाणक्रमेण तु।
मध्ये तु भास्करः स्थाप्यः पूर्वदक्षिणतः शशी ॥५२
दक्षिणेन धरासूनुर्बुधः पूर्वोत्तरेण तु।
उत्तरस्यां सुराचार्यः पूर्वस्यां भृगुनंदनः ॥५३
पश्चिमायां शनिः कुर्याद्राहुर्दक्षिणपश्चिमे।
पश्चिमोत्तरतः केतुरिति स्थाप्या ग्रहाः क्रमात् ॥५४
पटे वा मण्डले लेख्या ईशान्यां दिशि पावकात्।
ताम्रोऽर्कः स्फाटिकश्चन्द्रो रक्तचन्दनकोऽपरम् ॥५५
सोमसूनु-सुराचार्यौ स्वर्णशोभौ प्रकीर्तितौ।
राजतो भृगुपुत्रश्च कार्ष्णश्च स शनैश्चरः ॥५६
राहुश्च सैसकः कार्यः कार्यः केतुश्च कांस्यजः।
सर्वानेतन्मयान्कृत्वा समभ्यर्च्य सदा गृहे ॥५७
लेखयेद्वर्णकैः स्वैः स्वैर्विधिवत्पिष्टकेन वा॥
ग्रहाणां साधिदेवानां प्रतिष्ठापनमन्त्रकान् ॥५८

वदन्ति मन्त्रत्वार्थवेदिनो द्विजसत्तमाः ।
आदित्यं गर्भमित्युक्तमग्निं दूतमनेन च ॥५६

एताभ्यां स्थापयेदर्कं त्र्यम्बकमिति च शङ्करम् ।
अप्स्वन्तरीति शीतांशुं श्रीश्च ते इति पार्वतीम् ॥६०

स्योनापृथिवीति भौमं च यदक्रंदेति वा गुहम् ।
इदं विष्णुर्विचक्रमे रथाप्य तद्विष्णोरिति वै हरिम् ॥६१

इन्द्र आसां सुराचार्यं माब्रह्मन्निति वेधसम् ।
इन्द्रं दैवीर्भृगोसूनुं सजोषेत्यमराधिपम् ॥६२

शन्नो देवी रवेः सूनुं यमाय त्वा तथा यमम् ।
आयं गौरीति राहुश्च कालं कार्षीरसीति च ॥६३

ब्रह्मयज्ञेति केतुं च चित्रं चित्रावसोरिति ।
ब्रूयुरेतानि मंत्राणि मूलमन्त्रस्तथापरे ॥६४

आकृष्णेन च तीव्रांशोरिमन्देवा निशाकरम् ।
अग्निर्मूर्धेति भूसूनोरुद्बुध्यध्वं बुधस्य च ॥६५

बृहस्पतेरिति गुरोरन्नात्परिश्रुतो भृगोः ।
शन्नो देवी शनैर्जन्तुः काण्डात्काण्डात्परस्य च ६६

केतुं कृण्वन्नग्निसूनोरिति मन्त्राः प्रकीर्तिताः ।
वेदमन्त्रैर्विना कश्चिद्विधिर्नास्ति द्विजन्मनाम् ।
कर्तव्याः स्वस्वमन्त्रैश्च होत्रैः स्वैश्च प्रतिदैवतम् ॥६७

सघृता सयवाश्चापि होतव्याश्च द्विजैस्तिलाः ।
मध्यमानामिकामूललग्नाङ्गुष्ठचतसृभिः ॥६८

यावन्तोऽङ्गुलिभिर्ग्राह्यास्तिलास्ताद्भिराहुतिम् ।
हस्तमात्रं पृथक्त्वेन वेधोऽपि तावतैव तु ॥६९

बाहुमात्रं वदन्त्येके एके चाऽरत्निमात्रकम् ।
चतुरस्रं खनेत्कुण्डं एकयोनिसमन्वितम् ॥७०

शुभमेखलया युक्तं सुशान्तिकरमुत्तमम् ।
होमार्थं मण्डपं कुर्याच्चतुर्द्वारं सतोरणम् ॥७१

चतुर्दिक्षु ध्वजाः कार्या नानावर्णाः शुभावहाः ।
तथा तत्रोदकुम्भाश्च दूर्वा-पल्लवसंयुताः ॥७२

पुनर्नवीकृतं सद्म मण्डपाभाव आश्रयेत् ।
षट्कर्मनिरताः शान्ता ये न दग्धाः प्रतिग्रहैः ॥७३

नियोज्यास्तेऽग्निकार्यादौ स्फुरन्मंत्रा द्विजोत्तमाः ।
प्रतिग्रहाग्निदग्धस्य जप-होमादि कुर्वतः ॥७४

यस्य मन्त्राण्यवीर्याणि तत्कृतं कर्म निष्फलम् ।
ओदनं सगुडं भानोः पायसं शशिनस्तथा ॥७५

हविष्यं भूमिपुत्रस्य क्षीरान्नं च बुधस्य च ।
षष्ठिक्यं ब्रह्मपुत्रस्य दध्ना तु भार्गवस्य च ।
पूर्णं हविः शनैर्गंतुमांसं राहोः श्रृताश्रृतम् ॥७६

चित्रान्नमग्निसूनोश्च भोज्यानामभिशस्यजाः ।
कृतहोमस्तथाऽन्येऽपि ये सद्वृत्ता द्विजोत्तमाः ॥७७

यथावर्णानि वासांसि देयानि कुसुमानि च ।
देया गन्धाश्च सर्वेषां देयो धूपश्च गुग्गुलः ७८

धेनुः शङ्खो वृषाः स्वर्णं वासांस्यश्वः सिता च गौः ।
अविश्छागलकश्चैव क्रमशो दक्षिणाः स्मृताः ॥७६

प्रत्यहं प्रतिमासं च प्रत्यब्दं वा विधानतः ।
वर्णिभिश्च ग्रहाः पूज्या राजभिश्च सदैव हि ॥८०

दुःखितो यस्तु यस्य स्यात्पूज्यस्तस्य स यत्नतः ।
वेधसैते नियुक्ताः प्राक् स्वभक्तं पूजयिष्यथ ॥८१

वरं यच्छन्ति संहृष्टा विप्रा वह्निर्नृपास्तथा ।
असन्तुष्टा दहन्त्येते तस्मात्तानर्चयेत्सदा ॥८२

ग्रहाधीनमिदं सर्वमुत्पत्ति-प्रलयात्मकम् ।
जगत्यभाव-भावौ च तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ॥८३

सानुकूलैर्ग्रहैर्यानि कुर्यात्कर्माणि मानवः ।
सफलानि भवन्त्यस्य निष्फलानि स्युरन्यथा ॥८४

कुर्वन्ति चैतद्विधिना ग्रहाणामातिथ्यमब्दं प्रतिवासरं ये ।
आरोग्यदेहा धन-धान्ययुक्ताः दीर्घायुषः स्त्रीसहिता भवन्ति ॥८५

इति ग्रहशान्तिविधिवर्णनम् ।

॥ अथ गृद्ध-काक-तिर्यग्-यमल-शान्तिवर्णनम् ॥

वसत्स्वकस्मात्सदनेष्वतोऽद्भुतं वयोविशेयुर्यदरण्यवासिनः ।
विशेषतो गृध्र-कपोत-पिच्छलास्तथैव चोलूकसकाक-वायसाः ॥८६
तरक्षु-गोमायु-मृगारि-ऋक्षका दिवाप्यकस्मादकुतोऽपि निर्भयाः ।
विशन्ति यत्ते तदतीव चाद्भुतं गृहे पुरे शान्तिकमेव सिद्धये ॥८७

अथाद्भुतानि जायन्ते वर्णानां गृहमेधिनाम्।
नानाविधानि तेषां तु प्रशान्त्यै शान्तिरुच्यते ॥८८

यस्याद्भुतानि जायन्ते मृत्युं तस्य वदेद्द्विजः।
धन-धान्यक्षयं चापि भार्या-पुत्रक्षयं तथा ॥८९

भयं वा जायते शत्रो राज्ञो वा जायते भयम्।
शान्तिस्तत्र विधातव्या यथोक्ता मुनिपुङ्गवैः ॥९०

यदि गोधूमशाखायां यवशाखोपजायते।
यवे गोधूमशाखा स्यादेवं सर्वाशनेषु च ॥९१

सर्षपे तिलशाखा चेत्तिलशाखासु सर्षपम्।
माषे मुद्गस्तु मुद्गेस्यादसृग्वष्टिर्भवेद्यदि ॥९२

अम्भःप्रपूर्णकुम्भेषु ज्वलदग्निमवेक्षते।
उद्वर्तनं च कूपानां मत्तो वा मधुजालकम् ॥९३

विधिवद्वायुलिङ्गश्च निर्वाप्य पयसां चरुम्।
महावाताय सततं हृदयं तु प्रशाम्यतु ॥९४

त्रि-पञ्च-सप्त वा हुत्वा सर्वत्र ह्यत्र तुल्यता।
स्त्रियो गावो महिष्यो वा सुतौ वत्सौ पण्ढकौ।
द्वौ द्वौ यत्र प्रजायेते शान्तिस्तत्र विधीयते ॥९५

वृषवद्दोह्यं नर्दत् वडवाऽश्वं यदारुहेत्।
अश्वतरी प्रसूतेऽहि प्रस्वेदः प्रतिमासु च ॥९६

मृदङ्ग-पटहादीनामकुतोऽपि ध्वनिर्यदि।
गृद्ध-काक-कपोताद्या विशेयुर्यदि वा गृहे ॥९७

यवपिष्टेन निर्वाप्य विधिवद्वारुणं चरुम् ।
मन्त्रैर्वरुणदैवत्यैर्जुहुयाद्वरुणाय तम् ॥९८
महावरुणदेवाय जलानां पतये तथा ।
अन्यैर्वरुणदैवत्यैर्मन्त्रैश्च जुहुयाच्चरुम् ॥९९
जुहुयादाहुतीस्तिस्रो मन्त्रैश्च वरुणाय तम् ।
अन्नस्य तुल्यतां कृत्वा स्वाहान्तैर्वरुणदैवतैः ॥१००
इन्द्रचापेक्षणं रात्रौ शस्त्रप्रज्वलनं तथा ।
गजा-ऽश्वशफवस्त्रान्तर्ज्वलनं च प्रतिक्षणम् ॥१०१
स्थूणाप्ररोहणं यत्स्याद्भाण्डस्थान्नप्ररोहणम् ।
विद्युन्निर्घातवज्राणां पतनं वा भवेद्यदि ॥१०२
मृदाकुं काकसंसर्गं विपरीतप्रदर्शनम् ।
शुभाय चरुराग्नेयो निर्वाप्यो विधिवद्द्विजैः ॥१०३
अग्नये त्वग्निराजाय महावैश्वानराय च ।
हृदये मम यश्चैतत्तत्सर्वं च वदेद्बुधः ॥१०४
ग्रहशान्तिश्च सर्वत्र शनेः पूजा विशेषतः ।
दक्षिणा सवृषा गौस्तु वस्त्रयुग्मं द्विजातये ।
प्रदद्याद्दोषशान्त्यर्थं सर्वोत्पातेषु वै द्विजः ॥१०५
एतेषु चान्येष्वपि चाद्भुतेषु जातेषु सावित्रजपं सहस्रम् ।
होमं विदध्यादपि विष्णुमन्त्रे ब्रह्मेशमन्त्रैरपि वा द्विजोत्तमः ॥१०६

इति—अद्भुतशान्तिवर्णनम् ।

॥ अथ रुद्रपूजाविधिवर्णनम ॥

अभिधास्येऽथ रुद्राणां शान्तिर्या गृहमेधिनाम्।
पञ्चाङ्गानां विधानं तु यत्कृतं हन्ति पातकम् ॥१०७

ब्राह्मणो विधिवत्स्नात्वा सर्वोपद्रवनाशनम्।
कुर्याद्विधानं रुद्राणां यजुर्विधाननिर्मितम् ॥१०८

इषेत्वादिषु मन्त्रेषु खं ब्रह्मान्तेषु या क्रिया।
दशप्रणवयुक्तेषु भूर्भुवःस्वरितीति च ॥१०९

आर्षं छन्दश्च दैवत्यं न्यासं च विनियोगतः।
पराशरोदितं वक्ष्ये शेषं मुनिविभाषितम् ॥ ११०

मनो ज्योतिरबोध्यग्निर्मूर्धानं चैव मर्माणि।
मानस्तोके इतिह्येतत्प्रथमं पञ्चकं स्मरेत् ॥१११

याते रुद्रेति चूडायां शिरोऽस्मिन्महत्यर्णवे।
असङ्ख्याताः सहस्राणि ललाटे विन्यसेद्द्विजः ॥११२

चक्षुषोर्विन्यसेद्रुद्रे तु त्र्यम्बकं तु यजामहे।
मानस्तोक इति ह्येतन्नासिकायां न्यसेद्बुधः ११३

अवतत्यधनुर्वक्त्रये नीलग्रीवाय वा गले।
नमस्ते आयुधायेतत्स्मरेन्मन्त्रं प्रकोष्ठके ॥११४

विन्यसेद्बाहुमन्त्रोऽयं ये तीर्थानीति हस्तयोः।
नमोऽस्तु विकिरेभ्यो वै हृदये मलनाशनम् ॥११५

नाभ्यां विद्वान्न्यसेन्मन्त्रं नमो हिरण्यबाहवे।
गुह्ये मन्त्रस्तु संस्मर्य इमा रुद्राय इत्यपि ॥११६

मानोमहान्त इत्यूर्वोः एष ते रुद्र जानुनोः।
अव रुद्रमितिह्येतज्जङ्घयोर्मन्त्रमुच्चरेत् ॥११७

सव्यं च पादयोर्न्यस्य वामं न्यस्योरुमध्यतः।
अघोरं हृदि विन्यस्य मुखे तत्पुरुषं न्यसेत्।
ईशानं मूर्ध्नि विन्यस्य हंसं नाम सदाशिवम्।
हंसहंसेति यो ब्रूयात् हंसोनाम सदाशिवः।
एवं न्यासविधिं कृत्वा ततः सम्पुटमाचरेत्।
कवच मध्यवोचद्वै तदुपरि बिल्मिनेत्यपि।
नेत्रं तु नीलग्रीवाय प्रमुञ्च धन्वतोऽस्त्रकम् ॥११८

य एतावन्त एतेन विद्ध्युर्दिक्प्रबंधनम्।
ॐ मोमिति नमस्कारं ततो भगवते पुनः ॥११९

रुद्रायेति विधानज्ञो दशाक्षरं ततो न्यसेत्।
प्रणवं विन्यसेन् मूर्ध्नि नकारं नासिकान्तरे ॥१२०

मोकारं तु ललाटे तु मकारं मुखमध्यतः।
गकारं कण्ठदेशे तु वकारं हृदये न्यसेत् ॥१२१

तेकारं दक्षिणे हस्ते रुकारं वामतो न्यसेत्।
द्राकारं नाभिदेशे तु यकारं पादयोर्न्यसेत् ॥१२२

त्रातारमिंद्रं त्वन्नोऽग्ने सुगःपन्थामिति ह्यपि।
तत्त्वायामि वदेद्वाने नियुद्भिरित्यपीरयेत् ॥१२३

वयं सोमं तमीशानमस्मे रुद्रा इति स्मरेत्।
स्योना पृथिवीतिना ह्येतत् द्विजः कुर्वीत सम्पुटम् ॥१२४

सुत्रामादि दिशां पालान्प्राच्यादिषु स्मरेदथ ।
रौद्रीकरणमेतद्वै कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥१२५

यक्ष-रक्षः-पिशाचाद्याः प्रेत-भूत-ग्रहादिकाः ।
दुष्टदैवत्य-शाकिन्यो रैवत्यो वृद्धकाश्च याः ॥१२६

सिंह-व्याघ्रादयोऽऽरण्या ये दुष्टश्वापदा द्विजाः ।
म्लेच्छा बन्धक-चोराद्या यमदूता वृकादयः ॥१२७

रौद्रभूतमिमं सर्वे द्विजं पश्यन्ति वह्निवत् ।
दैदीप्यमानमर्चिर्भिर्दुष्टदिग्बन्धकारकम् ॥१२८

दह्यमाना दवीयांसःसप्तधामसु धामभिः ।
प्रणश्यन्ति हि ये दुष्टा द्विजास्ते रुद्ररूपिणः ॥१२९

पञ्चास्यं सौम्यमात्मानं सर्वाभरणभूषितम् ।
मृगलांच्छनमूर्धानं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥१३०

फणासहस्रविस्फूर्जदुरगेन्द्रोपवीतिनम् ।
सप्तार्चिवज्ज्वलद्भालं जटाजूटकिरीटिनम् ॥१३१

सहस्रकरवद्भ्राजन् खट्वाङ्गाङ्कविभूषितम् ।
ब्रह्माण्डखण्डवक्त्रारं नृकपालकधारिणम् ॥१३२

दैदीप्यमानं चन्द्रार्कज्वलदग्नित्रिनेत्रिणम् ।
त्रैलोक्यद्युतिकृद्भास्वत्स्कन्धकापालमालिनम् ॥१३३

दीप्तनक्षत्रमालावदक्षमालाधरं द्विजः ।
निःशेषवारिसम्पूर्णं कमण्डलुधरं त्वजम् ॥१३४

जगद्बाधिर्यकृन्नादं दण्ड-डमरुधारिणम् ।
केयूरबद्धनागेन्द्रमूर्द्धं मणिविराजितम् ॥१३५

मेखलाकिंकिणीमालायुक्तारावविराजितम् ।
घर्घराव्यक्तनिर्गच्छद्गम्भीरारावनूपुरम् ॥१३६
सहेमपट्टनीलाभव्याघ्रचर्मोत्तरीयकम् ।
विद्युल्लताप्रभागङ्गा धृतमूर्द्धं सुरार्चितम् ॥१३७
समस्तभुवनाभारधरणोक्षासनस्थितम् ।
त्रैलोक्यवनितामौलिनतदेहार्द्धपार्वतिम् ॥१३८
लक्षसूर्यप्रभाभास्वत्त्रैलोक्यकृतपाण्डुरम् ।
अमृतप्लुतहृष्टाङ्गं दिव्यभोगसमाकुलम् ॥१३६
दिग्दैवतैः समायुक्तं सुरासुरनमस्कृतम् ।
नित्यं शाश्वतमव्यक्तं व्यापिनं नन्दिनं ध्रुवम् ॥१४०
द्विजो ध्यात्वैवमात्मानं सम्यक् रुद्रस्वरूपिणम् ।
सम्प्रध्वस्तान्तरायः सन् ततो यजनमारभेत् ॥१४१
अनुलिप्ते सुलिप्ते च देशे गोचर्ममात्रके ।
स्थण्डिलेऽम्बुजमालिख्य मन्त्रैः प्रक्षाल्य तत्पुनः ॥१४२
तत्र पूजा प्रकर्तव्या नमश्च शम्भवाय च ।
मानो महान्तमिति च सिद्धमन्त्रं स्मरेद्बुधः ॥१४३
स्वललाटे पुनर्ध्यायेत्तेजोरूपं शिवं द्विजः ।
दशाक्षरेण मन्त्रेण दद्यात्पाद्यादिकं पुनः ॥१४४
न्यासमन्त्रैश्च सोङ्कारैर्मानस्तोक इतीत्यपि ।
शम्भवायेति मन्त्रेण दद्याद्गंधोदकादिकम् ॥१४५
पुष्प-धूप-प्रदीपादि यथालाभं निवेद्यकम् ।
दशाक्षरेण तेनैव नमः कुर्यात्पुनर्द्विजः ॥१४६

शिखा तस्य तु रुद्रस्योत्तरनारायणं द्विजः।
शिरः पुरुषसूक्तं च शिवसङ्कल्पकं च हृत् ॥१४७
कवचं चाप्रतिरथं नेत्रं विभ्राट् बृहत्पिबन्।
शतरुद्रीयमन्त्रेण देवस्यास्त्रं प्रकल्पयेत् ॥१४८
पञ्चाङ्गानि स्मरेदष्टप्रणवं च जपेद्द्विजः।
उद्धृत्य प्रणवेनेशं विकिरिद्रे विसर्जयेत् ॥१४९
रुद्ररूपो द्विजो यश्च यत्कुर्यात्तद्धि सिध्यति।
अक्षतान्वा तिलान्वापि यवान्वा समिधोऽपिवा ॥१५०
शम्भवायेति जुहुयात्सर्वांस्तानाज्यसिक्तकान्।
पञ्चपञ्चाथ षट् षट् वा अष्टावष्टौ तथापि वा ॥१५१
दशादशैकादश वा जुहुयात्साधको द्विजः।
द्विजः स्वदारसंतुष्टः शुचिः स्नातो यतेन्द्रियः ॥१५२
जप-तर्पण-होमादौ रतो यो वत्सरं जपेत्।
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति वै द्विजः ॥१५३
सौवर्णपृथिवीदानपुण्यभाक् जायते नरः।
महापापोपपापैश्च मुक्तो रुद्रत्वमृच्छति ॥१५४
एकादशगुणान् रुद्रानावृत्य याति रुद्रताम्।
रुद्रजापी शुचिः पुण्यः पाङ्क्तेयः श्राद्धभुग्वरः ॥१५५
पूर्वजानां शतं सैकं तारयेद्रुद्रजाप्यकृत्।
एकतो योगिनः सर्वे ज्ञातिभिः सह तद्व्रतैः ॥१५६
एकतो रुद्रजापी तु मान्यः सर्वैस्तु दैवतैः।
पात्रमत्र पवित्रं तु नाधिकं रुद्रजापिनः ॥१५७

तस्मै दत्तं च तद्भुक्तं सदाऽनश्याय कल्पते ।
वेदाङ्गवेदिनामतः शिवभक्तः सदाधिकः ॥१५८

इति रुद्रपूजाविधिवर्णनम् ।

॥ अथ रुद्रशान्तिविधिवर्णनम् ॥

अथातः सिद्धिकामः सन्कन्दमूलफलाशनः ।
गोमूत्रयावकक्षीरदधिशाकाऽऽज्यभोजनः ॥१५६

हविष्यभोजनो वाऽसौ विप्रो योत्पन्नभोजनः ।
जपहोमादि कुर्वाणो यथोक्तफलभाग्भवेत् ॥१६०

शिरसा सह रुद्राणां जपैर्दशशतैर्ध्रुवम् ।
सर्वे मन्त्रा भवन्त्यस्य ब्राह्मणस्योक्तकारिणः ॥१६१

सिद्धा मन्त्रा द्विजेन्द्रस्य चिन्तितार्थफलप्रदाः ।
रुद्रस्यैवास्य सर्वे ते भवन्तीश्वरनोदिताः ॥१६२

एकादश शुभान्कुम्भान् आहृत्य विधिसम्मितान् ।
सहिरण्यान् सवस्त्रांश्च फलपुष्पोपशोभितान् ॥१६३

गन्धोदकाऽक्षतैर्युक्तान् पूजयेद्रुद्रभक्तिकृत् ।
अथैकादशरुद्रैश्च एकैकमभिमंत्रयेत् ।

एवं संपूज्य तान्कुम्भान् नमस्कृत्याभिमन्त्र्य च ।
पूजयेद्भक्तितो रुद्रानेकादश महागुणान् ॥१६४

एकादशाहमात्मानमन्यं वा हित काम्यया ।
विनायकोपसृष्टं च स्नायात्काकपदाहतम् ॥१६५

धृतवत्सां काकवन्ध्यां स्नापयेच्च तथाऽऽतुराम्।
जपेदेतत्सकृद्विप्रः सर्वदोषैर्विमुच्यते ॥१६६

अनड्वाहं च वस्त्रं च दद्याद्धेनुं च दक्षिणाम्।
भोजयेद्विदुषो विप्रान्समाप्तौ कर्मणो द्विजः ॥१६७

भक्त्यैकादशवस्त्राद्यैर्यथाशक्त्या समर्चयेत्।
अथ वा चरुभिक्षाशी शिरोरुद्रसहस्रकम् ॥१६८

जपेद्गोष्ठे तथारण्ये सिद्धक्षेत्रे शिवालये।
अग्न्यागारे समुद्रे च नदी-निर्झर-पर्वते ॥१६९

जपेदन्यत्र वा विद्वान् शुचौ देशे मनोरमे।
धीरो दृढव्रतो मौनी त्यक्तक्रोधो यतेन्द्रियः ॥१७०

धौतवासास्त्वधःशायी रुद्रलोके महीयते।
नमो गणेभ्य इत्यस्य मन्त्रस्य ब्राह्मणोऽयुतम् ॥१७१

जप्त्वा च श्रीफलैर्हुत्वा सर्वकार्येषु सिद्धिभाक्।
नमोऽस्तु नीलग्रीवायेत्येतन्मंत्रेण सप्तधा ॥
आवर्त्योदकमाम त्य विषार्तश्रवणे क्षिपेत्।
विषेण मुच्यते सद्यः कालदष्टोऽपि जीवति ॥१७२

विषस्याभिभवो न स्यान्नरस्य तस्य कर्हिचित्।
ग्रहग्रस्तं ज्वरग्रस्तं रक्षः शाकिनिदूषितम् ॥१७३

ब्रह्मराक्षसग्रस्तं च अन्यदोषोपगूहितम्।
प्रमुञ्च धन्वन इति भस्मना सर्षपैस्तथा ॥१७४

ताडयेन्मुञ्च मुञ्चेति शीघ्रमेव विमुञ्चति।
नमः शम्भव इत्यस्य मन्त्रस्य चायुतं द्विजः ॥१७५

जप्त्वा खादिरसमिधो हुत्वा विप्रः सहस्रकम्।
तीक्ष्णैतैलप्लुतं सम्यङ्मन्त्रान्ते चामुकं हन ॥१७६

फट्फट्कारेण जुहुयात्क्षयो रोगश्चिराद्भवेत्।
जलमध्ये शतावर्तात्सद्यो वृष्टिर्निगद्यते ॥१७७

नाभिमात्रे जले विप्रः प्रविश्य जुहुयाज्जलम्।
कुर्यादेकार्णवां धात्रीं मन्त्रमाहात्म्यतो भृशम् ॥१७८

नमःश्वभ्य इत्यमुना मन्त्रेण तु सहस्रकम्।
लवणं मध्वाहुतीनां तु राजा शीघ्रं वशी भवेत् ॥१७६

द्विगुणां पलाशसमिधं महावाणी प्रजायते।
त्रिगुणां नवपद्मानां पाताले सिध्यति ध्रुवम् ॥१८०

चतुर्गुणेन मन्त्रेण वरदा श्रीः प्रवर्तते।
समुद्रगानदीकूले पुलिने वा पवित्रके ॥१८१

खड्गोपरि श्रीफलानां हुत्वा त्रिंशत् शतानि च।
खड्विद्याधरो विप्रः शिवाज्ञातः प्रजायते ॥१८२

अणिमाद्यष्टगुणं हुत्वा जपेन्मन्त्रसहस्रकम्।
अणिमादिकसिद्धीनां पतिरेव भवेद्द्विजः ॥१८३

छन्दोदैवतमार्षेयमथातः शतरुद्रिये।
ज्ञानेन कर्मसम्यक्त्वं द्विजानां येन जायते ॥१८४

आद्यानुवाके रुद्राणामाद्यायां च ऋचि द्विजः।
छन्दो गायत्रमन्यासु अनुष्टुप् तिसृषु स्मृतम् ॥१८५

पङ्क्तिस्तिसृषु विज्ञेया अनुष्टुभ् सप्तसु स्मृतम्।
द्वयोश्च जगती विप्रा उक्तमाद्यानुवाकयोः ॥१८६

अद्यानुवाके प्रथमा बृहती जगती तथा।
अनुष्टुप् च तृतीयायां द्वयोस्त्रिष्टुप् स्मृता द्विज ॥१८७

अपरासु तथानुष्टुप् अनुवाकद्वयं स्मृतम्।
रुद्रः सर्वासु दैवत्यं विनियोगो यथोचितः ॥१८८

यज्जाग्रतादिषट्के च शिवसंकल्पमात्रकम्।
रुद्रस्तु देवता षट्सु विनियोगो जपादिषु ॥१८९

सहस्रशीर्षा इत्यादि द्विगुणाष्टसु देवता।
पुरुषो यो जगद्बीजमृषिर्नारायणः स्मृतः ॥१९०

छन्दः सर्वासु वाऽनुष्टुप् विनियोगो जपादिषु।
अद्भ्यः सम्भूत इत्यादौ उत्तरनारायणस्त्वृषिः ॥१९१

आशुः शिशान इत्यादिरप्रतिरथ उच्यते।
पूर्वानुवाक्ये दैवत्यं त्रिष्टुभ् छंदं प्रकीर्तितम् ॥१९२

एतन्नाम्ना मुनिस्तत्र देवता अमरेश्वरः।
आशुः शिशान इत्यादिरप्रतिरथ उच्यते।
त्रिष्टुभ् छन्दो जपादौ च विनियोगो यथोचितम् ॥१९३

त्र्यम्बकमिति चैवात्र वसिष्ठस्यार्षमुच्यते।
दैवत्योमापतिर्ह्यत्र छन्दस्त्रिष्टुभ् प्रकीर्तित ॥१९४

विभ्राट् बृहच्च इत्यादौ सूर्यो दैवतमुच्यते।
एतःसञ्चिन्त्य सकलं द्विजाग्र्यो रुद्रजाप्यकृत् ॥१९५

यद्यदारभते तत्तद्यथोक्तफलदं भवेत्।
वेदाध्यायस्य दातॄणां श्रद्धया द्रविणस्य च ॥१९६

प्रजानामायुषः कीर्तेर्भूयस्त्वं रुद्रजापिनः ।
इमं मन्त्रं पवित्रं च रहस्यं पापनाशनम् ।।१६७

रुद्रविधिं विधिश्रेष्ठं कुर्याद्विप्रः शिवेरितः ।
शैवागमविशेषज्ञो वेद-वेदाङ्गपारगः ।।१६८

कुर्याद्यदेवं विधिवद्विधानं गाम्भोरजस्नं प्रथितं द्विजेन्द्राः ।
प्राप्नोति लोकं स शिवस्य साक्षादत्रापि स स्याच्छिववत्सुपूज्यः।।१६६
मन्त्राणि सर्वाणि च सद्द्विजस्य निर्देशकर्तृणि भवन्ति तस्य ।
यः साधयेत्प्रोक्तविधानविज्ञो मन्त्राभिपूज्यः स तु शम्भुवत्स्यात् ।।२००
मन्त्रं त्रिनेत्रं जुहुयात् हुताशे यो बिल्वपत्रैर्घृत-दुग्धमिश्रैः ।
निहत्य मृत्युं श्रियमेति धात्र्यां प्राप्नोति पश्चाच्छिवलोकमेव ।।२०१

पञ्चभागश्च षड्जातः पञ्चेन्द्रं पञ्चवारुणम् ।
षड्जातिं च जपित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।२०२

इति रुद्रशांतिविधिवर्णनम्

।। अथ तडागादि प्रतिष्ठाविधिवर्णनम् ।।

अथातः सम्प्रवक्षामि तडागादिविधिं शुभम् ।
कृतेन येन तेषां तु प्रतिष्ठा सम्प्रजायते ।।२०३

अस्मन्नामस्य तातेन पृच्छते रघुपुङ्गवे ।
तडागाद्युत्सवे प्रोक्तो विधिः सोऽयं प्रकीर्तितः ।।२०४

दीर्घिकासु तडागेषु सन्निहत्यासु यो विधिः ।
तं वसिष्ठोऽवदत्सम्यक् दशरथस्य पृच्छतः ।।२०५

तस्माच्च श्रुतवान् शक्तिः शुश्रावातः पराशरः ।
तत्प्रसादेन तत्प्रोक्तो यो विधिः सम्प्रचक्षते ॥२०५

तडागादिनिपानानां यावन्नोत्सर्जनं कृतम् ।
तावत्तत्परकीयं तु स्नानादीनामनर्हकम् ॥२०७

अप्रतिष्ठितदेवानां न कार्यं पूजनं नरैः ।
अप्रतिष्ठितखातानामपेयं तोयमुच्यते ॥२०८

तदुत्सर्गः प्रकर्तव्यो निजवित्तानुसारतः ।
वित्तशाठ्यं प्रहेयं स्यादित्युवाच पराशरः ॥२०६

तद्विधिज्ञः शुचिः शान्तो ब्राह्मणो धर्मवृद्धये ।
तदर्थं वरणीयोऽसौ चतुर्भिर्ब्राह्मणैः सह ॥२१०

आचार्यस्तत्र कर्तव्यः पूर्तधर्मविवृद्धये ।
विपरीतमतिर्यःस्यात्तत्कृतं कर्मनिष्फलम् ॥२११

तडागपालिपृष्ठे तु मण्डपं तत्र कारयेत् ।
पूर्वोत्तरप्लवे देशे शुचिः स्वस्थः समाहितः ॥२१२

चतुरस्रं चतुर्द्वारं दशहस्तप्रमाणकम् ।
स्वामिहस्तप्रमाणेन तोरणानि च कारयेत् ॥२१३

पताका विविधाः कार्या नानावर्णाः समन्ततः ।
शुभपल्लवसंयुक्ता द्वारेषु कलशाः स्मृताः ॥२१४

यथावर्णं यथाकाष्ठं यथाकार्यं प्रमाणतः ।
तथा यूपान्प्रवक्ष्यामि वर्णानां हितकाम्यया ॥२१५

पालाशो ब्राह्मणः प्रोक्तो न्यग्रोधो भूभुजः स्मृतः ।
वैल्वो वैश्यस्य यूपःस्याच्छूद्रस्यौदुम्बरः स्मृतः ॥२१६

शिरः प्रमाणो विप्रस्य आकण्ठं क्षत्रियस्य च ।
उरःप्रमाणो वैश्यस्य शूद्रस्य नाभिमात्रकः ॥२१७

वेदिका पादमूले तु यूपस्तत्र निखन्यते ।
यूपस्य दक्षिणे भागे तोरणं तत्र कारयेत् ॥२१८

ब्रह्मस्थानं च तन्मध्ये अष्टौ भागाः प्रकीर्तिताः ।
तेषामुत्तरतः सोमं कुवेरं कुविदङ्गतम् ॥२१९

धनदं धन्वनागेति ईशावास्येति शङ्करम् ।
आकृष्णेनेत्यादिमन्त्रैश्च स्वैः स्वैः कल्प्यास्तथा ग्रहाः ॥२२०

त्रातारमिन्द्रमितीन्द्रं मग्निं दूतं च पावकम् ।
अग्निः पृथुरित्यादि धर्मराजं द्विजोत्तमः ॥२२१

तद्विष्णोरिति वै विष्णुं नमः सूतेति नैर्ऋतिम् ।
सप्तर्षयस्तु इत्यादि मन्त्रैः सप्तऋषींस्तथा ॥२२२

वरुणस्योत्तंभनमसि वरुणं च प्रपूजयेत् ।
एवं द्वाविंशतिस्थानानि मन्त्रोक्तानि पृथक् पृथक् ॥२२३

इमं मे, त्वन्नः, सत्वन्नस्तत्वायामि ह्युदुत्तमम् ।
समुद्रोऽसि समुद्रेति त्रीन् समुद्रान् निमीनपि ॥२२४

दशभिर्वारुणैर्मन्त्रैराहुतीनां शतद्वयम् ।
शतमर्धं शतं वापि विंशत्यष्टोत्तरं शतम् ॥२२५

गोसहस्रं शतं वापि शतार्धं वा प्रदीयते ।
अलाभे चैव गां दद्यादेकामपि पयस्विनीम् ॥२२६

अरोगां वत्ससंयुक्तां सुरूपां भूषणान्विताम् ।
सौवर्णा राजतास्ताम्राः कांस्याः सीसाश्च शक्तितः ॥२२७

मत्स्या नक्रादयः कार्या विविधावर्तवृत्तयः ।
गो-वत्सौ वस्त्रबद्धौ च आग्नेय्यां दिशि संस्थितौ ॥२२८
वायव्याभिमुखौ तत्र कारयेद्वारिमध्यतः ।
वस्त्रयुग्मानि विप्रेभ्यो मुद्रिका-छत्रिकादयः ॥२२९
भक्त्या चैताः प्रदातव्याः प्रसाद्य यत्नतो द्विजाः ।
विप्रान् सन्तोष्य देयानि दानानि विविधान्यपि ॥२३०
हेमपुष्पसंयुक्तां शय्यां दद्याच्च शक्तितः ।
आसनानि प्रशस्तानि भाजनानि निवेदयेत् ॥२३१
एतत्प्रदक्षिणोकृत्य स्वात्मना च विपश्चितः ।
प्रसादयेत् द्विजान् सर्वान्यांछन्पूर्तफलं नरः ॥२३२
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विप्राणामग्रत स्थितः ।
ब्रूयादेवं, भवन्तोऽत्र सर्वे विप्रवपुर्धराः ॥२३३
ते यूयं तारयध्वं मां संसारार्णवतो द्विजाः ।
आगता मम पुण्येन पूर्तकर्मप्रसाधकाः ॥२३४
कूर्मश्च मकरश्चैव सौवर्णस्तत्र कारयेत् ।
मीनाश्च रासभाश्चैव ताम्रा दर्दुरकाः स्मृताः ॥२३५
जलकुञ्जर-गोधाश्च सैसास्तत्र प्रकल्पयेत् ।
अन्येऽपि जलजास्तत्र शक्तितस्तान्प्रकल्पयेत् ॥२३६
इमं पुण्यं प्रशस्तं च तडागादिविधिं नरः ।
वापी-कूप-तडागादौ कारयेत् ब्राह्मणैर्बुधैः ॥२३७
खातयित्वा तडागादि स्वभावाच्छाठ्यवर्जितः ।
मानवः क्रीडति स्वर्गे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥२३८

एतद्विधानं विदधाति भक्त्या खातेषु सर्वेषु तडागकेषु ।
सोऽमुत्र कामैः परिपूर्णदेहो भुङ्क्ते धरित्र्यामिह सर्वभोगान् ॥२३९
वदन्ति केचिद्वरुणस्य लोके प्रयाति भोगान्वरुणस्य भुङ्क्ते ॥
भुक्त्वा चिरं तत्र पुनर्धरित्र्यां नरेन्द्रतामेति पराशरोक्तिः ॥२४०

इति तडागादिप्रतिष्ठाविधिवर्णनम् ।

॥ अथ लक्ष-होमविधिवर्णनम् ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्विजेन्द्राः श्रूयतामितः ।
लक्षहोमविधिं पुण्यं कोटिहोमविधिं ततः ॥२४१
स्वयंभूर्यमुवाच प्रागस्मत्तातं पितामहः ।
तमिमं सम्प्रवक्ष्यामि श्रूयतां पापनाशनम् ॥२४२
ये चेह ब्राह्मणाः कार्या भूमिर्वा यत्र मण्डपम् ।
समिधो याश्च ये मन्त्रा अन्यच्च तत्र यद्भवेत् ॥२४३
लक्षहोममिमं विप्राः कथ्यमानं निबोधत ।
युग्माश्च ऋत्विजः कार्या ब्राह्मणा ये विपश्चितः ॥२४४
नियमव्रतसंपन्ना सहिताः पार्थिवेन तु ।
नित्यं जपरता ये च नियोज्यास्तादृशा द्विजाः ॥२४५
कन्द-मूल-फलाहारा दधि-क्षीराशिनोऽपि च ।
प्रागुदीच्यां समे देशे स्थण्डिलं यत्र कारयेत् ॥२४६
तत्र वेदीं प्रकुर्वीत पञ्चहस्तप्रमाणिकाम् ।
दक्षिणोत्तर आयामे त्रिंशत्तु पूर्वपश्चिमे ॥२४७

कुण्डानि खनितव्यानि अङ्गुलान्येकविंशतिः।
निवापयेद्धिरण्यं च रत्नानि विविधानि च ॥२४८

सिकतोपरि दातव्या तत्राप्यग्निं समिन्धयेत्।
ग्रहांश्चैव सनक्षत्रान् दिशि प्रच्यां समर्चयेत् ॥२४६

अवदानविधानेन स्थालीपाकं समर्पयेत्।
आज्यभागाहुतीर्हुत्वा नवाहुत्या च होमयेत् ॥२५०

अग्निं सोमं तथा सूर्यं विष्णुं चैव प्रजापतिम्।
विश्वेदेवान् महेन्द्रं च मित्रं स्विष्टकृतं तथा ॥२५१

दधि-मधु-घृताक्तानां समिधां चैव याज्ञिकाः।
होमयेच्च सहस्रं तु मंत्रैश्चैव यथाक्रमम् ॥२५२

चतुर्विंशति गायत्र्या मानस्तोकेति षट् तथा।
त्रिंशत् ग्रहादिमन्त्रैश्च चत्वारश्चैव वैष्णवैः ॥२५३

कूष्माण्डैर्जुहुयात्पञ्च विकिरेद्वाथ षोडश।
जुहुयाद्दशसहस्राणि जातवेदस इत्यृचा ॥२५४

तथा पञ्चसहस्राणि जहुयादिन्द्रदैवतैः।
हुते शतसहस्रे तु अभिषेकं विधापयेत् ॥२५५

पुण्याभिषके यत्प्रोक्तं तत्प्रदाय शुभं भवेत्।
अथ षोडशभिः कुम्भैः सहिरण्यैः समङ्गलैः ॥२५६

सर्वौषधिसमायुक्तैर्नानारत्नविभूषितैः।
अभिषेकं ततः कुर्यात्स्नानमन्त्रैर्यथोचितैः ॥२५७

समाप्ते तु ततस्तस्मिन् प्रधाना दक्षिणाः स्मृताः।
गजा-ऽश्वरथ-यानानि-भूमिं-वस्त्रयुगानि च ॥२५८

अन्नं च गोशतं हेम ऋत्विजां चैव दक्षिणा ।
वृषेणैकादशेनाथ दातव्या दश धेनवः ॥२५९

स्वशक्त्यातः प्रदातव्यं वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।
एवं कृते तु यत्किञ्चित् ग्रहपीडासमुद्भवम् ॥२६०

भौममाकाशगं वापि अरिष्टं यच्च जायते ।
तत्सर्वं लक्षहोमेन प्रशमं याति निश्चितम् ॥२६१

शान्तिर्भवति पुष्टिश्च बलं तेजः प्रवर्द्धते ।
वृष्टिर्भवति राष्ट्रे च सर्वोपद्रवसंक्षयः ॥२६२

इति लक्षहोमविधिवर्णनम् ।

॥ अथ कोटिहोमविधिवर्णनम् ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कोटिहोमविधिं द्विजाः ।
श्रूयतामादरेणैषः सर्वकामफलप्रदः ॥२६३

सानुष्ठाना द्विजाः प्रोक्ता ऋत्विजो यागकर्मणि ।
विधिज्ञाश्चैव मन्त्रज्ञाः स्वदारनिरताश्च ये ॥२६४

वरणीया विशेषेण ग्रहयागक्रियाविदः ।
एकाङ्गविकलो विप्रो धन-धान्यापहारकः ॥२६५

सर्वाङ्ग विकलो यस्तु यजमानं हिनस्ति सः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वेदाङ्गविधिकोविदाः ॥२६६

प्रकर्तव्या विशेषेण ग्रहयज्ञविदो द्विजाः ।
कार्यश्चैव प्रयत्नेन ग्रहयज्ञश्च वै द्विजैः ॥२६७

अध्येता चैव मन्त्राणां ऋचामष्टोत्तरंशतम्।
स एव ऋत्विग् विज्ञेयः सर्वकामफलप्रदः ॥२६८
आवाहनीयो यत्नेन प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः।
ग्रहाः फलन्तु नागाश्च सुराश्चैव नरेश्वराः ॥२६६
एवं कृते तु यत्किञ्चित् ग्रहपीडासमुद्भवम्।
तत्सर्वं नाशयेद्‌दुःखं कृतघ्नसौहृदं यथा ॥२७०
अस्माच्छतगुणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भुवा।
आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिः फलेन च ॥२७१
पूर्ववद् ग्रहदेवानां आवाहन-विसर्जने।
होममन्त्रास्त एवोक्ताः स्नानं दानं तथैव च ॥२७२
मण्डपस्य च वेद्याश्च विशेषं च निबोधत।
कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुर्हस्तायतं पुनः ॥२७३
योनिवक्त्रद्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम्।
द्व्यङ्गुलेनोच्छ्रिता कार्या प्रथमा मेखला बुधैः ॥२७४
त्र्यङ्गुलैरुद्‌धृता तद्वद्‌द्वितीया मेखला स्मृता।
उच्छ्राये मेखला या तु तृतीया चतुरङ्गुला ॥२७५
द्व्यंगुलस्तत्र विस्तारः पूर्वयोरेव शस्यते।
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात्षट्-सप्ताङ्गुलविस्तृता ॥२७६
कूर्मपृष्ठोद्‌धृता मध्ये पार्श्वतश्चांगुलोच्छ्रिता।
गजोष्ठसदृशा तद्वदायामच्छिद्रसंयुता ॥२७७
एतत्सर्वेषु कुण्डेषु योनिलक्षणमीरितम्।
मेखलोपरि सर्वत्र अश्वत्थपत्रसन्निभा ॥२७८

वेदी च कोटिहोमे स्यात् वितस्तीनां चतुष्टयम् ।
चतुरस्रा समा तद्वत्त्रिभिर्विप्रैः समावृता ॥२७६

विप्रप्रमाणं पूर्वोक्तं वेदिकायास्तथोच्छ्रयः ।
ततः षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः ॥२८०

पूर्वद्वारेऽपि संस्थाप्य बह्वृचं वेदपारगम् ।
यजुर्वेदं तथा याम्ये पश्चिमे सामवेदिनम् ॥२८१

अथर्ववेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापयेद्बुधः ।
अष्टौ तु होमकाः कार्या वेद-वेदाङ्गवेदिनः ॥२८२

एवं द्वादश विप्राणां वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ।
पूर्ववत्पूजनं कृत्वा सर्वाभरणभूषणैः ॥२८३

रात्रिसूक्तं च सौरं च पावमानं तु मङ्गलम् ।
पूर्वतो बह्वृचः शान्ति पावमानमुदङ्मुखम् ॥२८४

सूक्तं रौद्रं च सौम्यञ्च कूष्माण्डं शान्तिमेव च ।
पाठयेद्दक्षिणे द्वारे यजुर्वेदिनमुत्तमम् ॥२८५

सौपर्णमथ वैराजमाग्नेयीं रुद्रसंहिताम ।
पञ्चभिः सप्तभिर्वाथ होमः कार्यश्च पूर्ववत् ॥२८६

स्नाने दाने च ये मन्त्रास्त एव द्विजसत्तमाः ।
ज्येष्ठसाम तथा शान्ति छन्दोगः पश्चिमे जपेत् ॥२८७

स्त्रविधानं तथा शान्तिमथर्वोत्तरतो जपेत् ।
वसोर्धाराविधानं तु लक्षहोमवदिष्यते ।
अनेन विधिना यश्च ग्रहपूजां समाचरेत् ॥२८८

सर्वान् कामानवाप्नोति ततो विष्णुपुरं व्रजेत्।
यः पठेत् शृणुयाद्वापि ग्रहयागमिमं नरः ॥२८६
सर्वपापविनिर्मुक्तः स गच्छेद्वैष्णवं पदम्।
अश्वमेधसहस्रं च दश चाष्टौ च धर्मवित् ॥२६०
कृत्वा यत्फलमाप्नोति कोटिहोमात्तदश्नुते।
ब्रह्महत्यासहस्राणि भ्रूणहत्यार्बुदानि च।
नश्यन्ति कोटिहोमेन स्वयम्भुवचनं यथा ॥२६१
प्रपेदिरे येऽस्य पितामहाद्याः श्वभ्राणि पापेन गरीयसा तान्।
उद्धृत्य नाकं स नयेद्धि सर्वान् यः कोटिहोमं नृपति करोति ॥२६२
राष्ट्रं मनोवाञ्छितवृष्टियुक्तं धान्यैश्च रत्नैः पशुभिः समेतम्।
निर्द्वन्द्वनीरोगमदस्यु तस्य यो लक्षकोटीहवनं विदध्यात् ॥२६३
यो लक्षकोटिं विदधाति भूभृत् तद्वन्नरो लक्षशतं जुहोति।
प्रत्यब्दमाप्नोति स दीर्घमायुर्भुङ्क्ते सपत्नान्विजयी धरित्रीम् ॥२६४
यो ब्रह्मघाती गुरुदारगामी ग्रामादिदाहात् ध्रुवपापयुक्तः।
पापैरशेषैः पुरुषो विमुक्तः स कोटि होमाद्विबुधत्वमेति ॥२६५
तस्मात्तदा भूपतयो विदध्युर्वृद्धिं प्रजासौख्यबलस्य पुष्ट्यै।
आयुः प्रवृद्ध्यै विजयाय कीर्त्यै लक्षादिहोमं ग्रहयागमेतम् ॥२६६

इति कोटिहोमविधिवर्णनम्।

॥ अथ पुत्रार्थं पुरुषसूक्तविधानवर्णनम ॥

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि विधिं पावनमुत्तमम।
अस्मत्तातप्रतितोऽयं रघुपौत्रस्य धीमतः ॥२६७

अनपत्यस्य पुत्रार्थमकरोद्वैभाण्डिकः स्वयम् ।
सहस्रशीर्षसूक्तस्य विधानं चरुपाककृत् ॥२९८

यैर्यैर्नृपैः कृतं पूर्वमन्यैरपि द्विजोत्तमैः ।
उपासितानि सद्भक्त्या श्रोत्रियैः श्रुतिपारगैः ॥२९९

आत्मविद्भिर्निराहारैः श्रौतिभिर्मंत्रवित्तमैः ।
सिध्यन्ति सर्वमन्त्राणि विधिविद्भिर्द्विजोत्तमैः ॥३००

क्रियमाणाः क्रियाः सर्वाः सिध्यन्ति व्रतचारिभिः ।
न पाठान्न धनात् स्नानादात्मनः प्रतिपादनात् ॥३०१

प्राक्तनात्कर्मणः पुंसां सर्वाः सिध्यन्ति सिद्धयः ।
शुक्लपक्षे शुभे वारे शुभनक्षत्रगोचरे ॥३०२

द्वादश्यां पुत्रकामो यश्चरुं कुर्वीत वैष्णवम् ।
दम्पत्योरुपवासः स्यादेकादश्यां सुरालये ॥३०३

ऋग्भिः षोडशभिः सम्यगर्चयित्वा जनार्दनम् ।
चरुं पुरुषसूक्तेन श्रपयेत्पुत्रकाम्यया ॥३०४
प्राप्नुयाद् वैष्णवं पुत्रं चिरायुं सन्ततिक्षमम् ॥३०५

द्वादश्यां द्वादश चरून् विधिवन्निर्वपेद् द्विजः ।
यः करोति महायागं विष्णुलोकं स गच्छति ॥३०६

हुत्वाऽऽज्यं विधिवत्पूर्वं ऋग्भिः षोडशभिस्तथा ।
समिधोऽश्वत्थवृक्षस्य हुत्वाज्यं जुहुयात्पुनः ॥३०७

उपस्थानं ततः कुर्याद्ध्यात्वा तु मधुसूदनम् ।
हविर्होमं ततः कृत्वा दद्यात्पञ्च घृताहुतीः ॥३०८

कामप्रदं नमस्कृत्य नारी नारायणं पतिम्।
सम्प्राश्य च हविःशेषं वसेल्लब्धाशनी गृहे ॥३०९
ततः कृत्वा इदं कर्म कर्तव्यं द्विजतर्पणम्।
रजः स्त्रीषु निवर्तेत यावद्गर्भं न विन्दति ॥३१०
असूता मृतपुत्रा वा या च कन्याः प्रसूयते।
क्षिप्रं सा जनयेत्पुत्रं पराशरवचो यथा ॥३११
होमान्ते दक्षिणां दद्यात् गृहं वासस्तथा तिलान्।
भूमिं हिरण्यं रत्नानि यथा सम्भवमेव वा ॥३१२
यः सिद्धमन्त्रः सततं द्विजेन्द्रः सम्पूज्य विष्णुं विधिवत्सुतार्थी।
इमं विधानं विदधाति सम्यक् स पुत्रमाप्नोति हरेः प्रसादात् ॥३१३

इति पुत्रार्थं पुरुषसूक्तविधानवर्णनम्।

॥ अथ शान्ति...धेवर्णनम् ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ग्रहमन्त्राधिदैवतम्।
आर्षं छन्दश्च यज्ज्ञानात्कर्म स्यात्सफलं कृतम् ॥३१४
आकृष्णेनेति मन्त्रोऽस्मिन्दैवत्यं सविता महत्।
ऋषिर्हिरण्यस्तूपाख्यस्त्रिष्टुप् च्छन्दः प्रकीर्तितम् ॥३१५
आप्यायस्वेति सोमाऽत्र दैवतं गौतमो मुनिः।
गायत्री छन्द उद्दिष्टं विनियोगो यथेप्सितम् ॥३१६
अग्निर्मूर्धेति मन्त्रोऽत्र दैवतं भौम उच्यते।
विरूपाक्षो मुनिर्धीमान् छन्दो गायत्रमिष्यते ॥३१७

उद्बुध्यस्वेति मन्त्रस्य बुधश्चैव तु दैवतम् ।
मुनिर्बुधश्च मन्तव्यस्त्रिष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितम् ॥३१८
बृहस्पते अतीत्यत्र देवतापि बृहस्पतिः ।
आर्षं गृत्समदोऽस्येति छन्दस्त्रिष्टुप् प्रकीर्तितम् ॥३१९
शुक्रःशुशुक्वेति हीत्यत्र शुक्र इत्यधिदैवतम् ।
शुक्रस्यापि तथार्षं च विराट् छन्दः प्रकीर्तितम् ॥३२०
शन्नो देवीति चेत्यत्र शनिर्दैवतमुच्यते ।
सिन्धुर्नाम ऋषिर्विद्वान् छन्दो गायत्रमुच्यते ॥३२१
काण्डात् काण्डादिति राहुर्दैवतं हि तदुच्यते ।
ऋषिः प्रजापतिः प्रोक्तोऽनुष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितः ॥३२२
केतुं कृण्वन्निति प्रोक्तं दैवतं केतुरेव हि ।
मधुच्छन्दस आर्षं च गायत्रं छन्द एव हि ॥३२३
स्योनापृथिवीति मन्त्रस्य स्कन्दश्च देवतास्मृता ।
आर्षं मेधातिथिश्चात्र स्वयम्भूर्दैवतं परम् ॥३२४
भर्गाख्यश्च मुनिश्चात्र बृहती छन्द उच्यते ।
इन्द्रकुत्सेति दैवत्यं इन्द्र एवं स्मृतो बुधैः ॥३२५
आर्षं कुत्सस्य चामुत्र त्रिष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितम् ।
यस्मिन्वृक्षेति वाह्यत्र यमो वै देवता परा ॥३२६
ऋषिस्तु कुण्डलोमा च त्रिष्टुप् छन्दः स्मरेद्बुधः ।
ब्रह्मजज्ञानमित्यत्र कालो वै दैवतं महत् ॥३२७
मुनिर्धर्मतनुर्नाम त्रिष्टुप् छन्दोऽभिधीयते ।
आयातमिति च ह्यस्यां चित्रगुप्तस्तु दैवतम् ॥३२८

आर्षं तु वामदेवोऽस्य त्रिष्टुप्छन्दो बुधैर्मतम्।
अग्निं दूतमिति ह्यस्या मग्निर्वै देवता स्मृता ॥३२९

आर्षं मेधातिथिर्नाम छन्दो गायत्रमेव हि।
अप्सुमे सोम इत्यत्र सोमं वै दैवतं स्मरेत् ॥३३०

मेधातिथिरिहाप्यार्षमनुष्टुप् छन्द उच्यते।
पुरुषसूक्तस्य दैवत्यं पुरुष एव मतं बुधैः ॥३३१

भूमिपृथिव्यन्तरिक्षमित्यत्र दैवतं क्षितिः।
ऋषिः शातातपो ह्यत्र छन्दश्चानुष्टुबुच्यते ॥३३२

आर्षं नारायणस्येह छन्दश्चानुष्टुबित्यपि।
इन्द्रायेंदो मरुत्वते मरुत्वान्दैवतं महत् ॥३३३

आर्षं तु काश्यपस्येह गायत्रं च्छन्द एव हि।
मरुत्वंतमिति ह्यत्र सुरेन्द्रो देवता मता ॥३३४

अत्रापि कश्यपस्यार्षं गायत्रं छन्द एव हि।
उत्तानपर्णइत्यत्र इन्द्रो दैवतमुच्यते ॥३३५

आर्षं साङ्ख्यस्य चात्रोक्त मनुष्टुप् छन्द इत्यपि।
प्रजापते इति ह्यत्र देवता च प्रजापतिः ॥३३६

हिरण्यगर्भस्यार्षं तु त्रिष्टुप् छन्दो मतं बुधैः।
आयं गौरिति चैवात्र देवता फणिनो मता ॥३३७

सर्पराजो मुनिस्तत्र गायत्रं छन्द उच्यते।
एष ब्रह्मा ऋत्विज इति ब्रह्मदेवोऽधिदैवतम्।
ऋषिर्वै वामदेवोऽत्र गायत्रं छन्द इष्यते ॥३३८

आतून इन्द्रवृत्रहं सुरेन्द्रः सगणेश्वरः ।
तथार्षं वामदेवस्य गायत्रं छन्द इत्यपि ॥३३९
जातवेदस इत्यत्र जातवेदास्तु दैवतम् ।
काश्यपस्यार्षमत्रापि छन्दोऽनुष्टुप् प्रकीर्तितम् ॥३४०
अनोनियुद्भिरित्यस्मिन्वायुर्दैवतमुच्यते ।
आर्षमत्र वसिष्ठस्य अनुष्टुप् छन्द उच्यते ॥३४१
नमः प्रकाशदैवत्यं मुनिप्रोक्तं प्रजापतिः ।
छन्दो गायत्रमित्युक्तं विनियोगो यथेप्सितम् ॥३४२
एषो उषेति चाप्यत्र अश्विनौ दैवते स्मरेत् ।
प्रस्कण्वश्चार्षमत्रापि गायत्रं च्छन्द उत्तमम् ॥३४३
मरुतो यस्य हि क्षये मरुद्दैवतमुच्यते ।
गौतमं च मुनिं विद्धि छन्दश्च प्रथमं मुने ॥३४४
छन्दस्तथार्षं सहदैवतेन ज्ञात्वा द्विजो यः कुरुते विधानम् ।
वेदोक्तमर्थं प्रददाति सम्यक् सर्वं फलं कर्तुरिहाप्यमुत्र ॥३४५
यो लक्षहोमं यदि कोटिहोमं राजा विदध्यात्प्रतिवर्षमेकम् ।
राष्ट्रे सुवृष्टिर्विजयः सुभक्ष्यमारोग्यता स्यात्सुकृतस्य वृद्धिः ॥३४६
भवन्ति पुत्राः शुभवंशवृध्यै दीर्घायुषो राजहिता धरित्र्याम् ।
सुकीर्तिमन्तो जयिनोऽपि राज्ये प्रतापवन्तो रवि-चन्द्रतुल्याः ॥

इति श्रीवृहत्पाराशरीये धर्मशास्त्रे शान्तिविधिर्नाम
एकादशोऽध्यायः ।

—❀✱❀—

द्वादशोऽध्यायः ।

अथ राजधर्मवर्णनम् ।

अथातो नृपतेर्धर्मं वक्ष्यामि हितकाम्यया ।
पराशरात् श्रुतं विप्रा वक्ष्यमाणं निबोधत ॥१
भूभृद्भूमौ परो देवः पूज्योऽसौ परदेववत् ।
स विधातापि सर्वस्य रक्षिता शासिता च सः ॥२
इन्द्रा-ऽग्नि-यम-वित्तेशा-ऽनलेश-मातरिश्वनः ।
शीतांशुस्तीव्रभासश्च ब्रह्मादयोऽसृजन्नृपम् ॥३
नृपो वेधा नृपः शम्भुर्नृपोऽर्कौ विष्टरश्रवाः ।
दाता हर्ता नृपः कर्ता नृणां कर्मानुसारतः ॥४
नासृक्षद्यदि राजानं नापि दण्डं व्यधास्यत ।
नामंस्यतो यदा चैषा का भविष्यज्जगत्स्थितिः ! ॥५
नाग्रहीष्यन् पुरोडाशान् मनुष्य-पितृ-देवताः ।
नाभविष्यत् श्व-काकानां भागधेयं हुतं हविः ॥६
निर्गुणोऽपि यथा स्त्रीणां सदा पूज्यः पतिर्भवेत् ।
तथा राजापि लोकानां पूज्यः स्याद्विगुणोऽपिसन् ॥७
स्वकर्मस्थान्नृपो लोकान् पिता पुत्रानिवौरसान् ।
शिक्षयेत् धर्मविद्दण्डैरधर्मकारिणो जनान् ॥८
नरान् दण्डधृतः कुर्यात् धर्मज्ञानार्थसाधकान् ।
समर्थानश्वपत्यादीन्शूरान् स्वामिहितोद्यतान् ॥९

शुचीन् प्राज्ञान् स्वधर्मज्ञान् विप्रान् मुद्राकरान् हितान्।
लेखकानपि कायस्थान् लेख्यकृत्यविचक्षणान् ॥१०

अमात्यान् मन्त्रिणो दूतान् यथोदितपुरोहितान्।
प्राड्विवाकान् समस्तान् वा हितांश्च रक्षकानपि ॥११

शूरानथ शुचीन् प्राज्ञान् परविश्वासकारिणः।
सर्वस्थानेषु चाध्यक्षान् सत्कृत्य वेदिनो परे ॥१२

महायत्नः कुमाराणामन्तःपुरस्य रक्षणे।
वृद्धान् कञ्चुकिनो विप्रान् शुचीनाढ्यांश्च वीरकान् ॥१३

यथोदितानि दुर्गाणि कुर्यात्तेष्वपि रक्षणम्।
उद्वाहमुदितं स्त्रीणां यौनसम्बन्धकारणात् ॥१४

सुगुप्तकृत्यविज्ञानमात्मरक्षा प्रयत्नतः।
प्रातः सन्ध्यार्चनादूर्ध्वं गूढपुंवचनश्रुतिः ॥१५

यथोक्तकार्ये राज्ये च नित्यं कुर्यात्परीक्षणम्।
कोशेभाश्वरथादीनां हेतीनां वर्मणामपि ॥१६

कुर्यादालोकनं नित्यमनालस्यो महीपतिः।
अमात्य मन्त्रि-योद्धृणां सम्मानं नित्यशोऽपि च ॥१७

देवार्चनं सदा होमः शान्तिश्च वृद्धसेवनम्।
यज्ञो दानं तथोत्पातसमये शान्तयोऽपि च ॥१८

वर्जनं विषयासक्तेर्भूमिदानं सशासनम्।
प्राणिवर्जितदेशे च नीतिज्ञो मन्त्रकृद्भवेत् ॥१६

नित्यमुत्साहयुक्तश्च विजिगीषुरुदायुधः।
सदालङ्कारयुक्तश्च सदैव प्रियभाषकः ॥२०

सदा प्रियहिते युक्तः पूज्यो नाकेऽप्यसौ नृपः।
सदा साधषु सन्मानं विपरीतेषु घातनम् ॥२१
दण्डं दम्भेषु कुर्वाणो राजा यज्ञफलं लभेत्।
वृद्धान् साधून् द्विजान् मौलान् यो न सन्मानयेन्नृपः ॥२२
पीडां करोति चामीषां राजा शीघ्रं क्षयं व्रजेत्।
यस्तु सन्मानयेदेतान् देवान् विप्रांश्च पूजयेत् ॥२३
पराजयेत्सोप्यरींस्तान् दीर्घायुरपि जायते।
पीड्यमानां प्रजां रक्षेत्कायस्थैश्चोरतस्करैः ॥२४
धान्येक्षुतृणतोयैश्च सम्पन्नं परमण्डलम्।
हीनवाहनपुंस्त्वं तु मत्वैतत्प्रविशेन्नृपः ॥२५
मासे सहसि यात्रार्थी कृतपुण्याहघोषवान्।
विधिवद्यानकं कुर्याद्यद्व्यूहैरक्षयन् बलम् ॥२६
यत्राचलसरोरक्षा वृक्षरक्षा तु यत्र च।
वासं तत्रविधायैव रात्रौ रक्षेत्स्वकं बलम् ॥२७
चतुर्दिक्षु च सैन्यस्य निशि शूरान् धनुर्धरान्।
स्वयं राजा नियुञ्जीत समीक्ष्य भूबलाबलम् ॥२८
राज्यस्य षड् गुणान् मत्वा सन्धिविग्रहयानकान्।
आसनं संशयं द्वैधं सम्यक् ज्ञात्वा समाचरेत् ॥२९
निर्भेदं स्वबलं कुर्यान्निहन्याद्भिन्नचेतनम्।
दासीकर्मकरान् दासान् भिन्दतो रक्षयेन्नृपः ॥३०
निकटस्थायिनो नित्यं जानन्ति चेष्टितं प्रभोः।
तस्मात्ते यत्नतो रक्ष्या भेदमूलं यतस्त्वमी ॥३१

एते परस्य यत्नेन भेदनीयास्ततोऽपरे ।
यथा परो न जानाति तथा भेदं समाचरेत् ॥३२

परामात्य-प्रधानानां व्यलीकदूतशब्दितम् ।
उत्थापयेत्स्वसेनायाः स्याद्यथा चित्तभेदना ॥३३

परसैन्ये बहु गतान्निविधान् कुहकानपि ।
कारयेत् गरदानादि वह्निपातानकेशः ॥३४

स्वसैन्ये गरदानादि नृपो यत्नेन रक्षयेत् ।
नियुज्य विज्ञः पुरुषानुक्तं सर्वं निशामयेत् ॥३५

अन्तर्भीरून् बहिः शूरान् साग्निकान् ब्राह्मणोत्तमान् ।
मर्मज्ञान् कुलसम्पन्नान् बिभृयादात्मसन्निधौ ॥३६

प्रविशन् परदेशे च प्रजां स्वीकृत्य संविशेत् ।
उत्सार्य मार्गतो लोकान् दूरीकृत्य व्रजेन्नृपः ॥३७

शस्यादि दाहयेत्सर्वं यवसानि धनानि च ।
भिन्द्यात्सर्वनिपानानि प्राकारान्परिखास्तथा ॥३८

अपसृत्य समादाय भूमिं साधारणां नृपः ।
गमयेत् वार्षिकान्मासानासाद्य स्वधरां नृपः ॥३९

न युद्धमाश्रयेत्प्राज्ञो न कुर्यात्स्वबलक्षयम् ।
साम्ना भेदेन दानेन त्रिभिरेव वशं नयेत् ॥४०

वदन्ति सर्वे नीतिज्ञा दण्डस्याऽगतिका गतिः ।
तद्वजं वशमायाति तथा शत्रुस्तथा चरेत् ॥४१

आक्रान्ता दर्भसूच्योऽपि भिंद्युर्मृद्व्योऽपि भूतलम् ।
नातो यतेत युद्धाय युद्धसिद्धिरसिद्धिवत् ॥४२

स्वधरात्यन्तिके देशे युद्धमिच्छेत्स्वधर्मवित् ।
न तु प्रविश्य तद्दूरभूमिं युद्धं समाचरेत् ॥४३
किञ्चित्सुप्तेषु लोकेषु क्षपायां युद्धमाचरेत् ।
सुधीरव्यसने चापि योधयेत्परसैनिकैः ॥४४
व्यूहैर्व्यूह्य यथोक्तैर्वा रक्षां कृत्वाऽपि चात्मनः ।
सैनिकांस्तान् समस्तांश्च प्रेरयेद्युद्धविन्नृपः ॥४५
सम्मानयेत्समस्तांश्च योद्धृन्सेनापतीन्नृपः ।
अन्विच्छन् जयलक्ष्मीं च नीतिज्ञः पृथिवीपतिः ॥४६
स्नेहेनापि समं पत्न्या शय्यास्थोऽपि हि मानवः ।
पुष्पैरपि न युध्येत युद्धं तत्र विपत्तये ॥४७
हीनं परबलं मत्वा निरुत्साहमनादरम् ।
समस्तबलसंयुक्तः स्वयमुत्थाप्य योधयेत् ॥४८
न हन्यात् मुक्तकेशं च नाशयेन्न निरायुधम् ।
पराङ्मुखं न पतितं न तवास्मीति वादिनम् ॥४९
अन्यानपि निषिद्धांश्च न हन्यात्धर्मविन्नृपः ।
हत्वा च नरकं यान्ति भ्रूणहत्यासमैनसा ॥५०
पराङ्मुखीकृते सैन्ये यो युद्धान्न निवर्तते ।
तत्पादानीष्टितुल्यानि भूम्यर्थं स्वामिनोऽपि वा ॥५१
शिरोहतस्य ये वक्त्रे विशन्ति रक्तबिन्दवः ।
सोमपानेन ते तुल्या इति वासिष्ठजोऽब्रवीत् ॥५२
युध्यन्ते भूभृतो ये च भूम्यर्थमेकचेतसः ।
इष्टस्तैर्बहुभिर्योगैरेवं यान्ति त्रिविष्टपम् ॥५३

एष एव परो धर्मो नृपतेर्यद्रणार्जितम् ।
विप्रेभ्यो दीयते वित्तं प्रजाभ्यश्चाभयं तथा ॥५४

यदा तु वशतां याति स देशो न्यायतोऽर्जितः ।
तद्देशव्यवहारेण यथावत्परिपालयेत् ॥५५

रणार्जितेन वित्तेन राजा कुर्यान्मखान्द्विजान् ।
अर्चयेद्विधवद्राजा साधून् सम्मानयेदपि ॥५६

मातुलः श्वशुरो बन्धुरन्यो वापि हि यो जितः ।
अदण्ड्यः कोऽपि नास्त्येव राजनीतिविदो विदुः ॥५७

सुसहायमतिप्रौढं शूरं प्राज्ञानुरागदम् ।
सोत्साहं विजिगीषुं च मत्वा राजा नियामयेत् ॥५८

मत्वा चार्थवतः सर्वान् युक्तानप्यर्थकृद्भवेत् ।
सार्थकांश्च नियुञ्जीत सर्वतोऽर्थमुपार्जयेत् ॥५९

सर्वाण्यपि च वित्तानि यतस्ततोऽपि राजनि ।
प्रविशंतीव तोयानि सर्वाण्यपि हि सागरे ॥६०

नृपस्यापदि जातायां देवद्रव्याणि कोशवत् ।
आदाय रक्षेदात्मानं पुनस्तत्र च निःक्षिपेत् ॥६१

वित्तं वार्धुषिकाणां तु कदर्यस्यापि यद्धनम् ।
पाषण्डि-गणिकावित्तं हरन्नार्तो न किल्विषी ॥६२

देव-ब्राह्मण-पाषण्डि-गणका-गणिकादयः ।
वणिग्वार्धुषिकाः सर्वे स्वस्थे राजनि सुस्थिताः ॥६३

यथा वह्निश्च गोमांसं दहन्नपि न पातकी ।
आददानस्तथा राजा धनमार्तो न किल्विषी ॥६४

गृह्णीयात्सर्वदा राजा करानपीडयन्प्रजाः ।
स्तोके स्तोकान् पृथक् साम्ना स भुङ्क्ते सुचिरं धराम् ।।६५
सदा चोद्यमिना भाव्यं नृपेण विजिषीषुणा ।
विजिगीषुर्नृपो नान्यैः कदाचिदभिभूयते ।।६६
तदेवं हृदि सन्धाय धृतोत्साहो नृपो भवेत् ।
दैव-पौरुषसंयोगे सर्वाः सिध्यन्ति सिद्धयः ।।६७

नैकेन चक्रेण रथः प्रयाति नचैकपक्षो दिवि याति पक्षी ।
एवं हि दैवेन न केवलेन पुंसोऽर्थसिद्धिर्नरकारतो वा ।।६८
केचिद्धि दैवस्य तु केवलस्य प्राधान्यमिच्छन्ति मतिप्रवीणाः ।
पुंस्कारयुक्तस्य नरस्य केचिदप्यत्र इष्टा पुरुषार्थसिद्धिः ।।६९

अत्युद्यमी क्रियत एव च यः श्रमी च
शौर्यान्वितश्च गुणवांश्च सुधीश्च विद्वान् ।
प्राप्नोति नैव विधिना स पराङ्मुखेन
स्वीयोदरस्य परिपूरणमन्नमात्रम् ।।७०

शुभ्राणि हर्म्याणि वराङ्गनाश्च नानाप्रकारो विभवो नरस्य ।
उर्वीपतित्वं (च) नृपकारता (नृकारता) च सर्वं हि
संक्षु (मञ्जु) क्षयमेति दैवात् ।।७१
केषां(एषां)हि पुंसां महतो हि दैवात्स्थानस्थितानामपि चार्थसिद्धिः ।
केषां प्रभुत्वं बहुजीवितं च एको हि देवो बलवानतोऽत्र ।।७२
पुं-स्त्रीप्रयोगादथशुक्र-शोणितात् को देहमध्ये विदधाति गर्भं ।
स्त्रीणां तु तद्विप्र न चापि पुंसां सर्वाणि चैषां(मनुजेश्वरं)ननु दैवचेष्टा ।।
कासां तु गर्भस्य न सम्भवोऽस्ति केषां च शुक्रं ननु वीर्यहीनम् ।
दधाति गर्भं ननु कापि दैवात् काश्चित्तु गर्भ न दधाति दैवात् ।।७४

धाता विधाता निज कर्मयोगात् विधेस्त्वभीष्टं त्वनुभावभात्यम् ।
देवासुराणां सह दैत्यकानां स ह्येव कर्ता च मनूद्भवानाम् ॥७५

दैवात् मघोनोऽपि सहस्रमक्ष्णां दैवाद्धिमांशोः क्षयरोगिताऽभूत् ।
दैवात्पयोधेर्लवणोदकत्वं दैवाद्भवेच्चित्रतरा च वृष्टिः ॥७६

यदप्यमुष्मान्न परोस्ति दैवात् कुर्यात्तथापीह नरो नृकारम् ।
उद्दीपयेत्कर्मकरो नृकारादुद्दीपितं कर्म करोति लक्ष्मीः ॥७७

दैवेन केचित्प्रसभेन केचित्केचिन्नृकारेण नरस्य चार्थाः ।
सिध्यन्ति यत्नेन विधीयमानास्तेषां प्रधानं नरकारमाहुः ॥७८

स्वामिः प्रधानं नय-दुर्ग-कोशान् दण्डं च मित्राणि च नीतिविज्ञाः ।
अङ्गानि राज्यस्य वदन्ति सप्त सप्ताङ्गपूर्वो नृपतिर्धराभुक् ॥७९

दुर्वृत्त-सद्वृत्तनरेषु दण्डं राजा विधत्ते निपुणोऽर्थसिध्यै ।
दण्डस्य मत्त्रोर्जितवित्तसत्वं पुंसोऽर्थहीनस्य दमं तु हीनम् ॥८०

अन्यायतो ये तु जनं नरेशाः सम्पीड्य वित्तानि हरन्ति लोभात् ।
तत्क्रोधवह्नौ परिदग्धदेहा गतायुषस्ते तु भवन्ति भूपाः ॥८१

दण्डो महान् मध्यमकाधमस्तु मानं तु तेषां त्रसरेणुकादि ।
सोऽशीतिसाहस्रपणो महान् स्यादर्धाद्धिको तस्य तदर्धको वा ॥८२

सर्वार्थपादश्च हरश्च दण्डौ पात्यौ नृपेणेति वदन्ति सन्तः ।
पाण्यादिपच्छेदन-मारणं च निर्वासनं राष्ट्रत एव सद्यः ॥८३

ज्ञात्वापराधं मनुजस्य यस्तु देशं च कालं च वपुर्वयश्च ।
दंडयेषु दण्डं विदधाति भूभृत् साम्यं स बध्नाति पुरन्दरस्य ॥८४

यः शास्त्रदृष्टेन पथा नरेशो दण्डं विदध्याद्विधिवत्करांश्च ।
सोऽतीव कीर्तिं वितनोति गुर्वीमायुश्च दीर्घं दिवि देवभोगान् ८५

यस्त्यक्तमार्गाणि कुलानि राजा श्रेणीश्च जातीश्च गणांश्च लोकान्।
आनीय मार्गे विदधाति धर्म्ये नाकेऽपि गीर्वाणगणैः प्रशस्यते ॥८६

यः स्वधर्मे स्थितो राजा प्रजाधर्मेण पालयेत्।
सर्वकामसमृद्धात्मा विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥८७

हर्यश्व-वह्नि-यम-वित्तनाथ-शीतांशुरूपाणि हि बिभ्रतीह।
सर्वेऽपि भूपास्त्विह पञ्चरूपास्तं कथ्यमानं शृणुत द्विजेन्द्राः ॥८८

यदा जिगीषुर्धृतशस्त्रपाणिस्त्विवपुं समालम्ब्य स विद्धसैन्यः।
सर्वान् सपत्नानिह जेतुकामस्तदा स हर्यश्व इवेह भाति ॥८६

अकारणात्कारणतोऽपि चैव प्रजां दहेत्कोपसमिद्धरोचिः।
यदा तदेनं नृपनीतिविज्ञास्तनूनपातं प्रवदन्ति भूपम् ॥६०

धर्मासनस्थः श्रुतिशास्त्रदृष्ट्या शुभाशुभाचारविचारकृत्स्यात्।
धर्म्येषु दानं त्ववधकृत्सु दण्डं तदाऽवनीशस्त्विह धर्मराजः ॥६१

यदा त्वमात्य-द्विज याचकादीन् प्रहृष्टचित्तस्तु यथोचितेन।
धनप्रदानेन करोति हृष्टान् भूभृत्तदाऽसौ द्रविणेशवत्स्यात् ॥६२

समस्तशीतांशुगुणप्रयुक्तो यदा प्रजामेव शुभाय पश्येत्।
प्रसन्नमूर्तिर्गतमत्सरः सन् तदोच्यते सोम इति क्षितीशः ॥६३

आज्ञा नृपाणां परमं हि तेजो यस्तां न मन्येत स शस्त्रवध्यः।
ब्रूयाच्च कुर्याच्च वदेच्च भूभृत्कार्यं तदेवं भुवि सर्वलोकैः ॥६४

दुर्धर्षतिग्मांशुसमानदीप्तेर्ब्रूयान् मनुष्यः परुषं नृपस्य।
यस्तस्य तेजोऽप्यवमन्यमानः सद्यः स पंचत्वमुपैति पापात् ॥६४

योऽह्नाय सर्वं विदधाति पश्येत् शृणोति जानाति चकास्ति शास्ति।
कस्तस्य चाज्ञां न बिभर्ति राज्ञः समस्तदेवांशभवो हि यस्मात् ॥६५

इति राजधर्मवर्णनम्।

॥ अथ वानप्रस्थभिक्षुधर्मवर्णनम् ॥

अथ विप्रो वनं गच्छेद्विना वा सहभार्यया।
जितेन्द्रियो वसेत्तत्र नित्यं श्रौताग्निकर्मकृत् ॥९६

वन्यैर्मुन्यशनैर्मेध्यैः श्यामा-नीवार-कङ्गुभिः।
कन्द-मूल-फलैः शाकैः स्नेहैश्च फलसम्भवैः ॥९७

सायं-प्रातश्च जुहुयात्त्रिकालं स्नानमाचरेत्।
चर्मचीवरवासाः स्यात् श्मश्रु-लोम-जटाधरः ॥९८

पितॄंश्च तर्पयेन्नित्यं देवांश्चाजस्रमर्चयेत्।
अर्चयेदतिथीन्नित्यं तथा भृत्यांश्च पोषयेत् ॥९९

न किञ्चित्प्रतिगृह्णीयात्स्वाध्यायं नित्यमाचरेत्।
सर्वसत्वहितो दान्तः शान्तश्चाध्यात्मचिन्तकः ॥१००

सन्तुष्टस्वान्तको नित्यं दानशीलः सदा द्विजः।
कश्चिद्वेदं समास्थाय सुवृत्त्या वर्तयेत्सदा ॥१०१

एकाहिकं तु कुर्वीत मासिकं वाथ सञ्चयम्।
षाण्मासिकं चाब्दिकं वा यज्ञार्थं च वने वसन् ॥१०२

त्यक्त्वा तदाश्विने मासि स्थानमन्यत्समाश्रयेत्।
यथावदग्निहोत्रं तु समिदाज्यैस्तु पालयेत् ॥१०३

चान्द्र-कृच्छ्र-पराकाद्यैः पक्ष-मासोपवासकैः।
त्रिरात्रैरेकरात्रैश्च आश्रमस्थः क्षिपेद्वुधः ॥१०४

तिष्ठेन्नाव्रतिकस्तत्र स्वप्यादधस्तथा निशि।
अतन्द्रितो भवेन्नित्यं वासरं प्रपदैर्नयेत ॥१०५

योगाभ्यासरतो नित्यं स्थानाऽऽसन-विहारवान्।
हेमन्त-ग्रीष्म-वर्षासु जलाग्न्याकाशमाश्रयेत् ॥१०६
दन्तोलूखलिको वापि कालपक्वभुगेव वा।
स्याद्वाश्मकुट्टको विप्रः फलस्नेहैश्च कर्मकृत् ॥१०७
शत्रौ मित्रे समस्वान्तस्तथैव सुख-दुःखयोः।
समदृष्टिश्च सर्वेषु न विशेद्वनगह्वरम् १०८
म्लेच्छव्याप्तानि सर्वाणि वनानि स्युः कलौ युगे।
न भूपाः शासितारश्च ग्रामोपान्ते वसेदतः ॥१०६
ग्रामाश्च नगरादेशास्तथारण्य-वनानि च।
क्षितीशरक्षितान्येव सर्वेषां फलदानि हि ॥११०
प्रथमं भूपतेस्तस्मात्कृत्यं शंसेद्द्विजाग्रजाः।
योगं वाऽरण्यवासं वा कुर्वीत तदनुज्ञया ॥१११
सुत्रामा-ऽनलवायूनां यमस्येन्दोर्विवस्वतः।
ईश-वित्तेशयोर्ब्रह्ममात्राभ्यो निर्मितो नृपः ॥११२
पारत्रिकं तु यत्किञ्चिद्यत्किञ्चिदैहिकं तथा।
नृपाज्ञया द्विजातीनां तत्सर्वं सिध्यति ध्रुवम् ॥११३
नृपतेः प्रथमं तस्मात् साधोर्यज्ञादिकं द्विजः।
रक्षार्थं कथयित्वा तु यथा कार्यं समापयेत् ॥११४
धेनुः पूर्वं वसिष्ठस्य ह्यासीद्दुर्वाससोऽपि च।
वनवासाश्रमस्थस्य वह्निकार्याय तां श्रयेत् ॥११५
फलस्नेहा यदा न स्युः कालवैगुण्यतो द्विजाः।
तदा गोदुग्ध-सर्पिर्भ्यामग्निकार्यं समापयेत् ॥११६

तथा सर्वेषु कालेषु तथा सर्वाश्रमेषु च।
गोदुग्धादि पवित्रं स्यात्सर्वकार्येषु सत्तमाः ॥११७

वनवासिषु सर्वेषु भिक्षां कुर्याद्वनाश्रमी।
तदा सर्वं प्रकुर्वीत पितृदेवार्चनादिकम् ॥११८

अष्टौ भुञ्जीत वा ग्रासान् ग्रामादाहृत्य यत्नवान्।
वासनासंक्षयं गच्छेदनिलाशः प्रागुदीचिकः ११६

विधाय विप्रो वनवासधर्मान् सर्वानिमानुक्तविधिक्रमेण।
स शोध्य पापानि वपुर्विशोध्य ब्रह्माधिगच्छेत्परमं द्विजेन्द्राः ॥१२०

आश्रमत्रयधर्मान्वा चरित्वा प्राक् द्विजास्ततः।
द्वयस्य वा ततः पश्चाच्चतुर्थाश्रममाचरेत् ॥१२०

द्विजाग्रजो यदा पश्येत् वलीपलितमात्मनः।
उपरामस्तथाक्षाणां क्षैण्यं कामस्य सद्द्विजाः ॥१२१

समीक्ष्य पुत्रं पौत्रं वा दृष्ट्वा वा दुहितुः सुतम्।
अधीत्य विधिवद्वेदान् कृत्वा यज्ञान्विधानतः ॥१२२

निश्चयं मनसः कृत्वा चतुर्थाश्रममाविशेत्।
प्राजापत्यां विधायेष्टिं वनाद्वा सद्मनोऽपि वा ॥१२३

समस्तदक्षिणायुक्तान् सर्ववेदांस्ततश्च तान्।
अग्नीनात्मनि चारोप्य दण्डान् विधिवदाहरेत् ॥१२४

किञ्चिद्वेदं समास्थाय तद्धर्मेण च वर्तयेत्।
वाङ्-मनः-कायदण्डाश्च तथा सत्वादयो गुणाः ॥१२५

त्रयोऽपि नियता यस्य स त्रिदण्डीति कथ्यते।
कमण्डल्वक्षमाला च भिक्षापात्रमथापरम् ॥१२६

काषायवासः कौपीनं कार्यार्थं वस्त्रमेव वा।
शिखा यज्ञोपवीतं च दण्डानां त्रितयं तथा ॥१२७

द्विकालं विधिवत्स्नानं भिक्षया चैकभोजनम्।
शुद्धैकवृत्तिविप्रेषु सत्कर्मनिरतेषु च ॥१२८

भिक्षाचर्या यतेः प्रोक्ता व्रतचर्या तथैव च।
असम्भाषश्च शूद्रेण तथा च शिल्पि-कारुभिः ॥१२९

अवक्तृत्वं तथा स्त्रीभिः कृत्यमेतद्यतेः स्मृतम्।
न कदम्बकसंरोधो नित्यमेकान्तशीलता ॥१३०

सदैव प्राणसंरोधः सदैवाध्यात्मचिन्तनम्।
मृद्वेणुशार्वलाब्वश्ममयं पात्रं यते स्मृतम् ॥१३१

शुद्धिरद्भिरमीषां तु गोवालैश्चावघर्षणम्।
न दण्डैर्न च दण्डेन विना वा तेन वा तथा ॥८३२

मोक्षावाप्तिर्भवेत्पुंसां किंत्वस्याध्यात्मचिन्तनात्।
समत्वं सुख-दुःखेषु तथा विद्वेष-रागयोः ॥१३३

आत्मान्ययोः समानत्वमजस्रं चात्मचिन्तनम् ॥१३४

यतिभिस्त्रिभिरेकत्र द्वाभ्यां पञ्चभिरेव वा।
न स्थातव्यं कदाचित्स्यात्तिष्ठन्तो नाशमाप्नुयुः ॥१३५

बहुत्वं यत्र भिक्षूणां वार्तास्तत्र विचित्रकाः।
स्नेह-पैशून्य-मात्सर्यं भिक्षूणां नृपतेरपि ॥१३६

तस्मादेकान्तशीलेन भवितव्यं तपोर्थिना।
आत्माभ्यासरतश्चैव ब्रह्मप्राप्त्यभिलाषुकः ॥१३७

त्रिदण्डग्रहणादेव यतित्वं नैव जायते ।
अध्यात्मयोगयुक्तस्य ब्रह्मावाप्तिर्भवेद्यतः ।
जितेन्द्रियो हि दण्डार्हो युवा न स्यात्तथा सरुक् ॥१३८
युवा नीरुक् तथा भिक्षुरात्मवृद्धिप्रदूषकः ।
भिक्षुर्गेहे वसन्यत्र कामार्त्तोऽन्योऽभिगच्छति ॥१३९
तत्सद्मनार्थं वृद्धान्वै सह तेनैव पालयेत् ।
एकरात्रं तु निवसेद्भिक्षुर्यस्य गृहाङ्गणे ॥१४०
तस्य वै तारयेत्पूर्वान् विंशतिं पितृमातृतः ।
भिक्षुर्यस्यान्नभुक् ब्रह्मयोगाभ्यासरतो भवेत् ॥१४१
परिणामश्च योगेन कृतकृत्यो गृही भवेत् ।
निर्ममो निरहङ्कारः सर्वसहः प्रसन्नधीः ॥१४२
ब्रह्मण्यात्मनि गोमायौ मुनौ म्लेच्छे च तुल्यदृक् ।

चिह्नानि धात्रा कथितानि धत्ते वर्त्तेत यो वै विहितेन भिक्षुः ।
योऽध्यात्मवेदी सततं जिताक्षः स ब्रह्मकाये गमनं करोति ॥१४३

वनस्थ-भिक्षुधर्मान्वै यानुवाच पराशरः ।
यथावदभिधायैतान् वक्ष्याम्याश्रमभेदकान् ॥१४४

इति वानप्रस्थभिक्षुधर्मवर्णनम् ।

॥ अथ चतुर्णामाश्रमाणांभेदवर्णनम् ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भेदमाश्रमसम्भवम् ।
ब्रह्मचर्यादिकानां तु याथातथ्यं निबोधत ॥१४५

चतुर्णामाश्रमाणां तु भेदो दृष्टो मनीषिभिः।
प्रत्येकशो वदाम्येनं श्रुणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥१४६
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
एतद्भेदान् प्रवक्ष्यामि श्रुणुध्वं पापनाशनम् ॥१४७
चतुर्धा ब्रह्मचारी स्याद्गायत्रो वैधसस्तथा।
प्राजापत्यो बृहच्चेति लक्षणानि पृथक् पृथक् ॥१४८
अक्षारलवणाशी स्यात् गायत्र्यभ्यासतत्परः।
वर्तते भिक्षया नित्यं गायत्रोऽयं प्रकीर्तितः ॥१४६
चतुर्धा द्वादशाब्दानि योऽधीयानश्चतुःश्रुतीः।
भिक्षया ब्रह्मचर्येण तिष्ठेत् ब्राह्मः स उच्यते ॥१५०
गुरोर्वा गुरुपुत्रस्य तत्पत्न्या वापि सन्निधौ।
यो वसेदभ्यसन् ज्ञानं ब्रह्मचारी स नैष्ठिकः ॥१५१
ऋतुकालाभिगामी सन् परस्त्रीं पर्व वर्जयन्।
वेदानध्येति भिक्षाभुक् प्राजापत्योऽयमुच्यते ॥१५२
गृहस्थस्तु चतुर्भेदो वार्ता-शालीनवृत्तिकौ।
यायावरस्तथा चान्यो घोरसन्यासिकस्तथा ॥१५३
कृषि-गोरक्ष-वाणिज्यैः कुर्वन् सर्वाः क्रिया द्विजः।
विहितैरात्मविद्यैश्च वार्तावृत्तिः स उच्यते ॥१५४
ददात्यध्येति यजते याजयेन्न च पाठयेत्।
कुर्यात्कर्माप्रतिग्राही शालीनो ध्यानकृद्द्विजः ॥१५५
उक्तः सन् कारयेदन्यांक्रियां कुर्यात्प्रतिग्रहम्।
पाठयेच्च तथात्मानं यायावरः स उच्यते ॥१५६

तिष्ठेद्यश्च शिलोञ्छाभ्यामुद्धृताग्निश्च उच्यते ।
आत्मविच्च क्रियाः कुर्यात् घोरसंन्यासिकः स्मृतः ॥१५७

वानप्रस्थश्चतुर्भेदो वैखानस उदुम्बरः ।
वालखिल्यो वनेवासी तल्लक्षणमथोच्यते ॥१५८

फलैर्मूलैरकृष्टान्नैरग्निकर्म वने वसन् ।
कुर्यात्पञ्चमहायज्ञान् स वैखानस आत्मवित् ॥१५९

प्रातर्दृष्टदिगानीतैर्फलाकृष्टाशनेन्धनैः ।
उदुम्बरो मतो ज्ञानी पञ्चयज्ञाग्निकर्मकृत् ॥१६०

चतुरो न्यासकृदग्निकार्यं कुर्वन्वने वसन् ।
फलस्नेहैर्वनान्नैश्च बहुभिःश्रुतिचोदितैः ॥१६१

उद्धृत्य परिपूताद्भिस्तथाऽयाचितवृत्तिकः ।
फलैर्वन्यैर्वनान्नैश्च फेनपः पञ्चयज्ञकृत् ॥१६२

वनस्थो वालखिल्यो यो धत्ते वल्कलचीवरम् ।
अग्निकार्यकृदात्मज्ञ ऊर्जान्ते संचितं त्यजन् ॥१६३

चतुर्भेदः परिव्राट् स्यात् कुटीचक-बहूदकौ ।
हंसाः परमहंसाश्च वक्ष्यन्ते ते पृथक् पृथक् ॥१६४

पुत्रस्य भ्रातृपुत्रस्य भ्रातृ-दौहित्रयोरपि ।
तदुपान्तकुटीस्थो यः स भैक्ष्यवृत्तिभुक् द्विजः ॥१६५

प्रतिचर्याकृतःसोऽपि यो वासःपूतवारिपः ।
तथा त्रिदण्डभृत् शान्त आत्मज्ञः स कुटीचकः ॥१६६

ज्ञेयो बहूदको नाम यः पवित्रितपादुकः ।
शिखासनोपवीतानि धातुकाषायवस्त्रभृत् ॥१६७

साधुवृत्तिर्द्विजौकस्सु भिक्षाभुगात्मचिन्तकः।
बहूदकस्त्वयं ज्ञेयो यः परिव्राट् त्रिदण्डभृत् ॥१६८

एकदण्डधरा हंसा शिखोपवीतधारिणः।
वार्याधारकराः शान्ता भूतानामभयङ्कराः १६९

वसन्त्येकक्षपां ग्रामे नगरे पञ्चशर्वरीः।
कर्षयन्तो व्रतैर्देहमात्मज्ञानरताः सदा ॥१७०

एकदण्डधरा मुण्डा कन्था-कौपीनवाससः।
अव्यक्तलिङ्गिनोऽव्यक्ता सर्वदैव च मौनिनः ॥१७१

शिखादिरहिताः शान्ता उन्मत्तवेषधारिणः।
भग्न-शून्यामरौकःसु वासिनो ब्रह्मचिन्तकाः ॥१७२

एते परमहंसा वै नैष्ठिका ब्रह्मभिक्षवः।
उक्तास्तद्व्रतभेदज्ञैरात्मनः प्रार्थनाकराः ॥१७३

यो ब्रह्मचर्यव्रतचारिभेदो भेदो गृहस्थस्य तथैव यश्च।
योऽरण्यवासिद्विजकर्मभेदो यतेस्तथा नैष्ठिकमुक्तिभेदाः ॥१७४

चतुर्णामाश्रमाणां तु भेदमुक्त्वा पराशरः।
अथाब्रवीत् द्विजा योगं शृणुध्वं पापनाशनम् ॥१७५

मुमुक्षवो विरज्यन्ते देहाद्गेहादितो यथा।
शरीरज्ञास्तथा प्राहुः परब्रह्मलयं गमाः ॥१७६

ख-वाय्वग्न्यंबु-धात्रीभिरारब्धमाशुनाशि च।
तन्मुख्य...संयुक्तं तत्पञ्चाक्षालयं त्यजेत् ॥ १७७

शुक्र-शोणितसंयोगात्स्त्रीकोष्ठपाकसम्भवम्।
दुःखेन दशभिर्मासैर्व्यायतं भूरिदोहदैः ॥१७८

जनन्या दोहदाभावे गर्भस्थस्यापि दुःखिताः।
अत्यन्तं जायमानस्य योनियन्त्रनिपीडनात् ॥१७६

जातस्य बालरोगाद्यैर्योगिनीग्रहदोषतः।
देहिनः सर्वदा दुःखं दंतजन्मादिकैर्ग्रहैः ॥१८०

एवं बाल्ये महद्दुखं कौमार्ये यौवनेऽपि च।
स्त्रिया विनापि सार्धं वा दारिद्रैश्वर्ययोरपि ॥१८१

क्षुत्तृड्भ्यां प्रथमे वित्तरक्षणाद्यैर्द्वितीयके।
वृद्धत्वेचानयोर्दुःखं तस्माद्दुःमयं वपुः ॥१८२

मांसेन लेपितं बद्धं स्नायुभिः कुल्यसञ्चयम्।
मेदोमेहनसम्पूर्णं कफ-पित्त-वसाश्रयम् ॥१८३

अमेध्यपूर्णं भस्त्रावत्सर्वं वै सर्वदाऽशुचि।
मृत्स्नया स्नान गन्धाद्यैर्निर्गन्धि क्रियते बहिः ॥१८४

दुर्गन्धं सर्वरन्ध्रेषु स्वघ्राणोद्वेगकारकम्।
सततं स्रवतेऽमेध्यं किं देहस्योच्यते शुभम् ॥१८५

यद्दग्धं भवेन्मृत्स्ना दग्धं भस्मत्वमाप्नुयात्।
मृतस्य दृश्यते किञ्चित् तृष्णाकोपरतस्य तु ॥१८६

क इहोत्पद्यते विद्वान् को वेह म्रियते पुनः।
यन्त्रोपममिदं धीमान् वायुत्यक्तं मृतं भवेत् ॥१८७

पृथगात्मा पृथक् स्वान्तं पृथक् खानि दशापि च।
पृथक् पृथक् च भूतानि पृथक् तेषां गुणोत्करः ॥१८८

पृथक् प्राणादिवायुश्च तद्वृत्तिश्च पृथक् पृथक्।
पृथक् पृथगिति ह्येतत शरीरं किमिहोच्यते ॥१८९

आरम्भकाणि यान्येव तेषु यान्ति तदंशकाः।
आत्मा चान्यदवाप्नोति यातनीयं पुनर्वपुः ॥१६०
यः पश्येत् शृणुयाज्जिघ्रेत् स्वदेद्विद्यात्स्मरेद्वदेत्।
स्वप्याच्च जागृयाद्गच्छेद्विन्द्यात् गायेत् जपेत् पठेत् ॥१६१
गृह्णीयादर्पयेद्द्याज्जायेत जनयेदपि।
सोऽस्ति कश्चित्परो देहाद्यो देवीति निगद्यते ॥१६२
नैकश्चेत्स्यान्न देहेऽस्मिन् प्रत्यभिज्ञा कथं भवेत्।
एकदृक्-दृष्टिरूपस्य पुनरन्येन पश्यतः ॥१६३
अद्राक्षं यदहं वस्तु तदैवैतत्स्पृशाम्यथ।
यथाऽस्प्राक्षं च पश्यामि प्रतीतिर्यस्य जायते ॥१६४
दर्शन-स्पर्शनाभ्यां च ग्रहणादेकवस्तुनः।
अस्ति ह्यात्मा परो देहात्तथा देह्यस्ति कश्चन ॥१६५
गृही च गृहमध्यस्थो भग्नं किंचित्समाचरेत्।
देहे क्षतादिसंरोहात्ता देह्यस्ति कश्चन ॥१६६
ज्ञानयोगफलेनायं कर्मयोगफलेन च।
स एव भुज्यते कुर्वन् उद्देशौ तस्य ताविति ॥१६७
तार्यते कर्मणा चायं बध्यते कर्मणापि च।
उभयथापि नैवात्र प्रत्यक्षं दृश्यते द्विजाः ॥१६८
मायावित्वं च मूकत्वमतिरिक्तांगता क्रमात्।
अवाक्त्वं धान्यहर्तॄणां पैशून्ये पूतिनासिता ॥१६९
भरतो वर्णकैश्चित्रैः स्वदेहं चित्रयेद्यथा।
कुर्वन्नानाविधं कर्म तथात्मा कर्मजास्तनूः ॥२००

जरायुजाण्डजादीनि वपूंषि योऽग्रहीन्निजैः ।
कर्मभिर्वर्णभेदैश्च चित्तदौर्गत्यरुग्युतः ॥२०१
बधिर-क्लीब-निःस्वा-ऽन्धा जायन्ते पुरुषाधमाः ।
निरेनसः पुनर्भूत्वा विद्वद्विप्रकुलेषु च ॥२०२
महाकुलेषु चान्येषु जायन्ते लक्षणान्विताः ।
धनवन्तः प्रजावन्तो विद्यावन्तो यशस्विनः ॥२०३
रूप-सौभाग्यसंयुक्ताः सर्वेषामुपकारकाः ।
ब्रह्माभ्यासरताः शान्ताः षट्कर्मनिरतास्तथा ॥२०४
पञ्चयज्ञकृतो नित्यमग्निष्टोमादिषु स्थिताः ।
द्विजोपास्तिकरा नित्यं गुर्वाचार्यादिपूजकाः ॥२०५
चतुराश्रमधर्माणां सेविनः समदर्शिनः ।
गुणैः सर्वैः समायुक्तास्तेजस्विनो जनप्रियाः ॥२०६
एवंभूताश्च ये विप्रास्तेषां विष्णु सदान्तिके ।
विष्णुश्च सर्वदैवत्यस्तस्माद्विष्णुमना भवेत् ॥२०७
देवतार्चाकृतां नित्यं गुरूपास्तिकृतां तथा ।
ब्रह्मैवाभ्यसतां सम्यक् ब्रह्मसान्निध्यमिष्यते ॥२०८
उपास्यं तत्सदा ब्रह्म यावत्साधकतां वहेत् ।
वहायासाद्विदित्वा यत्संसरेन्नेह मानवः ॥२०९
वदन्ति ब्रह्मवेत्तारो ब्रह्माभ्यासमनेकशः ।
ब्रह्मापि द्विविधं धीमन्नपरं परमेव ॥२१०
समत्वं परमं ब्रह्म शब्दब्रह्मेति कीर्तितम् ।
प्रणवाख्यं त्रिरूपं तत्प्रागेव हि विशेषतः ॥२११

प्राणायामैस्तदभ्यस्य पूरकाद्यैश्च वायुभिः।
पूरक-कुम्भकौ वायू रेचकस्तु तृतीयकः ॥२१२
येन व्यावर्तते वायुर्नासाग्रान्निःसरेद्बहिः।
पूरयेत् श्वासयोगेन पूरकं तद्विदो विदुः ॥२१३
आपूर्य निश्चलीकृत्य यः कश्चिद्धार्यतेऽनिलः।
श्वासयोगं वदन्त्येवं कवयः कुम्भकं त्विति ॥२१४
ब्रह्मध्यानसमायुक्तं वायुं यो न वहिर्नयेत्।
कुम्भकः पवनः स स्याद्यो वहिर्नैव मुच्यते ॥२१५
रेचकं तद्विदुस्तज्ज्ञा रेच्यते यः शनैः शनैः।
न वेगाद्रेचयेद्वायुं सर्वथा विघ्नभाग् भवेत् ॥२१६
मोचयेन्मन्दमन्दं तु बहिः स्यात्कुम्भितो यथा।
नासाग्रस्थितपाणिस्तु सशिरश्चालनक्षमम् ॥२१७
अनिलं रेचयेद्योगी न मन्दं नातिवेगतः।
न ज्ञायतेऽनिलो यस्य निःसरम् नासिकाग्रतः ।२१८
यस्यास्ते कुम्भितोऽजस्रं प्राणयोगी स उच्यते।
दीर्घायुस्त्वं परं ज्ञानं समस्ता योगसिद्धयः ॥२१९
देहे तस्याऽवतिष्ठन्ति प्राणो येन वशीकृतः।
यत्र तिष्ठति जीवःस्यान्निःसृतेमृत उच्यते ॥२२०
स किन्न धार्यते प्राणो ब्रह्माप्तिः सति यत्र तु।
प्राण एवायमात्मास्ते प्राणो देहस्य वाहकः ॥२२१
शरीरान्निःसृते प्राणे नात्मा विग्रहवाहकः।

देहं त्यक्त्वा यदा जीवो बहिराकाशमास्थितः ॥२२२
तदा निर्विषयो वायुर्भवेदत्र न संशयः।
तदा स सर्वदेहेषु नासाग्रमास्थितः शिवः ॥२२३
प्रत्यक्षः सर्वभूतानां तिष्ठते न च लक्ष्यते।
यदा न श्वसते वायुस्तदा निष्फलमुच्यते ॥२२४
नाभिसंस्थं तु विज्ञाय जन्मबन्धाद्विमुच्यते ।
देहस्थः सर्व सत्वानां स जीवति श्रृणोति च ॥२२५
धर्माधर्मैरवष्टब्धो देहे देहे व्यवस्थितः।
स हृत्पंकजसंस्थस्तु अध उर्ध्वं प्रधावति ।२२६
धर्माधर्मैर्महापाशैर्गृहीतःसन् प्रवर्तते।
उर्ध्वमुच्छ्वसते यावत्प्राणाख्यस्तु समीरणः ॥२२७
तावत्प्राणस्तु विज्ञेयो यावन्नासाग्रमास्थितः।
अत्रस्थं निष्कलं ब्रह्म यावन्न श्वसिति द्विज ॥२२८
श्वासेन हि समायोगादाकाशात्पुनरागतः।
नासारन्ध्रसमालीनस्तदा निष्फलमुच्यते ॥२२६
स जीव इति विख्यातः स विष्णुः स महेश्वरः।
ध्यातव्या देवतास्तत्र क्रमेण पूरकादिषु ॥२३०
विष्णु-ब्रह्मेश्वरास्तेषु स्थानेषु स्थानविद् द्विजैः।
नीलपङ्कजवत् श्याममासीनं नाभिमध्यतः ॥२३१
महात्मानं चतुर्बाहुं पूरके तु हरिं स्मरेत् ।
हृत्पद्मे कुम्भके ध्यायेत् ब्रह्माणं पङ्कजासनम् ॥२३२
रक्तेन्दीवरवर्णाभं चतुर्वक्त्रं पितामहम्।

रेचके शङ्करं ध्यायेल्ललाटस्थं त्रिशूलिनम् ।।२३३

शुद्धस्फटिकसङ्काशं संसारार्णवतारकम् ।

एवं श्वसनसंरोधाद्देवतात्रयचिन्तनात् ।।२३४

अग्नि-वाय्वंभसंयोगादन्तरं शुध्यते त्रिभिः ।

निरोधादभवद्वायुस्तस्मादग्निस्ततो जलम् ।।२३५

इति त्रिदेवतायोगात् शुद्धयन्तेऽन्तः पुनर्द्विजाः ।

व्याहृतिप्रणवोपेताः प्राणायामास्तु षोडश ।।२३६

अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ।

प्रातरह्नि च सायं च पूरकं ब्रह्मणोऽन्तिकम् ।।२३७

रेचकेन तृतीयेन प्राप्नुयात्परमं पदम् ।

न प्राणेनाप्यपानेन वायुं वेगेन रेचयेत् ।।२३८

प्रागुक्तेन प्रयोगेण मोचयेत्प्राणसंयमी ।

शरीरं च शिरोग्रीवा विद्वान् प्राणी च पद्द्वयम् ।।२३६

सर्वाङ्गं निश्चलं धार्यमापूर्यसर्वनाडिकाः ।

संवृत्याङ्गानि सर्वाणि कूर्मवध्यानकृद् द्विजः ।।२४०

बद्धासनोऽचलाङ्गस्तु कुर्यादसुनिरोधनम् ।

कृत्वा सुसंयमं विद्वान्विधिवत्समुपस्पृशेत् ।।२४१

अन्तरं शुध्यते यस्यात्तस्मादाचमनं स्मृतम् ।

इत्युक्तः प्राणसंरोधे देवतात्रयसंयुतः ।।२४२

त्रिमात्रः प्रणवस्तत्र ध्यातव्यः सर्वयोगिभिः ।

स्मर्यमाणस्य यातस्य विश्रान्तिः स्यादमात्रके ।।२४३

तत्परं निष्फलं ज्ञानं तद्विदुर्ब्रह्मचिन्तकाः ।

मृदुमध्यान्तसत्वाच्च स्थूलसूक्ष्मानुभावतः ॥२४४
त्रिविधं प्राणसंरोधं विदुस्तत्तत्त्ववेदिनः ।
क्रियमाणो विशेषेण प्रत्याहारोऽयमुच्यते ॥२४५
सर्वं प्रागुक्तमेवास्य विशेषं च निबोधत ।
वाह्यं वायुं यथोत्थाय आकृष्य यच्छनैः शनैः ॥२४६
निरुन्ध्याद्विधिवद्योगी प्रत्याहारः स उच्यते ।
व्याहृत्याऽभिमुखीकृत्य खानि यत्र निरुध्य च ॥२४७
चिन्तयेन्निश्चलीकृत्य प्रत्याहारः स उच्यते ।

प्राणाद्या वायवः स्थूलाः सङ्कल्पाद्यास्तथाऽणवः ॥२४८
निरोद्धव्या दशाप्येते प्राणसंयमकारिभिः ।

वायुरेकोऽपि देहस्थः क्रियाभेदेन भिद्यते ॥२४६
प्रकर्षेणासमन्ताच्च नयनादिक्रियाः स्मृताः ।
भविष्या-ऽतीतकालेभ्यः कर्मभ्यश्चाशुसंयमी ॥२५०
सर्वानिलांस्तथा खानि निरुन्ध्यैकत्र धारयेत् ।
स धीमान्वेदविद्विदान् स योगी ब्रह्मवित्तमः ॥२५१

स्थानं द्विजन्मा विधिवत्त्वजस्रमभ्यस्य संयाति विधेःपरस्य ।
पराशरोक्तैर्बहुभिःप्रकारैरुक्तो विधिः प्राणनिरोधनस्य ॥२५२

प्रत्याहारो विशेषस्तु प्रोक्तस्तरयैव वित्तमाः ।
यदभ्यस्याप्नुयाद्ब्रह्म सर्वदानंदमव्ययम् ॥२५३

एतैस्तु पुनरावृत्तिः कदाचिदिह दृश्यते ।
संसृतिं नाप्नुयाद्येन शक्तिसूनुस्तदब्रवीत् ॥२५४

उक्तस्तु संयमः पूर्वं त्रिविधो मलनाशनः ।
निबोधत चतुर्थं तु ध्यानं प्रणववेधसः ॥२५५

विधिवत्प्रणवध्यानमेकचित्तस्तु योऽभ्यसेत् ।
ब्रह्माभ्येति स मुक्तात्मा स योगी योगिनां वरः ॥२५६

तद्ध्यानमसुसंरोधस्तुर्यं सम्यगिहोच्यते ।
तदन्यथानपेक्षं च चित्तक्षेपविवर्जितम् ॥२५७

चतुर्णामाश्रमाणां तु भेदमुक्त्वा पराशरः ।
अथाब्रवीद्द्विजा योगं शृणुध्वं पापनाशनम् ॥२५८

तच्छान्तं निर्मलं शुद्धं ध्यातव्यं हृत्सरोरुहे ।
तद्ध्येयं तद्वरेण्यं च बीजं मुक्तेरतदुच्यते ॥२५९

सञ्चिन्त्य व्याहृतीः सप्त प्रणवाद्यास्तदन्तकाः ।
सम्यगुक्तमिदं ध्यात्वा परब्रह्मणि योजयेत् ॥२६०

हुतभुक् पवनो जीवस्त्रयोऽप्येते हृदि स्थिताः ।
एतत्सर्वं तु चैकत्र संस्मरेत् ध्यानकृद् द्विजः ॥२६१

ॐकारवर्त्मनालेन उद्धृत्योपरि योजयेत् ।
योजयेत्सर्वमप्येतत्सिद्धयोगी स उच्यते ॥२६२

शून्यभूतस्तु यत्प्राणः श्वासं जीवेति संज्ञितम् ।
यस्मादुत्पद्यते श्वासः पुनस्तत्र निवेशयेत् ॥२६३

आद्यं तं प्रणवं विद्वान् घटाकाशवदभ्यसेत् ।
स पश्येन्निर्मलं शुद्धं पुरुषं तमसंशयम् ॥२६४

अन्तर्वक्रो वहिः (सम्यक) सर्पन् सर्पवत्कुण्डलाकृतिः ।

ध्यातव्यः प्रणवस्तत्र मध्यगं धाम संस्मरेत् ॥२६५

स मात्रा स च बिन्दुश्च तदेव परमं पदम् ।
तदभ्यस्यं हि तज्ज्ञात्वा स तस्मिन्नेव लीयते ॥२६६

प्रथमं प्रणवो ऽव्यक्त स्त्यक्षरः परमाक्षरः ।
सर्वज्ञत्वमवाप्नोति प्राप्नोति परमं पदम् ॥२६७

पञ्चमं तु पदं विद्वान् तत्सार्धमवतिष्ठते ।
नादबिन्दुसमभ्यासात् प्राप्नुयात्परमं पदम् ॥२६८

पदं प्राप्य निवर्तन्ते धाम स्वं स्वान्तमेव च ।
सर्वेऽप्यमातृका वर्णाः पुनस्तत्र विशन्ति च ॥२६९

वर्णात्मा सन्नवर्णस्तु समस्तवर्णजीवनम् ।
न दीर्घं नापि ह्रस्वं च न घोषं नाप्यघोषवत् ॥२७०

न विसर्गं न तद्धीनं नानुस्वारविपर्ययः ।
हृद्याकाशनिविष्टं यदचलत्वं प्रयाति चेत् ॥२७१

ज्ञानयोगे त्रिषष्टिर्वै बिभ्रतीत्यक्षराणि तु ।
तत्पदं योगिभिर्ध्येयं व्योम यस्य तु मध्यगम् ॥२७२

व्योमान्तं सततं ध्येयमनंताकाशमव्ययम् ।
चिन्तयामो वयं यद्वै धियो यो नः प्रचोदयात् ॥२७३

एतद्ब्रह्म त्रयीरूपमेतद्वर्गत्रयीमयम् ।
एषा सा परमा मुक्तिर्गत्वा यां न निवर्तते ॥२७४

आदाय चापं प्रणवं च बाणं सन्धाय चात्मानमवेक्ष्य लक्ष्यम् ।
स तद्विधिं तत्र निवेश्य योगी प्राप्नोति नित्यं स तु मुक्तिकामः ॥२७५

उद्देशतः किंचिदुवादि विद्वन् ध्यानं विधेर्यत्प्रणिपूर्वकस्य ।
सर्वं विधानं विधिवच्च सम्यक् वक्तुं समर्थो विधिरेव चास्य ॥२७६

इति प्रणवध्यानविधिवर्णनम् ।

अथ ध्यानयोगवर्णनम् ।

अथान्यत्सम्वक्ष्यामि विधानं ध्यानकर्मणाम् ।
नानामतोदितं कार्यं परब्रह्माप्तिकारकम् ॥२७७
कर्मात्मकस्त्विह प्रोक्तः कः परात्मा परं च किम् ।
वक्ष्यमाणमिदं विप्राः शृणुध्वं भक्तितत्पराः ॥२७८
स्वीयेन कर्मणा येषां शरीरग्रहणं भवेत् ।
कर्मात्मानस्त उच्यन्ते निर्गता परमात्मनः ॥२७६
यं न स्पृशन्ति दुःखाद्यास्तथा सत्वादयो गुणाः ।
कादाचित्कं न कर्मास्ति परमात्मा ततः परम् ॥२८०
निष्ठा-नाशौ न विद्येते गुणा यं न स्पृशन्ति हि ।
अजःसन् कथमेतस्मिल्लोके जातोऽभिधीयते ॥२८१
स्वात्मानमेव चात्मानं वेष्टयेत्कोशकारवत् ।
कर्मणैव प्रजातस्तु वाह्यस्वार्थविमोहितः ॥२८२
तस्माद्विवर्जयेत्कर्म स्वर्गादेरपि साधकम् ।
संसरेत्स्वर्गतः कर्मक्षये स तु पुनर्यतः ॥२८३
सीमैषा परमा विद्वन् ब्रह्मणः पात-मोक्षयोः ।
कर्मस्थानमियं धात्री कृतमत्रोपभुज्यते ॥२८४

वैदिकः कर्मयोगश्च दिवोऽप्यावर्तकः स तु ।
योनेहावृत्तिकृत्तं च ज्ञानयोगमतोऽभ्यसेत् ॥२८५
हृदि निःसृतनाडीनां सहस्राणां द्विसप्ततिः ।
तन्मध्यावस्थितं तेजः शशिप्रभं विभाति यत् ॥२८६
तन्मध्यमण्डले ह्यात्मा विधूमाचलदीपवत् ।
स ज्ञातव्यो विदित्वा तं संसरेन्न पुनर्यतः ॥२८७
पुटीभूतमधोवक्त्रं तद्धृत्पद्मं व्यवस्थितम् ।
नाभ्युत्थोदानवातेन कृत्वोर्ध्वास्यं विकासयेत् ॥२८८
विकास्य तस्य मध्यस्थमचलं दीपशिखेव तत् ।
तदूर्ध्वं निःसरच्छुभ्रं सूक्ष्मं तत्तु विचिन्तयेत् ॥२८९
ललनाद्वारनिर्गच्छन्योगी मूर्ध्नि तु चिन्तयेत् ।
तावत्तु चिन्तयेद्यावन्निरालम्बत्वमृच्छति ॥२९०
निरालम्बं यदा ध्यानं कुर्वाणो निश्चलो भवेत् ।
तदा तदुच्यते ब्रह्म स योगी ब्रह्मवित्तमः ॥२९१
तत्पदं च पदातीतं तत्प्राप्तौ मुक्त उच्यते ।
इति ध्यानं विधातव्यं मुक्तिकृत्सद्भिर्द्विजैर्द्विजाः ॥२९२
भूतानामात्मभूतस्य तानि सम्यक् प्रपश्यतः ।
विमुह्यन्त्यमरा मार्गं पदं किमपदस्य तु ॥२९३
यो न तिष्ठति नो याति न किञ्चित्सर्व एव यः ।
अवाग्यो वाङ्मयो यश्च सकलश्रुतिरश्रुतिः ॥२९४
योऽप्यन्तिके दवीयांश्च योऽस्ति नास्ति स्वरूपकः ।
यस्य तत्त्वस्य संवित्तिः स तस्मिन्नेव लीयते ॥२९५

यस्तु सर्वाणि भूतानि पश्यत्यात्मगतानि तु।
आत्मानं तेषु सर्वेषु ततो यो न विरज्यते ॥२९६
सर्वभूतात्मभूतात्मा यत्र पश्यति धीमतिः।
शोक-मोहौ च किं तस्य ह्येकत्वमनुपश्यतः ॥२९७
समाप्तावुत्तमादिर्यन्मन्त्र-ब्राह्मणयोर्द्विजाः।
ॐ खं ब्रह्मेति चाम्नायो दर्शकस्त्वेष वेधसः ॥२९८
आत्मज्ञाने बहूपाया उक्तास्तद्धि-मनीषिभिः।
तैस्तैः सर्वैः स मन्तव्यो ज्ञातव्यश्चोपदेशतः ॥२९९
न वेदैर्ज्ञेयता तस्य न शास्त्रैर्बहुभिः श्रुतैः।
न यज्ञैर्न जपैर्होमैः शौचैर्वाग्नितयापि च ॥३००
गुरूपदेशतो भक्त्या सम्यगभ्यासतस्तथा।
ज्ञातव्यः परमात्वैवं भक्तिकृत्तत्परेण च ॥३०१
ध्यानज्ञानस्य तद्भक्तेर्यत्र विश्रमते मनः।
तदेवोपादिशेत्तस्य वस्तु ज्ञानोपदेशकम् ॥३०२
मनो यस्य निषण्णं तु जायते यत्र वस्तुनि।
स तु ध्यायेत्तदेवेति यावत्स्यात्ध्यानसन्ततिः ॥३०३
तत्र ध्याने तु संलग्ने हरावात्मनि वा पुनः।
ध्यानं योजयते योगी तं निरालम्बतां नयेत् ॥३०४
योगशास्त्रेषु यत्प्रोक्तं रहस्यारण्यकेषु च।
तत्तथोपदिशेद्ध्यानं ध्यायेदपि तथैव च ॥३०५
प्रवदन्त्यन्यथा केचित् शुभादिभेदतस्त्वतः।
त्रैविध्यं विदुषो विद्धन् सिद्धिदं च परापरम् ॥३०६

चित्तजं श्रुतिजं भावं भावनाभवमेव च।
त्रैविध्यमात्मना सिध्येद्योगाभ्यासफलप्रदम् ॥३०७

आत्मशक्तिः शिवश्चेति चैतन्यमिति संज्ञितम्।
उत्तरोत्तरवैशिष्ट्याद्योगाभ्यासः प्रवर्तते ॥३०८

स एको निश्चलीभूतकर्मात्मा यमुपार्जितः।
न बिभेति स एकाकी परेषां जायते भयम् ॥३०९

तदेवं गतिभिर्ब्रह्मध्यानं यस्यास्ति योगिनः।
स विशेत्तमजं शान्तं कदाचित्संसरेन्न तु ॥३१०

त्र्यम्बकश्च चतुर्वक्त्रश्चतुर्बाहुः परेश्वरः।
एक एव महेशो वै तज्ज्ञैस्त्रिधेति कीर्त्यते ॥३११

नाभिमध्यस्थितं विद्धि वस्तु विद्वन् सुनिर्मलम्।
रविवद् भ्राजमानं तु काशद्रश्मिगणैर्द्विज ॥३१२

चिन्तयेत् हृदि मध्यस्थं दीप्तिमत्सूर्यमण्डलम्।
तस्य मध्यगतः सोमो वह्निश्चन्द्रशिखो महान् ॥३१३

तन्मध्ये तु परं सूक्ष्मं तद्ध्यायेद्योगमात्मनः।
तन्मध्ये चिन्तयेदेतद्वक्ष्यमाणक्रमेण तु ॥३१४

विन्दुमध्यगतो नादो नादमध्यगतो ध्वनिः।
ध्वनिमध्यगतस्तारस्तारमध्यगतोऽंशुमान् ॥३१५

तस्यमध्यगतं ब्रह्म शान्तं तस्य तु मध्यगम्।
परं पदं तु यच्छान्तं सम्यग्व्याहृत्य योजयेत् ॥३१६

जीवात्मा कायमध्यस्थस्तत्रापि देहवर्जितः।
वक्त्र-नासापुटस्थस्तु भुञ्जीत विषयान् प्रभुः ॥३१७

इत्येतद्ध्यानमार्गं तु वदन्ति कवयो द्विजाः।
केचिदन्येऽन्यथा ब्रूयु रूपं ब्रह्मविदो विधेः ॥३१८

न नामापि हि दुःखस्य शर्म यत्र निरन्तरम्।
ब्रह्मणो रूपमानन्दं तन्मुक्तावुपलभ्यते ॥३१९

सर्वव्यापी य एकस्तु यश्चानन्तश्च भावुकः।
स मन्तव्योऽनरो ह्यात्मा सर्वं व्याप्य च यः स्थितः ॥३२०

एकं व्योम यथानैकं गृहाद्यैरुपलक्ष्यते।
एको ह्यात्मा तथानैको जलागारेषु सूर्यवत् ॥३२१

विश्वरूपो मणिर्यद्वत् वर्णान् गृह्णात्यनेकशः।
उपाधितस्तथात्मैको नानादेहेषु कर्मतः ॥३२२

कलाकाष्ठादिरूपेण वर्तमानादिभेदकृत्।
एकः कालो यथा नाना तथात्मैकोऽप्यनेकधा ॥३२३

देहमध्यस्थितं देवं यो न ध्यायति मूढधीः।
सोऽङ्कलब्धं मधु त्यक्त्वा क्लेशायाज्ञो गिरिं व्रजेत् ॥३२४

यस्तीर्थयानं जप-यज्ञ-होमान् कुर्याद्वपुष्पान् न च वेत्ति विष्णुम्।
स मांसपिण्डं परिहृत्य दूरादज्ञः प्रधावेदधिरुह्य पृष्ठम् ॥३२५

सम्भ्राम्यते विधिवशात्करणोग्रचक्रे
पापेन कुम्भ इव धातृवरेण नूनम्।
आरोप्य स्वार्थधृतदण्डमुखेन पूर्णं
हृत्पद्मसंस्थशिवतत्त्वमतिप्रहीण ॥३२६

द्वौ मार्गावात्मनो ज्ञेयौ ब्राह्मणैर्ब्रह्मचिन्तकैः।
अभियाति विदित्वा यौ सायुज्यं परवेधसः ॥३२७

विद्वान् धूमादिरेको वै द्वितीयस्त्वर्चिरादिकः ।
प्रत्येतव्यौ प्रयत्नेन यत्प्रतीतिर्न जायते ॥३२८

धूपः क्षपाऽसितः पक्षो दक्षिणायनमेव च ।
लोकःपित्र्यश्च सोमश्च मातरिश्वानुकर्षणम् ॥३२६

यथा धातृक्रमादेते सम्भवन्ति समाश्रिताः ।
अर्चिर्दिनं सितः पक्षस्तथाचैवोत्तरायणम् ॥३३०

देवलोकस्तथा सूर्यो विद्युतश्च क्रमादिमान् ।
मानसाः पुरुषा यान्ति जानन्तो ब्रह्मलोकताम् ॥३३१

यत्र याताः पुनर्नेह संसरन्ति द्विजाः क्वचित् ।
मार्गद्वयमिदं धीमन्मन्तव्यं सततं द्विजैः ॥३३२

ज्ञानेन येन विज्ञातुर्ज्ञान-मोक्षौ च सिध्यतः ।
गृहारण्यस्थ-भिक्षूणां त्रयाणामपि धीमताम् ॥३३३

ज्ञानमभ्यस्यमानं तु तथा दहति संसृतिम् ।
ज्ञानं समानमेतद्ध इति ब्रह्मविदो विदुः ॥३३४

यथा दहति चैधांसि समिद्धश्चाशुशुक्षणिः ।
तस्मान्मार्गद्वयेनापि आत्मा ज्ञेयो द्विजोत्तमैः ॥३३५

ये न जानन्ति ते यान्ति दन्दशूकादियोनिषु ।
यत्र गत्वा कृमित्वं वा कीटत्वमथ वाऽऽप्नुयुः ॥३३६

एताभ्योऽप्यधमास्वेव जायन्ते ते कुयोनिषु ।
विद्याविद्ये च मन्तव्ये ते हेतू स्वर्ग-मोक्षयोः ॥३३७

विद्या मोक्षप्रदा च स्यादविद्या मृत्युजन्मकृत् ।
ज्ञानयोगस्तथा कर्म विद्याविद्ये स्मृते बुधैः ॥३३८

अपवर्गाय द्वे चापि कर्म कृत्वा निवेदयेत् ।
कर्मापि क्रियमाणं वै निरपेक्षं तु मोक्षकृत् ॥३३९

विष्णवे गुरवे वापि कर्म कृत्वा निवेदयेत् ।
आत्मनः फलमिच्छंस्तु यत्कर्म कुरुते नरः ॥३४०

तेनैव वाञ्छितप्राप्तिस्तेनान्यद्वोपजायते ।
हरिर्वा नित्यमभ्यस्य सर्वभावेन सद्द्विजैः ॥३४१

तदभ्यासादवाप्नोति मृत्यौ दृष्टे हरिस्मृतिम् ।
एक एव हि स ध्येयो यत्परं नास्ति किञ्चन ॥३४२

विराट् सम्राट् महानेष सदा ध्येयो जितेन्द्रियैः ।
महान्तं पुरुषं देवं रविरूपं तमः परम् ॥३४३

ब्रह्मवित्सोऽतिमृत्युं वै प्रयात्येवानिवर्त्तकम् ।
एष एव नृणां पन्था ब्रह्मा वै यमुपासते ॥३४४

ये ये जन्मस्वनेकेषु विधिवच्चैकचेतसः ।
न भक्तया नापि योगेन नाभ्यासैनकजन्मना ॥३४५

ब्रह्माप्तिर्जायते पुंसां किन्तु स्याद्भूरिजन्मभिः ।
यद्देवा सन्तताभ्यासान्न ब्रह्म प्रतिपेदिरे ॥३४६

तन्मनुष्यैः कथं प्राप्यमेकेनैव च जन्मना ।
ज्ञानाभ्यासैर्न तद्ब्रह्म कृतैर्दम्भस्वरूपकैः ॥३४७

न प्राप्यते परं ब्रह्म न वाप्यासनमुद्रया ।
बहुभिः किमुपायैस्तु प्रोक्तैर्वा ग्रन्थविस्तरैः ॥३४८

एकमेवाभ्यसेत्तत्वं येन चित्ते वसेद्धरिः ।

एकैव भावशुद्धिस्तु यथा स्यात्क्रियते तथा ॥३४६
अन्यत्कुर्यान्मनस्त्वन्यद्विरुद्धमिति सर्वथा।
भावः स्वर्गाय मोक्षाय नरकायापि स स्मृतः ॥३५०
तस्मात्तं शोधयेद्यत्नाच्छुचिःस्याद्भावशुद्धितः।
एकस्याः पुत्र भर्तारौ हृदयोपरि योषितः ॥३५१
भिन्नभावौ भवेतां तौ भावमेवं विशोधयेत्।
परिष्वक्तो नरो नार्या ह्लादमेति यथा युवा ॥३५२
तल्पस्थोऽपि सकामां तां भावहीनो न कामयेत्।
एको भावो हरौ कार्यो यथाऽसौ निश्चलो भवेत् ॥३५३
तद्बुध्या पञ्चतां गच्छन् स्वर्गं मोक्षमवाप्नुयात्।
त्यक्तत्रापि विविधान् भोगान् तपस्तप्त्वातिदुष्करम् ॥३५४
मृत्युकाले मतिर्या स्यात्तां गतिं याति मानवः ॥

योगप्रयोगः कथितः समासात्ध्यानस्य मार्गो बहुधाऽभ्यधायि।
योऽभ्यस्यमानस्तु भवेद्विधानात् ब्रह्माप्तिकृद्यश्च तथा द्विजानाम् ॥३५५

प्रत्याहारश्च योगश्च ध्यानं विस्तरतस्तथा।
उक्तं द्विजहितार्थाय ब्रह्मावाप्तिकरं तथा ॥३५६
अङ्गुल्यङ्गुष्ठयोर्नादः क्षणः स्यात्तद्द्वयं त्रुटिः।
द्वाभ्यां चैव लवस्ताभ्यां निमेषोऽपि लवद्वयम् ॥३५७
तैःपञ्चदशभिः काष्ठा ताश्च त्रिंशत्कला स्मृता।
द्वाविंशतित्रिभागस्तु घटिकेति प्रकीर्तितः ॥३५८
तद्द्वयं च मुहूर्तःस्यात्तत्त्रिंशत्तु क्षपा-दिनम्।
तत्पञ्चदशकं पक्षस्तद्द्वयं मास उच्यते ॥३५६

तद्द्वयं ऋतुरित्युक्तं तद्वयं काल उच्यते।
तत्सार्धमयनं प्रोक्तं तद्द्वयं वत्सरस्तथा ॥३६०
पञ्चभिस्तैर्युगं प्रोक्तं तद्द्वादशकषष्ठिकम्।
षष्ठिकःषष्ठिगुणितो वाक्पतेर्युगमुच्यते ॥३६१
तद्द्वयं तु कलिःप्रोक्तस्तद्द्वयं द्वापरो भवेत्।
कलित्रयेण त्रेता स्यात्कृतःकलिचतुष्टयम् ॥३६२
षड्भिन्नःसोऽपि कालज्ञैःप्रजानाथयुगः स्मृतः ॥३६३
कलिभिर्दशभिर्ब्रह्मन्! चतुर्युगमिति स्मृतम्।
चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्माहःकल्प उच्यते ॥३६४
अष्टयुगा भवेत्सन्ध्या सायंसन्ध्या च तावती।
तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिति स्मृतम् ॥३६५
मन्वन्तरद्वयेनेह शक्रपातः प्रकीर्तितः।
एतन्मानेन वर्षाणां शतं ब्रह्मक्षयः स्मृतः ॥३६६
ब्रह्मक्षयशतेनापि विष्णोरेकमहर्भवेत्।
एतद्दिवसमानेन शतवर्षेण तत्क्षयः ॥३६७
तत्क्षयस्त्रिगुणोष्टाभी रुद्रस्य त्रुटिरुच्यते।
एवमाब्दिकमानेन प्रयातोऽब्दशते द्विजाः।
रुद्रश्चात्मनि लीयेत निष्कलंकं निरामयम् ॥३६८
निष्प्रकम्पं जगत् व्योम व्योमातीतं परं पदम्।
तन्निदिध्यासससंशुध्या स तत्रैव विलीयते ॥३६९
परम्पराणां परमं विचिन्त्य परात्परं दिष्टपदादतीतम्।
क्षणादिकालं क्रमशोऽब्दमेव प्रयाति तं तत्पदमव्ययं च ॥३७०

तमात्मरूपं परमव्ययं च विश्वेश्वरं चित्तभरं प्रपद्ये ।
शान्तिं च गत्वा विधिना च योगी प्रयाति तद्वै पदमव्ययं च ॥३७१

कालज्ञानेन योगोऽयं योगिभिर्ध्यानकारिभिः ।
मुमुक्षुभिःसदा ज्ञेयं निरालम्बं परं पदम् ॥३७२
पराशरोदितं शास्त्रं चतुर्वर्णाश्रमाय च ।
वेदितव्यं प्रयत्नेन सदा ध्येयं द्विजातिभिः ॥३७३
दश द्वादश चाष्टौ वा सप्त षट् पंच वा त्रयः ।
दैविके पैतृके वापि श्लोकाः श्राव्या द्विजातिभिः ॥३७४
श्रावयिष्यति यः श्राद्धे ब्राह्मणान्भक्तितत्परः ।
प्राप्स्यन्ति पितरस्तस्य तृप्तिं वै शाश्वतीं द्विजाः ॥३७५
य इदं श्रुणुयाद्वापि श्रावयेत्पाठयेदपि ।
स प्रध्वस्ततमस्तोमो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥३७६
त्रिभिःश्लोकसहस्रैस्तु त्रिभिर्वृत्तशतैरपि ।
पराशरोदितं धर्मशास्त्रं प्रोवाच सुव्रतः ॥३७७
नमोऽस्तु याज्ञवल्क्याय मनवे विष्णवे नमः ।
गौतमाय वसिष्ठाय नमः पाराशराय च ॥३७८

इति श्री बृहत्पाराशरे धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां स्मृत्यां
योगनिरूपणो नाम द्वादशोऽध्यायः ।

॥ इति बृहत्पराशरस्मृतिः समाप्ता ॥

ॐ तत्सत

—❀❀—

॥ अथ ॥

—॥ लघुहारीतस्मृतिः ॥—

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ वर्णाश्रमधर्मवर्णनम्।

ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति।
इतिपर्वं त्वया प्रोक्तं भूर्भुवःस्वर्द्विजोत्तमाः॥१
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मान्नो ब्रूहि सत्तम!।
येन सन्तुष्यते देवो नारसिंहः सनातनः॥२
अत्राहं कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम्।
ऋषिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः॥३
हारीतं सर्वधर्मज्ञमासीनमिव पावकम्।
प्रणिपत्याब्रुवन् सर्वे मुनयो धर्मकाङ्क्षिणः॥४
भगवन्! सर्वधर्मज्ञ! सर्वधर्मप्रवर्त्तक!।
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मान्नो ब्रूहि भार्गव!॥५
समासाद्योगशास्त्रञ्च विष्णुभक्तिकरं परम्।
एतच्चान्यच्च भगवन्! ब्रूहि नः परमो गुरुः॥६

हारीतस्तानुवाचाथ तैरेवं चोदितो मुनिः ।
शृण्वन्तु मुनयः ! सर्वे ! धर्मान् वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥७
वर्णानामाश्रमाणाञ्च योगशास्त्रञ्च सत्तमाः ! ।
सन्धार्य्य मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबन्धनात् ॥८
पुरा देवो जगत्स्रष्टा परमात्मा जलोपरि ।
सुष्वाप भोगिपर्य्यङ्के शयने तु श्रिया सह ॥६
तस्य सुप्तस्य नाभौ तु महत् पद्ममभूत् किल ।
पद्ममध्येऽभवद् ब्रह्मा वेदवेदाङ्गभूषणः ॥१०
स चोक्तो देवदेवेन जगत्सृज पुनः पुनः ।
सोऽपि सृष्ट्वा जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥११
यज्ञसिद्ध्यर्थमनघान् ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत् ।
असृजत् क्षत्रियान् बाह्वो वैश्यानप्युरुदेशतः ॥१२
शूद्रांश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषाञ्चैवानुपूर्वशः ।
यथा प्रोवाच भगवान् ब्रह्मयोनि पितामहः ॥१३
तद्वचः संप्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः ! ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं मोक्षफलप्रदम् ॥१४
ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैवमुत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः ।
तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥१५
कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्त्तते ।
तस्मिन्देशे वसेद्धर्मः सिद्ध्यति द्विजसत्तमाः ! ॥१६
षट् कर्माणि निजान्याहुर्ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
तैरेव सततं यस्तु वर्त्तयेत् सुखमेधते ॥१७

अध्यापनं चाध्ययनं याजनं यजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चेति षट् कर्माणीति चोच्यते ॥१८

अध्यापनञ्च त्रिविधं धर्मार्थमृक्थकारणात्।
शुश्रूषाकरणञ्चेति त्रिविधं परिकीर्त्तितम् ॥१९

एषामन्यतमाभावे वृषाचारो भवेद्द्विजः।
तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितैषिणा ॥२०

योग्यानध्यापयेच्छिष्यानयोग्यानपि वर्जयेत्।
विदितात् प्रतिगृह्णीयाद्गृहे धर्मप्रसिद्धये ॥२१

वेदञ्चैवाभ्यसेन्नित्यं शुचौ देशे समाहितः।
धर्मशास्त्रं तथा पाठ्यं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः ॥२२

वेदवित्पठितव्यं च श्रोतव्यश्च दिवा निशि।
स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च।
दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुलविनाशनम् ॥२३

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेद्द्विजः।
श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्मिते।
काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्त्तितः ॥२४

गुरुशुश्रूषणञ्चैव यथान्यायमतन्द्रितः।
सायं प्रातरुपासीत विवाहाग्निं द्विजोत्तमः! ॥२५

सुस्नातस्तु प्रकुर्वीत वैश्वदेवं दिने दिने।
अतिथीनागताञ्छक्त्या पूजयेदविचारतः ॥२६

अन्यानभ्यागतान् विप्राः! पूजयेच्छक्तितो गृही।
स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः ॥२७

कृतहोमस्तु भुञ्जीत सायं प्रातरुदारधीः ।
सत्यवादी जितक्रोधो नाधर्मे वर्त्तयेन्मतिम् ॥२८
स्वकर्मणि च संप्राप्ते प्रमादान्न निवर्त्तते ।
सत्यां हितां वदेद्वाचं परलोकहितैषिणीम् ॥२९
एष धर्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समासतः ।
धर्ममेव हि यः कुर्यात् स याति ब्रह्मणः पदम् ॥३०
इत्येष धर्मः कथितो मयायं पृष्टो भवद्भिस्त्वखिलाघहारी ।
वदामि राज्ञामपि चैव धर्मान् पृथक् पृथग्बोधत विप्रवर्य्याः ॥३१

इति हारीते धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ।

:❀::❀:—

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्वर्णानां धर्मवर्णनम् ।

क्षत्रादीनां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।
येषु प्रवृत्ता विधिना सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥१
राज्यस्थः क्षत्रियश्चापि प्रजाधर्मेण पालयन् ।
कुर्यादध्ययनं सम्यग्यजेद्यज्ञान् यथाविधि ॥२
दद्याद्दानं द्विजातिभ्यो धर्मबुद्धिसमन्वितः ।
स्वभार्य्यानिरतो नित्यं षड्भागार्हः सदा नृपः ॥३
नीतिशास्त्रार्थकुशलः सन्धिविग्रहतत्त्ववित् ।
देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपरस्तथा ॥४

धर्मेण यजनं कार्यमधर्मपरिवर्जनम् ।
उत्तमां गतिमाप्नोति क्षत्रियोऽप्येवमाचरन् ॥५

गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि ।
दानं देयं यथाशक्त्या ब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ॥६

दम्भमोहविनिर्मुक्तस्तथा वागनसूयकः ।
स्वदारनिरतो दान्तः परदारविवर्जितः ॥७

धनैर्विप्रान् भोजयित्वा यज्ञकाले तु याजकान् ।
अप्रभुत्वञ्च वर्तेत धर्मेष्वादेहपातनात् ॥८

यज्ञाध्ययनदानानि कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ।
पितृकार्यपरश्चैव नरसिंहार्चनापरः ॥९

एतद्वैश्यस्य धर्मोयं स्वधर्ममनुतिष्ठति ।
एतदाचरते योहि स स्वर्गी नात्र संशयः ॥१०

वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्याच्छूद्रः प्रयत्नतः ।
दासवद्ब्राह्मणानाञ्च विशेषेण समाचरेत् ॥११

अयाचितप्रदाता च कष्टं वृत्यर्थमाचरेत् ।
पाकयज्ञविधानेन यजेद्देवमतन्द्रितः ॥१२

शूद्राणामधिकं कुर्यादर्च्चनं न्यायवर्तिनाम् ।
धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम् ।
स्वदारेषु रतिश्चैव परदारविवर्जनम् ॥१३

इत्थं कुर्यात् सदा शूद्रो मनोवाक्कायकर्मभिः ।
स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापः सुपुण्यकृत् ॥१४

वर्णेषु धर्मा विविधा मयोक्ता यथातथा ब्रह्ममुखेरिताः पुरा।
शृणुध्वमत्राश्रमधर्ममाद्यं मयोच्यमानं क्रमशो मुनींद्राः ॥१५

इति हारीते धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः।

-०००-

तृतीयोऽध्यायः।

अथ ब्रह्मचर्याश्रमधर्मवर्णनम्।

उपनीतो माणवको वसेद्गुरुकुलेषु च।
गुरोः कुले प्रियं कुर्यात् कर्मणा मनसा गिरा ॥१
ब्रह्मचर्य्यमधःशय्या तथा वह्नेरुपासना।
उदकुम्भान् गुरोर्दद्याद्गोग्रासञ्चेन्धनानि च।
कुर्य्यादध्ययनञ्चैव ब्रह्मचारी यथा विधि।
विधिं त्यक्त्वा प्रकुर्व्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥२
यः कश्चित् कुरुते धर्मं विधिं हित्वा दुरात्मवान्।
न तत्फलमवाप्नोति कुर्व्वाणोऽपि विधिच्युतः ॥३
तस्माद्वेदव्रतानीह चरेत् स्वाध्यायसिद्धये।
शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेद् गुरुसन्निधौ ॥४
अजिनं दण्डकाष्ठञ्च मेखलाञ्चोपवीतकम्।
धारयेदप्रमत्तश्च ब्रह्मचारी समाहितः ॥५
सायं प्रातश्चरेद्भैक्षं भोज्यार्थं संयतेन्द्रियः।
आचम्य प्रयतो नित्यं न कुर्यादन्तधावनम्।

छत्रञ्चोपानहञ्चैव गन्धमाल्यादि वर्जयेत्।
नृत्यगीतमथालापं मैथुनञ्च विवर्जयेत् ॥६
हस्त्यश्वारोहणञ्चैव संत्यजेत् संयतेन्द्रियः।
सन्ध्योपास्तिं प्रकुर्व्वीत ब्रह्मचारी व्रतस्थितः ॥७
अभिवाद्य गुरोः पादौ सन्ध्याकर्मावसानतः।
तथा योगं प्रकुर्व्वीत मातापित्रोश्च भक्तितः ॥८
एतेषु त्रिषु नष्टेषु नष्टाः स्युः सर्वदेवताः।
एतेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥६
अधीत्य च गुरो र्वेदान् वेदौ वा वेदमेव वा।
गुरवे दक्षिणां दद्यात् संयमी ग्राममावसेत् ॥१०
यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरं करः।
संन्यासंसमयं कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्य्यया ॥११
तस्मिन्नेव नयेत् कालमाचार्य्ये यावदायुषम्।
तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वाथवा कुले ॥१२
न विवाहो न संन्यासो नैष्ठिकस्य विधीयते ॥१३
इमं योविधिमास्थाय त्यजेद्देहमतन्द्रितः।
नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥१४
यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत् पृथिव्यां गुरुसेवने रतः।
संप्राप्य विद्यामतिदुर्लभां शिवां फलञ्च तस्याः सुलभं तु विन्दति ॥१५
॥ इति हारीते धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥

———

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ गृहस्थाश्रमधर्मवर्णनम् ।

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
असमानार्षगोत्रां हि कन्यां सभ्रातृकां शुभाम् ॥१
सर्व्वावयवसंपूर्णां सुवृत्तामुद्वहेन्नरः ।
ब्राह्मेण विधिना कुर्य्यात् प्रशस्तेन द्विजोत्तमः ॥२
तथान्ये बहवः प्रोक्ता विवाहा वर्णधर्म्मतः ।
औपासनञ्च विधिवदाहृत्य द्विजपुङ्गवाः ! ॥३
सायं प्रातश्च जुहुयात् सर्वकालमतन्द्रितः ।
स्नानं कार्य्यं ततोनित्यं दन्तधावनपूर्व्वकम् ॥४
उषःकाले समुत्थाय कृतशौचो यथाविधि ।
मुखे पर्य्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ॥५
तस्माच्छुष्कमथार्द्रं वा भक्षयेद्दन्तकाष्ठकम् ।
करञ्जं खादिरं वापि कदम्वं कुरवं तथा ॥६
सप्तपर्णपृश्निपर्णीजम्बुनिम्बं तथैव च ।
अपामार्गञ्च विल्वञ्चार्कञ्चोडुम्वरमेव च ॥७
एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्म्मणि ।
दन्तकाष्ठस्य भक्षश्च समासेन प्रकीर्त्तितः ॥८
सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः ।
अष्टाङ्गुलेन मानेन दन्काष्ठमिहोच्यते ।
प्रादेशमात्रमथवातेन दन्तान् विशोधयेत् ॥६

प्रतिपत्पर्वषष्ठीषु नवम्याञ्चैव सत्तमाः ।।
दन्तानां काष्ठसंयोगाद्दहत्यासप्तमं कुलम् ।।१०
अभावे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेषु च ।
अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत् ।।११
स्नात्वा मन्त्रवदाचम्य पुनराचमनं चरेत् ।
मन्त्रवत् प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुदकाञ्जलिम् ।।१२
आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम राक्षसाः ।
युद्धयन्ति वरदानेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।।१३
उदकाञ्जलिनिःक्षेपा गायत्र्या चाभिमन्त्रिताः ।
निघ्नन्ति राक्षसान् सर्व्वान् मन्देहाख्यान् द्विजेरिताः ।।१४
ततः प्रयाति सविता ब्राह्मणैरभिरक्षितः ।
मरीच्याद्यैर्महाभागैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ।।१५
तस्मान्न लङ्घयेत् सन्ध्यां सायं प्रातः समाहितः ।
उल्लङ्घयति यो मोहात् स याति नरकं ध्रुवम् ।।१६
सायं मन्त्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्य्यस्य चाञ्जलिम् ।
दत्त्वा प्रदक्षिणं कुर्य्याज्जलं स्पृष्ट्वा विशुद्धयति ।।१७
पूर्व्वां सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद् यावदादित्यदर्शनात् ।।१८
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सादित्याञ्च यथाविधि ।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावत्तारा न पश्यति ।।१९
ततश्चावसथं प्राप्य कृत्वा होमं स्वयं बुधः ।
सञ्चिन्त्य पोष्यवर्गस्य भरणार्थं विचक्षणः ।।२०

ततः शिष्यहितार्थाय स्वाध्यायं किञ्चिदाचरेत् ।
ईश्वरञ्चैव कार्य्यार्थमभिगच्छेद्द्विजोत्तमः ॥२१

कुशपुष्पेन्धनादीनि गत्वा दूरं समाहरेत् ।
ततो माध्याह्निकं कुर्य्याच्छुचौ देशे मनोरमे ॥२२

विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि समासात् पापनाशनम् ।
स्नात्वा येन विधानेन मुच्यते सर्वकिल्विषात् ॥२३

स्नानार्थं मृदमानीय शुद्धाक्षततिलैः सह ।
सुमनाश्च ततो गच्छेन्नदीं शुद्धजलाधिकाम् ॥२४

नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादन्यवारिणि ।
न स्नायादल्पतोयेषु विद्यमाने बहूदके ॥२५

सरिद्वरं नदीस्नानं प्रतिस्रोतःस्थितश्चरेत् ।
तड़ागादिषु तोयेषु स्नायाच्च तदभावतः ॥२६

शुचिदेशं समभ्युक्ष्य स्थापयेत् सकलाम्बरम् ।
मृत्तोयेन स्वकं देहं लिम्पेत् प्रक्षाल्य यत्नतः ॥२७
स्नानादिकञ्च संप्राप्य कुर्य्यादाचमनं बुधः ।
सोऽन्तर्जलं प्रविश्याथ वाग्यतो नियमेन हि ।
हरिं संस्मृत्य मनसा मज्जयेच्चोरुमज्जले ॥२८
ततस्तीरं समासाद्य आचम्यापः समन्त्रतः ।
प्रोक्षयेद्वारुणैर्मन्त्रैः पावमानीभिरेव च ॥२९
कुशाग्रकृततोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रयत्नतः ।
स्योनापृथिवीति मृद्गात्रे इदं विष्णुरिति द्विजाः ! ॥३०

तततो नारायणं देवं संस्मरेत् प्रतिमज्जनम्।
निमज्ज्यान्तर्जले सम्यक् क्रियते चाघमर्षणम् ॥३१

स्नात्वा क्षततिलैस्तद्वद्देवर्षिपितृभिः सह।
तर्पयित्वा जलं तस्मान्निष्पीड्य च समाहितः ॥३२

जलतीरं समासाद्य तत्र शुक्ले च वाससी।
परिधायोत्तरीयञ्च कुर्य्यात् केशान्न धूनयेत् ॥३३

न रक्तमुल्वणं वासो न नीलञ्च प्रशस्यते।
मलाक्तं गन्धहीनञ्च वर्जयेदम्बरं बुधः ॥३४

ततः प्रक्षालयेत् पादौ मृत्तोयेन विचक्षणः।
दक्षिणन्तु करं कृत्वा गोकर्णाकृतिवत् पुनः ॥३५

त्रिः पिवेदीक्षितं तोयमास्यं द्विःपरिमार्जयेत्।
पादौ शिरस्ततोऽभ्युक्ष्य त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत् ॥३६

अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च चक्षुषी समुपस्पृशेत्।
तथैव पञ्चभिर्मूर्द्धिन स्पृशेदेवं समाहितः ॥३७

अनेन विधिनाचम्य ब्राह्मणः शुद्धमानसः।
कुर्व्वीत दर्भपाणिस्तूदङ्मुखः प्राङ्मुखोऽपि वा ॥३८

प्राणायामत्रयं धीमान् यथान्यायमतन्द्रितः।
जपयज्ञं ततः कुर्य्याद्गायत्रीं वेदमातरम् ॥३९

त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य तत्त्वं निबोधत।
वाचिकश्च उपांशुश्च मानसश्च त्रिधाकृतिः ॥४०

त्रयाणामपि यज्ञानां श्रेष्ठः स्यादुत्तरोत्तरः ॥४१

यदुच्चनीचोच्चरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः।
मन्त्रमुच्चारयन् वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः॥४२
शनैरुच्चारयन्मन्त्रं किञ्चिदोष्ठौ प्रचालयेत्।
किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यात् स उपांशुर्जपः स्मृतः॥४३
धिया पदाक्षरश्रेण्या अवर्णमपदाक्षरम्।
शब्दार्थचिन्तनाभ्यान्तु तदुक्तं मानसं स्मृतम्॥४४
जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति।
प्रसन्ने विपुलान् गोत्रान् प्राप्नुवन्ति मनीषिणः॥४५
राक्षसाश्च पिशाचाश्च महासर्पाश्च भीषणाः।
जपितान्नोपसर्पन्ति दूरादेव प्रयान्ति ते॥
छन्द ऋष्यादि विज्ञाय जपेन्मन्त्रमतन्द्रितः।
जपेदहरहर्ज्ञात्वा गायत्रीं मनसा द्विजः॥४७
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्।
गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते॥४८
अथ पुष्पाञ्जलिं कृत्वा भानवे चोर्द्ध्वबाहुकः।
उदुत्यञ्च जपेत् सूक्तं तच्चक्षुरिति चापरम्॥४६
प्रदक्षिणमुपावृत्य नमस्कुर्य्याद्दिवाकरम्।
ततस्तीर्थेन देवादीनद्भिः सन्तर्पयेद्द्विजः॥५०
स्नानवस्त्रन्तु निष्पीड्य पुनराचमनं चरेत्।
तद्वद्भक्तजनस्येह स्नानं दानं प्रकीर्तितम्॥५१
दर्भासीनो दर्भपाणिर्ब्रह्मयज्ञविधानतः।
प्राङ्मुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्याच्छ्राद्धसमन्वितः॥५२

ततोऽर्घ्यं भानवे दद्यात्तिलपुष्पाक्षतान्वितम् ।
उत्थाय मूर्द्धपर्यन्तं हंसः शुचिषदित्यृचा ॥५३
ततो देवं नमस्कृत्य गृहं गच्छेत्ततः पुनः ।
विधिना पुरुषसूक्तस्य गत्वा विष्णुं समर्च्चयेत् ॥५४
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्बलिकर्मविधानतः ।
गोदोहमात्रमाकाङ्क्षेदतिथिं प्रति वै गृही ॥५५
अदृष्टपूर्वमज्ञानमतिथिं प्राप्तमर्च्चरेत् ।
स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चाम्बुना ॥५६
स्वागतेनाग्नयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनः ।
आसनेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराट् ॥५७
पादशौचेन पितरः प्रीतिमायान्ति दुर्लभाम् ।
अन्नदानेन युक्तेन तृप्यते हि प्रजापतिः ॥५८
तस्मादतिथये कार्यं पूजनं गृहमेधिना ।
भक्त्या च शक्तितो नित्यं विष्णोरर्च्चादनन्तरम् ॥५९
भिक्षाञ्च भिक्षवे दद्यात् परिव्राड्ब्रह्मचारिणे ।
अकल्पितान्नादुद्धृत्य सव्यञ्जनसमन्विताम् ॥६०
अकृते वैश्वदेवेऽपि भिक्षौ च गृहमागते ।
उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत् ॥६१
वैश्वदेवाकृतान् दोषाञ्छक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ।
नहि भिक्षुकृतान् दोषान् वैश्वदेवो व्यपोहति ॥६२
तस्मात् प्राप्ताय यतये भिक्षां दद्यात् समाहितः ।
विष्णुरेव यतिच्छायइति निश्चित्य भावयेत् ॥६३

सुवासिनीं कुमारीश्च भोजयित्वा नरानपि ।
बालवृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुञ्जीत वा गृही ॥६४
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी च मितभाषकः ।
अन्नमादौ नमस्कृत्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥६५
एवं प्राणाहुतिं कुर्यान्मन्त्रेण च पृथक् पृथक् ।
ततः स्वादुकरान्नञ्च भुञ्जीत सुसमाहितः ॥६६
आचम्य देवतामिष्टां संस्मरन्नुदरं स्पृशेत् ।
इतिहासपुराणाभ्यां कञ्चित् कालं नयेद्बुधः ॥६७
ततः सन्ध्यामुपासीत वहिर्गत्वा विधानतः ।
कृतहोमस्तु भुञ्जीत रात्रौ चातिथिभोजनम् ॥६८
सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ।
नान्तराभोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥६९
शिष्यानध्यापयेच्चापि अनध्याये विसर्जयेत् ।
स्मृत्युक्तानखिलांश्चापि पुराणोक्तानपि द्विजः ॥७०
महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि पर्वसु ।
तथाक्षयतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्द्विजः ॥७१
माघमासे तु सप्तम्यां रथ्याख्यायां तु वर्जयेत् ।
अध्यापनं समभ्यञ्जन् स्नानकाले च वर्जयेत् ॥७२
नीयमानं शवं दृष्ट्वा महीस्थं वा द्विजोत्तमाः ।
न पठेद्रुदितं श्रुत्वा सन्ध्यायां तु द्विजोत्तमः ॥७३
दानानि च प्रदेयानि गृहस्थेन द्विजोत्तमाः ।
हिरण्यदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च ॥७४

एवं धर्मो गृहस्थस्य सायंभूत उदाहृतः।
य एवं श्रद्धया कुर्यात् स याति ब्रह्मणः पदम् ॥७५
ज्ञानोत्कर्षश्च तस्य स्यान्नारसिंहप्रसादतः।
तस्मान्मुक्तिमवाप्नोति ब्राह्मणो द्विजसत्तमाः! ॥७६
एवं हि विप्राः! कथितो मया वः समासतः शाश्वतधर्मराशिः।
गृही गृहस्थस्य सतो हि धर्मं कुर्वन् प्रयत्नाद्धरिमेति युक्तम् ॥७७

इति हारीते धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः।

....

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ वानप्रस्थाश्रमधर्मवर्णनम्।

अतः परं प्रवक्ष्यामि वानप्रस्थस्य सत्तमाः!।
धर्माश्रमं महाभागाः! कथ्यमानं निबोधत ॥१
गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन् दृष्ट्वा पलितमात्मनः।
भार्य्यां पुत्रेषु निःक्षिप्य सह वा प्रविशेद्वनम् ॥२
नखरोमाणि च तथा सितगात्रत्वगादि च।
धारयन् जुहुयादग्निं वनस्थो विधिमाश्रितः ॥३
धान्यैश्च वनसंभूतैर्नीवाराद्यैरनिन्दितैः।
शाकमूलफलैर्वापि कुर्यान्नित्यं प्रयत्नतः ॥४
त्रिकालस्नानयुक्तस्तु कुर्य्यात्तीव्रं तपस्तदा।
पक्षान्ते वा समश्नीयान्मासान्ते वा स्वपक्वभुक् ॥५

तथा चतुर्थकाले तु भुञ्जीयादष्टमेऽथवा ।
षष्ठे च कालेऽप्यथवा वायुभक्षोऽथवा भवेत् ॥६

घर्मे पञ्चाग्निमध्यस्थस्तथा वर्षे निराश्रयः ।
हेमन्ते च जले स्थित्वा नयेत् कालं तपश्चरन् ॥७

एवञ्च कुर्वता येन कृतबुद्धिर्यथाक्रमम् ।
अग्निं स्वात्मनि कृत्वा तु प्रव्रजेदुत्तरां दिशम् ॥८

आदेहपातं वनगो मौनमास्थाय तापसः ।
स्मरन्नतीन्द्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥६

तपो हि यः सेवति वन्यवासः समाधियुक्तः प्रयतान्तरात्मा ।
विमुक्तपापो विमलः प्रशान्तः स याति दिव्यं पुरुषं पुराणम् ॥१०

इति हारीते धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ।

॥ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ सन्न्यासाश्रमधर्मवर्णनम् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि चतुर्थाश्रममुत्तमम् ।
श्रद्धया तदनुष्ठाय तिष्ठन्मुच्येत बन्धनात् ॥१

एवं वनाश्रमे तिष्ठन् पातयंश्चैव किल्विषम् ।
चतुर्थमाश्रमं गच्छेत् संन्यासविधिना द्विजः ॥२

दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च यत्नतः ।
दत्वा श्राद्धं पितृभ्यश्च मानुषेभ्य स्तथात्मनः ॥३

इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा।
अग्निं स्वात्मनि संरोप्य मन्त्रवित् प्रव्रजेत् पुनः ॥४

ततः प्रभृति पुत्रादौ स्नेहालापादि वर्जयेत्।
बन्धूनामभयं दद्यात् सर्वभूताभयं तथा ॥५

त्रिदण्डं वैणवं सम्यक् सन्ततं समपर्वकम्।
वेष्टितं कृष्णगोवालरज्जुमच्चतुरङ्गुलम् ॥६

शौचार्थं मानसार्थञ्च मुनिभिः समुदाहृतम्।
कौपीनाच्छादनं वासः कन्थां शीतनिवारिणीम् ॥७

पादुके चापि गृह्णीयात् कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम्।
एतानि तस्य लिङ्गानि यतेः प्रोक्तानि सर्वदा ॥८

संगृह्य कृतसंन्यासो गत्वा तीर्थमनुत्तमम्।
स्नात्वाचम्य च विधिवद्वस्त्रपूतेन वारिणा ॥९

तर्पयित्वा तु देवांश्च मन्त्रवद्भास्करं नमेत्।
आत्मनः प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ॥१०

गायत्रीञ्च यथाशक्ति जप्त्वा ध्यायेत् परंपदम्।
स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् ॥११

सायंकाले तु विप्राणां गृहाण्यभ्यवपद्य तु।
सम्यक् याचेच्च कवलं दक्षिणेन करेण वै ॥१२

पात्रं वामकरे स्थाप्य दक्षिणेन तु शेषयेत्।
यावतान्नेन तृप्तिः स्यात्तावद्भैक्षं समाचरेत् ॥१३

ततो निवृत्य तत्पात्रं संस्थाप्यान्यत्र संयमी।
चतुर्भिरङ्गुलैश्छाद्य ग्रासमात्रं समाहितः ॥१४

सर्वव्यञ्जनसंयुक्तं पृथक् पात्रे नियोजयेत् ।
सूर्यादिभूतदेवेभ्यो दत्वा संप्रोक्ष्य वारिणा ॥१५

भुञ्जीत पात्रपुटके पात्रे वावभ्यतो यतिः ।
वटकाश्वत्थपर्णेषु कुम्भीतैन्दुकपात्रके ॥१६

कोविदारकदम्बेषु न भुञ्जीयात् कदाचन ।
मलाक्ताः सर्व उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः ॥१७

कांस्यभाण्डेषु यत् पाको गृहस्थस्य तथैव च ।
कांस्ये भोजयतः सर्वं किल्विषं प्राप्नुयात्तयोः ॥१८

भुक्त्वा पात्रे यतिर्नित्यं क्षालयेन्मन्त्रपूर्वकम् ।
न दूष्यते च तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव ॥१९

अथाचम्य निदिध्यास्य उपतिष्ठेत भास्करम् ।
जपध्यानेतिहासैश्च दिनशेषं नयेद्बुध ॥२०

कृतसन्ध्यस्ततो रात्रिं नयेद्देवगृहादिषु ।
हृत्पुण्डरीकनिलये ध्यायेदात्मानमव्ययम् ॥२१

यदि धर्मरतिः शान्तः सर्वभूतसमो वशी ।
प्राप्नोति परमं स्थानं यत्प्राप्य न निवर्तते ॥२२

त्रिदण्डभृद्योहि पृथक् समाचरेच्छनैः शनैर्यस्तु वहिर्मुखाधः ।
संमुच्य संसारसमस्तबन्धनात् स याति विष्णोरमृतात्मनः पदम् ॥२३

इति हारीते धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ।

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ योगवर्णनम्।

वर्णानामाश्रमाणाञ्च कथितं धर्मलक्षणम्।
येन स्वर्गापवर्गञ्च प्राप्नुवन्ति द्विजातयः ॥१

योगशास्त्रं प्रवक्ष्यामि सङ्क्षेपात् सारमुत्तमम्।
यस्य च श्रवणाद्यान्ति मोक्षञ्चैव मुमुक्षवः ॥२

योगाभ्यासबलेनैव नश्येयुः पातकानि तु।
तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियापरः ॥३

प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम्।
धारणाभिर्वशे कृत्वा पूर्वं दुर्धर्षणं मनः ॥४

एकाकारमना मन्दं बुधैरुभमलामयम्।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं ध्यायेत् जगदाधारमुच्यते ॥५

आत्मानं बहिरन्तस्थं शुद्धचामीकरप्रभम्।
रहस्येकान्तमासीनो ध्यायेदामरणान्तिकम् ॥६

यत्सर्वप्राणि हृदयं सर्वेषाञ्च हृदिस्थितम्।
यच्च सर्वजनैर्ज्ञेयं सोऽहमस्मीति चिन्तयेत् ॥७

आत्मलाभसुखं यावत्तपोध्यानमुदीरितम्।
श्रुतिस्मृत्यादिकं धर्मं तद्विरुद्धं न चाचरेत् ॥८

यथा रथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वो रथिहीनकः।
एवं तपश्च विद्या च संयुतं भेषजं भवेत् ॥९

यथान्नं मधुसंयुक्तम् मधुवान्नेन संयुतम् ।
उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥१०
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ।
विद्यातपोभ्यां संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥११
देहद्वयं विहायाशु मुक्तो भवति बन्धनात् ।
न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते क्वचित् ॥१२
मया ते कथितः सर्व्वो वर्णाश्रमविभागशः ।
संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा ! धर्मस्तेषां सनातनः ॥१३
श्रुत्वैवं मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ।
प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदिताः स्वं स्वमाश्रमम् ॥१४
धर्मशास्त्रमिदं सर्वं हारीतमुखनिःसृतम् ।
अधीत्य कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ॥१५
ब्राह्मणस्य तु यत् कर्म कथितं वाहुजस्य च ।
ऊरुजस्यापि यत् कर्म्म कथितं पादजस्य च ।
अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः ॥१६
यो यस्याभिहितो धर्मः स तु तस्य तथैव च ।
तस्मात् स्वधर्मं कुर्व्वीत द्विजो नित्यमनापदि ॥१७
वर्णाश्चत्वारो राजेन्द्र । चत्वारश्चापि चाश्रमाः ।
स्वधर्मं ये तु तिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ॥१८
स्वधर्मेण यथा नृणां नारसिंहः प्रसीदति ।
न तुष्यति तथान्येन कर्मणा मधुसूदनः ॥१९

अतः कुर्वन्निजं कर्म्म यथाकालमतन्द्रितः।
सहस्रानीकदेवेशं नारसिंहञ्च सालयम् ॥२०
उत्पन्नवैराग्यबलेन योगी ध्यायेत्परं ब्रह्म सदा क्रियावान्।
सत्यं सुखं रूपमनन्तमाद्यं विहाय देहं पदमेति विष्णोः ॥२१

इति लघुहारीते धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः।

इति लघुहारीतस्मृतिः समाप्ता।

ॐ तत्सत् ।

॥ अथ ॥

वृद्धहारीतस्मृतिः।

श्रीगणेशायनमः।

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चसंस्कारप्रतिपादनवर्णनम्।

अम्बरीषस्तु तं गत्वा हारीतस्याश्रमं नृपः।
ववन्दे तं महात्मानं बालार्कसदृशप्रभम् ॥१
संपृष्टः कुशलस्तेन पूजितः परमासने।
उपविष्टस्ततो विप्रमुवाच नृपनन्दनः ॥२
भगवन्! सर्वधर्म्मज्ञ! तत्ववेदविदाम्वर!।
पृच्छामि त्वां महाभाग! परमं धर्ममव्ययम् ॥३

ब्रूहि वर्णाश्रमाणान्तु नित्यनैमित्तिकक्रियाः ।
कर्त्तव्या मुनिशार्दूल ! नारीणाञ्च नृपस्य च ॥४
स्वरूपं जीवपरयोः कथं मोक्षपथस्य च ।
तत्प्राप्ते साधनं ब्रह्मन् ! वक्तुमर्हसि सुव्रत ! ॥५
एवमुक्तस्तु विप्रर्षिस्तेन राजर्षिणा तदा ।
उवाच परमप्रीत्या नमस्कृत्य जनार्दनम् ॥६

हारीत उवाच ।

शृणु राजन् ! प्रवक्ष्यामि सर्वं वेदोपबृंहितम् ।
यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं पृच्छतो मम भूपते ! ॥७
तद्ब्रवीमि परं धर्मं शृणुष्वैकाग्रमानसः ।
सर्वेषामेव देवाना मनादिः पुरुषोत्तमः ॥८
ईश्वरस्तु स एवान्ये जगतो विभुरव्ययः ।
नारायणो वासुदेवो विष्णुर्ब्रह्मात्मनो हरिः ॥६
स्रष्टा धाता विधाता च स एव परमेश्वरः ।
हिरण्यगर्भः सविता गुणधृङ् निर्गुणोऽव्ययः ॥१०
परमात्मा परं ब्रह्म परं ज्योतिः परात्परः ।
इन्द्रः प्रजापतिः सूर्यः शिवो वह्निः सनातनः ॥११
सर्व्वात्मकः सर्वसुहृत् सर्वभृद्भूतभावनः ।
यमी च भगवान् कृष्णो मुकुन्दोऽनन्त एव च ॥१२
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा ब्रह्मण्यो ब्रह्मणः पतिः ।
स एव पुण्डरीकाक्षः श्रीशो नाथोऽधिपो महान् ॥१३
सहस्रमूर्द्धा विश्वात्मा सहस्रकरपादवान् ।
यद्गत्वा न विवर्तन्ते तद्धाम परमं हरेः ॥१४

चतुर्भिः शोभनोपायैः साध्योऽयं सुमहात्मनः।
तुरीयपदयोर्भक्त्या सुसिद्धोऽय मुदाहृतः ॥१५

तं स्वीकुर्वन्ति विद्वांसः स्वस्वरूपतया सदा।
नैसर्गिकं हि सर्वेषां दास्यमेव हरेः सदा ॥१६

स्वाम्यं परस्वरूपं स्याद्दास्यं जीवस्य सर्वदा।
प्रकृत्या त्वात्मनो रूपं स्वाम्यं दास्यमिति स्थितिः ॥१७

दास्यमेव परं धर्मं दास्यमेव परं हितम्।
दास्येनैव भवेन्मुक्तिरन्यथा निरयं भवेत् ॥१८

विष्णोर्दास्यं परा भक्तिर्येषां तु न भवेत् क्वचित्।
तेषामेव हि संसृष्टं निरयं ब्रह्मणा नृप ! ॥१९

नारायणस्य दासा ये न भवन्ति नराधमाः।
जीवन्त एव चाण्डाला भविष्यन्ति न संशयः ॥२०

तस्माद्दास्यं परां भक्तिमालम्ब्य नृपसत्तम !।
नित्यं नैमित्तिकं सर्वं कुर्यात्प्रीत्यै हरेः सदा ॥२१

तस्य स्वरूपं रूपञ्च गुणांश्चापि विभूतयः।
ज्ञात्वा समर्चयेद्विष्णुं यावज्जीव मतन्द्रितः ॥२४

तमेव मनसा ध्यायेद्वाचा सङ्कीर्तयेत्प्रभुम्।
जपेच्च जुहुयाद्भक्तो तद्वानेकविलक्षणः ॥२३

शङ्खचक्रोर्ध्व पुण्ड्रादिधारणं दास्यलक्षणम्।
तन्नामकरणञ्चैव वैष्णवन्तदिहोच्यते ॥२४

अदक्षिणशाश्च ये विप्रा हर्षदास्ते नराधमाः।
तेषां तु नरके वासः कल्पकोटिशतैरपि ॥२५

तदादि वर्षसञ्चारी मन्त्ररत्नार्थतत्त्ववित् ।
वैष्णवः स जगत्पूज्यो याति विष्णोः परं पदम् ।२५

अचक्रधारी यो विप्रो बहुवेदश्रुतोऽपि वा ।
स जीवन्नेव चण्डालो मृतो निरयमाप्नुयात् ।।२६

तस्मात्ते हरिसंस्काराः कर्त्तव्या धर्मकाङ्क्षिणाम् ।
अयमेव परं धर्म्मः प्रधानं सर्वकर्म्मणाम् ।।२७

इति वृद्धहारीतस्मृत्यां विशिष्टधर्म्मशास्त्रे पञ्चसंस्कार-
प्रतिपादनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।

।। द्वितीयोऽध्यायः ।।

अथ पुण्ड्रसंस्कारवर्णनम् ।

अम्बरीष उवाच ।

भगवन् ! वैष्णवाः पञ्च संस्काराः सर्वकर्मणाम् ।
प्रधानमिति यच्चोक्तं सर्वैरेव महर्षिभिः ।।१

तद्विधानं ममाचक्ष्व विस्तरेणैव सुव्रत ! ।

हारीत उवाच ।

शृणु राजन् ! प्रवक्ष्यामि निर्मला वैष्णवाः क्रियाः ।।२
यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं वसिष्ठाद्यैश्च वैष्णवैः ।

संस्काराणां तु सर्वेषा माद्यं चक्रादिधारणम् ॥३

तत् कर्तव्यं हि सर्वेषां विधीनां वै द्विजन्मनाम्।

आचार्यं संश्रयेत् पूर्वमनघं वैष्णवं द्विजम् ॥४

शुद्धसत्वगुणोपेतं नवेज्याकर्मकारणम्।

सत्सम्प्रदायसंयुक्तं मन्त्ररत्नार्थकोविदम् ॥५

ज्ञानवैराग्यसंपन्नं वेद्‌वेदाङ्गपारगम्।

शासितारं सदाचार्यैः सर्वधर्मविदांवरम् ॥६

महाभागवतं विप्रं सदाचारनिषेवणम्।

आलोक्य सर्वशास्त्राणि पुराणानि च वैष्णवाः ॥७

तदर्थमाचरेद्यस्तु स आचार्य उदाहृतः।

आस्तिक्यमानसं सद्भिरुपेतं धर्मवत्सलम् ॥८

श्रद्दधानं सदाचारं गुरुशुश्रूषतत्परम्।

सम्वत्सरं प्रतीक्ष्यार्थे तं शिष्यं शासयेद्गुरुः ॥ ९

तस्याऽऽदौ पञ्च संस्कारान् कुर्यात् सम्यग्विधानतः।

प्रातः स्नात्वा शुचौ देशे पूजयित्वा जनार्दनम् ॥१०

स्नातं शिष्यं समानीय तेनैव सह देशिकः।

स्नाप्य पञ्चामृतैर्गव्यैश्चक्रादीनर्चयेत्ततः ॥११

पुष्पैर्धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैरपि।

तत्तत्प्रकाशकैर्मन्त्रैरर्चयेत् पुरतो हरेः ॥१२

अग्नौहोमं प्रकुर्वीत इध्माधानादिपूर्वकम्।

पौरुषेण तु सूक्तेन पायसं घृतमिश्रितम् ॥१३

आज्येन मूलमन्त्रेण हुत्वा चाष्टोत्तरं शतम् ।
वैष्णव्या चैव गायत्र्या जुहुयात् प्रयतो गुरुः ॥१४

पश्चादग्नौ विनिक्षिप्य चक्राद्यायुधपञ्चकम् ।
पूजयित्वा सहस्रारं ध्यात्वा तद्वह्निमण्डले ॥१५

षडक्षरेण जुहुयादाज्यं विंशतिसंख्यया ।
सर्वैश्च हेतिमन्त्रैश्च एकैकाज्याहुतिं क्रमात् ॥१६

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा स शिष्यो वह्निमात्मवान् ।
नमस्कृत्वा ततो विष्णुं जप्त्वा मन्त्रवरं शुभम् ॥१७

प्राङ्मुखं तु समासीनं शिष्यमेकाग्रचेतसम् ।
प्रतपेच्चक्रशङ्खौ द्वौ हेतिभिर्मन्त्रमुच्चरन् ॥१८

दक्षिणे तु भुजे चक्रं वामांशे शङ्खमेव च ।
गदां च भालमध्ये तु हृदये नन्दकं तदा ॥१६

मस्तके तु तथा शार्ङ्गमङ्कयेद्विमलं तदा ।
पश्चात् प्रक्षाल्य तोयेन पुनः पूजां समाचरेत् ॥२०

होमशेषं समाप्याथ वैष्णवान् भोजयेत्ततः ।
एवं तापः क्रियाः कार्याः वैष्णव्यः कल्मषापहाः ॥२१

प्रधानं वैष्णवं तेषां तापसंस्कारमुत्तमम्
तापसंस्कारमात्रेण परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२२

केचित्तु चक्रशङ्खौ द्वौ प्रतप्तौ बाहुमूलयोः ।
धारयन्ति महात्मानश्चक्रमेकं तु चापरे ॥२३

वैष्णवानां तु हेतीनां प्रधानं चक्रमुच्यते ।
तेनैव बाहुमूले तु प्रतप्तेनाङ्कयेद्बुधः ॥२४

जात पुत्रे पिता स्नात्वा होमं कृत्वा विधानतः।
तेनाग्निनैव सन्तप्तचक्रेण भुजमूलयोः ॥२५

अङ्कयित्वा शिशोः पश्चान्नाम कुर्याच्च वैष्णवम्।
पश्चात्सर्वाणि कर्माणि कुर्वीतास्य विधानतः ॥२६

अङ्कयित्वा स (न) चक्रेण यत्किञ्चित्कर्म सञ्चरेत्।
तत्सर्वं याति वैकल्यमिष्टापूर्तादिकं नृप ! ॥२७

कारयेन्मन्त्रदीक्षायां चक्राद्याः पञ्च हेतयः।
चक्रं वै कर्मसिध्यर्थं जातकर्मणि धारयेत् ॥२८

अचक्रधारी विप्रस्तु सर्वकर्मसु गर्हितः।
अवैष्णवः समापन्नो नरकं चाधिगच्छति ॥२९

चक्रादिचिह्नरहितं प्राकृतं कलुषान्वितम्।
अवैष्णवस्तु तं दूरात् श्वपाकमिव सन्त्यजेत् ॥३०

अवैष्णवस्तु यो विप्रः श्वपाकादधमः स्मृतः।
अश्राद्धे यो ह्यपाङ्क्त्येयो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥३१

अवैष्णवस्तु यो विप्रः सर्वधर्मयुतोऽपिवा।
गवां (स पाषण्डेति) षण्डति विज्ञेयः सर्वकर्मसु नार्हति ॥३२

तस्माच्चक्रं विधानेन तप्तं वै धारयेद्द्विजः।
सर्वाश्रमेषु वसतां स्त्रीणां च श्रुतिचोदनात् ॥३३

अनायुधासो असुरा अदेवा इति वै श्रुतिः।
चक्रेण तामपवप इत्यृचा समुदाहृतम् ॥३४

अपेत्थमङ्कमित्युक्तं वपेति श्रवणं तदा।
तस्माद्वै तप्तचक्रस्य चाङ्कनं मुनिभिः श्रुतम्।
पवित्रं विततं ब्राह्मं प्रभोर्गात्रे तु धारितम् ॥३५

श्रुत्यैव चाङ्कयेद्गात्रे तद्ब्रह्मसमवाप्तये ।
यत्ते पवित्रमर्च्चिष्यमग्ने वीतमनन्तरा ॥३६
ब्रह्मेति निहितन्नैव ब्रह्मणो श्रुतिवृंहितम् ।
पवित्रमिति चैवाग्निरग्निर्वै चक्रमुच्यते ॥३७
अग्निरेव सहस्रारः सहस्रा नेमिरुच्यते ।
नेमितप्ततनुः सूर्यो ब्रह्मणा समतां व्रजन् ॥३८
यत्ते पवित्रमर्च्चिष्यमग्नेस्तु न सुनिहितः ।
दक्षिणे तु भुजे विप्रो बिभृयाद्वै सुदर्शनम् ॥३९
सव्ये तु शङ्खं विभृयादिति ब्रह्मविदो विदुः ।
इत्यादिश्रुतिभिः प्रोक्तं विष्णोश्चक्रस्य धारणम् ॥४०
पुराणेष्वितिहासेषु सात्विकेषु स्मृतिष्वपि ।
शङ्खचक्रोर्द्ध्वपुण्ड्रादिरहितं ब्राह्मणं नृप ! ॥४१
यः श्राद्धे भोजयेद्विप्रः पितॄणां तस्य दुर्गतिः ।
शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिचिह्नैः प्रियतमैर्हरेः ॥४२
रहितः सर्वधर्मेभ्यश्च्युतो नरकमाप्नुयात् ।
रुद्रार्चनं त्रिपुण्ड्रस्य धारणं यत्र दृश्यते ॥४३
तच्छूद्राणां विधिः प्रोक्तो न द्विजानां कदाचन ।
प्रतिलोमानुलोमानां दुर्गागणसुभैरवाः ॥४४
पूजनीया यथार्हेण विल्वचन्दनधारिणम् ।
यक्षराक्षसभूतानि विद्याधरगणस्तदा ॥४५
चण्डालानामर्चनीया मद्यमांसनिषेवणाम् ।
स्ववर्णविहितं धर्ममेवं ज्ञात्वा समाचरेत् ॥४६

रुद्रार्चनाद्ब्राह्मणस्तु शूद्रेण समतां व्रजेत्।
यक्षभूतार्चनात् सद्यश्चण्डालत्वमवाप्नुयात् ॥४७

न भस्म धारयेद्विप्रः परमापद्गतोऽपि वा।
मोहाद्वै विभृयाद्यस्तु ससुरापो भवेद्ध्रुवम् ॥४८

तिर्यक् पुण्ड्रधरं विप्रं पट्टाम्वरधरं तथा।
श्वपाक इव वीक्षेत न सम्भाषेत कुत्रचित्।
तस्माद्द्विजातिभिर्धार्य्यं मूर्द्ध्वपुण्ड्रं विधानतः ॥४६

मृदा शुभ्रेण सततं सान्तरालं मनोहरम्।
स्नात्वा शुद्धोऽपि पूर्वाह्ने विष्णुमभ्यर्च्य देशिकः ॥५०

स्नातं शिष्यं समाहूय होमं कुर्वीत पूर्ववत्।
परोमात्रेति सूक्तेन पायसं मधुमिश्रितम् ॥५१

हुत्वाऽथमूलमन्त्रेण शतमष्टोत्तरं घृतम्।
स्थण्डिले तु ततः पश्चान्मण्डलानि यदा क्रमात् ॥ ५२

दीक्ष्वष्टमध्ये चत्वारि विन्यसेत् पुरतो हरेः।
विलिखेत्तत्र पुण्ड्रादि विस्तारायामभेदतः ॥५३

तेष्वर्चयेत्ततो धीमान् केशवादीननुक्रमात्।
तत्र तत्र च तन्मूर्तिं ध्यात्वा मन्त्रैः समर्च्चयेत् ॥५४

गन्धपुष्पादि सकलं मन्त्रैणैवार्चयेद्गुरुम्।
प्रदक्षिण मनुव्रज्य स शिष्यः प्रणमेत्तथा ॥५५

तद्बाहौ निक्षिपेच्छिष्यः केशवादीननुक्रमात्।
हृदि विन्यस्य पुण्ड्राणि गुरूक्तानि स वैष्णवः ॥५६

शुभ्रेणैव मृदा पश्चाद्बिभृयात् सुसमाहितः ।
त्रिसन्ध्यासु मृद्दा विप्रो यागकाले विशेषतः ॥५७
श्राद्धे दाने तथा होमे स्वाध्याये पितृतर्पणे ।
श्रद्धालुरूर्द्धपुण्ड्राणि विभृयाद्द्विजसत्तमः ॥५८
श्राद्धो होमस्तथा दानं स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
भस्मीभवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रम्विना कृतम् ॥५९
ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना यस्तु श्राद्धं कुर्वीत स द्विजः ।
सर्वं तद्राक्षसैर्नीतं नरकं चाधिगच्छति ॥६०
ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनन्तु यः श्राद्धे भोजयेद्द्विजम् ।
अश्नन्ति पितरस्तस्य विण्मूत्रं नात्र संशयः ॥६१
तस्मात्तु सततं धार्यमूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजन्मना ।
धारयेन्न तिर्यक् पुण्ड्रमापद्यपि कदाचन ॥६२
तिर्यक्पुण्ड्रधरं विप्रं चण्डालमिव सन्त्यजेत् ।
सोऽनर्हः सर्वकृत्येषु सर्वलोकेषु गर्हितः ॥६३
ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनः सन् सन्ध्याकर्म्म समाचरेत् ।
सर्वं तद्राक्षसैर्नीतं नरकञ्च स गच्छति ॥६४
यदि स्यात्तु मनुष्याणा मूर्ध्वपुण्ड्रविवर्जितम् ।
द्रष्टव्यन्नत्र तत्किञ्चित् श्मशानमिव तद्भवेत् ॥६५
ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृद्दा शुभ्रं ललाटे यस्य दृश्यते ।
चण्डालोऽपि हि शुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते ॥६६
ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु ललाटे सुमनोहरे ।
लक्ष्म्या सह समासीनो रमते तत्र वै हरिः ॥६७

निरन्तरालं यः कुर्य्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः।
स हि तत्र स्थितं विष्णुं श्रियञ्चैव व्यपोहति ॥६८

अथेदमूर्ध्वपुण्ड्रन्तु यः करोति द्विजाधमः।
कल्पकोटिसहस्राणि रौरवं नरकं व्रजेत् ॥६९

तस्माद्रागान्वितं पुण्ड्रन्धरेद्विष्णुपदाकृति।
ललाटादिषु चाङ्गेषु सर्व्वकर्मसु वैष्णवः ॥७०

नासिकामूलमारभ्य ललाटान्तेषु विन्यसेत्।
अङ्गुलद्वयमात्रन्तु मध्यच्छिद्रं प्रकल्पयेत् ॥७१

पार्श्वे चाङ्गुलमात्रन्तु विन्यसेद् द्विजसत्तमः।
पुण्ड्राणामन्तराले तु हारिद्रां धारयेच्छ्रियम् ॥७२

ललाटे पृष्ठयोः कण्ठे भुजयोरुभयोरपि।
चतुरङ्गुलमात्रन्तु विभृयादायकं द्विजः ॥७३

उरस्यष्टाङ्गुलं धार्यं भुजयोरायतं तदा।
उदरे पार्श्वयोर्न्नित्यमायतन्तु दशाङ्गुलम् ॥७४

केशवादि नमोऽन्तैश्च प्रणवाद्यैरनुक्रमात्।
ललाटे केशवं रूपं कुक्षौ नारायणं न्यसेत् ॥७५

वक्षस्थले माधवञ्च गोविन्दं कण्ठदेशतः।
विष्णुञ्च दक्षिणे पार्श्वे वाह्वोश्च मधुसूदनम् ॥७६

त्रिविक्रमन्तु वामांसे वामनं वामपार्श्वतः।
श्रीधरं वामवाहौ तु हृषीकेशं तदा भुजे ॥७७

पृष्ठे च पद्मनाभन्तु ग्रीवे दामोदरं तदा।
तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवेति मूर्धनि ॥७८

केशवस्तु सुवर्णाभः शङ्खचक्रगदाधरः।
शुक्लाम्बरधरः सौम्यो मुक्ताभरणभूषितः ॥७९
नारायणो घनश्यामः शङ्खचक्रगदासिभृत्।
पीतवासा मणिमयैर्भूषणैरुपशोभितः ॥८०
माधवश्चोत्पलप्रख्यश्चक्रशार्ङ्गगदासिभृत्।
चित्रमाल्याम्बरधरः पुण्डरीकनिभेक्षणः ॥८१
गोविन्दः शशिवर्णः स्यात्पद्मशङ्खगदासिभृत्
रक्तारविन्दपादाब्ज स्तप्तकाञ्चनभूषणः ॥८२
गौरवर्णो भवेद्विष्णुश्चक्रशङ्खहलासिभृत्।
क्षौमाम्बरधरः स्रग्वी केयूराङ्गदभूषितः ॥८३
अरविन्दनिभः श्रीमान् मधुजित्कमलान(स)नः।
चक्रं शार्ङ्गञ्च मुसलं पद्मं दोर्भिर्विभर्त्यसौ ॥८४
त्रिविक्रमो रक्तवर्गः शङ्खचक्रगदासिभृत्।
किरीटहारकेयूरकुण्डलैश्च विराजितः ॥८५
वामनः कुन्दवर्णः स्यात् पुण्डरीकायतेक्षणः।
दोर्भिर्वज्रं गदां चक्रं पद्मं हैमं विभर्त्यसौ ॥८६
श्रीधरः पुण्डरीकाख्य श्चक्रशार्ङ्गी च पद्मधृक्।
रक्तारविन्दनयनो मुक्तादामविभूषितः ॥८७
विद्युद्वर्णो हृषीकेशश्चक्रशार्ङ्गहलासिभृत्।
रक्तमाल्याम्बरधरः पुण्डरीकावतंसकः ॥८८
इन्द्रनीलनिभश्चक्रशङ्खपद्मगदाधरः।
पद्मनाभः पीतवासा श्चित्रमाल्यानुलेपनः।
दामोदरः सार्वभौमः पद्मशार्ङ्गासिशङ्खभृत् ॥८९

पीतवासा विशालाक्षो नानारत्नविभूषितः।
एवं पुण्ड्राणि सततं धारयेद्वैष्णवोत्तमः ॥६०
पुण्ड्रसंस्कार इत्येवं शिष्येणापि च कारयेत्।
मन्त्रशेषं समाप्याथ वैष्णवान् भोजयेत्ततः ॥६१

इति पुण्ड्रसंस्कारो द्वितीयः।

अथ वैष्णवानांनामसंस्कारवर्णनम्।

तृतीयं नाम संस्कारं कुर्वीत शुभवासरे ॥६२
स्नात्वा संपूज्य देवेशं गन्धपुष्पादिभिर्गुरून्।
नामाधिदैवतं पश्चात् पूजयेत् प्रयतात्मवान् ॥६३
द्वादशैव तु मासास्तु केशवाद्यैरधिष्ठिताः।
आरभ्य मार्गशीर्षं तु यदा संख्या द्विजोत्तमः ॥६४
यस्मिन्मासि भवेद्दीक्षा तन्मूर्त्तेर्नाम चोदितम्।
नृसिंहरामकृष्णाख्यं दासनाम प्रकल्पयेत् ॥६५
शक्त्या दशावताराणां वर्जयेन्नाम वैष्णवः।
नामदद्यात्प्रयत्नेन वैष्णवं पापनाशनम् ॥६६
यस्य वै वैष्णवं नाम नास्ति चेत्तु द्विजन्मनः।
अनामिकः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥६७
चक्रस्य धारणं यस्य जातकर्मणि सम्भवेत्।
तत्र वै मासनामापि दद्याद्विप्रो विधानतः।
ध्यात्वा समर्चयेन्नाममूर्तिं मन्त्रेण देशिकः ॥६८

धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलञ्च समर्पयेत् ।
प्रदक्षिण मनुव्रज्य भक्त्या सम्यक् प्रणम्य च ॥९९
तन्मत्रं मूलमन्त्रं वा जपेत्साहस्रसङ्ख्यया ।
पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत शतमष्टोत्तरं हविः ॥१००
वैष्णवैरनुवाकैश्च जुहुयात् सर्पिषा तदा ।
नाम दद्यात् ततः शिष्यं मन्त्रतोये समाप्लुतम् ॥१०१
ततः पुष्पाञ्जलिं दत्वा होमशेषं समापयेत् ।
वैष्णवान् भोजयेत्पश्चाद्दक्षिणाद्यैश्च तोषयेत् ॥१०२
एवं हि नामसंस्कारं कुर्यीत द्विजसत्तमः ।
गुणयोगेन चान्यानि विष्णोर्नामानि लौकिके ॥१०३
विशिष्टं वैष्णवं नाम सर्वकर्मसु चोदितम् ।
हरेः परं पितुर्न्नाम यो दद्यात्परं सुतम् ॥१०४
अतिरोचनकं दिव्यं तृतीयं श्रुतिचोदितम् ।
तस्माद्भगवतो नाम सर्वषां मुनिभिः स्मृतम् ॥१०५

इति नामसंस्कार स्तृतीयः

अथ वैष्णवानांमन्त्रसंस्कारवर्णनम् ।

एवं तृतीयसंस्कारं कृत्वा वै वैदिकोत्तमः ।
चतुर्थमन्त्रसंस्कारं कुर्यीत द्विजसत्तमः ॥१०६
ततः (प्रातः) स्नात्वा विधानेन पूजयेत् जगतां पतिम् ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु मन्त्ररत्नं जपेद्गुरुः ॥१०७

स्नातं शिष्यं समाहूय सुवेषं समलङ्कृतम् ।
आदाय कलशं रम्यं पवित्रोदकपूरितम् ॥१०८

पञ्चत्वक्पल्लवयुतं पञ्चरत्नसमन्वितम् ।
मङ्गलद्रव्यसंयुक्तं मन्त्रेणैवाभिमन्त्रयेत् ॥१०९

सम्मार्जयेत् ततः शिष्यं तज्जलेन कुशैः शुभैः ।
सूक्तैश्च विष्णुदैवत्यैः पावमानैस्तदैव च ॥११०

अष्टोत्तरशतं पश्चान्मन्त्ररत्नेन मार्जयेत् ।
अभिषिच्य ततो मूर्ध्नि शुक्लवस्त्रधरं शुचिम् ॥१११

स्वलङ्कृतं समाचान्त मूर्ध्वपुण्ड्रधरं तदा ।
पवित्रहस्तं पद्माक्षमालया समलङ्कृतम् ॥११२

निवेश्य दक्षिणे स्वस्य आसने कुशनिर्मिते ।
स्वगृह्योक्तविधानेन पुरतोऽग्निं प्रकल्पयेत् ॥११३

पौरुषेण तु सूक्तेन श्रीसूक्तेन तथैव च ।
मध्वाज्यमिश्रितं रम्यं पायसं जुहुयाद्गुरुः ॥११४

अष्टोत्तरशतं पश्चादाज्यं मन्त्रद्वयेन च ।
मूलमन्त्रेण जुहुयाच्चरुं घृतविमिश्रितम् ॥११५

केशवादीन् समुद्दिश्य नित्यान् मुक्तांस्तथैव च ।
एकैकमाहुतिं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥११६

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा नमस्कृत्वा जनार्दनम् ।
आचार्यः स्वगुरुं नत्वा जपेद्गुरुपरम्पराम् ॥११७

मातरं सर्वजगतां प्रपद्येत श्रियं ततः ।
त्वं माता सर्वलोकानां सर्वलोकेश्वरप्रिये ! ॥११८

अपराधशतैर्जुष्टं नम स्तेन मम च्युतम् ।
एवं प्रपद्य लक्ष्मीं तां श्रियं रुद्गुरुभावतः ॥११६
नित्ययुक्तं तया देव्या वात्सल्यादिगुणान्वितम् ।
शरण्यं सर्वलोकानां प्रपद्ये तं सनातनम् ।
नारायण ! दयासिन्धो ! वात्सल्यगुणसागर ! ॥१२०
एनं रक्ष जगन्नाथ ! वहुजन्मापराधिनम् ।
इत्याचार्येण सन्दिष्टः प्रपद्यत जनार्दनम् ॥१२१
प्रपद्येत ततः शिष्यो गुरुमेव दयानिधिम् ।
गुरो ! त्वमेव मे देव स्त्वमेव परमागतिः ॥१२२
त्वमेव परमो धर्म स्त्वमेव परमं तपः ।
इति प्रपन्नमाचार्यो निवेश्य पुरतो हरेः ॥१२३
प्रागग्रेषु समासीनं दर्भेषु सुसमाहितः ।
स्वाचार्यं पुरतो ध्यात्वा नमस्कृत्वाथ भक्तिमान् ॥१२४
गुरोः परम्परां जप्त्वा हृदि ध्यात्वा जनार्दनम् ।
कृपया वीक्षितं शिष्यं दक्षिणं ज्ञानदक्षिणम् ॥१२५
निक्षिप्य हस्तं शिरसि वामं हृदि च विन्यसेत् ।
पादौ गृहीत्वा शिष्यस्तु गुरोः प्रयतमानसः ॥१२६
भो ! गुरो ! ब्रूहि मन्त्रं मे ब्रूयादिति दयानिधे ! ।
अध्यापयेत्ततस्तस्मै मन्त्ररत्नं शुभाह्वयम् ॥१२७
सन्न्यासश्च समुद्रश्च सर्पिपण्डोऽधिदैवतम् ।
सार्थमध्यापयेच्छिष्यं प्रयतं शरणागतम् ॥१२८

अष्टाक्षरं द्वादशार्णं षट्कुक्षीं वैष्णवीं तदा।
रामकृष्णनृसिंहाख्यान् मन्त्रान् तस्मै नि दयेत् ॥१२९

न्यासे वाऽप्यर्चने वापि मन्त्रमेकान्तिनं श्रयेत्।
अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण नरकं व्रजेत् ॥१३०

अवैष्णवाद् गुरोर्मन्त्रं यः पठेद्वैष्णवो द्विजः।
कल्पकोटिसहस्राणि पच्यते नरकात्मना ॥१३१

अचक्रधारिणं यस्तु मन्त्रमध्यापयेद्गुरुः।
रौरवं नरकं प्राप्य चाण्डालीं योनिमाप्नुयात् ॥१३२

तस्माद्दीक्षाविधानेन शिष्यं भक्तिसमन्वितम्।
मन्त्रमध्यापयेद्विद्वान् वैष्णवं पापनाशनम् ॥१३३

अनधीत्य द्वयं मन्त्रं योऽन्यवैष्णवमुत्तमम्।
अधीत्यमन्त्रसंसिद्धिं न प्राप्नोति न संशयः ॥१३४

जातकर्मणि वा चौले तथा मौञ्जीनबन्धने।
चक्रस्य धारणं यत्र भवेत्तस्य तु तत्र वै ॥१३५

उपनीय गुरुः शिष्यं गृह्योक्तविधिना ततः।
अध्यापयेच्च सावित्रं तपोमन्त्रं द्वयं शुभम् ॥१३६

प्राप्तमन्त्र स्ततः शिष्यः पूजयेच्छ्रद्धया गुरुम्।
गोभूहिरण्यरत्नाद्यैः वासोभिर्भूषणैरपि ॥१३७

सद्भक्त्या शासयेच्छिष्यमाचार्यः संशितव्रत।
स्वरूपं साधनं साध्यं मन्त्रेणास्मै निवेदयेत् ॥१३८

द्वयेन वृत्तियाथात्म्यं सम्यगस्मै निवेदयेत्।
आचार्याधीनवृत्तिस्तु संयतस्तु वसेत् सदा ॥१३९

कर्मणा मनसा वाचा हरिमेव भजेत् सुधीः।
यावच्च तीरपातन्तु द्वयमावर्त्तयेत्सदा ॥१४०

एवं हि विधिना सम्यङ्मन्त्रसंस्कारसंस्कृतः ॥१४१

इति मन्त्रसंस्कारश्चतुर्थः।

अथ पञ्चसंस्कारविधिनामवर्णनम्।

मन्त्रार्थतत्वविदुषं यागतन्त्रे नियोजयेत्।
पूर्वाह्णे पूजयेद्देवं तस्य प्रियतरं शुभः ॥१४२
मन्त्ररत्नविधानेन गन्धपुष्पादिभिर्गुरुः।
अर्चयित्वाच्युतं भक्त्या होमं पूर्ववदाचरेत् ॥१४३
सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैः पायसं घृतमिश्रितम्।
आज्यं मन्त्रेण होतव्यं शतमष्टोत्तरं तदा ॥१४४
शक्त्या च वैष्णवैर्मन्त्रैः सर्वैर्होमं समाचरेत्।
एकैकमाहुतिं हुत्वा सर्वावरणदेवता ॥१४५
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तै स्तेषां वै नामभिर्यजेत्।
होमशेषं समाप्याथ वैष्णवान् भोजयेत्तदा ॥१४६
मन्त्ररत्नेन तद्बिम्बं पुष्पाञ्जलिशतं यजेत्।
प्रणम्य भक्त्या देवेशं जप्त्वा मन्त्रमनुत्तमम् ॥१४७
आहूय प्रणतं शिष्यं तद्बिम्बं दर्शयेद्गुरुः।
कृपयाथ ततस्तस्मै दद्यद्बिम्बं हरेर्गुरुः ! ॥१४८

एनं रक्ष जगन्नाथ ! केवलं कृपया तव।
अर्चनं यत्कृतं तेन विभो ! स्वीकर्त्तुं मर्हसि ॥१४९
एवं लब्ध्वा गुरोर्बिम्बं पूजयेत्तं प्रयत्नतः।
हिरण्यवस्त्राभरणयानशय्यासनादिभिः ॥१५०
ततः प्रभृति देवेशमर्चयेद्विधिना सदा।
श्रौतस्मार्त्तागमोक्तानां ज्ञात्वान्यतममच्युतम् ॥१५१

इति वृद्धहारीतस्मृत्यां विशिष्टधर्मशास्त्रे पञ्चसंस्कार-
विधानं नाम द्वितीयोऽध्यायः।

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ भगवन्मन्त्रविधानवर्णनम्।

अम्बरीष उवाच।

भगवन् ! सर्वमन्त्राणां विधानं मम सुव्रत !।
ब्रूहि सर्वमशेषेण प्रयोगं सार्थसंस्कृतम् ॥१

हारीत उवाच।

शृणु राजन् ! प्रवक्ष्यामि मन्त्रयोगमनुत्तमम्।
यथोक्तं विष्णुना पूर्वं ब्रह्मणा परमात्मना ॥२
सर्वेषामेव मन्त्राणां प्रथमं गुह्यमुत्तमम्।
मन्त्ररत्नं नृपश्रेष्ठ ! सद्यो मुक्तिफलप्रदम् ॥३

सर्वैश्वर्यप्रदं पथ्यं सर्वेषां सर्वकामदम् ।
यस्योच्चारणमात्रेण परितुष्टो भवेद्धरिः ॥४

देशकालादिनियमम्मरिमित्रादिशोधनम् ।
स्वरवर्णादिदोषश्च पौरश्चरणकं न तु ॥५

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेतराः ।
तस्याधिकारिण सर्वे सत्वशीलगुणा यदि ॥६

पञ्चसंस्कारसम्पन्नाः श्रद्धावन्तोऽनसूयकाः ।
भक्त्या परमयाविष्टा युक्तास्तस्याधिकारिणः ॥७

पञ्चविंशाक्षरो मन्त्रः पदैः षड्भिः समन्वितः ।
वाक्यद्वयं परं ज्ञेयं मन्त्ररत्नमनुत्तमम् ॥८

यदाश्रयति विद्यादिः संस्थिता जगतां पतिम् ।
तया विद्याऽनपायिन्या संयुतः परमः पुमान् ॥६

नारायणोऽच्युतः श्रीमान् वात्सल्यगुणसागरः ।
नाथः सुशीलः सुलभः सर्वज्ञः शक्तिमान् परः ॥१०

आपद्बन्धुः सदा मित्रं परिपूर्णमनोरथः ।
दयासुधाब्धिः सविता वीर्यवान् द्युतिमान् विभुः ॥११

प्रपद्ये चरणौ तस्य शरणं श्रेयसे मम ।
श्रीमते विष्णवे नित्यं सर्वावस्थासु सर्वदा ॥१२

निर्ममो निरहङ्कारः कैङ्कर्यं करवाण्यहम् ।
एवमर्थं विदित्वैव पश्चान्मन्त्रं प्रयोजयेत् ॥१३

नारायणो महाशब्दो गायत्री च परा शुभा ।
स्वयं नारायणः श्रीमान् देवता समुदाहृतः ॥१४

करयोः स्थलयोराद्य मक्षरं विन्यसेद् द्विजः ।
शेषाक्षराणि देयानि चतुर्विंशतिपर्वसु ॥१५
षट्पदैरङ्गुलिन्यास मङ्गेषु च यथाक्रमम् ।
षडङ्गं षट्पदैः कृत्वा मन्त्रार्थैश्च यथाक्रमम् ॥१६
मूर्ध्नि भाले नेत्रनासाश्रवणेषु तथाऽऽनने ।
भुजयोर्हृत्प्रदेशेच स्तनयोर्नाभिमण्डले ॥१७
पृष्ठे च जघने कट्योरूर्वोर्जान्वोश्च पादयोः ।
पञ्चविंशाक्षराण्यस्य क्रमेणाङ्गेषु विन्यसेत् ॥१८
एवं न्यासविधिं कृत्वा पश्चाद्ध्यानं समाचरेत् ।
इन्दीवरदलश्यामं कोटिसूर्याग्निवर्चसम् ॥१६
चतुर्भुजं सुन्दराङ्गं सर्वाभरणभूषितम् ।
पद्मासनस्थं देवेशं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ॥२०
रक्तारविन्दसदृशदिव्यहस्तपदाञ्चितम् ।
माणिक्यमुकुटोपेतं नीलकुन्तलशीर्षजम् ॥२१
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं वनमालाविराजितम् ।
दिव्यचन्दलिप्ताङ्गं दिव्यपुष्पावतंसकम् ॥२२
हारकुण्डलकेयूरनूपुरादि विराजितम् ।
कटकैरङ्गुरीयैश्च पीतवस्त्रेण शोभितम् ॥२३
शङ्खपद्मगदाचक्रपाणिनं पुरुषोत्तमम् ।
वामाङ्के चिन्तयेत्तस्य देवीं कमललोचनाम् ॥२४
तरुणीं सुकुमाराङ्गीं सर्वलक्षणशोभिताम् ।
दुकूलवस्त्रसंयुक्तां सर्वाभरणभूषिताम् ॥२५

तप्तकाञ्चनसङ्काशां पीनोन्नतपयोधराम्।
रत्नकुण्डलसंयुक्तां नीलकुन्तलशीर्षजाम् ॥२६
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गीं दिव्यपुष्पावतंसकाम्।
मातुलिङ्गं च रक्ताब्जं दर्पणं वरदं तथा ॥२७
देवीं च बिभ्रतीं दोर्भिश्चिन्तयेदिष्टदां सदा।
एवं ध्यात्वा परं नित्यमर्चयेदच्युतं द्विजः ॥२८
यथात्मनि तथा देवे ज्ञानकर्म समाचरेत्।
अर्चयेदुपचारैश्च मनसा वा जनार्दनम् ॥२९
आवाहनासने पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
स्नानं वस्त्रोपवीते च भूषणं गन्धमेव च ॥३०
पुष्पं धूपं तथा दीपं नैवेद्यं च प्रदक्षिणम्।
नमस्कारञ्च ताम्बूलं पुष्पमालां निवेदयेत् ॥३१
नमस्कृत्वा गुरून् पश्चाज्जपेन्मन्त्रं समाहितः।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु शतमष्टोत्तरं तथा ॥३२
ध्यायन्वै मनसा देवं जपेदेकाग्रमानसः।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि समासीनः कुशासने ॥३३
त्रिसन्ध्यासु जपेद्देवं सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्।
आदावन्ते जपस्याथ प्राणायामान् समाचरेत् ॥३४
पूरकः कुम्भको रेचयः प्राणायामस्त्रिलक्षणः।
वामेन पूरयेद्वायुं वाह्यं नासा जपन्मनुम् ॥३५
उभाभ्यां धारणं वायोः कुम्भकं समुदाहृतम्।
तद्रेचनं दक्षिणेन रेचनं समुदाहृतम् ॥३६

पर्यावृत्या पुनश्चैवं प्राणायामत्रयं क्रमात् ।
पूरके कुम्भके चैव रेचके च विशेषतः ॥३७

अष्टाविंशतिवारं तु जपेन् मन्त्रं समाहितः ।
उत्तमं मुनिभिः प्रोक्तं प्राणायामं नृपोत्तम ! ॥३८

जपन् द्वादशवारं तु उत्तमं तत्प्रकीर्तितम् ।
षड्वारन्तु कनीयः स्यात्त्रिवार मधम स्मृतम् ॥३९

मनसैवार्चयेद्देवं पश्चादर्थं विचिन्तयेत् ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा पश्चान्न्यासं समाचरेत् ॥४०

स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः कृत्वा सन्ध्यादिकर्म च ।
धृतोर्द्ध्वपुण्ड्रदेहश्च पवित्रकर एव च ॥४१

धृत्वा पद्माक्षमालां च सन्निवा वासने स्थितः ।
भूतशुद्धिविधानञ्च कृत्वा मन्त्रं प्रयोजयेत् ॥४२

अष्टाक्षरस्य मन्त्रस्य गुरुर्नारायण स्मृतः ।
छन्दश्च दैवी गायत्री परमात्मा च देवता ।
जपश्चाष्टाक्षरो मन्त्रः सर्वपापप्रणाशनः ॥४३

सर्वदुःखहरः श्रीमान् सर्वकामफलप्रदः ।
सर्वदेवात्मको मन्त्र स्ततो मोक्षप्रदो नृणाम् ॥४४

ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च ।
सर्वमष्टाक्षरान्तस्थं तच्चान्यदपि वाङ्मयम् ॥४५

सर्वार्थो वेदगर्भश्च वेदाश्चाष्टाक्षरे स्थिताः ।
अष्टाक्षरस्तु प्रणवे अकारे प्रणवः स्थितः ॥४६

इह लौकिकमैश्वर्यं स्वर्गाद्यं पारलौकिकम्।
कैवल्यं भगवत्त्वञ्च मन्त्रोऽयं साधयिष्यति ॥४७

सकृदुच्चारणान्नृणां चतुर्वर्गफलप्रदम्।
स्वरूपं सावनं प्राप्यं ददाति हि समञ्जसा ॥४८

महापापं चातिपापं विद्यते वोपपातकम्।
जपादस्य मनोराशु प्रणश्यन्ति न संशयाः ॥४९

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च।
सकृदष्टाक्षरं जप्त्वा लभते नात्र संशयः ॥५०

गवामयुतदानस्य पृथिव्या मण्डलस्य च।
कन्याशतसहस्रस्य गजाश्वानां तथैव च ॥५१

दानस्य यत्फलं नृणां सत्पात्रे नृपनन्दन !।
शतवारं मनुं जप्त्वा तत्फलं सर्वमाप्नुयात् ॥५२

सार्थं समुद्रं सन्न्यासं सर्षिच्छन्दोऽधिदेवतम्।
अष्टाक्षरमनुञ्जप्त्वा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥५३

पदत्रयात्मकं मन्त्रं चतुर्थ्या सहितं तदा।
स्वरूपसाधनोपेयमिति मत्वा जपेद्बुधः ॥५४

प्रणवेन स्वरूपं स्यात् साधनं मनसा तथा।
संविभक्त्या चतुर्थ्यात्र पुरुषार्थो भवेन्मनोः ॥५५

अकारश्चाप्युकारश्च मकारश्चेति तत्वतः।
तान्येकधा समभवत्तदोमित्येतदुच्यते ॥५६

तस्मादोमिति प्रणवो विज्ञेयः साक्षरात्मकः।
वेदत्रयात्मकं ज्ञेयं भूर्भुवःस्वरितीति वै ॥५७

अकारस्तु भवेद्विष्णु स्तदृग्वेद उदाहृतः।
उकारस्तु भवेल्लक्ष्मीर्यजुर्वेदात्मको महान् ॥५८
मकारस्तु भवेज्जीव स्तत्रोदास उदाहृतः।
पञ्चविंशाक्षरः साक्षात् सामवेदस्वरूपवान् ॥५९
पञ्चविंशोऽयं पुरुषः पञ्चविंश आत्मेति श्रुतेः।
आत्मा पञ्चविंशः स्यादिति मम त्मानं संस्मरेत् ॥६०
इत्यौपनिषदं ह्यर्थं विदित्वा स्वं निवेदयेत्।
अवधारणमन्ये तु मध्यमार्णं वदन्ति हि ॥६१
तदेवाग्नि स्तद्वायु स्तत्सूर्य स्तदपि चन्द्रमाः।
इत्येवं धारणश्रुतेरेवमे गोपबृंहितम् ॥६२
ऊ(ओं)कारेणैव श्रीशब्दः प्रोच्यते मुनिसत्तमः।
न्यायेन गुणसिद्धिस्तु तस्यैव श्रीपतेर्वरौ ॥६३
श्रीरस्येशाना जगतो विष्णुपत्नीति वै श्रुतिः।
कल्याणगुणसिद्धिस्तु लक्ष्मीभर्तुश्च नेतरा ॥६४
सामानाधिकरण्यत्वात्कारणत्वं तदोच्यते।
अकार एव सर्वेषामक्षराणां हि कारणम् ॥६५
अकारो वै सर्वा वागित्यादि श्रुतिवच स्तथा।
स्पर्शोष्मभिर्व्यज्यमानो नानाबहुविधोऽभवत् ॥६६
कारणत्वं तथैवास्य विष्णोर्वै जगतां पतेः।
तस्मात् स्रष्टा च दाता च विधाता जगतां हरिः ॥६७
रक्षिता जीवलोकस्य गुणवानेव सर्वगः।
अनन्या विष्णुना लक्ष्मी भास्करेण प्रभा यथा ॥६८

लक्ष्मीमनपगामिनीमिति श्रुतिवचो महत् ।
तस्मादकारो वै विष्णुः श्रीश एव जगत्पतिः ॥६६

लक्ष्मीपतित्वं तस्यैव नान्यस्येति सुनिश्चितम् ।
नित्यैवैषा जगन्माता हरेः श्रीरनपायिनी ॥७०

यथा सर्वगतो विष्णु स्तथैवैषा जगन्मयी ।
तस्मादकारो वै विष्णुर्लक्ष्मीभर्त्ता जत्पतिः ॥७१

तस्मिंश्चतुर्थीयुक्तत्वात् त्रिपदस्य च संग्रहः ।
अकार प्रथमां तस्माच्चतुर्थ्यां संग्रहं न तु ॥७२

तत्र श्रुतिविरोधत्वान्न युक्तमिति चोदितम् ।
महसे ब्रह्मणे त्वा वै ओमित्यात्मानं युञ्जीत ॥७३

परस्य चात्मनां तस्माद्भेद स्तत्र सुनिश्चितः ॥७४

त्वमस्माकं तपस्येव श्रुत्युक्तमपि पार्थिव ! ।
तौ शाश्वतौ विषचिता वियन्ताविति वै तथा ॥७५

गृभिष्व दया प्रागेवमात्मा न विश्वभृत् ।
असोयमर्त्यो मर्त्येन नयेनेत्येवयोनिता ॥७६

इत्यादि श्रुतयो भेदं वदन्ति परजीवयोः ।
दास्यमेवात्मनां विष्णोः स्वरूपं परमात्मनः ॥७७

साम्यं लक्ष्मीवरप्रोक्तं देवादीनां तथात्मनाम् ।
अनन्यशेषरूपा वै जीवास्तस्य जगत्पतेः ॥७८

दास्यं स्वरूपं सर्वेषामात्मनां सतपं हरेः ।
भगवच्छेषमात्मानमन्यथा यः प्रपद्यते ॥७६

स चैव हि महापापी चण्डालः स्यात् नसंशयः।
तस्मान्मकारवाच्योऽसौ पञ्चविंशात्मकः पुमान् ॥८०
अकारवाच्यस्येशस्य दास एवाभिधीयते।
अनुज्ञानाश्रयो नित्यो निर्विकारोऽव्ययः सदा।
देहेन्द्रियात् परो ज्ञाता कर्त्ता भोक्ता सनातनः ॥८१
मकारवाच्यो जीवोसौ दास एव हरेः सदा।
श्रीशस्याकारवाच्यस्य विष्णोरस्य जगत्पतेः ॥८२
स्वस्वामिनोरुकारेण ह्यवधारणमुच्यते।
स जीवः स्यादतः स्वामी सर्वदा नृपसत्तम ॥८३
अनयोर्नान्यथेत्युक्तमुकारेण महर्षिभिः।
इत्येवं प्रणवस्यार्थं प्रणवस्य पदस्य तु ॥८४
आत्मनश्च स्वरूपत्वाद्विजेय मृषिसत्तमैः।
सर्वेषामेव मन्त्राणां कारणं प्रणवः स्मृतः ॥८५
तस्माद्व्याहृतयो जातास्ताभ्यो वेदत्रयं तथा।
भूरित्येव हि ऋग्वेदो भुव रिति यजुस्तथा ॥८६
स्व रिति सामवेदः स्यात्प्रणवो भूर्भुवःसुवः।
भूर्विष्णुश्च तत्रा लक्ष्मीर्भुव इत्यभिधीयते ॥८८
तयोः स्वरिति जीवस्तु सुव इत्यभिधीयते।
अग्निर्वायु स्तथा सूर्यस्तेभ्य एव हि जज्ञिरे ॥८८
य एता व्याहृतीर्हुत्वा सर्वं वेदं जुहोति वै।
प्रसङ्गात्महितं चेदं मन्त्रशेषमुदीर्यते ॥८६

अस्वातन्त्र्यात्तु जीवानामधीनं परमात्मनः ।
नमसा प्रोच्यते तस्मान्नहन्ताममतोऽपितम् ॥९०

स्वरूपादित्रिवर्गस्य संसिद्धिर्न्नतु सैव हि ।
नमसा रहितं सव विफलं सम्प्रकीर्त्तितम् ॥९१

नमसैव हि संसिद्धिर्भवेदत्र न संशयः ।
पुरतः पृष्ठतश्चैव पार्श्वतश्चाविशेषतः ॥९२

नमसैवेक्षते राजन् ! त्रिवर्गः सर्वदेहिनाम् ।
मकारेण स्वतन्त्रः स्यान्नरकस्तं निषिध्यति ॥९३

तस्माच्च नम इत्यत्र स्वातन्त्र्यमपनोदति ।
द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरस्तु हि शाश्वतम् ॥९४

ममेति द्व्यक्षरं मृत्युर्न ममेति तु शाश्वतम् ।
न ममेति च सर्वत्र स्वातन्त्ररहिताय वै ॥९५

युज्यते मुनिभिः सम्यक् सर्वकर्मसु पार्थिव ! ।
तस्मात्तु नमसा युक्ता मन्त्राः सर्वे च पार्थिव ! ॥९६

सर्वसिद्धिप्रदा नृणां भवन्त्यत्र न संशयः ।
नमसा रहिता ये तु न तु मुक्तिप्रदा नृणाम् ॥९७

तस्मात्तु नम एवैषां पारतन्त्र्यत्वमीशितुः ।
पारतन्त्र्याल्लभेत् सिद्धिं स्वातन्त्र्यान्नाशमेष्यति ॥९८

दास्यमेव हि जीवानां प्रोच्यते नमसैव तु ।
नमसा रहितं लोके किञ्चिदत्र न विद्यते ॥९९

नमो देवेभ्यो नम इति येषामीशे तथा मनः ।
हतश्चिदेनो नमसा आविवाक्येति वै श्रुतिः ॥१००

क्षयैरकारः सम्प्रोक्तो नकारस्तं निषिध्यति ।
तस्मात्तु नर इत्यत्र नित्यत्वेनोच्यते जनः ॥१०१
नारा इति समूहत्वे वाहुल्यत्वाज्जनस्य च ।
तेषामयनमावासस्तेन नारायणः स्मृतः ॥१०२
महाभूतान्यहङ्कारो महदव्यक्तमेव च ।
अण्डं तदन्तर्गता ये लोकाः सर्वे चतुर्दश ॥१०३
चतुर्विधशरीराणि कालः कर्मेति व जगत् ।
प्रवाहरूपेणैवैषां नारत्वेनोच्यते बुधैः ॥१०४
तेषामपि निवासत्वान्नारायण इतीरितः ।
अन्तर्बहिश्च जगतो धाता सच सनातनः ॥१०५
स्रष्टा नियन्ता शरणं विधाता भूतभावनः ।
माता पिता सखा भ्राता निवासश्च सुहृद्गतिः ॥१०६
योनौ श्रियः श्री परमस्तेन नारायणः स्मृतः ।
नराणां सर्वजगतामयनं शरणं हरिः ॥१०७
तस्मान्नारायण इति मुनिभिः सम्प्रकीर्त्यते ।
सर्वेषु देशकालेषु सर्वावस्थासु सर्वदा ॥१०८
तस्यैव किङ्करोऽस्मीति चतुर्द्धा परमात्मनः ।
भगवत्परिचर्यैव जीवानां फलमुच्यते ॥१०९
तद्विना किं शरीरेण यातनाश्रय जनस्य तु ।
यस्मिन् शरीरे जीवानां न दास्यं परमात्मनः ॥११०
तदेव निरयं प्रोक्तं सर्वदुःखफलं भवेत् ।
दास्यमेव फलं विष्णोर्दास्यमेव परं सुखम् ॥१११

दास्यमेव हरेर्मोक्षं दास्यमेव परं तपः ।
ब्रह्माद्याः सरुद्रा देवा वशिष्ठाद्या महर्षयः ।
काङ्क्षन्तः परमं दास्यं विष्णोरेव यजन्ति तम् ॥११२

तस्माच्चतुर्थी मन्त्रस्य प्रधानं दास्यमुच्यते ।
न दास्यवृत्ति जीवानां नाशहेतुः परस्य हि ॥११३

इत्थं सञ्चिन्त्य मन्त्रार्थ जपेन्मंत्रमतन्द्रितः ।
अविदित्वा मनोरर्थं जपेत् प्रयतमानसः ॥११४

न संसिद्धिमवाप्नोति स्वरूपञ्च न विन्दति ।
संसारञ्च समुद्रञ्च सर्षिचण्डोऽधि दैवतम् ॥११५

साद्धं स यज्ञं सद्धयानं मन्त्रमेव प्रपूजयेत् ।
नारायणार्षं गायत्री दैवी चन्द्रोऽधिदेवता ॥११६

परमात्मा च लक्ष्मीशो विष्णुरेवाच्युतो हरिः ।
प्रणवस्तु भवेद्बीजं चतुर्थी शक्तिरुच्यते ॥११७

क्रुद्धोल्काय महोल्काय विष्णूल्काय तथैव च ।
ज्वालकाय सहस्रोल्काय पञ्चाङ्गो न्यास उच्यते ॥११८

हृन्मूर्ध्नोश्च शिखायाञ्च कवचो नेत्रयोर्न्यसेत् ।
पञ्चाङ्गन्यासमित्युक्तं सर्वमन्त्रेषु वैष्णवैः ॥११९

यदा त्रयेण कुर्वीत षडङ्गं तु यथाक्रमम् ।
मूर्ध्न्याननेच हृदये भुजयोर्जघने तथा ॥१२०

पृष्ठे च जान्वोः पदयोर्मन्त्रार्णानि यदा न्यसेत् ।
अष्टाक्षराण्यष्टदिक्षु क्रमेण तदनन्तरम् ॥१२१

नासिकायां तथाक्ष्णोश्च श्रोत्रयोराननेे तथा ।
कण्ठे च स्तनयोर्नाभौ गुह्ये च तदनन्तरम् ॥१२२
अचक्राय विचक्राय सुचक्राय तथैव च ।
ज्वालामहासुचक्राय त्रैलोक्याय तदन्तरम् ॥१२३
आधारकालचक्राय दशदिक्षु यथाक्रमम् ।
स्वाहान्तं प्रणवाद्यन्तं न्यसेच्चक्राणि वैष्णवः ॥१२४
एवन्न्यासविधिं कृत्वा पश्चाद्ध्यानं समाचरेत् ।
हृदये प्रतिमायां वा जले सवितृमण्डले ॥१२५
वह्नौ च स्थण्डिले वाऽपि चिन्तयेद्विष्णुमव्ययम् ।
बालार्ककोटिसङ्काशं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ॥१२६
पद्मपत्रविशालाक्षं सर्वाभरणभूषितम् ।
चक्रमब्जं गदां शङ्खं चतुर्दोर्भि धृतं तथा ॥१२७
श्रीभूमिसहितं देवमासीनं परमासने ।
तत्र चाधारशक्त्याद्यैर्धर्माद्यैः सूरिभिर्धृतैः ॥१२८
दिव्यरत्नमये पीठे पङ्कजेऽष्टदले शुभे ।
तत्कर्णिकोपरितले तप्तकाञ्चनसन्निभे ॥१२९
देवीभ्यां सहितं तस्मिन्नासीनं पङ्कजासने ।
चिन्तयेद्दक्षिणे पार्श्वे लक्ष्मीं काञ्चनसन्निभाम् ॥१३०
पद्महस्तविशालाक्ष्मीं दुकूलवसनां शुभ.म् ।
व.मे दूर्वादलश्यामां विचित्राम्बरभूषिताम् ॥१३१
चिन्तयेद्धरणीं देवीं नीलोत्पलधरां शुभाम् ।
माहिष्यष्ट(श्व)दलाग्रेषु चिन्तयेद्धृतचामराम् ॥१३२

एवं ध्यात्वा हरिं नित्यं जपेत्प्रयतमानसः।
स्नातः शुक्लाम्बरधरः कृतकृत्यो यथाविधि ॥१३३
धृतोर्द्ध्वपुण्ड्रदेहश्च पवित्रकर एव च।
शुचिः कृष्णाजिनासीनः प्राणायामी च न्यासकृत् ॥१३४
शङ्खचक्रगदाखड्गशार्ङ्गपद्मान्यनुक्रमात्।
तार्क्ष्यंश्च वनमालाञ्च मुद्रा अष्टौ प्रपूजयेत् ॥१३५
पश्चात् ध्यात्वा जगन्नाथं मनसैवार्चयेद्विभुम्।
गन्धपुष्पादि सकलं मन्त्रेणैव निवेदयेत् ॥१३६
अनेनाभ्यर्चितो विष्णुः प्रीतो भवति तत्क्षणात्।
अयुतं वा सहस्रं वा त्रिसन्ध्यासु जपेन्मनुम्।
विष्णोः समानरूपेण शाश्वतं पदमाप्नुयात् ॥१३७
आयुष्कामी जपेन्नित्यं षण्मासं नियतेन्द्रियः।
अयुतं तु जपेन्मन्त्रं सहस्रं जुहुयाद् घृतम् ॥१३८
आयुर्निरामयं सम्पद्धवेद्वर्षशताधिकम्।
विद्याकामी जपेद्वर्षं त्रिसन्ध्यास्वयुतं मनुम् ॥१३९
जुहुया पुष्पैः सहस्रं नियतेन्द्रियः।
अष्टादशानां विद्यानां भवेद् व्याससमो द्विजः ॥१४०
विवाहार्थी जपेन्नित्यमेवं वर्षचतुष्टयम् ॥१४१
राजहोमी सहस्रं तु लभेत्कन्यां सुशोभिताम्।
सम्पत्कामी जपेन्नित्यं त्र्ययुतं वत्सरत्रयम् ॥१४२
पद्मैर्वा पद्मपत्रैर्वा तथा होमी श्रियं लभेत्।
भूकामी तु जपेन्नित्यं वत्सरं विजितेन्द्रियः ॥१४३

दूर्वाभिर्जुहुयात्तद्वल्लभेद्भूमिमभीप्सितम्।
राज्यकामो जपेन्नित्यं षडब्दं त्वयुतं तथा ॥१४४
सहस्रं जुहुयान्न नित्यं पायसं घृतमिश्रितम्।
चक्रवर्ती भवेत् सद्य पद्माभर्त्तुः प्रसादतः ॥१४५
द्वादशाब्दं जपेद्देवं सततं विजितेन्द्रियः।
आत्महोमो तु यो नित्यमिन्द्रत्वं लभते न रथ्र॥१४६
लक्षञ्जपेन्न यो नित्यं त्रिंशद्वर्षं जितेन्द्रियः।
ब्रह्मत्वं वा शिवत्वं वा समाप्नोति न संशयः ॥१४७
यावज्जीवं तु यो नित्यमयुतं सुसमाहितः।
सहस्रं वा शतं वापि होतव्यं वह्निमण्डले ॥१४८
आज्येन चरुणा वापि तिलैर्वा शर्करान्वितैः।
पद्मैर्वा बिल्वपत्रैर्वा समिद्भिः पिप्पलस्य वा।
कोमलैस्तुलसीपत्रैरर्चयित्वा सनातनम् ॥१४९
अनन्तविहगेशानां क्षिप्रमन्यतमो भवेत्।
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वसिद्धिप्रदो नृणाम् ॥१५०
श्रीमदष्टाक्षरो मन्त्रो नित्यप्रियतमो हरेः।
आसीनो वा शयानो वा तिष्ठन्वा यत्र कुत्रचित् ॥१५१
जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं तस्य विष्णु प्रसीदति।
संस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥१५२
अभितः सर्वदेवानां यो जपेत्सततं मनुम्।
ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा महापापयुतोऽपि वा ॥१५३

अष्टाक्षरस्य जप्तारं दृष्ट्या पापैः प्रमुच्यते ।
अष्टाक्षरस्य जप्तारो यथा भागवतोत्तमाः ॥१५४
पुनन्ति सकलं लोकं सदेवासुरमानुषम् ।
अष्टाक्षरस्य जप्तारं प्रणमेद्यस्तु भक्तितः ॥१५५
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।
अचिन्त्यमेतन्माहात्म्यं मनोरस्य जगत्पतेः ॥१५६
न हि वक्तुं मया शक्यं ब्रह्मादित्रिदशैरपि ।
अथ वक्ष्यामि माहाम्यं द्वादशार्णस्य पार्थिव ! ॥१५७
यस्योच्चारणमात्रेण द्वादशाब्दफलं लभेत् ।
नमो भगवते नित्यं वासुदेवाय शार्ङ्गिणे ॥१५८
प्रणवेन समायुक्तं द्वादशार्णमनुं जपेत् ।
पूर्ववत्प्रणवस्यार्थं नमसश्च महामनोः ॥१५९
ऐश्वर्यं च तथा वीर्यं तेजः शक्तिरनुत्तमा ।
ज्ञानं बलं यदेतेषां षण्णां भगवदीरितः ॥१६०
एभिर्गुणैः पूर्ववाक्यैः स एव भगवान् हरिः ।
नित्या च या भगवती प्रोच्यते मुनिसत्तमैः ॥१६१
ऐश्वर्यरूपा सा देवी सुभगा कमलालया ।
ईश्वरी सर्वजगतां विष्णुपत्नी सनातनी ॥१६२
तस्याः पतित्वा धीशस्य भगवानिति चोच्यते ।
तस्मात्तु भगवान् श्रीमानेकार्थो मुनिभिः स्मृतः ॥१६३
भगवानिति शब्दोऽयं तथा पुरुषइत्यपि ।
निरुपाधौ च वर्तेत वासुदेवेऽखिलात्मनि ॥१६४

वक्ष्यन्ति केचिद्भगवान् ज्ञानवानिति सत्तमाः ।
तद्वासुदेवेनोक्तं स्यात्सामान्यत्वात्ततोऽन्यथा ॥१६५
तस्मात्कल्याणगुणवान् श्रीमान् योऽसौ जगत्पतिः ।
स एव भगवान् विष्णुर्वासुदेवः सनातनः ॥१६६
भगवते श्रीमते चेत्येकार्थे हि प्रोच्यते बुधैः ।
गुणवान् भगवानेव सृष्टिस्थिति विनाशकृत् ॥१६७
द्वौ द्वौ गुणावधिष्ठाय सर्वाद्यमकरोत्प्रभुः ।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च सङ्कर्षण इतीरितः ॥१६८
भगवान् वासुदेवोऽसौ सृष्ट्याद्यमकरोत् स्वयम् ।
ऐश्वर्यवीर्यवान् सर्गे प्रद्युम्नः पर्यपद्यत ॥१६६
तेजःशक्ति समाविश्य अनिरुद्धो ह्यपालयत् ।
बलज्ञाने तथा द्वे तु सङ्कर्षणो ह्यधिष्ठितः ॥१७०
अकरोद्भगवानेव संहारं जगतः पुनः ।
एवं षड्गुणपूर्णत्वात् पतित्वात्त्वपि च श्रियः ॥१७१
सर्गादेः कारणत्वाच्च भगवानिति चोच्यते ।
सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः ॥१७२
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपद्यते ।
चतुर्थी पूर्ववद्विद्यात् कैङ्कर्यार्थे महात्मनः ॥१७३
एवं ज्ञात्वा मनोरथं द्वादशार्णस्य चक्रिणः ।
संसिद्धिं परमाप्नोति सम्यगावर्त्य चेतसा ॥१७४
गत्वा गत्वा निवर्तन्ते सर्वक्रतुफलैरपि ।
तद्गत्वा न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥१७५

द्वादशार्णं सकृज्जप्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।
ब्रह्महत्यादिपापानि तत्संसर्गकृतानि च ॥१७६
द्वादशार्णं मनोर्जप्तु र्दहत्यग्निरिवेन्धनम्।
सर्वसौभाग्यसुखदं पुत्रपौत्राभिवर्द्धनम् ॥१७७
सर्वकामप्रदं नृणामायुरारोग्यवर्द्धनम्।
देवत्वममरेशत्वं शिवब्रह्मत्वमेव च ॥१७८
द्वादशार्ण मनुं जप्त्वा समाप्नोति न संशयः।
दुराचारोऽपि सर्वाशी कृतघ्नो नास्तिकोऽपि वा ॥१७६
द्वादशार्णमनुं जप्त्वा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्।
प्रजापतिः कश्यपश्च मनुः स्वायम्भुवस्तथा ॥१८०
सप्तर्षयो ध्रुवश्चैते ऋषयस्तस्य कीर्तिताः।
वशिष्ठः कश्यपोऽत्रिश्च विश्वामित्रश्च गौतमः ॥१८१
जमदग्निर्भरद्वाजस्त्वेते सप्तमहर्षयः।
भगवान् वासुदेवो वै देवतास्य प्रकीर्त्तितः ॥१८२
छन्दश्च परमा दैवी गायत्री समुदाहृता।
साधकानां सदा राजन् कामुधेनुरितीरितः ॥१८३
दशाङ्गुलीषु तलयोर्द्वादशार्णानि विन्यसेत्।
पदैश्चतुर्भिरङ्गेषु विन्यसेत्तदनन्तरम् ॥१८४
चतुरङ्गेषु विन्यस्य मन्त्रेणोत्तरयोर्द्वयोः।
मूर्ध्न्यास्यनेत्रयोर्नासाकर्णयोर्भुजयो स्तथा।
हृदि कुक्षौ तथा गुह्ये ऊर्वोर्जान्वोश्च पादयोः ॥१८५

मन्त्रार्णानि तु विन्यस्य क्रमेणैव नृपोत्तम !
अचक्राय विचक्राय सुचक्राय तथैव च ॥१८६
तथा त्रैलोक्यचक्राय महाचक्राय वै तथा ।
असुरान्तकचक्राय स्वहान्तं प्रणवादिकम् ॥१८७
हृदयादिषडङ्गेषु यथाशास्त्रं प्रयोजयेत् ।
क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के समासीनं श्रिया सह ॥१८८
नीलजीमूतसङ्काशं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
पीताम्बरधरं देवं रक्ताब्जदललोचनम् ॥१८६
दीर्घैश्चतुर्भिर्दोर्भिश्च सर्वाभरणभूषितैः ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गान् बिभ्राणं परमेश्वरम् ॥१६०
नानाकुसुमसम्बद्धनीलकुन्तलशीर्षजम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं वनमालाविभूषितम् ॥१६१
समाश्लिष्टं श्रिया दिव्या पद्मया पद्महस्तया ।
स्तूयमानं विमानस्थैर्देवगन्धर्वकिन्नरैः ॥१६२
मुनिभिः सनकाद्यैश्च सेवितञ्च सुरर्षिभिः ।
एवं ध्यात्वा हरिं नित्यं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥१६३
अर्चयित्वा हृषीकेशं सुगन्धकुसुमैः सदा ।
शालग्रामादिके स्थाने स्वर्चमानं जपेद् बुधः ॥१६४
जपित्वा दशसाहस्रं यावज्जीवं समाहितः ।
वैष्णवं पदमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥१६५
आयुष्कामी जपेन्नित्यं वत्सरं विजितेन्द्रियः ।
संख्या द्वादशसाहस्रं होमं तिलसहस्रकम् ॥१६६

लभेताऽऽयुः शतसमा दुःखरोगविवर्जितम्।
विवाहकामी षण्मासं जपेन्नित्यं जितेन्द्रियः ॥१९७
आज्यहोमी सहस्रन्तु लभेत्कन्यां सुलक्षणाम्।
सम्पत्कामी जपेन्नित्यं वत्सरन्तु सहस्रशः ॥१९८
साज्यैश्च व्रीहिभिर्होमी सहस्रं श्रियमाप्नुयात्।
राज्यमिन्द्रपदं वापि शिवत्वं ब्रह्मतामपि ॥१९९
बहुकालं विल्वपत्रैः कमलैर्वा जपेन्मनुम्।
जुहुयाच्च जपेन्नित्यं तत्तत्प्राप्नोत्यसंशयम् ॥२००
यं यं कामयते चित्ते तत्र तत्र नृपोत्तम!।
जुहुयान्मालतीपुष्पैरयुतं विजितेन्द्रियः ॥२०१
तां तां सिद्धिमवाप्नोति पदं चाप्नोति वैष्णवम्।
द्वादशार्णेन मनुना पक्षे पक्षे द्विजोत्तमः ॥२०२
द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं कोमलै स्तुलसीदलैः।
विष्णुतुल्य वपुः श्रीमान्! मोदते परमे पदे ॥२०३
द्वादशार्णमनोरेवंविधानं प्रोच्यते नृप!।
अद्य ते सम्प्रवक्ष्यामि षडक्षरमनोरिदम् ॥२०४
विधानं सर्वफलदं जन्ममृत्युविकृन्तनम्।
ओंनमो विष्णवे चेति षडक्षर मुदाहृतम् ॥२०५
पूर्ववत्प्रणवस्यार्थं नमःशब्द उदाहृतः।
व्याप्तत्वाद्व्यापकत्वाच्च विष्णुरित्यभिधीयते ॥२०६
सदैकरूपरूपत्वात् सर्वात्मत्वाद्विभुत्वतः।

अनामयत्वादीशत्वाद्गभस्तत्वाद्घृणित्वतः ।
यथेष्टफलदातृत्वाद्विष्णुरित्यभिधीयते ॥२०७

णकारो बलमित्युक्तः षकारः प्राण उच्यते ।
तयोस्तु सङ्गतिर्यत्र तदात्मेत्युच्यते धृतिः ॥२०८

तस्माण्णकारषकारावनुसंहितमुत्तमम् ।
सप्राणं सबलं देव ! संहितामुत्तमां तु यः ॥२०९

तस्यैवायुष्यमित्युक्तं नेतरस्यैव च श्रुतेः ।
एतदेव हि विद्वांसो वक्ष्यन्ते ये महर्षयः ॥२१०

एवं वक्ष्यामहे किन्तु किमुत व्याख्यामहे वयम् ।
इमौ णकारषकारावसुसंहितमेति यत् ॥२११

तदेव विष्णुः कृष्णेति जिष्णुरित्यभिधीयते ।
विष्णवे नम इत्येष मन्त्रः सर्वफलप्रदः ॥२१२

ऐश्वर्यं तु विकारः स्यात्तादात्म्याणगद्वयं स्मृतम् ।
ऐश्वर्य्यद्वयबीजं स्याद्विष्णुमन्त्रमनुत्तमम् ॥२१३

तत् षडर्णविधानेन केवलं वै जपेमहि ।
इत्युक्त्वा मुनयः सर्वे वेदवेदान्तपारगाः ॥२१४

परित्यज्येतरं धर्मं तदेकशरणं गताः ।
एवं महामनुं जप्त्वा विधानेनाच्युतं गताः ॥२१५

तस्मादेतन्महामन्त्रं सर्वसिद्धिप्रदं नृप ! ।
सकृदुच्चारणेनास्य हरिस्तत्र प्रसीदति ॥२१६

ब्रह्माद्याः सनकाद्याश्च मुनयश्च जपन्ति हि ।
छन्दस्तु तस्य गायत्री देवता विष्णुरच्युतः ॥२१७

स्यादोम्बीजं नमः शक्तिर्मनोरस्य प्रकीर्तितम्।
त्रिभिः पदैः षडङ्गेषु यथासंख्यं सुविन्यसेत्॥२१८
अङ्गुलीष्वपि चाङ्गेषु मन्त्रार्णानि यथाक्रमात्।
मूर्ध्न्यास्ये हृदये वाह्वोः पृष्ठे गुह्ये यथाक्रमम्॥२१९
विन्यस्य चक्रन्यासं च पश्चाद्ध्यानेषु तन्मयम्।
प्रणवेनोन्मुखीकृत्य हृत्पङ्कजमधोमुखम्॥२२०
विकासयेच्च मन्त्रेण विमलं तस्य केशरम्।
तस्योपरि च वह्न्यर्कसोमविम्वानि चिन्तयेत्॥२२१
तत्र रत्नमयं पीठं तन्मध्येऽष्टदलाम्बुजम्।
तस्मिन् कोटिशशाङ्काभं सर्वलक्षणलक्षितम्॥२२२
चतुर्भुजं सुन्दराङ्गं युवानं पद्मलोचनम्।
कोटिकन्दर्पलावण्यं नीलभ्रूलतिकालकम्॥२२३
श्लक्ष्णनासं रक्तगण्डं विम्बितोज्ज्वलकुण्डलम्।
शङ्खचक्रगदापद्मधारणं दोर्भिरुज्वलैः॥२२४
केयूराङ्गदहाराद्यै भूषणैश्चन्दनैरपि।
अलङ्कृतं गन्धपुष्पै रक्तहस्ताङ्घ्रिपङ्कजम्॥२२५
मुक्ताफलाभदन्तालिं वनमालाविभूषितम्।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं दिव्यपीताम्बरं हरिम्॥२२६
तप्तकाञ्चनवर्णाभं पद्मया पद्महस्तया।
समाश्लिष्टममुं देवं ध्यात्वा विष्णुमयो भवेत्॥२२७
मनसैवोपचाराणि कृत्वा मन्त्रं जपेत्ततः।
त्रिसन्ध्यासु जपेन्नित्यं सहस्रं साष्टकं द्विजः॥२२८

विष्णोर्लोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ।
पूर्ववज्जपहोमाज्यं कृत्वा सिद्धिं नरो लभेत् ॥२२९

भगवत्सन्निधौ वापि तुलसीकाननेऽपि वा ।
समाहितमना जप्त्वा षडर्णं नियतेन्द्रियः ॥२३०

तिलहोमायुतं कृत्वा सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।
एवं विष्णुमनोः प्रोक्तं विधानं नृपसत्तम ! ॥२३१

विधानैरधुनाऽमुष्य मन्त्रस्यापि ब्रवीमि ते ।
षडक्षरं दाशरथेस्तारकब्रह्म कथ्यते ॥२३२

सर्वैश्वर्यप्रदं नृणां सर्वकामफलप्रदम् ।
एतमेव परं मन्त्रं ब्रह्मरुद्रादिदेवताः ॥२३३

ऋषयश्च महात्मानो मुक्त्वा जप्त्वा भवाम्बुधौ ।
एतन्मन्त्रमगस्त्यस्तु जप्त्वा रुद्रत्वमाप्नुयात् ॥२३४

ब्रह्मत्वं काश्यपो जप्त्वा कौशिकस्त्वमरेशताम् ।
कार्त्तिकेयो मनुत्रश्च इन्द्रार्कौ गिरिनारदौ ॥२३५

बालखिल्यादिमुनयो देवतात्वं प्रपेदिरे ।
एष वै सर्वलोकानामैश्वर्यस्यैव कारणम् ॥२३६

इममेव जपेन्मन्त्रं रुद्रस्त्रिपुरघातकः ।
ब्रह्महत्यादि निर्मुक्त पूज्यमानोऽभवत् सुरैः ॥२३७

अद्यापि काश्यां रुद्रस्तु सर्वेषां त्यक्तजीविनाम् ।
दिशत्येतन्महामन्त्रं तारकब्रह्मनामकम् ॥२३८

तस्य श्रवणमात्रेण सर्व एव दिवं गताः ।
श्रीरामाय नमो ह्येष तारकब्रह्मनामकः ॥२३९

नाम्नां विष्णोः सहस्राणां तुल्य एव महामनुः ।
अनन्तो भगवन्मन्त्रो नानेव तु समाः कृताः ।
श्रियो रमणसामर्थ्यात्सौकर्यगुणगौरवात् ॥२४०
श्रीराम इति नामेदं तस्य विष्णोः प्रकीर्तितम् ।
रमया नित्ययुक्तत्वाद्राम इत्यभिधीयते ॥२४१
रकारमैश्वर्यबीजं मकारस्तेन संयुतः ।
अवधारणयोगेन रामेत्यस्मान्मनोः स्मृतः ॥२४२
शक्तिः श्री रुच्यते राजन् ! सर्वाभीष्टफलप्रदा ।
श्रियो मनोरमो योऽसौ स राम इति विश्रुतः ॥२४३
चतुर्थ्या नमसश्चैव सोऽर्थः पूर्ववदेव हि ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च अगस्त्याद्या महर्षयः ॥२४४
छन्दश्च परमा देवी गायत्री समुदाहृता ।
श्रीरामो देवता प्रोक्तः सर्वैश्वर्यप्रदो हरिः ॥२४५
अङ्गुलीष्वपि चाङ्गेषु न्यासकर्माद्यबीजतः ।
मूर्ध्न्यास्ये हृदये पृष्ठ गुह्ये चरणयो स्तथा ॥२४६
वैष्णवाच्च गुरोः पञ्चसंस्कारविधिपूर्वकम् ।
अधीत्य मन्त्रं विधिना पश्चाद्देवं जपेद्बुधः ॥२४७
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेतराः ।
मन्त्राधिकारिणः सर्वे ह्यनन्यशरणा यदि ॥२४८
स्नानादिकृतकृत्यः सन्नूर्ध्वपुण्ड्रः पवित्रधृक् ।
कृष्णाजिने समासीनः प्राणायामी च न्यासकृत् ॥२४९

ध्यायेत्कमलपत्राक्षं जानकीसहितं हरिम्।
नैव ध्यानं प्रकुर्वीत विग्रहे सति शार्ङ्गिणः॥२५०
चन्दनागुरुकर्पूरवासिते रत्नमण्डपे।
वितानैः पुष्पमालाद्यै र्धूपैर्दिव्यैर्विराजिते॥२५१
तन्मध्ये कल्पवृक्षस्य छायायां परमासने।
नानारत्नमये दिव्ये सौवर्णे सुमनोहरे॥२५२
तस्मिन् बालार्क सङ्काशे पङ्कजेऽष्टदले शुभे।
वीरासने समासीनं वामाङ्काश्रितसीतया॥२५३
सुस्निग्धशाद्वलश्यामं कोटिवैश्वानरप्रभम्।
युवानं पद्मपत्राक्षं कनकाम्बरशोभितम्॥२५४
सिंहस्कन्धानुरूपांसं कम्बुग्रीवं महाहनुम्।
पीनवृत्तायतस्निग्धमहाबाहुचतुष्टयम्॥२५५
विशालवक्षसं रक्तहस्तपादतलं शुभम्।
बन्धूकस्मितमुक्ताभदन्तौष्ठद्वयशोभितम्॥२५६
पूर्णचन्द्राननं स्निग्धं भ्रू युगं घननासिकम्।
रम्भोरुद्वयमानीलकुन्तलं स्मितचन्दनम्॥२५७
तरुणादित्यसङ्काशकुण्डलाभ्यां विराजितम्।
हारकेयूरकटकैरङ्गुलीयैश्च भूषणैः॥२५८
श्रीवत्सकौस्तुभाभ्याञ्च वैजयन्त्या विभूषितम्।
हरिचन्दनलिप्ताङ्गं कस्तुरीतिलकाञ्चितम्॥२५९
शङ्खचक्रधनुर्वाणान् बिभ्राणं दोर्भिरायतैः।
वामाङ्के सुस्थितां देवीं तप्तकाञ्चनसन्निभाम्॥२६०

पद्माक्षीं पद्मवदनां नीलकुन्तलशीर्षजाम्।
आरूढयौवनां नित्यां पीनोन्नतपयोधराम् ॥२६१
दुकूलवस्त्रसम्बीतां भूषणैरुपशोभिताम्।
भज तां कामदां पद्महस्तां सीतां विचिन्तयेत् ॥२६२
लक्ष्मणं पश्चिमे भागे धृतच्छत्रं महाबलम्।
पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ बालव्यजनपाणिनौ ॥२६३
अग्रतस्तु हनूमन्तं बद्धाञ्जलिपुटं तथा।
सुग्रीवं जाम्बवन्तञ्च सुषेणञ्च विभीषणम् ॥२६४
नीलं नलञ्चाङ्गदञ्च ऋषभं दिक्षु पूजयेत्।
वशिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ कश्यपः ॥२६५
मार्कण्डेयश्च मौद्गल्य स्तथा पर्वतनारदौ।
द्वितीयावरणं प्रोक्तं रामस्य परमात्मनः ॥२६६
धृष्टिर्जयतो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः।
अलको धर्मपालश्च सुमन्तुश्चाष्टमन्त्रिणः ॥२६७
तृतीयावरणं तस्य तत्र चन्द्रादिदेवताः।
कुमुदाद्याश्च चण्डाद्या विमाने चान्तरीयकाः ॥२६८
एवं ध्यात्वा जगन्नाथं पूजयेन्मनसाऽपि वा।
षट्सहस्रं जपेन्मन्त्रं जुहुयाच्च सहस्रकम् ॥२६९
जुहुयाच्चरुणा वापि शतं पुष्पाञ्जलिं न्यसेत्।
एवं संपूज्य देवेशं यावज्जीवमतन्द्रितः ॥२७०
तद्देहपतने तस्य सारूप्यं परमे पदे।
विद्या स्त्री राज्यवित्ताद्यं यं यं कामयते हृदि ॥२७१

अन्यं देवं नमस्कृत्वा सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्।
विना वै वैष्णवं मन्त्रमन्यमन्त्रान्विसर्जयेत् ॥२७२
तमेव पूजयेद्रामं तन्मन्त्रं वै जपेत् सदा।
अन्यथा नाशमाप्नोति इह लोके परत्र च ॥२७३
अद्वितीयं यदा मन्त्रं तारकब्रह्मनामकम्।
जपित्वा सिद्धिमाप्नोति अन्यथा नाशमाप्नुयात् ॥२७४
सावित्री मन्त्ररत्नञ्च तथा मन्त्रद्वयं शुभम्।
सर्वम त्रं जपेत् पूर्वं संसिध्यर्थं जपेत् सदा ॥२७५
अजप्यैतान्महामन्त्रान्न तु संसिद्धिमाप्नुयात्।
तस्माच्छक्त्या जपित्वैतान् पश्चान्मन्त्रं प्रयोजयेत् ॥२७६
विद्यास्त्रीवित्तराज्यादिरूपारोग्यजयार्थिनः।
पुष्पाज्यविल्वरक्ताब्ज जातिदूर्वाङ्कुरैस्तथा ॥२७७
आरक्तकरवीरैश्च हुत्वा सिद्धिमवाप्नुयुः।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति तिलहोमेन वैष्णवः ॥२७८
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा।
सायं प्रातश्च जुहुयात् षण्मासं विजितेन्द्रियः ॥२७९
यावज्जीवं जपेद्यस्तु भक्त्या राममनुस्मरन्।
सदारपुत्रः सगण प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥२८०
षट्कारयुक्तं स्वाहान्तं रामास्त्रं सम्प्रकीर्तितम्।
सर्वापत्सु जपेन्मन्त्रं रामं ध्यात्वा महाबलम् ॥२८१
चोराग्निशत्रुसम्बाधे तथा रागभयेषु च।
तोयवातग्रहादिभ्यो भयेषु च सभक्तिकम् ॥२८२

शङ्खचक्रधनुर्बाणपाणिनं सुमहाबलम् ।
लक्ष्मणानुचरं रामं ध्यात्वा राक्षसनाशनम् ॥२८३

सहस्रन्तु जपेन्मन्त्रं सर्वापद्भ्यो विमुच्यते ।
सूर्योदये यथा नाशमुपैति ध्वान्तमाशु वै ॥२८४

तथैव रामस्मरणाद्विनाशं यान्त्युपद्रवाः ।
एवं श्रीराममन्त्रस्य विधानं ज्ञायते नृप ! ॥२८५

विधानं कृष्णमन्त्रस्य वक्ष्यामि शृणु पार्थिव ! ।
श्रीकृष्णाय नमो ह्येष मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥२८६

कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्त्तते ।
भस्मीभवन्ति राजेन्द्र ! महापातककोटयः ॥२८७

सकृत् कृष्णेति यो ब्रूयाद् भक्त्या वापि च मानवः ।
पापकोटिविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥२८८

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ।
भक्त्या कृष्णमनुं जप्त्वा समाप्नोति न संशयः ॥२८६

गवाञ्च कन्यकानाञ्च ग्रामाणाञ्चायुतानि च ।
दत्त्वा गोदावरी कृष्णा यमुना च सरस्वती ॥२६०

कावेरी चन्द्रभागादिस्नानं कृष्णेति योऽसमम् ।
कृष्णेति पञ्चकृज्जप्त्वा सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥२६१

कोटिजन्मार्जितं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतम् ।
भक्त्या कृष्णमनुं जप्त्वा दह्यते तूलराशिवत् ॥२६२

अगम्यागमनात्पापादभक्ष्याणाञ्च भक्षणात् ।
सकृत् कृष्णमनुं जप्त्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥२६३

सकृद् (कृषि) भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
उभयोः सङ्गतिर्यत्र तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते ॥२६४
णकारश्च षकारश्च बलप्राणा वुभौ स्मृतौ।
आत्मन्येतौ समायुक्तौ जगतोऽस्यापि कृष्णतः ॥२६५
तस्मात् कृष्णेति मन्त्रोऽयं वाचकः परमात्मनः।
कृष्णेति परमो मन्त्रः सर्ववेदाधिकः स्मृतः ॥२६६
श्रियः सतः प्राणपदात् श्रीकृष्ण इति वै स्मृतः।
एवमर्थं विदित्वैव पश्चान्मन्त्रं जपेद्बुधः ॥२६७
सर्वकामप्रदत्वाच्च वीजं कान्दर्पमुच्यते।
नित्यानपाया श्रीशक्तिर्मन्त्रोरस्य प्रयुज्यते ॥२६८
देवर्षि नारदस्तस्य गायत्री छन्द उच्यते।
देवता रुक्मिणी भर्त्ता कृष्णः सर्वफलप्रदः ॥२६६
पूर्ववद्विधिना मन्त्रं गृहीत्वा वैष्णवाद्गुरोः।
स्नानवस्त्रादिभिः शुद्धः कृत्यं कृत्वोर्ध्वपुण्ड्रधृत् ॥३००
तुलसीकानने रम्ये देशे वा प्राङ्मुखः शुभे।
कुशे कृष्णाजिने वापि पुष्पे वा शुभवासरे ॥३०१
समासीनस्तु कुर्वीत प्राणायामांश्च पूर्ववत्।
आदिवीजेन कुर्वीत षडङ्गेषु यथाक्रमम् ॥३०२
अङ्गुलीष्वपि तेनैव न्यासकर्म समाचरेत्।
मुखे वाह्वोश्च हृदये ध्वजे जान्वोश्च पादयोः ॥३०३
विन्यस्य मन्त्रवर्णानि चक्रं न्यासं ततः कृतम्।
पूर्व(जन्ममयादीनि)वन्मन्त्रपादीनि
स्मरे(दाभरणानि)च्छाभरणानि च ॥३०४

विचित्रशुभपर्यङ्के दिव्यकल्पतरोरधः ।
सुगन्धपुष्पसङ्कीर्णे सर्वतः सुविचित्रिते ॥३०५

तस्मिन् देव्या समासीनं रुक्मिण्या रुक्मवर्णया ।
नीलोत्पलाभं कन्दर्पलावण्यं पद्मलोचनम् ॥३०६

चन्द्राननं जपापुष्परक्तहस्तपदाम्बुजम् ।
नीलकुञ्चितकेशं च सुकपोलं सुनासिकम् ॥३०७

सुभ्रू युगं सुबिम्बोष्ठं सुदन्तालिविराजितम् ।
उन्नतांसं दीर्घबाहुं पीनवक्षसमव्ययम् ॥३०८

निरङ्कचन्द्रनखरं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोद्भासं वनमालामहोरसम् ॥३०९

पीताम्बरं भूषणाढ्यं बालार्काभं सुकुण्डलम् ।
हारकेयूरकटकैरङ्गुलीयैश्च शोभितम् ॥३१०

मौक्तिकान्वितनासाग्रं कस्तूरीतिलकाञ्चितम् ।
हरिचन्दनलिप्ताङ्गं सदैवाऽऽरूढयौवनम् ॥३११

मन्दारपारिजातादिकुसुमैः कबरीकृतम् ।
अनर्घ्यमुक्ताहारश्च तुलसी वनमालया ॥३१२

चक्रशङ्खसमेताभ्यामुद्बाहुभ्यां विराजितम् ।
इतराभ्यां तथा देवीं समाश्लिष्टं निरन्तरम् ॥३१३

अलङ्कृताभिः सत्यादिमहिषीभिः समावृतम् ।
कालिन्दी सत्यभामा च मित्रविन्दा च सत्यवित् ॥३१४

सुनन्दा च सुशीला च जाम्बवती सुलक्षणा ।
एता महिष्यः संप्रोक्ताः कृष्णस्य परमात्मनः ॥३१५

ताभिश्च राजकन्यानां सहस्रैः परिसेवितम्।
तारकावृत्तराजेव शोभितं निधिभिर्वृतम् ॥३१६
एवं ध्यात्वा हरिं नित्यमर्चयित्वा जपेन्मनुम्।
शालग्रामे च तुलसीवने वा स्थण्डिले हृदि ॥३१७
स्मृत्वा जपेत् त्रिसन्ध्यासु षट्सहस्रं मनुं द्विजः।
विष्णुतुल्यवपुः श्रीमान्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥३१८
सर्वसिद्धिमवाप्नोति इह लोके परत्र च।
विद्यार्थी वेणुगायन्तं जपेत् ध्यायन् ऋतुत्रयम् ॥३१६
जुहुयात् कुसुमैः शुभ्रैः विद्यासिद्धिमवाप्नुयात्।
आयुष्कामी तु पूर्वाह्णे वत्सरान् ह्ययुतं जपेत् ॥३२०
ध्यायेच्छिशुतनुं कृष्णं तिलैर्हुत्वाऽऽयुराप्नुयात्।
कन्यार्थी तु जपेत्सायं षोडशं त्र्ययुतं हरिम् ॥३२१
ध्यात्वा सहस्रं जुहुयाल्लाजैर्मधुविमिश्रितैः।
स्त्रियं लभेत् स्वाभिमतां रूपौदार्यवतीं सतीम् ॥३२२
सम्पत्कामी जपेन्नित्यं मध्याह्ने तु ऋतुत्रयम्।
द्वारकायां सुधर्मायां रत्नसिंहासने स्थितम् ॥३२३
शङ्खादिनिधिभी राजकुलैरपि सुसेवितम्।
हारादिभूषणैर्युक्तं शङ्खाद्यायुधधारिणम् ॥३२४
ध्यात्वा संपूज्य होमं च जपश्चायुत संख्यया।
अब्जविल्वदलैर्वाऽपि होमं मधुविमिश्रितम् ॥३२५
शाश्वतीं श्रियमाप्नोति कुबेरसदृशो भवेत्।
रूपलावण्यकामी तु रा(स)ममण्डलमध्यगम् ॥३२६

ध्यायन्स्त्रिमाससमयुतं जप्त्वा लावण्यवान् भवेत् ।
एवं कृष्णमनोरस्य माहात्म्यं परिकीर्तितम् ॥३२७
अनन्तान् भगवन्मन्त्रान् वक्तुं शक्यं न ते मया ।
वाराहं नारसिंहञ्च वामनं तुरगाननम् ॥३२८
क्रमेणैव तु वक्ष्यामि यथावच्छृणु पार्थिव ! ।
हुङ्कारं प्रथमं वीजमाद्यं वाराहमुच्यते ॥३२६
पश्चात्तु धरणीवीजं लक्ष्मीवीजं ततः परम् ।
त्रीन् वीजानादितः कृत्वा पश्चान्मन्त्रप्रयोजनम् ॥३३०
ओं नमो भगवते पश्चाद्वराहरूपाय भूर्भुवः ।
स्वः पतयेति भूपतित्वं मे देहीति तदाप्यायस्वेति ॥३३१
अङ्गुलीषु यथाऽङ्गेषु वीजेनाऽऽद्येन वै क्रमात् ।
यथा सन्न्यासवद्भूत्वा पश्चाद्ध्यानं समाचरेत् ॥३३२
वृहत्तनुं वृहद्ग्रीवं वृहद्दंष्ट्रं सुशोभनम् ।
समस्तवेदवेदाङ्गसाङ्गोपाङ्गयुतं हरिम् ॥३३३
रजताद्रिसमप्रख्यं शतबाहुं शतेक्षणम् ।
उद्धृत्य दंष्ट्रया भूमिं समालिङ्ग्य भुजैर्मुदा ॥३३४
ब्रह्मादित्रिदशैः सर्वैः सनकाद्यैर्मुनीश्वरः ।
स्तूयमानं समन्ताच्च गीयमानञ्च किन्नरैः ॥३३५
एवं ध्यात्वा हरिं नित्यं प्रातरष्टोत्तरं शतम् ।
जप्त्वा लभेच्च भूपत्वं ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥३३६
नमो यज्ञवराहाय इत्यष्टाक्षरको मनुः ।
उक्तबीजत्रयं पूर्वं कृत्वा मन्त्रं जपेद्बुधः ॥३३७

मूलमन्त्रमिदं प्राहुर्वाराहं मुनिपुङ्गवाः।
एतमेव परं मन्त्रं जप्त्वा भूमिपतिर्भवेत् ॥३३८

नित्यमष्टसहस्रं तु जपेद्विष्णुं विचिन्तयन्।
कमलैर्बिल्वपत्रैर्वा जुहुयाच्च दशांशकम् ॥३३९

एवं संवत्सरं जप्त्वा सार्वभौमो भवेद्ध्रुवम्।
राज्यं कृत्वा च धर्मेण पश्चाद्विष्णुपदं व्रजेत् ॥३४०

विधानं नारसिंहस्य मनोर्वक्ष्यामि सुव्रत !
उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ॥३४१

नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्योर्मृत्युं नमाम्यहम्।
आर्षं ब्रह्माऽनुष्टुप्छन्दो देवता च नृकेसरी ॥३४२

चतुश्चतुश्च षट् षट्च षट्चतुश्च यथाक्रमात्।
शिरो ललाटनेत्रेषु मुखबाह्वङ्घ्रिसन्धिषु ॥३४३

साग्रेषु कुक्षौ हृदये गले पार्श्वद्वयेऽपि च।
अपराङ्गे ककुद्मे(दि)च न्यसेद्वर्णान्यनुक्रमात् ॥३४४

वायोर्दशाक्षरं यत्तु बहूङ्कारं जपेत् सकृत्।
विन्दुना सहितं यत्तु नृसिंहं वीजमुच्यते ॥३४५

अङ्गुलीषु तथाङ्गेषु न्यासन्तेनैव चोदितम्।
तद्बीजमादितः कृत्वा मन्त्रं पश्चात्प्रयोजयेत् ॥३४६

ओं नमो भगवते वासुदेवाय नमो नरसिंहाय ज्वालामालिने दीर्घदंष्ट्रायाग्निनेत्राय सर्वरक्षोघ्नाय सर्वभूतविनाशाय दह दह पच पच रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा इति ज्वालामालिपातालनृसिंहाय नमः॥ वीजेनैवन्यासः। आं ह्रीं क्ष्रौं क्रौं हुं फट्॥

अस्य मन्त्रस्य ब्रह्मार्षं पङ्क्तिश्छन्दो नृसिंहो देवता नृसिंहास्त्रमिदं वीजेनैव न्यासः।

श्रीकारपूर्वो नृसिंहो द्विर्जयादुपरि स्थितः।
त्रिःसप्तकृत्वो जप्तुः स्यान्महाभयनिवारणम्॥३४७

अस्य ब्रह्मा च रुद्रश्च प्रह्लादश्च महर्षयः।
तथैव जगति च्छन्दो देवता च नृकेसरी।
न्यासं वीजेन कुर्वीत ततो ध्यानं नृपोत्तम!॥३४८

माणिक्याद्रिसमप्रभं निजरुचा सन्त्रस्तरक्षोगणम्।
जानुन्यस्तकराम्बुजं त्रिनयनं रत्नोल्लसद्भूषणम्॥
बाहुभ्यां धृतशङ्खचक्रमनिशं दंष्ट्रोल्लसत्स्वाननम्।
ज्वालाजिह्वमुदग्रकेशनिचयं वन्दे नृसिंहं प्रभुम्॥३४६

उद्यत्कोटिरविप्रभं नरहरिं कोटिक्षपेशोज्ज्वलम्
दंष्ट्राभिः सुमुखोज्ज्वलं नखमुखैर्दीर्घैरनेकैर्भुजैः॥
निर्भिन्नासुरनायकन्तु शशभृत्सूर्य्याग्निनेत्रत्रयम्
विद्युद्जिह्वसटाकलापभयदं वह्निं वहन्तं भजे॥३५०

कोपादालोलजिह्वं विवृतनिजमुखं सोमसूर्य्याग्निनेत्रं-
पादादानाभिरक्तं प्रसभमुपरि संभिन्नदैत्येन्द्रगात्रम्॥
चक्रं शङ्खं सपाशाङ्कुशमुसलगदाशार्ङ्ग वाणान्वहन्तम्
भीमं तीक्ष्णाग्रदंष्ट्रं मणिमयविविधाकल्पमीडे नृसिंहम्॥३५१

महाभयेष्विदं ध्यानं सौम्यमभ्युदयेषु च।
सौवर्णं मण्डपान्तस्थं पद्मं ध्यायेत्सकेसरम्॥३५२

पञ्चास्यवदनं भीमं सोमसूर्य्याग्निलोचनम्।

तरुणादित्यदित्यसङ्काशं कुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥३५३
उपेयन्यासं सुमुखं तीक्ष्णदंष्ट्रविराजितम्।
व्यात्तास्य मरुणोष्ठञ्च भीषणैर्नयनैर्युतम् ॥३५४
सिंहस्कन्धानुरूपांसं वृत्तायतचतुर्भुजम्।
जपासमाङ्घ्रिहस्ताब्जं पद्मासनसुसंस्थितम् ॥३५५
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं वनमालाविराजितम्।
केयूराङ्गदहाराढ्यं नूपुराभ्यां विराजितम् ॥३५६
चक्रशङ्खाभयवरचतुर्हस्तं विभुं स्मरेत्।
वामाङ्के संस्थितां लक्ष्मीं सुन्दरीं भूषणान्विताम् ॥३५७
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गीं दिव्यपुष्पोपशोभिताम्।
गृहीतपद्मयुगलमातुलिङ्गकरां चलाम् ॥३५८
एवं देवीं नृसिंहस्य वामाङ्कोपरिसंस्थिताम्।
ध्यात्वा जपेज्जपं नित्यं पूजयेच्च यथाविधि ॥३५६

क्ष्रौं ह्रीं श्रीं श्रीं नृसिंहाय नमः ॥

इमं लक्ष्मीनृसिंहस्य जपेत् सर्व्वार्थदं मनुम्।
अष्टोत्तरसहस्रं वा जपेत् सन्ध्यासु वाग्यतः ॥३६०
अखण्डबिल्वपत्रैश्च जुहुयादाज्यमिश्रितैः।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति षण्मासं प्रयतो भवेत् ॥३६१
देवत्वममरेशत्वं गन्धर्वत्वं तथा नृप !।
प्राप्नुवन्ति नराः सर्वं स्वर्गं मोक्षञ्च दुर्लभम् ॥३६२
यं यं कामयते चित्ते तं तमेवाऽऽनुयाद् ध्रुवम्।
ब्रह्मर्षी तत्र गायत्री नरसिंहश्च देवता ॥३६३

तदेव वीजं शक्तिः श्रीर्मनोरस्य विधीयते ।
न्यासमध्येन वीजेन चार्चनं तुलसीदलैः ॥३६४

पूर्वोक्तविधिना पीठे पूजयित्वा समाहितः ।
परितः पूजयेद्दिक्षु गरुडं शङ्करं तथा ॥३६५

शेषञ्च पद्मयोनिञ्च श्रियं मायां धृतिं तथा ।
पुष्टिं समर्च्य दिक्षु ततो लोकेश्वरान् यजेत् ॥३६६

महाभागवतं दैत्यनाशकं देवमग्रतः ।
एवं सम्पूज्य देवेशं नारसिंहं सनातनम् ॥३६७

तत्पदं समवाप्नोति मुदितः सजनैः सह ।
कर्पूरधवलं देवं दिव्यकुण्डलभूषितम् ॥३६८

किरीटकेयूरधरं पीताम्बरधरं प्रभुम् ।
पद्मासनस्थं देवेशं चन्द्रमण्डलमध्यगम् ॥३६९

सूर्य्यकोटिप्रतीकाशं पूर्णचन्द्रनिभाननम् ।
मेखलाजिनदण्डादिधारणं बटुरूपिणम् ॥३७०

कलधौतमयं पात्रं दधानं वसुपूजितम् ।
पीयूषकलशं वामे दधानं द्विभुजं हरिम् ॥३७१

सनकाद्यैः स्तूयमानं सर्वदेवैरुपासितम् ।
एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यं स्वासने च समाहितः ॥३७२

विष्णवे वामनायेति प्रणवादिनमोऽन्तकः ।
इन्द्रार्षञ्च विराट्छन्दो देवता वामनः स्वयम् ॥३७३

सुधावीजं सुदीर्घन्तु बीजमाद्यन्तु वामनम् ।
तेनैव तु षडङ्गाद्यं न्यासं कुर्व्वीत वैष्णवः ॥३७४

दध्यन्नं पायसं वाऽऽपि जुहुयात्प्रत्यहं द्विजः।
औपासनाग्नौ जुहुयादष्टोत्तरशतं गृही ॥३७५
कुबेरसदृशः श्रीमान् भवेत्सद्यो न संशयः।
ओंनमो विष्णवे पतये महाबलाय स्वाहा ॥३७६

इति वामनमन्त्रः—

स्मृत्वा त्रैविक्रमं रूपं जपेन्मंत्र मनन्यधीः ॥३७७
मुक्तो बन्धाद्भवेत् सद्यो नात्र कार्य्या विचारणा।
ह्रीं श्रीं श्रीवामनाय नम इति मूलमन्त्रः।
ब्रह्मार्षं चैव गायत्री देवता च त्रिविक्रमः।
न्यासं बीजेन जप्त्वानष्टोत्तरसहस्रकम् ॥३७८
इति वामनमन्त्रस्य जपादन्नपतिर्भवेत्।
उद्गीथप्रणवोद्गीथ सर्ववागीश्वरेश्वर ! ॥३७९
सर्ववेदमयाचिन्त्य ? सर्वं बोधय मे पितः ! ।

हुं ऐं हयग्रीवाय नमः ॥

नित्यार्षं (ब्रह्मार्षं) चैव गायत्री हयग्रीवोऽस्य देवता।
न्यासं बीजेन कृत्वाऽथ पश्चाद्ध्यानं समाचरेत् ॥३८०
शरच्चन्द्रशाङ्कप्रभमश्ववक्त्रं मुक्तामयैराभरणैरुपेतम्।
रथाङ्गशङ्खाञ्चितबाहुयुग्मं जानुद्वयंन्यस्तकरं भजामः ॥३८१
शङ्खाभः शङ्खचक्रे करसरसिजयोः पुस्तकं चान्यहस्ते
बिभ्रद्व्याख्यानमुद्रां लसदितरकरो मण्डलस्थः सुधांशोः।
आसीनः पुण्डरीके तुरगवरशिराः पूरुषो मे पुराणः
श्रीमानज्ञानहारी मनसि निवसता मृग्यजुःसामरूपः ॥३८२

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सन्ध्यासु विजितेन्द्रियः।
सर्ववेदार्थतत्त्वज्ञो भवेदत्र न संशयः ॥३८३

अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरन्तु वा।
जपेच्च जुहुयाच्चैवं साज्यैः शुभ्रैः सतण्डुलैः ॥३८४
विद्यासिद्धिमवाप्नोति षण्मासं द्विजसत्तमः।

अष्टादशानां विद्यानां बृहस्पतिसमो भवेत् ॥३८५
सहस्रारं हुं फडित्येवं मूलं सौदर्शनं मनुम्।

अहिर्बुध्न्योऽनुष्टुभस्य देवता च सुदर्शनम् ॥३८६
अचक्राय विचक्राय सुचक्राय तथैव च।

विचक्राय सुचक्राय ज्वालाचक्राय वै क्रमात् ॥३८७
षडङ्गेषु च विन्यस्य पश्चाद्ध्यानं समाचरेत्।

नमश्चक्राय स्वाहेति दशदिक्षु यथाक्रमम् ॥३८८
चक्रेण सह बध्नामीत्युक्त्या प्रतिदिशेत्ततः।
त्रैलोक्यं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा इति वै क्रमात् ॥३८६
अग्निप्रकारमन्त्रोऽयं सर्वरक्षाकरः परः।
ओं मूर्ध्नि स भ्रूमध्ये हं मुखे स्वाहमधीत्यतः ॥३६०
रं गुह्ये हं तु जान्वोश्च फट् पदद्वयसन्धिषु।

कल्पान्तार्कप्रकाशं त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तम्
रक्ताक्षं पिङ्गकेशं रिपुकुलभयदम्भीमदंष्ट्राजहासम्।
शङ्खं चक्रं गदाब्जं पृथुतरमुशलं चापपाशाङ्कुशाढ्यम्
बिभ्राणन्दोर्भिराद्यं मनसि मुररिपुं भावयेच्चक्रसंज्ञम् ॥३६१

ओं नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं फट्।
इति षोडशाक्षर मिति सुदर्शनविधानम्॥ ३६२

इति वृद्धहारीतस्मृतौ विशिष्टधर्म्मशास्त्रे भगवन्मन्त्रविधानं नाम तृतीयोऽध्यायः॥

॥ चतुर्थोऽध्यायः॥

अथ प्राप्तकालभगवत्समाराधनविधिवर्णनम्।

हारीत उवाच।

अथ वक्ष्यामि राजेन्द्र! विष्णोराराधनं परम्।
प्रत्यूषे सहसोत्थाय सम्यगाचम्य वारिणा॥१
आत्मानं देहमीशञ्च चिन्तयेत् संयतेन्द्रियः।
ज्ञानानन्दमयो नित्यो निर्विकारो निरामयः॥२
देहेन्द्रियात्परः साक्षात्पञ्च विंशात्मको ह्यहम्।
अस्मिन् देशे वसाम्यद्य शेषभूतो हि शार्ङ्गिणः॥३
शुक्रशोणितसम्भूते जरारोगाद्युपद्रवे।
मेदोरक्तास्थिमांसादिदेहद्रव्यसमाकुले॥४
मलमूत्रवसापङ्के नानादुःखसमाकुले।
तापत्रयमहावह्निदह्यमानेऽनिशम्भृशम्॥५
इषणात्रयकृष्णाहिबाध्यमाने दुरत्यये।
क्लिश्यामि पापभूयिष्ठे कारागृहनिभेऽशुभे॥६

बहुजन्मबहुक्लेशगर्भवासादि दुःखिते।
वसामि सर्वदोषाणामालये दुःखभाजने ॥७

अस्माद्विमोक्षणायैव चिन्तयिष्यामि केशवम्।
वैकुण्ठे परमव्योम्नि दुग्धाब्धौ वैष्णवे पदे ॥८

अनन्तभोगिपर्य्यङ्के समासीनं श्रिया सह।
इन्द्रनीलनिभं श्यामं चक्रशङ्खगदाधरम् ॥६

पीताम्बरधरं देवं पद्मपत्रायतेक्षणम्।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं सर्वाभरणभूषितम् ॥१०

चिन्तयित्वा नमस्कृत्वा कीर्तयेद्दिव्यनामभिः।
सङ्कीर्त्य नामसाहस्रं नमस्कृत्वा गुरूनपि ॥११

तुलसीं काञ्चनं गाञ्च संस्पृश्याथ समाहितः।
दूराद्बहिर्विनिष्क्रम्य शुचौ देशे च निर्जने ॥१२

कर्णस्थ ब्रह्मसूत्रस्तु शिरः प्रावृत्य वाससा।
कुर्यान्मूत्रपुरीषे च ष्ठीवनोच्छ्वासवर्जितः ॥१३

अहन्युदङ्मुखो रात्रौ दक्षिणाभिमुखस्तथा।
समाहितमना मौनी विण्मूत्रे विसृजेत्ततः ॥१४

उत्थायातन्द्रितः शौचं कुर्यादभ्युद्धृतैर्जलैः।
गन्धलेपक्षयकरं यथासङ्ख्यां मृदा शुचिः ॥१५

अर्द्धप्रसृतिमात्रां तु मृदं दद्याद्यथोक्तवत्।
षडपाने त्रिलिङ्गे तु सव्यहस्ते तथा दश ॥१६

उभयोः सप्त दद्याच्च तिस्रस्तिस्रस्तु पादयोः।
आजङ्घान्मणिबन्धात्तु प्रक्षाल्य शुभवारिणा ॥१७

उपविष्टः शुचौ देशे अन्तर्जानुकरस्तथा।
पवित्रपाणिराचामेत् प्रसृतिस्थः स वारिणा ॥१८
त्रिः प्राश्याङ्गुष्ठमूलेन द्विधोन्मृज्य कपोलकौ।
मध्यमाङ्गुलिभिः पश्चाद्द्विरोष्ठौ मृजयेत्तथा ॥१९
नासिकौष्ठान्तरं पश्चात् सर्वाङ्गुलिभिरेव च।
पादौ हस्तौ शिरश्चैव जलैः संमार्जयेत्ततः ॥२०
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु स्पृशेत् द्वौ नासिकापुटौ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु चक्षुःश्रोत्रे जलैः स्पृशेत् ॥२१
कनिष्ठाङ्गुष्ठनाभिश्च तलेन हृदयन्ततः।
सर्वाङ्गुलिभिः शिरसि बाहुमूले तथैव च।
नामभिः केशवाद्यैश्च यथासङ्ख्यमुपस्पृशेत् ॥२२
द्विराचामेत्तु सर्वत्र विण्मूत्रोत्सर्जने त्रयम्।
सामान्यमेतत् सर्वेषां शौचं तु द्विगुणोदितम् ॥२३
आचम्यातःपरं मौनी दन्तान् काष्ठेन शोधयेत्।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि कषायं तिक्तकण्टकम् ॥२४
कनिष्ठाग्रमितस्थूलं द्वादशाङ्गुलमायतम्।
पर्वाधः कृतकूर्चेन तेन दन्तान्निकर्षयेत् ॥२५
अपां द्वादशगण्डूषैः वक्त्रं संशोधयेद्द्विजः।
मुखं संमार्जयित्वाऽथ पश्चादाचमनं चरेत्।
पवित्रपाणिराचम्य पश्चात् स्नानं समाचरेत् ॥२६
नद्यां तडागे खाते वा तथा प्रस्रवणे जले।
तुलसीमृत्तिकां धात्रीमुपलिप्य कलेवरे ॥२७

अभिमन्त्र्य जलं पश्चान्मूलमन्त्रेण वैष्णवः ।
निमज्ज्य तुलसीमिश्रं जलं सम्प्राशयेत्ततः ॥२८

आचम्य मार्जनं कुर्यात् कुशैः सतुलसीदलैः ।
पौरुषेण तु सूक्तेन आपो हि ष्ठादिभिस्तथा ॥२९

निमज्ज्याप्सु जले पश्चात्त्रिवारमघमर्षणम् ।
उत्थाय पुनराचम्य पश्चादप्सु निमज्ज्य वै ॥३०

मन्त्ररत्नं त्रिवारं तु जपन्ध्यायन् सनातनम् ।
पिबेदुत्थाय तेनैव त्रिवारमभिमन्त्रितम् ॥३१

आचम्य तर्पयेद्देवान् पितॄनपि विधानतः ।
निष्पीड्य कूले वस्त्रं तु पुनराचमनं चरेत् ॥३२

धौतवस्त्रं सोत्तरीयं सकौपीनं धरेत्स्थितम् ।
निबद्धशिखकच्छस्तु द्विराचम्य यथाविधि ॥३३

धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि मृदा शुभ्राणि वैष्णवः ।
श्रीकृष्णतुलसीमूलमृदा वाऽपि प्रयत्नतः ॥३४

मन्त्रेणैवाभिमन्त्र्याथ ललाटादिषु धारयेत् ।
नासिकामूलमारभ्य विभूयाच्छ्रीपदाकृति ॥३५

सान्तरालं भवेत् पुण्ड्रँ दण्डाकारं तु वा तथा ।
ललाटादि तथा पश्चाद्ग्रीवान्तं केशवादिभिः ॥३६

नाम्नां द्वादशभिर्मूर्ध्नि वासुदेवं तलाम्बुना ।
पवित्रपाणिः शुद्धात्मा सन्ध्यां कुर्यात् समाहितः ॥३७

प्रादेशमात्रौ कौशेयौ साग्रौ मूलयुतौ तथा ।
अन्तर्गर्भौ सुविमलौ पवित्रं कारयेद्द्विजः ॥३८

देवार्चने जपे होमे कुर्याद्ब्राह्मय पवित्रकम्।
इतरे वर्तुलग्रन्थिरेवं धर्मो विधीयते ॥३९
पथि दर्भाश्रिता दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु।
स्तरणासनपिण्डेषु ब्रह्मयज्ञे च तर्पणे ॥४०
पाने भोजनकाले च धृतान् दर्भान् विसर्जयेत्।
सपवित्रकरेणैव आचामेत्प्रयतो द्विजः ॥४१
आचान्तस्य शुचिः पाणिर्यथापाणि स्तथा कुशः।
सन्ध्याचमनकाले तु धृतं न परिवर्जयेत् ॥४२
अप्रसूताः स्मृता दर्भाः समिधस्तु (प्रसूतास्तु) कुशाः स्मृताः।
समूलास्तु कुशा ज्ञेया श्छिन्नाग्रास्तृणसंज्ञिताः ॥४३
कुशोदकेन यत्कण्ठं नित्यं संशोधयेद्द्विजः।
न पर्युषन्ति पापानि ब्रह्मकूर्चं दिने दिने ॥४४
कुशासनं सदापूतं जपहोमार्चनादिषु।
केशेनैव कृतं कर्म सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥४५
तस्मात् कुशपवित्रेण सन्ध्यां कुर्यात् यथाविधि।
स्वगृह्योक्तविधानेन सन्ध्योपास्तिं समाचरेत् ॥४६
ध्यात्वा नारायणं देवं रविमण्डलमध्यगम्।
गायत्र्याऽर्घ्यं प्रदद्याच्च जपं कुर्वीत भक्तिमान् ॥४७
सूर्यस्याभिमुखो जप्त्वा सावित्रीं नियतात्मवान्।
उपस्थानं ततः कृत्वा नमस्कुर्यात्ततो हरिम् ॥४८
नमो ब्रह्मण इत्यादि जपित्वाऽथ विसर्जयेत्।
ततः सन्तर्पयेद्विष्णुं मन्त्ररत्नेन मन्त्रवित् ॥४९

शतवारं सहस्रं वा तुलसीमिश्रितैर्जलैः ।
वैकुण्ठपार्षदं पश्चात्तर्पयेच्च यथाविधि ॥५०

अनन्तदीपारेखादिदेवतानामनुक्रमात् ।
एकैकमञ्जलिं दत्त्वा पश्चादाचमनं चरेत् ।
श्रीशय्याऽऽराधनार्थं वै कुर्यात् पुष्पस्य सञ्चयम् ॥५१

तुलसीविल्वपत्राणि दूर्वां कौशेयमेव च ।
विष्णुक्रान्तं मरुवकं केशाम्बुददलं तथा ॥५२

उशीरं जातिकुसुमं कुन्दञ्चैव कुरण्टकम् ।
शमीञ्चम्पाङ्कदम्बञ्च चूतपुष्पं च माधवीम् ॥५३

पिप्पलस्य प्रबालानि जाम्बवं पाटलं तथा ।
आस्फोटं कुटजं लोध्रं कर्णिकारञ्च किंशुकम् ॥५४

नीपार्जुने शिंशपञ्च श्वेतकिंशुकनामकम् ।
जम्बीरं मातुलिङ्गं च यूथिकारचयं तथा ॥५५

पुन्नागं वकुलं नागकेशराशोकमल्लिकाः ।
शतपत्रां च हारिद्रं करवीरं प्रियङ्गु च ॥५६

नीलोत्पलं तूत्पलञ्च नन्द्यावर्तञ्च कैतकम् ।
घटजं स्थलपद्मं च सर्वाणि जलदानि च ॥५७

तत्कालसम्भवं पुष्पं गृहीत्वाऽथ गृहं विशेत् ।
वितानादियुते दिव्यधूपदीपैर्विराजिते ॥५८

चन्दनागरुकस्तूरी कर्पूरामोदवासिते ।
विचित्ररङ्गवल्याढ्ये मण्डपे रत्नपीठके ॥५९

विस्तीर्णपुष्पपर्यङ्के देव्या सहितमच्युतम्।
सन्निधा वासने स्थित्वा कुशे पद्मासने स्थितः ॥६०
प्राणायामविधानेन भूतशुद्धिं विधाय च।
प्राणायामत्रयं कृत्वा पश्चाद्ध्यानं यथोक्तवत् ॥६१
परव्योम्नि स्थितं देवं लक्ष्मीनारायणं विभुम्।
पराभिः शक्तिभिर्युक्तं भूलीलाविमलादिभिः ॥६२
अनन्तविहगाधीशसैन्याद्यैः सुरसत्तमैः।
चण्डाद्यैःकुमुदाद्यैश्च लोकपालैश्च सेवितम् ॥६३
चतुर्भुजं सुन्दराङ्गं नानारत्नविभूषणम्।
वामाङ्कस्थश्रिया युक्तं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥६४
मन्त्ररत्नविधानेन न्यासमुद्रादिकर्मकृत्।
पञ्चौपनिषदं न्यासं कुर्यात् सर्वत्र कर्मसु ॥६५
ओ मीशाय नमः परायेति परमेष्ठ्यात्मने नमः।
ओं यां नमः परायेति ततः पुरुषात्मने नमः ॥६६
ओं रां नमः परायेति ततो विश्वात्मने नमः।
ओं वां नमः परायेति स्वनिवृत्यात्मने नमः ॥६७
ओं लां नमः परायेति ततः सर्वात्मने नमः।
शिरोनासाग्रहृदयगुह्यपादेषु विन्यसेत् ॥६८
यथाक्रमेण तन्मन्त्रान् पञ्चाङ्गेषु क्रमान्न्यसेत्।
तन्मुद्रया तदाऽऽवाह्य दद्यादासनमेव च ॥६९
पाद्यार्घ्याचमनस्नानपात्राणि स्थाप्य पूजयेत्।
पूरयित्वा शुभजलं पात्रेषु कुसुमैर्युतम् ॥७०

द्रव्याणि निक्षिपेत्तु तेषु मङ्गलानि यथाक्रमात् ।
उशीरं चन्दनं कुष्ठं पाद्यपात्रे विनिक्षिपेत्तु ॥७१
विष्णुक्रान्तश्च दूर्वाश्च कौशेयान् तिलसर्षपान् ।
अक्षतांश्च फलं पुष्पमर्घ्यपात्रे विनिक्षिपेत् ॥७२
जातीफलञ्च कर्पूर मेलाश्चाचमनीयके ।
मकरन्दं प्रबाल ञ्च रत्नं सौवर्णमेव च ॥७३
तानि दद्यात् स्नानपात्रे धात्रीं सुरतरुं तथा ।
द्रव्याणामप्यलाभे तु तुलसीपत्रमेव च ॥७४
चन्दनं वा सुवर्णं वा कौशेयं वा विनिक्षिपेत् ।
दर्शयेत् सुरभेर्मुद्रां पूजयेत् कुसुमव्रजैः ॥७५
अभिमन्त्र्य च मन्त्रेण धूपदीपैर्निवेदयेत् ।
अनन्तं चोद्धरण्या च दद्यात्पाद्यादिकं तथा ॥७६
तत्पात्रक्षालनं कृत्वा तथा पुष्पाञ्जलिं न्यसेत् ।
सौवर्णानि च रौप्याणि ताम्रकांस्यानि योजयेत् ॥७७
पात्राणामप्यलाभे तु शङ्खमेकं विशिष्यते ।
शङ्खोदकं सदा पूतमतिप्रियतरं हरेः ॥७८
उद्धरिण्या जलं दद्यान्नाप्सु शङ्खं निमज्जयेत् ।
अष्टाक्षरेण मनुना मन्त्ररत्नेन वा यजेत् ॥७९
पाद्यार्घ्याचमनं दत्त्वा मधुपर्कं निवेदयेत् ।
पुनराचमनं दत्त्वा पादपीठं निवेदयेत् ॥८०
दन्तधावनगण्डूषदर्पणालोचनं तथा ।
निवेद्याभ्यञ्जनं तैलेनोद्वर्त्त केशरञ्जनम् ॥८१

सुखोष्णितजलैः स्नानं पुनरुद्वर्तनं चरेत् ।
कुङ्कुमेन हरिद्रेण चन्दनेन सुगन्धिना ॥८२
उद्वर्त्य गन्धतोयेन स्नापयेच्च पुनस्ततः ।
स्नानपात्रोदकं पश्चादादाय कुसुमैः सह ॥८३
पौरुषेण तु सूक्तेन स्नापयेत्कमलापतिम् ।
मार्जयेच्छुभवस्त्रेण दीपैर्नीराजयेत्तथा ॥८४
वस्त्रञ्चैवोपवीतञ्च दद्यादाभरणानि च ।
कस्तूरीतिलकं गन्धं पुष्पाणि सुरभीणि च ।
अङ्के निवेश्य देवस्य लक्ष्मीं संपूजयेत्तथा ॥८५
पार्श्वयोरद्ध्र्धरणी महिष्यः पतिता स्तथा ।
विमलोत्कर्षणीत्याप: पूर्वमेव प्रकीर्तिताः ॥८६
चण्डादि द्वारपालांश्च कुमुदादींस्तथार्चयेत् ।
वासुदेवः सीरपाणिः प्रद्युम्नश्च उषापतिः ।
दिक्षु कोणेषु तत्पत्न्यो लक्ष्मीरेव रती उषा ॥८७
द्वितीयावरणं पश्चात्केशवाद्याः सशक्तयः ।
संकर्षणादयः पश्चान्मत्स्यकूर्मादय स्तथा ॥८८
श्री र्लक्ष्मीः कमला पद्मा पद्मिनी कमलालया ।
रमा वृषाकपेर्धन्या वृत्तिर्यज्ञान्तदेवता ॥८९
शक्तयः केशवादीनां संप्रोक्ताः परमे पदे ।
हिरण्या हरणी सत्या नित्यानन्दा त्रयी सुखा ॥९०
सुगन्धा सुन्दरी विद्या सुशीला च सुलक्षणा ।
सङ्कर्षणादिमूर्तीनां शक्तयः समुदाहृताः॥ ९१

वेदा वेदवती धात्री महालक्ष्मीः सुखालया।
भार्गवी च तथा सीता रेवती रुक्मिणी प्रभा ॥६२

मत्स्यकूर्मादिमूर्तीनां शक्तयः सम्प्रकीर्तिताः।
एवं सशक्तयः पूज्याः केशवाद्याः सुरेश्वराः ॥६३

पश्चात्सशक्तयः पूज्या श्चक्रशङ्खादिहेतयः।
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं शार्ङ्गञ्च मुसलं हलम् ॥६४

वाणञ्च खड्गखेटं च छुरिका दिव्यहेतयः।
भद्रा सौम्या तथा माया जया च विजया शिवा ॥६५

सुमङ्गला सुनन्दा च हिता रम्या सुरक्षिणी।
शक्तयो दिव्यहेतीनां पूजनीयाः सनातनाः ॥६६

बर्हिर्लोकेश्वराः पूज्याः साध्याश्च समरुद्गणाः।
एवमावरणं सर्वमर्च्चयेत्परमात्मनः।
पुनरर्घ्यादिकं दत्त्वा धूपदीपैर्निवेदयेत् ॥६७

प्रागुदीच्याञ्च सदृशं नागराजं तथापरे।
पुरतो वैनतेयञ्च पूजयेच्छक्तिभिः सह ॥६८

सेनापतेः सूत्रवतीं नागराजस्य वारुणीम्।
भद्राञ्चलां तथा यस्य पूजयेद्वैष्णवोत्तमः ॥६६

गुग्गुलुं महिषाक्षीञ्च सालनिर्यासमेव च।
अगरुं देवदारुञ्च उशीरं श्रीफलं तथा ॥१००

ह्रीवेरं चन्दनं मुस्ता दशाङ्गं धूपमुच्यते।
गवाज्येन च संयोज्यं दद्याद्धूपं सुवासितम् ॥१०१

कार्पासमार्कं क्षौमञ्च शाल्मलीक्षीरकोद्भवम्।
अम्भोजं कौटजं काशतूलिकाऽष्टाङ्गमुच्यते ॥१०२

गवाज्यं तिलतैलं वा कुसुमैश्च सुवासितम्।
संयोज्य वह्निना दीपं भक्त्या विष्णोर्निवेदयेत्॥१०३

नैवेद्यं शुभहृद्यान्नं पायसापूपसंयुतम्।
फलैश्च भक्ष्यभोज्यैश्च पानकैर्व्यञ्जनैः सह ॥१०४

गवाज्यञ्च दधि क्षीरं शर्कराञ्च निवेदयेत्।
शुद्धं हविष्यं हृद्यञ्च सुरुच्यं वै निवेदयेत् ॥१०५

यच्छास्त्रेषु निषिद्धं तु तत्प्रयत्नेन वर्जयेत्।
कोद्रवं चौलकं लुब्धं यावनालं तथा सितम् ॥१०६

निष्पावञ्च मसूरञ्च तुच्छधान्यानि सर्व्वशः।
भुक्तं पर्युषितं रूक्षं यज्ञे कर्म्मणि वर्जयेत् ॥१०७

वर्जयेदारनालञ्च मद्यमांससमानि च।
निर्यासान्वर्जयेत् सर्व्वान्विना हिङ्गु च गुग्गुलुम् ॥१०८

छत्राकं मूलकं शिग्रु करञ्जं लशुनं तथा।
कुम्भीदलञ्च पिण्याकं श्वेतवृन्ताकमेव च ॥१०९

आम्रञ्च नालिकाशाकं नालिकेर्याख्यमेव च।
(पीलु)बिल्वञ्च शणपुष्पञ्च भूस्तृणं भौतिकं तथा ॥११०

कोशातकीं बिम्बफलं मद्यमांससमानि च।
अभक्ष्याण्यप्यशेषाणि वर्जयेद्यज्ञकर्मणि ॥१११

कालिङ्गं कतकं बिल्वफलं जन्तुफलं तथा।
वंशाङ्कुरमलाबुञ्च तालहिन्तालके फले ॥११२

अश्वत्थं प्लक्षनीपञ्च वटमारग्वधं तथा।
कलम्बिका च निर्गुण्डिमुण्डिवार्त्ताकमेव च ॥११३
ऊषरं लवणञ्चैव श्वेतञ्च वृहतीफलम्।
नखचर्मातकञ्चैव चिञ्चिलञ्चेति यत्नतः ॥११४
विज्ञेयानि च भक्ष्याणि वर्जयेद्यज्ञकर्म्मणि।
श्लेष्मातकञ्च विड्जानि प्रत्यक्षलवणं तथा ॥११५
अनिर्द्दशाहगोक्षीरमवत्साया स्तथाऽऽविकम्।
ओष्ट्रमेकशफञ्चैव पशूनां विड्भुजामपि ॥११६
अतिदीर्णं तथा तक्रं करनिर्म्मन्थितन्दधि।
ताम्रेण संयुतं गव्यं क्षीरञ्च लवणान्वितम् ॥११७
घृतं लवणसंयुक्तं प्रयत्नेन विवर्जयेत्।
सूपान्नञ्च गुडान्नञ्च शर्करामधुसंयुतम् ॥११८
मरीचिमिश्रं दध्यन्नं पायसान्नं फलैः सह।
तुलसीदलसम्मिश्रं जलैः सम्प्रोक्ष्य वाग्यतः ॥११९
अष्टाविंशतिवारन्तु मूलमन्त्राभिमन्त्रितम्।
मुद्राञ्च सौरभेयीन्तां दर्शयेन्मन्त्रमुच्चरन् ॥१२०
सुधाब्धिममृतं बीजं चिन्तयन् परमात्मनः।
दद्यात् पुष्पाञ्जलिं पश्चाद्दशवारं समाहितः ॥१२१
पेषणक्रियया (आपोशनक्रिया)पूर्वमन्नमस्मै निवेदयेत्।
शतवारं जपेन्मन्त्रं घण्टाशब्दं निनादयन् ॥१२२
जपेत्पीयूषदैवत्यान्मन्त्रानेकाग्रचेतसा।
हरेर्भुक्तवतः पश्चाद्दद्याद्वारि सुवासितम् ॥१२३

पश्चादाचमनं दद्याज्जलैर्गन्धमिविश्रितैः।
अभ्यर्चा पौरुषस्यास्य सूक्तस्य सुरसत्तमान् ॥१२४
विष्णवर्पितचतुर्भागं क्रमाद्धव्यस्य चार्पयेत्।
अनन्तताक्ष्यसेनेशपवित्राणां निवेदयेत् ॥१२५
तीर्थेन सहितं हव्यं पृथक् पात्रेषु निक्षिपेत्।
सर्वेषां वारिपूर्वेण पश्चात् पुष्पाञ्जलिश्चरेत् ॥१२६
नीराजनं ततो दत्वा ताम्बूलञ्च निवेदयेत्।
प्रणमेच्च ततो भक्त्या रम्यैः स्तोत्रैः शुभाह्वयैः ॥१२७
प्रसार्य बाहू पादौ च बद्ध्वे नाञ्जलिना सह।
स्तुवन् स्तुतिभिरेवं तु प्रणामो दीर्घ उच्यते ॥१२८
नत्वा दीर्घप्रणामैश्च स्तुत्वा स्तुतिभिरेव च।
सर्वैश्च वैष्णवैर्मन्त्रैः कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥१२९
सूक्तैश्च विष्णुदैवत्यैर्नामभिः शार्ङ्गिणस्तथा।
ततः शुभासने स्थित्वा जपेन्मन्त्रमनुत्तमम् ॥१३०
न्यासमुद्रादिपूर्वेण ध्यायन्वै कमलेक्षणम्।
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ॥१३१
जप्त्वा पुष्पाञ्जलिं दद्याद्यथाशक्त्या च मन्त्रतः।
नमेद्योगेन देवेशः हृदिस्थं कमलेक्षणम् ॥१३२
मनसि वाऽर्चयित्वास्मिन् समाधौ विरमेत् सुधीः।
प्रातरौपासनं कृत्वा तत्र होमं समाचरेत् ॥१३३
आज्येन चरुणा वाऽपि समिद्भिर्वा च यज्ञियैः।
तण्डुलैर्घृतमिश्रैर्वा बिल्वपत्रैरथापि वा ॥१३४

तिलैर्वा कुसुमै र्वाऽपि यवैर्मिश्रभिरेव वा ।
यज्ञरूपं हरिं ध्यात्वा सर्ववेदमयं विभुम् ॥१३५

दिव्याभरणसम्पन्नं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
वरदं पुण्डरीकाक्षं वामाङ्कस्थश्रियं हरिम् ॥१३६

यज्ञस्वरूपिणं वह्नौ ध्यायन् मन्त्रद्वयेन च ।
सवश्च वैष्णवैर्मन्त्रैरेकैकेनाऽऽहुतिं तथा ॥१३७

नामभिः केशवाद्यैश्च सूक्तै र्विष्णुप्रकाशकैः ।
वैकुण्ठपार्षदं सर्वं हुत्वा चैव ततो बलिम् ॥१३८

क्षिपेच्चतुर्विधान् भूतानुद्दिश्य च ततो भुवि ।
आचम्य पूजयेत्पश्चात्तदीयान् सुसमाहितः ॥१३६

तेभ्यः प्रणम्य भक्त्याऽथ सन्तर्प्य पितृदेवताः ।
वेदमध्यापयेच्छक्त्या धर्मशास्त्रञ्च संहिताः ॥१४०

सात्त्विकानि पुराणानि सेतिहासानि वैष्णवः ।
सर्व्वोपनिषदामर्थं सद्भिः सह विचिन्तयेत् ॥१४१

योगक्षेमार्थवृद्धिञ्च कुर्य्याच्छक्त्या यथार्हतः ।
ब्राह्मणाः क्षत्त्रिया वैश्याः शूद्रा बर्णा यथाक्रमम् ॥१४२

आद्यास्त्रयो द्विजाः प्रोक्ता स्तेषा वै मन्त्रसत्क्रियाः ।
सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि सजातयः ॥१४३

तेषां सङ्करयोगाश्च प्रतिलोमानुलोमजाः ।
विप्रान्मूर्धाभिषिक्तस्तु क्षत्त्रियायामजायत ॥१४४

वैश्यायान्तु तथाऽऽम्बष्ठो निषादः शूद्रया तथा ।
राजन्याद्वैश्यशूद्र्यान्तु माहिष्योग्रौ तु तौ स्मृतौ ॥१४५

शूद्रां वैश्यात् तु करणश्चिरैर्वा तेऽनुलोमजाः।
विप्रायां क्षत्त्रियात् सूतः वैश्याद्वैदेहिकस्तथा ॥१४६

चण्डालस्तु तथा शूद्रात्सर्वकर्मसु गर्हितः।
मागधः क्षत्त्रियायां वै वैश्याक्षत्त्रात् तु शूद्रतः ॥१४७

शूद्रादयोगवं वैश्या जनयामास वै सुतम्।
रथकारः करण्यान्तु माहिष्येण प्रजायते ॥१४८

असत्सन्ततयो ज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः।
प्रतिलोमासु व जाता गर्हिताः सर्वकर्मणाम् ॥१४६

एतेषां ब्राह्मणाद्याश्च षट्कर्मसु नियोजिताः।
त्रिकर्मसु क्षत्त्रविशावेकस्मिन् शूद्रयोनिजः ॥१५०

प्रतिग्रहञ्च वृत्त्यर्थं ब्राह्मणस्तु समाचरेत्।
असदेवासतां प्रोक्तं निषिद्धं तद्विवर्जयेत् ॥१५१

पाषण्डाः पतिताः पापास्तथैव प्रतिलोमजाः।
कुलटाश्च विकर्मस्था असतः परिकीर्तिताः ॥१५२

लवणं तिलकार्पासं चर्म्म च त्रपुसीसकम्।
आयसं मधु मांसञ्च विषमन्नं घृतं रुजम् ॥१५३

किल्विषं गजमुष्ट्रञ्च सर्षपं जलमेव च।
तृणं काष्ठञ्च कूष्माण्डं शिशपाञ्च विवर्जयेत् ॥१५४

महिषीं गर्दभञ्चैव वाजिनञ्च तथाऽऽविकम्।
दासीमजां यानवृक्षा न पञ्चानडुहन्तुलाम् ॥१५५

एवमाद्य मसद्द्रव्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत्।
धान्यं वासांसि भूमिञ्च सुवर्णं रत्नमेव च ॥१५६

पुष्पाणि फलमूलाद्यं सद्द्रव्यं मुनिभिः स्मृतम् ।
सर्वत्र परिगृह्णीयाद् भूमिं धान्यं फलादिकम् ॥१५७
भूमिं यस्तु प्रगृह्णाति भूमिं यस्तु प्रयच्छति ।
तावुभौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ ॥१५८
धान्यं करोति दातारं प्रगृहीतारमेव च ।
धान्यं नृपवरश्रेष्ठ ! इहलोके परत्र च ॥१५९
तस्माद्धान्यं धरित्रीश्च प्रतिगृह्णीत सर्वतः ।
कुसुम्भधान्य एव स्यात् कुसुम्भधान्यवान् नृप ! ॥१६०
शीलोञ्छेनापि वा जीवेच्छ्रेयानेषां परो वरः ।
जीवेद्यायावरेणैव विप्रः सर्वत्र सर्वदा ॥१६१
वर्जयित्वैव पाषण्डान् पतितांश्चान्यदविकान् !
कृषिणा वाऽपि जीवेत सतां चानुमतेन वा ॥१६२
न वाहयेदनडुहं क्षुधार्तं श्रान्तमेव च ।
तस्य पुंस्त्वमहित्वैव वाहयेद् द्विजपुङ्गवः ॥१६३
कर्मलोप मकुर्वन्वै कृषिं कुर्वीत वै द्विजः ।
हरेः पूजां यथाकालं कृषिलोपे समाचरेत् ॥१६४
न ब्राह्मंथ सन्त्यजेद् विप्र स्तथा यज्ञादिकर्म च ।
आपद्यपि न कुर्वीत सेवां वाणिज्यमेव च ॥१६५
असत्प्रतिग्रहं स्तेयं तथा धर्मस्य विक्रयम् ।
अन्यायोपार्जितं द्रव्यमापद्यपि विवर्जयेत् ॥१६६
भृतकाध्यापनं चैव सदासत्कर्मभावनम् ।
प्रीतये वासुदेवस्य यद्दत्तमसतामपि ॥१६७

महाभागवतस्पर्शात्तत्सदित्युच्यते बुधैः।
तापादीन् पञ्च संस्कारां स्तथाकारै स्त्रिभिर्युतः ॥१६८
हरेरनन्यशरणो महाभागवतः स्मृतः।
यक्षराक्षसभूतानां तामसानां दिवौकसाम् ॥१६९
तेषां यत्प्रीतये दत्तं तथा यद्यपि वर्जयेत्।
बुद्धरुद्रौ तथा वायुदुर्गागणसुभैरवाः ॥१७०
यमः स्कन्दो नैर्ऋतश्च तामसा देवताः स्मृताः।
एवं विशुद्धिं द्रव्यस्य ज्ञात्वा गृह्णीत सत्तमः ॥१७१
कृषिस्तु सर्ववर्णानां सामान्यो धर्म उच्यते।
प्रतिग्रहस्तु विप्राणां राज्ञां क्ष्मापालनं तथा ॥१७२
कुसीदञ्चैव वाणिज्यं विशामेव प्रकीर्तितम्।
सेवावृत्तिस्तु शूद्राणां कृषिर्वा सम्प्रकीर्तिता ॥१७३
अशक्तस्तु भवेद्राजा पृथिव्याः परिपालने।
जीवेद्राऽपि विशां वृत्त्या शूद्राणां वा यथासुखम् ॥१७४
कृषिर्भृतिः पाशुपाल्यं सर्वेषां न निषिध्यते।
स्तेयं परस्त्रीहरणं हिंसा कुहककौशिके ॥१७५
स्त्रीमद्यमांसलवणविक्रयं पतितं स्मृतम्।
अपकृष्टनिकृष्टानां जीवितं शिल्पकर्मभिः ॥१७६
हीनन्तु प्रतिलोमानामहीन मनुलोमिनाम्।
चर्मवैणववस्त्राणां हिंसाकर्म च नेजनम् ॥१७७
गाणिक्यं(माणिक्यं)वपनाग्निश्च (यवनाद्यश्च)मद्यमांसक्रिया तथा।
सारथ्यं वाहकानाञ्च रथानां भूभृतामपि ॥१७८

एवमादि निषिद्धं यत्प्रातिलोम्यं यदुच्यते।
यत्सौम्यशिल्पं लोकेऽस्मिन् सौम्यं तदनुलोमकम् ॥१७६
मृद्दारुशैललोहानां शिल्पं सौम्यमिहोच्यते।
न्यायेन पालयेद्राजा पृथिवीं शास्त्रमार्गतः ॥१८०
स्वराष्ट्रकृतधर्मस्य सदा षड्भागसिद्धये।
राज्ञां राष्ट्रकृतं पापमिति धर्मविदो विदुः ॥१८१
तस्मादपापसंयुक्तां यथा संरक्षयेद्ध्रुवम्।
अग्निदङ्गरदश्चोरं हिंस्रं दुर्वृत्तमेव च ॥१८२
धूर्त्तं पतितमित्यादीन् हन्यादेवाविचारयन्।
अङ्कयित्वा श्वपादेन गर्दभे चाधिरोह्य वै ॥१८३
प्रवासयेत् स्वराष्ट्रात्तु ब्राह्मणं पतितं नृपः।
कुलटां कामचारेण गर्भघ्नीं भर्तृहिंसकाम् ॥१८४
निकृत्तकर्णनासोष्ठीं कृत्वा नारीं प्रवासयेत्।
न्यायेन दण्डनं राज्ञः स्वर्गकीर्तिविवर्धनम् ॥१८५
अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा तथा दण्ड्यानदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चाधिगच्छति ॥१८६
दिग्दण्डस्त्वथ वाग्दण्डो धनदण्डो वधस्तथा।
ज्ञात्वाऽपराधं देशं च जनं कालमदोऽपि वा ॥१८७
वयः कर्म च वित्तञ्च दण्डं न्यायेन पातयेत्।
निश्चित्य शास्त्रमार्गेण विद्वभिः सह पार्थिवः ॥१८८
गुरूणां तु गुरुं दण्डं पापानां च लघोर्लघुम्।
व्यवहारान् स्वयं पश्यन् कुर्यात् सभ्यैर्वृतोऽन्वहम् ॥१८६

मिथ्यापवादशुद्ध्यर्थं पञ्च दिव्यानि कल्पयेत्।
ज्ञात्वा शुद्धेषु दिव्येषु शुद्धान्वै मानयेत्तथा ॥१६०
तन्मिथ्याशंसिनं दुष्टं जिह्वाच्छेदेन दण्डयेत्।
परद्रव्यादिहरणं परदाराभिमर्शनम् ॥१६१
यः कुर्यात् तु बलात् तस्य हस्तच्छेदः प्रकीर्तितः।
यो गच्छेत् परदारांस्तु बलात्कामाच्च वा नरः ॥१६२
सर्वस्वहरणं कृत्वा लिङ्गच्छेदञ्च दापयेत्।
दहेत्कटाग्निना देहं गुरुस्त्रीगामिनं तदा ॥१६३
ब्रह्मघ्नं च सुरापं वा गोस्त्रीबालनिषूदनम्।
देवविप्रस्वहर्तारं शूलमारोपयेन्नरम् ॥१६४
दैवतं ब्राह्मणं गाञ्च पितृमातृगुरुंस्तथा।
पादेन ताडयेद्यस्तु तस्य तच्छेदनं स्मृतम् ॥१६५
तेषामुपरि हस्तं तु दोष्णो श्छेदन्तु कामतः।
प्रत्येकं दण्डनं कुर्याद्दुर्वृत्तस्य परस्त्रियाम् ॥१६६
चुम्बने तालुविच्छेदो द्वौ हस्तौ परिरम्भणे।
हस्तस्याङ्गुलिविच्छेदः केशादिग्रहणे स्त्रियः ॥१६७
दाहयेत्तप्ततैलेन हस्तमुष्ट्या च ताडनम्।
सुरतं याचमानस्य जिह्वाच्छेदं च कामतः ॥१६८
कामेङ्गितेषु सर्वत्र ताल्वोश्च दहनं स्मृतम्।
दृष्ट्वा मुहुः प्रेरणे तु नेत्रयोः स्फोटनं चरेत् ॥१६६
मानकूटं तुलाकूटं कूटसाक्ष्यकृतां नृणाम्।
सहस्रं दापयेद्दण्डं वृत्त्या स्वस्यापनायने ॥२००

येषु केषु च पापेषु शरीरे दण्डनं स्मृतम् ।
तेषु तेष्वङ्कनेनैव अक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥२०१

पापानेवाङ्कयित्वाऽस्य मुण्डयित्वा शिरोरुहान् ।
सर्वस्वहरणं कृत्वा राष्ट्रात् सम्यक् प्रवासयेत् ॥२०२

अवैष्णवं विकर्मस्थं हरिवासरभोजनम् ।
ब्राह्मणं गार्दभं यानमारोप्यैव विवासयेत् ॥२०३

न्यायेन पालयेद्राजा धर्मान् षड्भाग माहरेत् ।
त्रिभागमाहरेद्धान्याद्धनात् षड्भागमेव च ॥२०४

गोभूहिरण्यवासोभिर्धान्यरत्नविभूषणैः ।
पूजयेद्ब्राह्मणान् भक्त्या पोषयेच्च विशेषतः ॥२०५

विम्बानि स्थापयेद्विष्णोर्ग्रामेषु नगरेषु च ।
चैत्यान्यायतनान्यस्य रम्याण्येव तु कारयेत् ॥२०६

वसुपुष्पोपहारौघं भूधेन्वादि समर्पयेत् ।
इतरेषां सुराणां च वैदिकानां जनेश्वरः ॥२०७

धर्मतः कारयेद्यश्च चैत्यान्यायतनानि तु ।
वापी कूपतडागादि फलपुष्पवनानि च ॥२०८

कुर्वीत सुविशालानि पूर्वकान्यपि पालयेत् ।
फलितं पुष्पितं वाऽपि वनं छिन्द्यात्तु यो नरः ॥२०६

तडागसेतुं यो भिन्द्यात् तं शूलेनानुरोहयेत् ।
अग्निदं गरदं गोघ्नं बालस्त्रीगुरुघातिनम् ॥२१०

भगिनीं मातरं पुत्रीं गुरुदारान् स्नुषामपि ।
साध्वीं तपस्विनीं वाऽपि गच्छन्तमतिपापिनम् ॥२११

हिंस्रयन्त्रप्रयोक्तारं दाहयेद् वै कटाग्निना।
अदण्डयित्वा दुर्वृत्तान् तत्पापं पृथिवीपतिः ॥२१२
सम्प्राप्य निरयं गच्छेत्तस्मात्तान् दण्डयेत्तथा।
यः स्ववर्णाश्रमं हित्वा स्वच्छन्देन तु वर्तयेत् ॥२१३
तं दण्डयेद्वर्षशतं नाशयेत्तद्विदेशतः।
सर्वेष्वेतेषु पापेषु धनदण्डं प्रयोजयेत् ॥२१४
पितेव पालयेद्भृत्यान् प्रजाश्च पृथिवीपतिः।
प्रजासंरक्षणार्थाय संग्रामं कारयेन्नृपः ॥२१५
तस्मिन् मृत्युर्भवेच्छ्रेयो राज्ञः संग्राममूर्द्धनि।
मृतेन लभ्यते स्वर्गं जितेन पृथिवी त्वियम् ॥२१६
यशः कीर्त्तिविवृध्यर्थं धर्मसंग्राममाचरेत्।
मुक्तशीर्षं मुक्तवस्त्रं त्यक्तहेतिं पलायितम् ॥२१७
न हन्याद्बन्दिनं राजा युद्धे प्रेक्षणकृज्जनान्।
भग्ने स्वसैन्यपुञ्जे च संग्रामे विनिवर्त्तिनः ॥२१८
पदे पदे समग्रस्य यज्ञस्य फलमश्नुते।
नातः परतरो धर्मो नृपाणां नरशालिनाम् ॥२१९
युद्धलब्धा महीशस्य दीयते नृपसत्तमैः।
जित्वा शत्रून्महीं लब्ध्वा लब्धां यत्नेन पालयेत् ॥२२०
पालितां वर्धयेन्नित्यं वृद्धां पात्रे विनिक्षिपेत्।
पात्रमित्युच्यते विप्रस्तपोविद्यासमन्वितः ॥२२१
न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता।
श्रुतमध्ययनं शीलं तप इत्युच्यते बुधैः ॥२२२

ईश्वरस्याऽऽत्मनश्चापि ज्ञानं विद्येति चोच्यते।
तथाविधेषु पात्रेषु दत्त्वा भूमिं धनं नृपः ॥२२३
शासनं कारयेत्सम्यक् स्वहस्तलिखितादिभिः।
उपजीव्योपसर्पेच्च रम्ये देशे नृपोत्तमः ॥२२४
दुर्गाणि तत्र कुर्वीत जनकस्यात्मगुप्तये।
तत्र कर्मसु निष्णातान् कुशलान् धर्मनिष्ठितान् ॥२२५
सत्यशौचयुतान् शुद्धानध्यक्षान् स्थापयेत् नृपः।
अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सबन्धके ॥२२६
अबन्धके स्याद् द्विगुणं यथा तत्कालमात्रकम्।
लेखयेत्तदृणं सम्यक् समामासादिकल्पनैः ॥२२७
देयं सवृद्धयाधविके(धनिने) पुरुषैस्त्रिभिरेव तत्।
निर्धनस्तु शनैर्दद्याद्यथाकालं यथोदयम् ॥२२८
औद्धत्याद्वा बलाद्वा तु न दद्याद्धनिने ऋणम्।
दण्डयित्वैव तं राजा धनिने दापयेदृणम् ॥२२९
छिन्ने दग्धेऽथवा पत्रे साक्षिभिः परिकल्पयेत्।
वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणादिभिः ॥२३०
न सन्ति साक्षिण स्तत्र देशकालान्तरादिभिः।
शोधयित्वा तु दिव्येन दापयेद्धनिने ऋणम् ॥२३१
मध्यस्थस्थापितं द्रव्यं वर्धते न ततः परम्।
कृते प्रतिग्रहे चाऽऽधौ पूर्वो वै बलवत्तरः ॥२३२
अवधिर्द्विविधं प्रोक्तं भोग्यं गोप्यं तथैव च।
क्षेत्रारामादिकं भोग्यं गोप्यं द्रव्यमुपस्करम् ॥२३३

गोप्याधिभोग्ये नो वृद्धिः सोपस्कारे तथापि ते।
नष्टं देयं विनष्टञ्च द्रव्यं राजकृताद्दते ॥२३४
उपस्थितस्य भोक्तव्य माधिस्तेनोऽन्यथा भवेत्।
प्रयोजने सति धनं कुलेऽन्यस्याधिमाप्नुयात् ॥२३५
तत्कालकृतमूल्ये वा तत्र तिष्ठेदवृद्धिकम्।
विना धारणकाद्वापि विक्रीणीतमसाक्षिकम् ॥२३६
तं वनस्थमनाख्याय धान्यमस्य न दीयते।
तदा यदधिकं द्रव्यं प्रतिदेयं तथैव च ॥२३७
न दाप्योऽपहृतन्त्यक्तराजदैविकतस्करैः।
न प्रदद्यात्तु तन्मोहात्स दण्ड्य श्चोरवत्तदा ॥२३८
ददीत स्वेच्छया दण्डं दापयेद्वापि सोदरम्।
याचितान्वाहितन्यायान्निक्षेपादिष्वयं विधिः ॥२३९
सुराकामद्यूतकृतं वृथा दानं तथैव च।
दण्डशुल्कानुशिष्टञ्च पुत्रो दद्यान्न पैतृकम् ॥२४०
पितरि प्रोषिते प्रेते व्यसनाभिप्लुतेऽपि वा।
पुत्रपौत्रैर्ऋणं देयं निह्नुते साक्षिचोदितम् ॥२४१
रिक्थग्राही ऋणं दद्याद्योषिद्ग्राहस्तथैव च।
पुत्रो न स्वाश्रितद्रव्यः पुत्रहीनस्तु रिक्थिनः ॥२४२
प्रातिभाव्य मृणं साक्ष्यं देयं तस्मै यथोचितम्।
दीयते स्यात्प्रतिभुवा धनिने तु ऋणं यथा ॥२४३
द्विगुणं तत्प्रदातव्यं दण्डं राज्ञे च तत्समम्।
पुत्रादिभिर्न दातव्यं प्रविभाव्य मृणं स्त्रियाम् ॥२४४

प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या चैवहि यत् कृतम्।
स्वयं कृतं तु यद्दणं नान्यस्त्री दातुमर्हति ॥२४५
पत्यौ स्वकं धनं पुत्रा विभजेयुः सुनिर्णितम्।
मातृकञ्चेद् दुहितरस्तदभावे तु तत्सुत ॥२४६
भगिन्यश्च प्रमुदिताः पैतृकादाहरेद्धनात्।
न स्त्रीधनं तु दायादा विभजेयुरनापदि ॥२४७
पितृमातृसुताभ्रातृपत्यपत्याद्युपागतम्।
आधिवेतनिकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ॥२४८
अपुत्रा योषितश्चैव भर्तव्या साधुवृत्तयः।
निर्वास्या व्यभिचारिण्यः प्रतिकूलास्तथैव च ॥२४९
नैव भागं वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।
पाषण्डपतितानां च नचावदिककर्मणाम् ॥२५०
विभक्तष्वनुजो जातः सवर्णो यदि भागभाक्।
अविभक्तपितृकाणां पितृव्यात् भागकल्पना ॥२५१
द्वै मातृणां मातृतश्च कल्पयेद्वा समोऽपिवा।
विभक्तस्यास्य पुत्रस्य पत्नी दुहितरस्तथा ॥२५२
पितरौ भ्रातरश्चैव तत्सुताश्च सपिण्डिनः।
सम्बन्धिबान्धवाश्चैव क्रमाद् वै रिक्थभागिनः ॥२५३
सीम्नोऽपवादे क्षेत्रेषु सामन्ताः स्थविरादयः।
गोपाः सीमाकृषाणां च सर्वे भवनगोचराः ॥२५४
नयेयु रेते सीमानं स्थूणाङ्गारतुषद्रुमैः।
न तु वल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैरुपशोभिताः ॥२५५

औरसो दत्तकश्चैव क्रीतः कृत्रिम एव च।
क्षेत्रजः कानिकश्चैव दौहित्रः सत्तमः स्मृतः ॥२५६
पिण्डजश्च परश्चैषां पूर्वाभावे परः परः।
पुत्रः पौत्रश्च तत्पुत्रः पुत्रिकापुत्र एव च ॥२५७
पुत्री च भ्रातरश्चैव पिण्डदाः स्युर्यथाक्रमात्।
एवं धर्मेण नृपतिः शासयेत्सर्वदा प्रजाः ॥२५८
यदुक्तं मनुना धर्मं व्यवहारपदं प्रति।
विलोक्य तच्च विद्वद्भि र्वीतरागै र्विमत्सरैः ॥२५९
विमृश्य धर्मविद्भिश्च विमलैः पापभीरुभिः।
धर्मेणैव सदा राजा शासयेत् पृथिवीं स्वकाम् ॥२६०
विपरीतां दण्डयेद्वै यावद्दर्पोपनाशनम्।
सभ्या अपि च दण्ड्या वै शास्त्रमार्गविरोधिनः ॥२६१
राजधर्मोऽयमित्येवं प्रसङ्गात् कथितो मया।
कात्यायनेन मनुना याज्ञवल्क्येन धीमता ॥२६२
नारदेन च सम्प्रोक्तं विस्तरादिदमेव हि।
तस्मान्मया विस्तरेण नोक्त मत्र नृपोत्तम! ॥२६३
परं भागवतं धर्मं विस्तरेण ब्रवीमि ते।
विष्णोरभ्यर्चनं यत्तु नित्यं नैमित्तिकं नृप! ॥२६४
यदाह भगवान् धातुस्तेन स्वायम्भुवस्य च।
नारदस्य च मे सम्यक् तदद्य कथयामि ते ॥२६५

इति वृद्धहारीतस्मृतौ विशिष्टधर्मशास्त्रे प्राप्तकालभगवत्-
समाराधनविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः।

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम्।

अम्बरीष उवाच ।

भगवन् ! ब्रह्मणा यत् तु सम्प्रोक्तं स्यान्मनोः पुरा ।
तत्सर्वं परमं धर्मं वक्तुमर्हसि मेऽनघ ! ॥१

हारीत उवाच ।

सर्गादौ लोककर्ताऽसौ भगवान् पद्मसम्भवः ।
मन्वादिप्रमुखान् विप्रान् ससृजे धर्मगुप्तये ॥२
मनु र्भृगु र्वशिष्ठश्च मरीचि र्दक्ष एव च ।
अङ्गिराः पुलहश्चैव पुलस्त्योऽत्रिर्महातपाः ॥३
वेदान्तपारगास्ते च तं प्रणम्य जगद्गुरुम् ।
भगवन्! परमं धर्मं भवबन्धापनुत्तये ॥४
वद सर्वमशेषेण श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।
इत्युक्तः स द्विजैः सोऽपि ब्रह्मा नत्वा जनार्दनम् ॥५
वेदान्तगोचरं धर्मं तेषां वक्तुं प्रचक्रमे ।
सर्वेषामवलोकानां स्रष्टा धाता जनार्दनः ॥६
सर्ववेदान्ततत्वार्थसर्वयज्ञमयः प्रभुः ।
यज्ञो वै विष्णुरित्यत्र प्रत्यक्षं श्रूयते श्रुतिः ॥७
इज्यते यत् समुद्दिश्य परमो धर्म उच्यते ।
भगवन्त मनुद्दिश्य हूयते यत्र कुत्र वै ॥८
तत्र हिंसाफलं पापं भवेदत्र विगर्हितम् ।
तस्मात् सर्वस्य यज्ञस्य भोक्तारं पुरुषं हरिम् ॥९

ध्यात्वैव जुहुयात्तस्मै हव्यं दीप्ते हुताशने।
मुखमग्निर्भगवतो विष्णोः सर्वगतस्य वै ॥१०
तस्मिन्नैव यजन्नित्यमुत्तमं मुनिसत्तमाः!।
यजेद्विप्रमुखे शक्त्या जलमन्नं फलादिकम् ॥११
प्रीतये वासुदेवस्य सर्वभूतनिवासिनः।
तमेव चार्चयेन्नित्यं नमस्कुर्यात्तमेव हि ॥१२
ध्यात्वा जपेत्तमेवेशं तमेव ध्यापयेद्धृदि।
तन्नामैव प्रणातव्यं वाचा वक्तव्य मेव च ॥१३
व्रतोपवासनियमान् तमुद्दिश्यैव कारयेत्।
तत्समर्पितभोगः स्यादन्नपानादिभक्षणैः ॥१४
मतिः स्वार्थः सदारेषु नेतरत्र कदाचन।
न हिंस्यात्सर्वभूतानि यज्ञेषु विधिना विना ॥१५
सोऽहं दासो भगवतो मम स्वामी जनार्दनः।
एवं वृत्तिर्भवेदस्मिन् स्वधर्मः परमो मतः ॥१६
एष निष्कण्टकः पन्था तस्य विष्णोः परं पदम्।
अन्यन्तु कुपथं ज्ञेयं निरयप्राप्तिहेतुकम् ॥१७
भगवन्त मनुद्दिश्य यः कर्म कुरुते नरः।
स पाषण्डीति विज्ञेयः सर्वलोकेषु गर्हितः ॥१८
यो हि विष्णु परित्यज्य सर्वलोकेश्वरं हरिम्।
इतरानर्चते मोहात्स लोकायतिकः मृतः ॥१९
उक्तधर्मं परित्यज्य यो ह्यधर्मे च वर्तते।
पतितः स तु विज्ञेयः सर्वधर्मवहिष्कृतः ॥२०

यः कर्म कुरुते विप्रो विना विष्ण्वर्चनं क्वचित्।
ब्राह्मण्याद् भ्रश्यते सद्य श्चण्डालत्वं स गच्छति ॥२१

ब्राह्मणो वैष्णवो विप्रो गुरुरग्र्यूश्च वेदवित्।
पर्य्यायेण च विद्येत नामानि क्ष्मासुरस्य हि ॥२२

तस्मादवैष्णवत्वेन विप्रत्वाद् भ्रश्यते हि सः।
अर्चयित्वाऽपि गोविन्दमितरानर्च्चयेत् पृथक् ॥२३

अवैष्णवत्वं तस्यापि मिश्रभक्त्या भवेद् ध्रुवम्।
भोक्तारं सर्वयज्ञानां सर्वलोकेश्वरं हरिम् ॥२४

ज्ञात्वा तत्प्रीतये सर्वान् जुहुयात्सततं हरिम्।
दानं तपश्च यज्ञश्च त्रिविधं कर्म कीर्तितम् ॥२५

तत्सर्वं भगवत्प्रीत्यै कुर्वीत सुसमाहितः।
तस्मात्तु वैष्णवा विप्राः पूजनीया यथा हरिः ॥२६

ये तु वै हेतुकं वाक्यमाश्रित्यैव स्ववाग्बलात्।
वैष्णवं प्रतिषिध्यन्ति ते लोकायतिकाः स्मृताः ॥२७

यो यत्तु वैष्णवं लिङ्गं धृत्वा च तमसाऽऽवृतः।
त्यजेच्चैद्वैष्णवं धर्मं सोऽपि पाषण्डतां व्रजेत् ॥२८

तस्मात्तु वैष्णवो भूत्वा वैदिकीं वृत्तिमाश्रितः।
कुर्वीत भगवत्प्रीत्यै कुर्य्याद्यज्ञादिकर्म यत् ॥२९

तद्विशिष्टमिति प्रोक्तं सामान्यमितरं स्मृतम्।
फलहीना भवेत्सा तु सामान्या वैदिकक्रिया ॥३०

तोयवर्जितवापीव निरर्थी भवति ध्रुवम्।
नैसर्गिकन्तु जीवानां दास्यं विष्णोः सनातनम् ॥३१

तद्विना वर्त्तते मोहादात्मचारः सनातनात् ।
तस्मात्तु भगवद्दास्यमात्मनां श्रुतिचोदितम् ॥३२
दास्यं विना कृतं यत्तु तदेव कलुषं भवेत् ।
विशिष्टं परमं धर्मं दास्यं भगवतो हरेः ॥३३

ऋषय ऊचुः !

कथं दास्यं हि तद्वृत्तिः कथं नैसर्गिकं नृणाम् ।
तत्सर्वं ब्रूहि तत्वेन लोकानुग्रहकाम्यया ॥३४

ब्रह्मोवाच ।

सुदर्शनोर्ध्वं पुण्ड्रादिधारणं दास्यमुच्यते ।
तद्विधिर्वैदिकी या च तदाज्ञा चोदिता क्रिया ॥३५
तत्राप्याराधनत्वेन कृता पापस्य नाशिनी ।
निरूपणत्वाद्दास्यस्य धार्यं चक्रं महात्मनः ॥३६
अङ्गत्वात् सर्वधर्माणां वैष्णवत्वाच्च धर्म्मतः ।
कर्म कुर्याद्भगवतस्तस्मै राज्ञा मनुस्मरन् ॥३७
विधिनैव प्रतप्तेन चक्रेणवाङ्कयेद्भुजे ।
तथैव विभृयाद्भाले पुण्ड्रं शुभ्रतरं मृदा ॥३८
विभृयादुपवीतन्तु सव्यस्कन्धे विधानतः ।
कण्ठे पद्माक्षमालाञ्च कौशेयं दक्षिणे करे ॥३९
उभे चिह्ने विना विप्रो न भवेद्धि कथञ्चन ।
न लभेत्कर्मणां सिद्धिं वैदिकानां विशेषतः ॥४०
आश्रमाणां चतुर्णाञ्च स्त्रीणाञ्च श्रुतिचोदनात् ।
अङ्कयेच्चक्रशङ्खाभ्यां प्रतप्ताभ्यां विधानतः ॥४१

एकैकमुपवीतन्तु यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
गृहिणाञ्च वनस्थाना मुपवीतद्वयं स्मृतम् ।।४२
सोत्तरीयं त्रयं वाऽपि विभृयाच्छुभतन्तुना ।
त्रयमूर्ध्वं द्वयं तन्तु तन्तुत्रय मधोवृतम् ।।४३
त्रिवृच्च ग्रन्थिनैकेन उपवीतमिहोच्यते ।
अर्ककार्पासकौशेयक्षौमशोणमयानि च ।।४४
तन्तूनि चोपवीतानां योज्यानि मुनिसत्तमाः ! ।
सर्वेषामप्यलाभे तु कुर्य्यात् कुशमयं द्विजः ।।४५
ऐणेयमुत्तरीयं स्याद्वनस्थब्रह्मचारिणाम् ।
शुक्लकाषायवसने गृहस्थस्य यतेः क्रमात् ।।४६
उक्तालाभेषु सर्वेषाङ्कुशचीरं विशिष्यते ।
मौञ्जी वै मेखला दण्डं पालाशं ब्रह्मचारिणः ।।४७
त्रयस्तु वैष्णवा दण्डा यतेः काषायवाससी ।
कुशाचीरं वल्कलं वा वनस्थस्य विधीयते ।।४८
कटीसूत्रञ्च कौपीनं महच्च शुक्लवाससा !
कुण्डके चाङ्गुलीयानि गृहस्थस्य विधीयते ।।४६
मुण्डिनौ सूक्ष्मशिखिनौ यत्यन्तेवासिनावुभौ ।
वानप्रस्थो यतिर्वा स्यात्सदा वै श्मश्रुरोमधृत् ।।५०
सुकेशी सुशिखो वा स्याद् गृहस्थः सौम्यवेषवान् ।
यतिश्च ब्रह्मचारी च उभौ भिक्षाशनौ स्मृतौ ।।५१
शाकमूलफलाशी स्याद्वनस्थः सततं द्विजः ।
कुसूलकुम्भधान्यो वा त्र्याहिको वा भवेद्गृही ।।५२

प्रतिगृहेण सौम्येन जीवेद्यायावरेण वा।
यस्त्वेकं दण्डमालम्ब्य धर्मं ब्राह्मं परित्यजेत् ॥५३
विकर्म्मस्थो भवेद्विप्रः स याति नरकं ध्रुवम्।
शिखायज्ञोपवीतादि ब्रह्मकर्म यतिस्त्यजेत् ॥५४
सजीवं न च चण्डालो मृतश्वानोऽभिजायते।
स्वरूपेणैव धर्मस्य त्यागो हानिर्भवेद् ध्रुवम् ॥५५
कर्मणां फलसन्त्यागः सन्न्यासः स उदाहृतः।
अनाश्रितः कर्मफलं कृत्यं कर्म समाचरेत् ॥५६
स सन्न्यासी च योगी च स मुनिः सात्विकः स्मृतः।
तुष्ट्यर्थं वासुदेवस्य धर्मं वै यः समाचरेत् ॥५७
स योगी परमेकान्तं हरेः प्रियतमो भवेत्।
मोहाद्दास्यं विना विष्णोः किञ्चित्कर्म समाचरेत् ॥५८
न तस्य फलमाप्नोति तामसीं गतिमश्नुते।
हित्वा यज्ञोपवीतन्तु हित्वा चक्रस्य धारणम् ॥५९
हित्वा शिखोर्ध्वपुण्ड्रं च विप्रत्वाद् भ्रश्यते ध्रुवम्।
पञ्चसंस्कारपूर्वेण मन्त्रमध्यापयेद् गुरुः ॥६०
संस्काराः पञ्च कर्तव्याः पारमैकान्त्यसिद्धये।
प्रतिसम्वत्सरं कुर्य्यादुपाकर्म ह्यनुत्तमम् ॥६१
सर्ववेदव्रतं कृत्वा तत्र सम्पूजयेद्धरिम्।
दद्यादत्रोपवीतानि विष्णवे परमात्मने ॥६२
ब्राह्मणेभ्यश्च दत्त्वाऽथ विभृयात् स्वयमेव च।
तदग्नौ पूज्य सन्तर्प्य चक्रञ्चैवाङ्कयेद् भुजे ॥६३

एवं प्रात्याह्निकं धार्यमुपवीतं सुदर्शनम् ।
पुण्ड्रास्तु प्रतिसन्ध्यन्तु नित्यमेव च धारयेत् ॥६४

द्वारवत्युद्भवं गोपी चन्दनं वेङ्कटोद्भवम् ।
सान्तरालं प्रकुर्वीत पुण्ड्रं हरिपदाकृति ॥६५

श्राद्धकाले विशेषेण कर्ता भोक्ता च धारयेत् ।
अथं पञ्चकतत्वज्ञः पञ्चसंस्कारदीक्षितः ॥६६

महाभागवतो विप्रः सततं पूजयेद्धरिम् ।
नारायणः परं ब्रह्म विप्राणां दैवतं सदा ॥६७

तस्य भुक्तावशेषन्तु पावनं मुनिसत्तमाः ! ।
हरिभुक्तोऽपि तं दद्यात्पितॄणाञ्च दिवौकसाम् ॥६८

तदेव जुहुयाद् वह्नौ भुञ्जीयात्तु तदेव हि ।
हरेरनर्पितं यत्तु देवानामर्पितञ्च यत् ॥६९

मद्यमांससमं प्रोक्तं तद्भुञ्जीयात्कदाचन !
हरेः पादजलं प्राश्यं नित्यं नान्यद्दिवौकसाम् ॥७०

सुराणामितरेषां तु फलपुष्पजलादिकम् ।
निर्माल्यमशुभं प्रोक्तमस्पृश्यं हि कदाचन ॥७१

विधिर्ह्येष द्विजातीनां नेतरेषां कदाचन ।
शिवार्चनं त्रिपुण्ड्रञ्च शूद्राणां तु विधीयते ॥७२

तद्विधाना मिदं ये च विप्राः शिवपरायणाः ।
ते वै देवलका ज्ञेयाः सर्वकर्मवहिष्कृताः ॥७३

वैखानसास्तु ये विप्राः हरिपूजनतत्पराः ।
न ते देवलका ज्ञेया हरिपादाब्जसंश्रयात् ॥७४

नापहृत्य हरेद्द्रव्यं ग्रामार्च्चनपरो भवेत् ।
भक्त्या संपूज्य देवेशं नासौ देवलकः स्मृतः ॥७५

भक्त्या योऽभ्यर्चयेद्देवं ग्रामार्च्चं हरिमव्ययम् ।
प्रसादतीर्थस्वीकारान्नासौ देवलकः स्मृतः ॥७६

शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिधारणं स्मरणं हरेः ।
तन्नामकीर्तनञ्चैव तत्पादाम्बुनिषेवणम् ॥७७

तत्पादवन्दनञ्चैव तं निवेदितभोजनम् ।
एकादश्युपवासश्च तुलस्यैवार्चनं हरेः ॥७८

तदीयानामर्चनञ्च भक्तिर्नवविधास्मृता ।
एतैर्नवविधैर्युक्तो वैष्णवः प्रोच्यते बुधैः ॥७९

एतैर्गुणैर्विहीनस्तु न तु विप्रो न वैष्णवः ।
कर्मणा मनसा वाचा न प्रमाद्येज्जनार्दनम् ॥८०

भक्तिः सा सात्विकी ज्ञेया भवेदव्यभिचारिणी ।
नान्यं देवं नमस्कुर्य्यान्नान्यं देवं प्रपूजयेत् ॥८१

नान्यप्रसादं भुञ्जीत नान्यदायतनं विशेत् ।
न त्रिपुण्ड्रं तथा कुर्य्यात्पस्याकारं जगत्त्रयम् ॥८२

यतिर्यस्य गृहे भुङ्क्ते तस्य भुङ्क्ते हरिं स्वयम् ।
हरिर्यस्य गृहे भुङ्क्ते तस्य भुङ्क्ते जगत्त्रयम् ॥८३

महाभागवतो विप्रः सततं पूजयेद्धरिम् ।
पाञ्चकाल्प विधानेन निमित्तेषु विशेषतः ॥८४

अप्स्वग्नौ हृदये सूर्य्ये स्थण्डिले प्रतिमासु च ।
षट्सु तेषु हरेः पूजा नित्यमेव विधीयते ॥८५

स्नानकाले तु संप्राप्ते नद्यां पुण्यजले शुभे ।
ध्यात्वा नारायणं देवं नागपर्यङ्कशायिनम् ॥८६

द्वादशार्णेन मनुना सोऽर्चयित्वाऽक्षतादिभिः ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ततः स्नानं समाचरेत् ॥८७

एतदप्यर्चनं प्रोक्तं ब्राह्मणस्य जगत्पतेः ।
होमकाले तु सन्तं परिस्तीर्यानलं शुभम् ॥८८

यज्ञरूपं महात्मानं चिन्तयेत् पुरुषोत्तमम् ।
साङ्गत्रयीमयं शुभ्रदिव्याङ्गोपाङ्गशोभितम् ॥८९

सर्वलक्षणसम्पन्नं शुद्धजाम्बूनदप्रभम् ।
युवानं पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रधनुर्धरम् ॥९०

सर्वयज्ञमयं ध्यायेद्वामाङ्काश्रितपद्मया ।
सम्पूज्य चाक्षतैरेव पश्चाद्धोमं समाचरेत् ॥९१

प्राणाग्निहोत्रसमये सम्यगाचम्य वारिणा ।
कुशासने समासीनः प्राग्वा प्रत्यङमुखोऽपि वा ।
पतिष्ठ्यासनमात्मानं प्राणायामं समाचरेत् ॥९२

मन्त्रेणोद्बुध्य हृदयपङ्कजं केशरान्वितम् ।
तस्मिन्वह्न्यर्कशीतांशुबिम्बान्यनु विचिन्तयेत् ॥९३

सर्वाक्षरमयं दिव्यरत्नपीठं तदुत्तरे ।
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं ध्यायेत्कल्पतरोरधः ॥९४

वीरासने समासीनं तस्मिन्नीशं विचिन्तयेत् ।
स्निग्धदूर्वादलश्यामं सुन्दरं भूषणैर्युतम् ॥९५

पीताम्बरं युवानं च चन्दनस्रग्विभूषितम्।
शरत्पद्मासनं रत्नपद्माभाङ्घ्रिकरद्वयम्॥९६
स्निग्धवर्णं महाबाहुं विशालोरस्कमव्ययम्।
चक्रशङ्खगदाबाणपाणिं रघुवरं हरिम्॥९७
जानकीलक्ष्मणोपेतं मनसैवार्चयेद्विभुम्।
मन्त्रद्वयेनार्चयित्वा जप्त्वा चैव षडक्षरम्॥९८
पश्चाद् वै जुहुयात् पञ्च प्राणानभ्यर्च्य तं पुनः।
ध्यायन्वै मनसा विष्णुं सुखं भुञ्जीत वाग्यतः॥९९
एवं ह्यर्चनं विष्णोरुक्तमं मुनिसत्तमाः!।
अत्यन्ताभिमता विष्णो हृत्पूजा परमात्मनः॥१००
सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते रविमण्डलमध्यगम्।
हिरण्यगर्भं पुरुषं हिरण्मयवपुषं हरिम्॥१०१
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं वैजयन्तीविराजितम्।
शङ्खचक्रादिभिर्युक्तं भूषितैर्दोर्भिरायतैः॥१०२
शुक्लाम्बरधरं विष्णुं मुक्ताहारविभूषितम्।
ध्यात्वा समर्चयेद्देवं कुसुमैरक्षतैरपि॥१०३
प्रणवेण च सावित्र्या पश्चात् सूक्तं निवेदयेत्।
ध्यायन्नेवं जपेद्विष्णुं गायत्रीं भक्तिसंयुतः॥१०४
तथैवाभ्यर्च्य गोविन्दं नमस्कृत्वा विसर्जयेत्।
एवमभ्यर्चयेद्देवं त्रिसन्ध्यासु तथा हरिम्॥१०५
वैश्वदेवावसाने तु पुरस्ताद् वै विभावसोः।
उपलिप्य स्थण्डिले तु जुहुयाद्भक्तिकर्म तत्॥१०६

ध्यात्वा सर्वगतं विष्णुं घनश्यामं सुलोचनम् ।
कौस्तुभोद्भासितोरस्कं तुलसीवनमालिनम् ॥१०७

पीताम्बरधरं देवं रत्नकुण्डलशोभितम् ।
हरिचन्दनलिप्ताङ्गं पुण्डरीकायतेक्षणम् ॥१०८

मौक्तिकान्वितनासाग्रं जगन्मोहनविग्रहम् ।
गोपीजनैः परिवृतं वेणुं गायन्तमच्युतम् ॥१०६

ध्यात्वा कृष्णं जगन्नाथं पूजयित्वा यथाविधि ।
जुहुयाद्धरिचक्रं तद्देवानुद्दिश्य सत्तमाः ! ॥११०

जप्त्वा कृष्णमनुं पश्चादभ्यर्च्य मनसा हरिम् ।
आचम्य प्रयतो भूत्वा नमस्कृत्य विसर्जयेत् ॥१११

स्थण्डिलेऽभ्यर्चनं विष्णोरेवं कुर्याद्विधानतः ।
त्रिसन्ध्यास्वर्चयेद् विष्णुं प्रतिमासु विशेषतः ॥११२

सुवर्णरजताद्यैर्वा शिलादार्वादिनाऽपि वा ।
कृत्वा बिम्बं हरेः सम्यक् सर्वावयवशोभितम् ॥११३

सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वायुध समन्वितम् ।
ततोऽधिवासनं कुर्यात्त्रिरात्रं शुद्धवारिषु ॥११४

तत्रार्चयेद्विधानेन जपहोमादिकर्मभिः ।
स्नाप्य पञ्चामृतैर्गव्यैस्तदा मन्त्रजलैरपि ॥११५

यज्ञपेद्यां समारोप्य पूजयेत्तत्र दीक्षितः ।
मङ्गलद्रव्यसंयुक्तैः पूर्णकुम्भैः समन्वितः ॥११६

शरावैर्द्रव्यसम्पूर्णैः पताकैस्तोरणादिभिः ।
कुम्भेषु वासुदेवादीन् सुरान् संपूजयेत् क्रमात् ॥११७

वासुदेवो हयग्रीवस्तथा सङ्कर्षणो विभुः।
महावराहः प्रद्युम्नो नारसिंहस्तथैव च ॥११८
अनिरुद्धो वामनश्च पूजनीया यथाक्रमात्।
तस्य पूर्णशरावेषु लोकेशानर्चयेत्ततः ॥११९
मध्ये तु वारुणं कुम्भं पञ्चरत्नसमन्वितम्।
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्ध्यात्वाऽस्मिन् जलशायिनम् ॥१२०
ततः संपूजयेद्देवं धान्योपरि निधाय च ॥१२१
व्याघ्रचर्म्म समास्तीर्य तस्मिन् कौशेयवाससि।
निवेद्य पूजयेद् बिम्बं मूलमन्त्रेण वैष्णवः ॥१२२
तारणेषु चतुर्दिक्षु चण्डादीनर्चयेत् तदा।
कुमुदादिं सुरान् दिक्षु तथा धर्मादिदेवताः ॥१२३
संपूज्य विधिना तस्मिन् पश्चाद्धोमं समाचरेत्।
आग्नेयं कल्पयेत् कुण्डं मेखलाद्युपशोभितम् ॥१२४
अश्वत्थाद् वा शमीगर्भादाहृत्याग्नौ विनिक्षिपेत्।
वैष्णवस्य गृहाद्वाऽपि समानीयानलं द्विजः ॥१२५
गृह्योक्तविधिनेवात्र प्रतिष्ठाप्य हुताशनम्।
इध्माधानादि पर्यन्तं कृत्वा होमं समाचरेत् ॥१२६
पायसेन गवाज्येन तिलैर्व्रीहिभिरेव च।
चतुर्भिर्वैष्णवैः सूक्तैः पायसं जुहुयाद्धविः ॥१२७
हिरण्यगर्भसूक्तेन श्रीसूक्तेन तथैव च।
अहं रुद्रेभिरिति च गवाज्यं जुहुयात्ततः ॥१२८

त्वमग्ने द्युभिरिति च सूक्तेन प्रत्यृचन्त्रिभिः ।
अस्य वामेति सूक्तेन प्रत्यृचं व्रीहिभिस्तथा ॥१२६

अग्निं नरो दीधितिभिः सूक्तेन प्रत्यृचं तथा ।
समिद्भिः पिप्पलीरौद्रैर्होतव्यं मुनिसत्तमाः ! ॥१३०

अष्टोत्तरं सहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा
होतव्यमाज्यं पश्चात्तु तथा मन्त्र चतुष्टयम् ॥१३१

वैकुण्ठपार्षदं होमं पायसेन घृतेन वा ।
समाप्य होमं हविषः शेषं तस्मै निवेदयेत् ।
चतुर्मन्त्रांश्चतुर्वेदांश्चतुर्दिक्षु जपेत्ततः ॥१३२

तत्र जागरणं कुर्य्याद्गीतवादित्रनर्तकैः ।
रजन्यां तु व्यतीतायां स्नात्वा नद्यां विधानतः ॥१३३

वैकुण्ठतर्पणं कुर्य्यादृत्विग्भिर्ब्राह्मणैः सह ।
तर्पयित्वा पितॄन् देवान्वाग्यतो भवनं विशेत् ॥१३४

आचम्य पूर्ववत् पूजां कृत्वा होमं समाचरेत् ।
जुहुयाद्ब्रह्मणः स्तुत्यैः सूक्तैश्च घृतपायसम् ॥१३५

पौरुषेण तु सूक्तेन श्रीसूक्तेन तथैव च ।
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा कर्मशेषं समापयेत् ॥१३६

नयनोन्मीलनं कुर्य्यात् सुमुहूर्तेन वैष्णवः ।
महाभागवतः श्रेष्ठः सूक्ष्महेमशलाकया ॥१३७

द्वयेनैव प्रकुर्व्वीत नयनोन्मीलनं हरेः ।
निवेश्य भद्रपीठे तु स्नापयेत् सुसमाहितः ॥१३८

सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैर्मृत्विजः कलशोदकैः।
ततस्तन्मध्यमं कुम्भमादाय द्विजसत्तमः ॥१३९
स्नापयेन्मन्त्ररत्नेन शतवारं समाहितः।
सौवर्णेन च ताम्रेण शङ्खेन रजतेन वा ॥१४०
स्नाप्य पञ्चामृतैर्गन्धैरुद्धृत्य शुभचन्दनैः।
मन्त्रेण स्नापयित्वा च तुलसीमिश्रितैर्जलैः ॥१४१
वासोभिर्भूषणैः सम्यगलङ्कृत्य च वैष्णवः।
उपचारैः समभ्यर्च्य पश्चान्नीराजयेत्तदा ॥१४२
अलङ्कृते शुभे गेहे पीठे संस्थापयेद्धरिम्।
सूक्तेनोत्तानपादस्य दृढं स्थाप्य सुखासने ॥१४३
अष्टोत्तरशतं वारं शुभमन्त्रचतुष्टयात्।
ध्यात्वा पुष्पाञ्जलिं दद्यान्महाभागवतोत्तमः ॥१४४
नत्वा गुरून् परं धाम्नि स्थितं देवं सनातनम्।
ध्यात्वैव मन्त्ररत्नेन तस्मिन् बिम्बे निवेशयेत् ॥१४५
अर्चयित्वोपचारैस्तु मङ्गलानि निवेदयेत्।
दर्पणं कपिलां कन्यां शङ्खं दूर्वाक्षतान् पयः ॥१४६
सौवर्णमाज्यं लाजांश्च मधुसर्षपमञ्जनम्।
एवं त्रयोदशो मासि मङ्गलानि निवेदयेत् ॥१४७
तथैव दशमुद्राश्च मन्त्रेणैव समीक्षयेत्।
तद्बिम्बमूर्त्ति मन्त्रेण पश्चाद्दशशतानि तु ॥१४८
पुष्पाणि दद्याद्भक्त्या च जपेच्च सुसमाहितः।
सतिलै स्तण्डुलैः शुभ्रै र्जुहुयाच्च द्विजोत्तमः ! ॥१४९

आशिषो वाचनं कृत्वा दीपैर्नीराजयेत्तदा ।
भोजयित्वा ततो विप्रान् दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥१५०
आचार्यं मृत्विजश्चापि विशेषेण समर्चयेत् ।
तदग्निं संग्रहेन्नित्यं होमार्थं परमात्मनः ॥१५१
त्रिरात्रमुत्सवं तत्र कुर्य्याच्छक्त्या यतात्मवान् ।
वैष्णवैः पापमाप्तुश्च तत्र पुष्पाञ्जलिं चरेत् ॥१५२
आज्येन चरुणा वाऽपि होमं कुर्वीत वैष्णवः ।
प्रत्यहं भोजयेद्विप्रान् वैष्णवान् घृतपायसम् ॥१५३
तन्मूर्तिप्रीतये शक्त्या दद्याद्वासांसि दक्षिणाः ।
कुर्य्यादवभृथेष्टिं च महाभागवतैः सह ॥ १५४
सहस्रनामभिर्विष्णोः सूक्तैर्विष्णुप्रकाशकैः ।
नद्यामवभृथं कृत्वा तर्पयेत्पितृदेवताः ॥१५५
अस्य वामेति सूक्तेन पायसं मधुसंयुतम् ।
आज्येन मूलमन्त्रेण सहस्रं जुहुयात्तदा ॥१५६
आशिषो वाचनं कृत्वा भोजयेद्द्विजसत्तमान् ।
एवं संस्थापयेद्देवमर्चयेद्विधिना तदा ॥१५७
गृहार्चायां स्थापने तु लघुतन्त्रं समाचरेत् ।
आधिवासनवेद्यादि मन्त्रमत्र विवर्जयेत् ॥१५८
एकत्र पञ्चगव्येषु विनिक्षिप्य परेऽहनि ।
पञ्चामृतैः स्नापयित्वा पश्चादुद्वर्तनादिकम् ॥१५९
आदाय कलशं शुद्धं पवित्रोदकपूरितम् ।
निक्षिप्य पञ्चरत्नानि सुवर्णतुलसीदलम् ॥१६०

चन्दनाक्षतदूर्व्वांश्च तिलान् धात्रीश्च सर्षपम्।
अभिमन्त्र्य कुशैः पश्चान्मन्त्ररत्नेन वैष्णवः ॥१६१
शतवारं सहस्रं वा मन्त्रेणैवाभिषेचयेत्।
सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैर्गायत्र्या वैष्णवेन च ॥१६२
नामभिः केशवाद्यैश्च सर्वैर्मन्त्रैश्च वैष्णवैः।
स्नाप्य वस्त्रैर्भूषणैश्च शुभे धान्ये निवेशयेत् ॥१६३
स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य इध्माधानादि पूर्ववत्।
होमं कुर्याद् गव्याज्येन पायसान्नेन वैष्णवः ॥१६४
कर्तुरौपासनाग्नौ तु होममत्र (तन्त्रं) विशिष्यते।
प्रत्यृचं वैष्णवैः सूक्तैर्जुहुयाद् घृतपायसम् ॥१६५
अस्य वामेति सूक्तेन गव्याज्यं जुहुयात्ततः।
मन्त्ररत्नेन जुहुयादष्टोत्तरसहस्रकम् ॥११६६
तद्बिम्बमूर्तिमन्त्रेण तिलहोमं तथैव च।
अविज्ञातस्तु तन्मत्रं मूलमन्त्रेण वा यजेत् ॥१६७
यजेच्छ्रीभूप्रकाशैश्च गायत्र्या विष्णुसंज्ञया।
वैकुण्ठपार्षदं होमं कृत्वा होमं समापयेत् ॥१६८
नयनोन्मीलनं कृत्वा सौवर्णेन कुशेन वा।
निवेश्याऽऽवाहयेत्पीठे मन्त्ररत्नेन वैष्णवः ॥१६९
मन्त्रेणैवार्चनं कृत्वा पश्चात् पुष्पाञ्जलिं यजेत्।
तस्मिन्बिम्बे तु तन्मूर्तिं ध्यात्वा नियतमानसः ॥१७०
अष्टोत्तरसहस्रन्तु दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः।
सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैर्दद्यात् पुष्पाणि वैष्णवः ॥१७१

ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्पायसान्नं घृतान्वितम्।
शक्त्या च दक्षिणां दत्त्वा विशेषेणार्चयेद् गुरुम्॥ १७२
सहस्रनामभिः स्तुत्वा आशीर्भिरभिवादयेत्।
प्रदक्षिणानमस्कारान् कुर्व्वीतात्र पुनः पुनः॥१७३
प्रसीद मम नाथेति भक्त्या सम्प्रार्थयेद्विभुम्।
दीप्तैर्नीराजयेत्पश्चाच्छक्त्या तेन समाहितः॥१७४
हुतशेषं हविः प्राश्य जप्त्वा मन्त्र मनुत्तमम्।
ध्यायन् कमलपत्राक्षं भूमौ स्वप्यात् कुशोत्तरम्॥१७५
एवं गृहार्चा बिम्बस्य विष्णुं संस्थाप्य वैष्णवः।
अर्चयेद्विधिना नित्यं यावद्देहनिपातनम्॥१७६
शालग्रामशिलायान्तु पूजनं परमात्मनः।
कोटिकोटिगुणाधिक्यं भवेदत्र न संशयः॥१७७
न जपो नाधिवासश्च न च संस्थापनक्रिया।
शालग्रामार्चने विष्णुस्तस्मिन् सन्निहितस्तथा॥१७८
मूर्तीनान्तु हरे स्तस्य यस्यां प्रीतिरनुत्तमा।
तस्यामेव तु तां ध्यात्वा पूजयेत् तद्विधानतः॥१७९
मूर्त्यन्तरमबिम्बे तु न यष्टव्यं तदेव तत्।
शालग्रामशिलायान्तु यष्टव्या इष्टमूर्तयः॥१८०
अर्चनं वन्दनं दानं प्रणामं दर्शनं नृणाम्।
शालग्रामशिलायान्तु सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥१८१
न (स)स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
यो वहेच्छिरसा नित्यं सालग्रामशिलाजलम्॥१८२

असत्यकथनं हिंसामभक्ष्याणाञ्च भक्षणम् ।
शालग्रामजलं पीत्वा सर्वं दहति तत्क्षणात् ॥१८३

द्विजानामेव नान्येषां शालग्रामशिलार्चनम् ।
बालकृष्णवपुर्देवं पूजयेत्तद् द्विजः सदा ॥१८४

पठेद्वाऽप्यर्चयेद् विष्णुं विशिष्टः शूद्रयोनिजः ।
स्थण्डिले हृदये वाऽपि पूजयेत्तद् द्विजः सदा ॥१८५

वाराहं नारसिंहञ्च हयग्रीवञ्च वामनम् ।
ब्राह्मणः पूजयेद्विष्णुं यज्ञमूर्तिञ्च केवलम् ॥१८६

क्षत्रियः पूजयेद्रामं केशवं मधुसूदनम् ।
नारायणं वासुदेवमनन्तञ्च जनार्दनम् ॥१८७

प्रद्युम्न मनिरुद्धञ्च गोविन्दञ्चाच्युतं हरिम् ।
सङ्कर्षणं तथा कृष्णं वैश्यः संपूजयेत्तदा ॥१८८

बालं गोपालवेषं वा पूजयेच्छूद्रयोनिजः ।
सर्व एव हि संपूज्या विप्रेण मुनिसत्तमाः ! ॥१८९

सर्वेऽपि भगवन्मन्त्रा जप्तव्याः सर्वसिद्धिदाः ।
तस्माद्द्विजोत्तमः पूज्यः सर्वेषां भूतिमिच्छताम् ॥१९०

पञ्चसंस्कारसम्पन्नो मन्त्ररत्नार्थकोविदः ।
शालग्रामशिलायां तु पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ।
पूजितस्तुलसीपत्रैर्दद्याद्धि सकलं हरिः ॥१९१

यः श्राद्धं कुरुते विप्रः शालग्रामशिलाग्रतः ।
पितॄणां तत्र तृप्तिः स्याद् गयाश्राद्धादनन्तरम् ॥१९२

जप्तं हुतं तथा दानं वन्दनं च ततः क्रिया ।
शालग्रामसमीपे तु सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥१९३

ध्यात्वा कमलपत्राक्षं शालग्रामशिलोपरि ।
पौरुषेण तु सूक्तेन पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥१९४

अनुष्टुभस्य सूक्तस्य त्रिष्टुबन्त्वाऽस्य देवता ।
पुरुषो यो जगद्बीजमृषिर्नारायणः स्मृतः ॥१९५

प्रथमां विन्यसेद्वामे द्वितीयां दक्षिणे करे ।
तृतीयां वामपादे तु चतुर्थीं दक्षिणे तथा ॥१९६

पञ्चमीं वामजानौ तु षष्ठीं वै दक्षिणे तथा ।
सप्तमीं वामकट्यां तु ह्यष्टमीं दक्षिणेऽपि च ॥१९७

नवमीं नाभिदेशे तु दशमीं हृदि विन्यसेत् ।
एकादशीं कण्ठदेशे द्वादशीं वामबाहुके ॥१९८

त्रयोदशीं दक्षिणे तु स्वास्यदेशे चतुर्दशीम् ।
अक्ष्णोः पञ्चदशीं मूर्ध्नि षोडशीञ्चैव विन्यसेत् ॥१९९

एवं न्यासविधिं कृत्वा पश्चाद् ध्यानं समाचरेत् ।
सहस्रार्कप्रतीकाशङ्कन्दर्पायुतसन्निभम् ॥२००

युवानं पुण्डरीकाक्षं सर्वाभरणभूषितम् ।
पीनवृत्तायतैर्दोर्भिश्चतुर्भिर्भूषणान्वितैः ॥२०१

चक्रं पद्मं गदां शङ्खं बिभ्राणं पीतवाससम् ।
शुक्लपुष्पानुलेपञ्च रक्तहस्तपदाम्बुजम् ॥२०२

सुस्निग्धनीलकुटिलकुन्तलैरुपशोभितम् ।
श्रिया भूम्या समाश्लिष्टपार्श्वं ध्यात्वा समर्चयेत् ॥२०३

यथाऽऽत्मनि तथा देवे न्यासकर्म्म समाचरेत्।
आद्ययाऽऽवाहनं विष्णोरासनं च द्वितीयया ॥२०४
तृतीयया च तत्पाद्यं चतुर्थ्याऽर्घ्यं निवेदयेत्।
पञ्चम्याऽऽचमनीयं तु दातव्यं च ततः क्रमात् ॥२०५
षष्ठ्या स्नानन्तु सप्तम्या वस्त्रमप्युपवीतकम्।
अष्टम्या चैव गन्धन्तु नवम्याथ सुपुष्पकम् ॥२०६
दशम्या धूपकञ्चैव मेकादश्या च दीपकम्।
द्वादश्या च त्रयोदश्या चरुं दिव्यं निवेदयेत् ॥२०७
चतुर्दश्या नमस्कारं पञ्चदश्या प्रदक्षिणम्।
षोडश्या शयनं दत्त्वा शेषकर्म्म समाचरेत् ॥२०८
स्नानवस्त्रोपवीतेषु चरौ चाऽचमनं चरेत्।
हुत्वा षोडशभिर्मन्त्रैः षोडशाऽऽज्याहुतीः क्रमात् ॥२०९
तथावाऽऽज्येन होतव्यं मृद्भिः पुष्पाञ्जलिं चरेत्।
तच्च सर्वं जपेत् सद्यः पौरुषं सूक्तमुत्तमम् ॥२१०
कृत्वा माध्याह्निकस्नान मूर्द्ध्वपुण्ड्रधरस्ततः।
नित्यां सन्ध्यामुपास्याथ रविमण्डलमध्यगम् ॥२११
हरिं ध्यायन्नगदः स्यादेनसः शुचिरित्यृचा।
सावित्रीं च जपेत्तिष्ठन् प्राणानायम्य पूर्वतः ॥२१२
सौरेण चानुवाकेन उपस्थानजपं तथा।
आत्मानं च परीक्ष्याथ दर्भान्तरपुटाञ्जलिम् ॥२१३
दक्षिणाङ्के तु विन्यस्य जपयज्ञाप्तये बुधः।
सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं तु जपेत्तदा ॥२१४

शक्त्या च चतुरो वेदान् पुराणं वैष्णवं जपेत्।
चरितं रघुनाथस्य गीतां भगवतो हरेः ॥२१५
ध्यायन्वै पुण्डरीकाक्षं जप्त्वा वाऽप उपस्पृशेत्।
पूर्ववत्तर्पयेद्देवं वैकुण्ठपार्षदं तथा ॥२१६
देवानृषीन्पितॄंश्चैव तर्पयित्वा तिलोदकैः।
निष्पीड्य वस्त्रमाचम्य गृहमाविश्य पूर्ववत् ॥२१७
पूजयित्वाऽच्युतं भक्त्या पौरुषेण विधानतः।
दैवं भूतं पैतृकं च मानुषञ्च विधानतः ॥२१८
प्रीतये सर्वयज्ञस्य भोक्तुर्विष्णोर्यजेत्ततः
वैकुण्ठं वैष्णवं होमं पूर्ववज्जुहुयात्तदा ॥२१९
चतुर्विधेभ्यो भूतेभ्यो बलिं पश्चाद्विनिक्षिपेत्।
द्वारि गोदोहमात्रन्तु तिष्ठेदतिथिवाञ्छया ॥२२०
भोजयेच्चाऽऽगतान् काले फलमूलौदनादिभिः।
महाभागवतान् विप्रान् विशेषेणैव पूजयेत् ॥२२१
मधुपर्कप्रदानेन पाद्यार्घ्याचमनादिभिः।
गन्धैः पुष्पैश्च ताम्बूलैर्धूपैर्दीपैर्निवेदनैः ॥२२२
ब्रह्मासने निवेश्यैव पूजयेच्छ्रद्धयाऽन्वितः।
सकृत्संपूजिते विप्रे महाभागवतोत्तमे ॥२२३
षष्टिं वर्षसहस्राणि हरिः संपूजितो भवेत्।
मोहादनर्चयेद्यस्तु महाभागवतोत्तमम् ॥२२४
कोटिजन्मार्जितात्पुण्याद् भ्रश्यते नात्र संशयः।
गृहे तस्य न चाश्नाति शतवर्षाणि केशवः ॥२२५

मुखं हि सर्वदेवानां महाभागवतोत्तमः ।
तस्मिन् सम्पूजिते विप्रे पूजितं स्याज्जगत्त्रयम् ॥२२६

अर्थपञ्चकतत्वज्ञः पञ्चसंस्कारसंस्कृतः ।
नवभक्तिसमायुक्तो महाभागवतः स्मृतः ॥२२७

काले समागते तस्मिन् पूजिते मधुसूदनः ।
क्षणादेव प्रसन्नः स्यादीप्सितानि प्रयच्छति ॥२२८

महाभागवतानाञ्च पिबेत्पादोदकं तु यः ।
शिरसा वा श्रयेद्भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२२९

यस्मिन् कस्मिन् हि वसति महाभागवतोत्तमे ।
अप्येकरात्रमथवा तद्देशस्तीर्थसम्मितः ॥२३०

भोजयित्वा महाभागान् वैष्णवानतिथीनपि ।
ततो बालसुहृद्वृद्धान् बान्धवांश्च समागतान् ॥२३१

भोजयित्वा यथा शक्त्या यथाकालं जितक्षुधः ।
भिक्षां दद्यात् प्रयत्नेन यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥२३२

शूद्रो वा प्रतिलोमो वा पथि श्रान्तः क्षुधातुरः ।
भोजयेत्तं प्रयत्नेन गृहमभ्यागतो यदि ॥२३३

पाषण्डः पतितो वाऽपि क्षुधार्त्तो गृहमागतः ।
नैव दद्यात् स्वपक्वान्नमाममेव प्रदापयेत् ॥२३४

स्वशक्त्या तर्पयित्वैवमतिथीनागतान् गृहे ।
सम्यङ्निवेदितं विष्णोः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥२३५

प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च सम्यगाचम्य वारिणा ।
विष्णोरभिमुखं पीठे हेमदिग्धे कुशोत्तरे ॥२३६

प्राग्वा प्रत्यङ्मुखो वाऽपि जान्वोरन्तःकरः शुचिः।
उदङ्मुखो वा पैत्र्ये तु समासीताभिपूजितः ॥२३७

वंशतालादिपत्रैस्तु कृतं वसनमश्म च।
कपाल मिष्टकं वापि वर्णं तृणमयं तथा ॥२३८

चर्मासनं शुष्ककाष्ठं खलं पर्य्यङ्कमेव च।
निषिद्धधातु पीठं च दान्तमस्थिमयञ्च यत् ॥२३६

दग्धं पराविर्तं तालमायसञ्च विवर्जयेत्।
विभीतकन्तिन्दुकञ्च करञ्जं व्याधिघातकम् ॥२४०

भल्लातकं कपित्थं च हिन्तालं शिग्रुमेव च।
निषिद्धतरवो ह्येते सर्वकर्मसु गर्हिताः ॥२४१

शुद्धदारुमये पीठे समासीने कुशोत्तरे।
पीठे त्वलाभे सौम्ये स्यात् केवलं कुशविष्टरम् ॥२४२

चतुरस्रं त्रिकोणं वा वर्तुलञ्चार्द्धचन्द्रकम्।
वर्णानामानुपूर्वेण मण्डलानि यथाक्रमात् ॥२४३

स्वलङ्कृते मण्डलेऽस्मिन् विमलं भाजनं न्यसेत्।
स्वर्णं रौप्यं च कांस्यं वा पर्णं वा शास्त्रचोदितम् ॥२४४

चतु.षष्टिपलं कांस्यं तदर्धं पादमेव वा।
गृहिणामेव भोज्यं स्यात् ततो हीनन्तु वर्जयेत् ॥२४५

पलाशपद्मपत्रे तु गृही यत्नेन वर्जयेत्।
यतीनाञ्च वनस्थानां पितॄणाञ्च शुभप्रदम् ॥२४६

वटाश्वत्थार्कपर्णानि कुम्भीतिन्दुकयोस्तथा।
एरण्डतालबिल्वेषु कोविदारकरञ्जके ॥२४७

भल्लातकाश्वपर्णानां पर्णानि परिवर्जयेत्।
मोचागर्भपलाशं च वर्जयेत्तत्तु सर्वदा ॥२४८

मधुकं कुटजं ब्राह्मजम्बूप्लक्षमुदुम्बरम्।
मातुल(लु)ङ्गं पनसं च मोचाचर्मदलानि च ॥२४९

पालाक्यवर्णं श्रीपर्णं शुभानीमानि भोजने।
यथाकालोपपन्ने तु भोजने घृतसंस्कृते ॥२५०

पत्न्यादिभिर्दत्तवस्तु वास्तुदेवार्पिते शुभे।
गायत्र्या मूलमन्त्रेण संप्रोक्ष्य शुभवारिणा ॥२५१

ऋतसत्याभ्यामिति च मन्त्राभ्यां परिषेचयेत्।
अन्नरूपं विराजं संध्यात्वा मन्त्रं जपेद्बुधः ॥२५२

ध्यात्वा हृत्पङ्कजे विष्णुं सुधांशुसदृशद्युतिम।
शङ्खचक्रगदापद्मपाणिं वै दिव्यभूषणम् ॥२५३

मनसैवार्चयित्वाऽथ मूलमन्त्रेण वैष्णवः।
पादोदकं हरेः पुण्यं तुलसीदलमिश्रितम् ॥२५४

अमृतोपस्तरणमसीति मन्त्रेण प्राशयेत्।
उद्दिश्यैव हरिं प्राणान् जुहुयात् सघृतं हविः ॥२५५

अन्नलाभे तु होतव्यं शाकमूलफलादिभिः।
पञ्चप्राणाद्या हुतयो मन्त्रैस्तैर्जुहुयाद्धरेः ॥२५६

श्रद्धायां प्राणे(नि)विष्ठेति मन्त्रेण च यथाक्रमात्।
तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैः प्राणायेति यजेद्धविः ॥२५७

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरपानायेत्यनन्तरम्।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्व्यानायेत्याहुतिं ततः ॥२५८

कनिष्ठतर्जन्यङ्गुष्ठैरुदानायेति वै यजेत् ।
समानायेति जुहुयात्सर्वैरङ्गुलिभिर्द्विजः ॥२५६

अयमग्निर्वैश्वानरिरित्यात्मानमनन्तरम् ।
शतमष्टोत्तरं मन्त्रं मनसैव जपेत्ततः ॥२६०

ध्यायन् नारायणं देवं भुञ्जीयात् तु यथासुखम् ।
वक्त्रादपातयन् ग्रासं चिन्तयन्मधुसूदनम् ॥२६१

नाऽऽसनारूढपादस्तु न वेष्टितशिरास्तथा ।
न स्कन्दयन् न च हसन् वहिर्नाप्यवलोकयन् ॥२६२

नाऽऽत्मीयान् प्रलपन् जलपन् बहिर्जानुकरो न च ।
न वादकोपितनरः(पादारोपितकरः)पृथिव्यामपि वा न च ॥२६३

न प्रसारितपादश्च नोत्सङ्गकृतभाजनः ।
नाश्नीयाद्भार्यया सार्धं न पुत्रैर्वापि विह्वलः ॥२६४

न शयानो नातिसङ्गो न विमुक्तशिरोरुहः ।
अन्नं वृथा न विकिरन् निष्ठीवन् नातिकाङ्क्षया ॥२६५

नातिशब्देन भुञ्जीत न वस्त्रार्थोपवेष्टितः ।
प्रगृह्य पात्रं हस्तेन भुञ्जीयात् पैतृकं यदि ॥२६६

चषके पुटके वाऽपि पिबेत्तोयं द्विजोत्तमः ।
तक्रं वाऽप्यथ वा क्षीरं पानकं वाऽपि भोजने ॥२६७

वक्त्रेण सान्तर्धानेन दत्तमन्येन वा पिबेत् ।
ग्रासशेषं नचाश्नीयात्पीतशेषं पिवेन्न तु ॥२६८

शाकमूलफलादीनि दन्तच्छिन्नं न खादयेत् ।
उद्धृत्य वामहस्तेन तोयं वक्त्रेण यः पिबेत् ॥२६६

स सुरां वै पिबेद् व्यक्तां सद्यः पतति रौरवे।
शब्देनापोशने पीत्वा शब्देन दधिपायसे ॥२७०
शब्देनान्नरसं क्षीरं पीत्वेव पतितो भवेत्।
प्रत्यक्षलवणं शुक्तं क्षीरं च लवणान्वितम् ॥२७१
दधि हस्तेन मथितं सुरापानसमं स्मृतम्।
आरनालरसं तद्वत्तद्दैवानार्पितं हरेः ॥२७२
आसनेन तु पात्रेण नैव दद्याद् घृतादिकम्।
नोच्छिष्टं घृतमादद्यात् पैतृके भोजनं विना ॥२७३
तथैव तु पुरोडाशं पृषदाज्यञ्च माक्षिकम्।
पानीयं पायसं क्षीरं घृतं लवणमेव च ॥२७४
हस्तदत्तं न गृह्णीयात्तुल्यं गोमांसभक्षणम्।
अपूपं पायसं माषं (मांसं) यावकं कृसरं मधु ॥२७५
केवलं यो वृथाऽश्नाति तेन भुक्तं सुरासमम्।
करञ्जं मूलकं शिग्रु लशुनं तिलपिष्टकम् ॥२७६
तलास्थि श्वेतवृन्ताकं सुरापानसमं स्मृतम्।
अन्यच्च फलमूलाद्यं भक्ष्यं पानादिकञ्च यत् ॥२७७
स्रक्चन्दनादि ताम्बूलं यो भुङ्क्ते हर्यनर्पितम्।
कल्पकोटिसहस्राणि रेतोविण्मूत्रभाग् भवेत् ॥२७८
तस्मात्सर्वं सुविमलं हरिभुक्तं यथोक्तवत्।
स पवित्रेण यो भाङ्क्ते सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥२७९
ध्यायन् नारायणं देवं वाग्यतः प्रयतात्मवान्।
भुक्त्वावनतितृप्त्यैव प्राशयेदम्बु निर्मलम् ॥२८०

अमृतापिधानमसीतिमन्त्रेण कुशपाणिना।
किञ्चिदन्नमुपादाय पीतशेषेण वारिणा॥२८१

पैतृकेण तु तीर्थेन भूमौ दद्यात्तदर्थिनाम्।
रौरवे नरके घोरे वसतां क्षुत्पिपासया॥२८२

तेषामन्नं सोदकञ्च अक्षय्यमुपतिष्ठतु।
इति दत्त्वोदकं तेषां तस्मिन्नेवाऽऽसने स्थितः॥२८३

प्रक्ष्याल्य हस्तौ पादौ च वक्त्रं संशोध्य वारिभिः।
द्विराचम्य विधानेन मन्त्रेण प्राशयेज्जलम्॥२८४

पीत्वा मन्त्रजलं पश्चादाचम्य हृदयाम्बुजे।
राममिन्दीवरश्यामं चक्रशङ्खधनुर्धरम्॥२८५

युवानं पुण्डरीकाक्षं ध्यात्वा मन्त्रं जपेद्बुधः।
समासीनः सुखासने वेदमध्यापयेत्ततः।
सच्छिष्यान् यांस्तु शास्त्रं वा स्नेहाद्वा धर्मसंहिताम्॥२८६

इतिहासपुराणं वा कथयेच्छृणुयाच्च वा।
एवावस्तङ्गते सन्ध्यां वहिः कुर्वीत पूर्ववत्॥२८७

वहिः सन्ध्या शतगुणं गोष्ठे शतगुणं तथा।
गङ्गाजले सहस्रं स्यादनन्तं विष्णुसन्निधौ॥२८८

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां जप्त्वा जप्यं समाहितः।
पूर्ववत् पूजयेद्विष्णुं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः॥२८९

अष्टाक्षरविधानेन निवेश्यैवं समाहितः।
सायमौपासनं हुत्वा वैष्णवं होममाचरेत्॥२९०

ध्यात्वा यज्ञमयं विष्णुं मन्त्रेणाष्टोत्तरं शतम् ।
तिलव्रीह्याज्यचरुभिस्तत्रैकेनापि वा यजेत् ॥२६१
वैश्वदेवं भूतबलिं हुत्वा दत्त्वा च आचमेत् ।
शय्यायां विन्यसेद्देवं पर्य्यङ्के समलङ्कृते ॥२६२
सविताने गन्धपुष्पधूपैरामोदिते शुभे ।
शाययित्वा च देवेशं देवीभ्यां सहितं हरिम् ॥२६३
हिरण्यगर्भसूक्तेन नासदासीदनेन च ।
कृत्वा पुष्पाञ्जलिं पश्चादुपचारैः समर्चयेत् ॥२६४
श्रिये जात इत्यृचैव ध्रुवसूक्तेन च द्विजः ।
दीपैर्नीराजनं कृत्वा पश्चादर्घ्यं निवेदयेत् ॥२६५
सुवाससा य(ज)वनिकां विन्यस्याथ समाहितः ।
द्वादशार्णं महामन्त्रं जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥२६६
अस्त्रैश्च शङ्खचक्राद्यैर्दिक्षु रक्षां सुविन्यसेत् ।
स्तोत्रैः स्तुत्वा नमस्कृत्वा पुनः पुनरनन्तरम् ॥२६७
वैष्णवैश्च सुहृद्भिश्च भुञ्जीयादर्पितं हरेः ।
आचम्याग्निमुपस्पृश्य समासीनस्तु वाग्यतः ॥२६८
ध्यायन् हृदि शुभं मन्त्रं जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
शेषाहिशायिनं देवं मनसैवार्चयेत्ततः ॥२६९
शयीत शुभशय्यायां विमले शुभमण्डले ।
ऋतौ गच्छेद्धर्मपत्नीं विना पञ्चसु पर्वसु ॥३००
पुत्रार्थी चेत्तु युग्मासु स्त्रीकामी विषमासु च ।
न श्राद्धदिवसे चैव नोपवासदिने तथा ॥३०१

नाशुचिर्मलिनो वाऽपि न चैव मलिनां तथा।
न क्रुद्धां न च क्रुद्धः सन् न रोगी नच रोगिणीम्॥३०२
न गच्छेत् क्रूरदिवसे मघामूलद्वयोरपि।
ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय आचामेत्प्रयतात्मवान्॥३०३
यती च ब्रह्मचारी च वनस्थो विधवा तथा।
अजिने कम्बले वाऽपि भूमौ स्वप्यात् कुशोत्तरे॥३०४
ध्यायन्तः पद्मनाभं तु शयीरन् विजितेन्द्रियाः।
अर्पयेद् वाऽर्चयेद्विष्णुं त्रिकालं श्रद्धयाऽन्विताः॥३०५
आचरेयुः परं धर्मं यथावृत्त्यनुसारतः।
प्रातः कृष्णं जगन्नाथं कीर्तयेत् पुण्यनामभिः॥३०६
शौचादिकन्तु यत्कर्म पूर्व्वोक्तं सर्वमाचरेत्।
नैमित्तिकविशेषेण पूजयेत् पतिमव्ययम्॥३०७
तत्तत्काले तु तन्मूर्त्तेरर्चनं मुनिभिः स्मृतम्।
प्रसुप्ते पद्मनाभे तु नित्यं मासचतुष्टयम्॥३०८
द्रोण्यान्दोलायामपि वा भक्त्या संपूजयेद्विभुम्।
क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के शयानं रमया सह॥३०९
नीलजीमूतसङ्काशं सर्वालङ्कारसुन्दरम्।
कौस्तुभोद्भासिततनुं वैजयन्त्या विराजितम्॥३१०
लक्ष्मीघनकुचस्पर्शशुभोरस्कं सुवर्चसम।
ध्यात्वैवं पद्मनाभन्तु द्वादशार्णेन नित्यशः॥३११
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैस्त्रिसन्ध्यास्वपि वैष्णवः।
निवेद्य पायसान्नं तु दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः॥३१२

सहस्रं शतवारं वा द्वयं मन्त्रं जपेत्सुधीः।
द्वादशार्णमनुञ्चैव जप्त्वाऽऽज्येन तिलैश्च वा ॥३१३
केवलं चरुणा वाऽपि जुहुयात्प्रतिवासरम्।
अधःशायी ब्रह्मचारी सर्वभोगविवर्जितः ॥३१४
वार्षिकांश्चतुरो मासानेवमभ्यर्च्च्य केशवम्।
बोधयित्वाऽथ कार्तिक्यां दद्यात् पुष्पाण्यनेकशः ॥३१५
साज्यैस्तिलैः पायसेन मधुना च सहस्रशः।
मूलमन्त्रेण जुहुयात् सूक्तैश्चावभृथं ततः ॥३१६
सहस्रनामभिः कृत्वा दद्यादर्पणमेव च।
गृहं गत्वाऽथ देवेशम्पूजयित्वा यथाविधि ॥३१७
भोजयेद्वैष्णवान् विप्रान् दक्षिणाभिश्च तोषयेत्।
शुक्लपक्षे नभोमासि द्वादश्यां वैष्णवः शुचिः ॥३१८
पवित्रारोपणं कुर्य्यान्नाभिमात्रायतं न्यसेत्।
तथा वक्षसि पर्यन्तं सहस्रन्तान्तवं स्मृतम् ॥३१९
कुशग्रन्थिसहस्रन्तु पादान्तं विन्यसेत्ततः।
सौवर्णीं राजतीं मालां शतग्रन्थियुतां न्यसेत् ॥३२०
मृणालतान्तवं पश्चात् पुष्पमालां ततः परम्।
शतमौक्तिकहाराणि नानारत्नमयान्यपि ॥३२१
उपोष्यैकादशीं तत्र रात्रौ जागरणान्वितः।
अभ्यर्च्चयेज्जगन्नाथं गन्धपुष्पफलादिभिः ॥३२२
नीत्वा रात्रिं नर्तनाद्यैः प्रभाते विमले नदीम्।
गत्वा स्नात्वा च विधिना तर्पयित्वेशमर्चयेत् ॥३२३

सर्वैश्च वैष्णवैः (मन्त्रैः) सूक्तैर्मध्वाज्यतिलपायसैः ।
हुत्वा दत्त्वा दशार्णेन सहस्रं जुहुयात्ततः ॥३२४
पश्चादारोपयेद्विष्णोः पवित्राणि शुभानि वै ।
पवस्व सोम इति च जपन् सूक्तं सुपावनम् ॥३२५
निवेदयेत्पवित्राणि तथा विष्णोर्यथाक्रमात् ।
मन्दिरं कुशयोक्त्रेण वेष्टयन् परमात्मनः ॥३२६
वितानपुष्पमालाद्य रलङ्कृत्य च सर्वतः ।
सहस्रं द्वादशर्णेन भक्त्या पुष्पाञ्जलिं न्यसेत् ॥३२७
अथोपनिषदुक्तानि पञ्चसूक्तान्यनुक्रमात् ।
त्वयाहन् पीतमिज्यादि जपन् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥३२८
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात् स्वयं कुर्वीत पारणम् ।
शक्त्या वा चोत्सवं कुर्य्यात्त्रिरात्रं वैष्णवोत्तमः ॥३२९
प्रत्यब्दमेवं कुर्वीत पवित्रारोपणं हरेः ।
क्रतुकोटिसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥३३०
तत्र दुर्भिक्षरोगादिभयं नास्ति कदाचन ।
संप्राप्ते कार्तिके मासे सायाह्ने पूजयेद्धरिम् ॥३३१
हृद्यैः पुष्पैश्च जातीभिः कोमलै स्तुलसीदलैः ।
अर्च्चयेद्विष्णुं गायत्र्याऽनुवाकैर्वैष्णवैरपि ॥३३२
पावमान्यैश्च तन्मासं भक्त्या पुष्पाञ्जलिं न्यसेत् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ॥३३३
अष्टाविंशतिं वा शक्त्या दद्याद्दीपान् सुपालिकान् ।
सुवासितेन तैलेन गवाज्येनाथवा हरेः ॥३३४

अष्टोत्तरशतं नित्यं तिलहोमं समाचरेत्।
मनुना वैष्णवेनापि गायत्र्या विष्णुसंज्ञया ॥३३५
हुत्वा पुष्पाञ्जलिं दत्वा ताभ्यामेव तदा विभोः।
हविष्यं मोदकं शुद्धं नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः ॥३३६
तैलं शुक्तं तथा मांसं निष्पावान्माक्षिकं तथा।
चणकानपि माषांश्च वर्जयेत्कार्तिकेऽह्नि ॥३३७
भोजयेद्वैष्णवान् विप्रान् नित्यं दानादिशक्तयः।
अन्ते च भोजयेद्विप्रान् दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥३३८
एवं संपूज्य देवेशं कार्तिके क्रतुकोटिभिः।
पुण्यं प्राप्यानघो भूत्वा विष्णुलोके महीयते ॥३३९
दशमीमिश्रितां त्यक्त्वा वेलायामरुणोदये।
उपोष्यैकादशीं शुद्धां द्वादशीं वाऽपि वैष्णवः ॥३४०
स्नात्वाऽऽमलक्या नद्यां तु विधानेन हरिं यजेत्।
सुगन्धकुसुमैः शुभ्रैरुपचारैश्च सर्वशः ॥३४१
रात्रौ जागरणं कुर्य्यात् पुराणं संहितां पठेत्।
जागरेऽस्मिन्नशक्तश्चेद्दर्भानास्तीर्य वैष्णवः ॥३४२
पुरतो वासुदेवस्य भूमौ स्वप्यात्समाहितः।
ततः प्रभातसमये तुलसीमिश्रितैर्जलैः ॥३४३
स्नात्वा सन्तर्प्य देवेशं तुल्यस्या मूलमन्त्रतः।
द्वयेन वा विष्णुसूक्तैः कुर्य्यात् पुष्पाञ्जलींस्ततः ॥३४४
तथैव जुहुयादाज्यं मन्त्रेणैव शतं ततः।
पायसान्नं निवेद्यशे ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥३४५

ध्यायन् कमलपत्राक्षं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।
अहःशेषं समानीय पुराणं वाचयन् बुधः ॥३४६
सायाह्ने समनुप्राप्ते दोलायां पूजयेद्धरिम् ।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्ष्यैर्नानाविधैरपि ॥३४७
ब्राह्मणस्यतु सूक्तैश्च शनैर्दोलां प्रचालयेत् ।
इतिहासपुराणाभ्यां गीतवाद्यैः प्रबन्धकैः ॥३४८
एवं संपूजयेद्देवं तस्यां निशि समाहितः ।
मध्याह्ने पूजयेद्विष्णुं वैष्णवेन समाहितः ॥३४६
चम्पकैः शतपत्रैश्च करवीरैः सितैरपि ।
वैष्णवेनैव मन्त्रेण पूजयेत्कमलापतिम् ॥३५०
नकरीन्द्रेति सूक्तेन दद्यात् पुष्पाञ्जलिं हरेः ।
मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं दद्यात् पुष्पाणि भक्तितः ॥३५१
तथैव होमं कुर्वीत तिलै र्व्रीहिभिरेव वा ।
गुडध्यन्नं फलयुतं नैवेद्यं विनिवेदयत् ॥३५२
दीपैर्नीराजनं कृत्वा वैष्णवान् भोजयेत्ततः ।
मन्दवारे तु सायाह्ने तावत्सम्यगुपोषितः ॥३५३
तिलैः स्नात्वा विधानेन सन्तर्प्य च सनातनम् ।
नृसिंहवपुषं देवं पूजयेत्तद्विधानतः ॥३५४
मन्त्रराजेन गायत्र्या मूलमन्त्रेण वा यजेत् ।
अखण्डबिल्वपत्रैश्च जातिकुन्दैश्च यूथिकैः ॥३५५
छन्नः पश्चोशना शान्त्याः त्वमग्ने ! द्युभिसीति च ।
दद्यात् पुष्पाञ्जलिं भक्त्या मन्त्रेणैव शतं यथा ॥३५६

आभ्यामेवानुवाकाभ्यां प्रत्यृचं जुहुयाद् घृतम्।
मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं बिल्वपत्रैर्घृ ताञ्चितैः ॥३५७
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत्।
मधुशर्करसंयुक्तानपूपान् मोदकांस्तथा ॥३५८
मण्डकान् विविधान् भक्ष्यान् सूपान्नं मधुमिश्रितम्।
सुवासितं पानकञ्च नृसिंहाय समर्पयेत् ॥३५९
नृत्यं गीतं तथा वाद्यं कुर्वीत पुरतो हरेः।
भोजयेच्च ततो विप्रान् नव सप्ताथ पञ्च वा ॥३६०
हर्यर्पितहविष्यान्नं भुञ्जीयाद्वाग्यतः स्वयम्।
ध्यायेन्नृसिंहं मनसा भूमौ स्वप्याज्जितेन्द्रियः ॥३६१
एवं शनिदिने देवमभ्यर्च्य नरकेसरिम्।
सर्वान् कामानवाप्नोति सोऽश्वमेधायुतं लभेत् ॥३६२
षष्टिवर्षसहस्रं स पूजां प्राप्नोति केशवः।
कुलकोटिं समुद्धृत्य वैकुण्ठपुरमाप्नुयात् ॥३६३
प्रायश्चित्तमिदं गुह्यं पातकेषु महत्स्वपि।
अपुत्रो लभते पुत्र मधनो धनमाप्नुयात् ॥३६४
पक्षे पक्षे पौर्णमास्यामुदितेऽस्मि (निशाकरे) न्दिवाकरे।
स्नात्वा संपूजयेद्विष्णुं वामनं देवमव्ययम् ॥३६५
समासीनं महात्मानं तस्मिन् पूर्णेन्दुमण्डले।
सन्तर्पयेच्छुभजलैः कुसुमाक्षतमिश्रितैः ॥३६६
तत्र मूलेन मन्त्रेण पूजयेत् परमेश्वरम्।
तुलसीकुन्दकुसुमैरथ पुष्पाञ्जलिं चरेत् ॥३६७

त्वं सोम इति सूक्तेन प्रत्यृ च कुसुमैर्यजेत् ।
पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत पायसान्नं सशर्करम् ॥३६८
मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं सूक्तेन प्रत्यृचं तथा ।
अग्निसोमानुवाकेन समिद्भिः पिप्पलैर्यजेत् ॥३६९
सहस्रनामभिः स्तुत्वा नमस्कृत्वा जनार्दनम् ।
वैष्णवान् भोजयेत्पश्चात्पायसान्नेन शक्तितः ॥३७०
स्वयं भुक्त्वा हविः शेषं शयीत नियतेन्द्रियः ।
एवं संपूज्य देवेशं पौर्णमास्यां जनार्दनम् ॥३७१
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णु सायुज्यमाप्नुयात् ।
मघायामपि पूर्वाह्णे स्नात्वा कृष्णं जलैर्द्विजः ॥३७२
सन्तर्प्य मूलमन्त्रेण तिलमिश्रितवारिभिः ।
तर्पयित्वा पितॄन्देवानर्चयेदच्युतं ततः ॥३७३
कृष्णैश्च तुलसीपत्रैः केतकैः कमलैरपि ।
शोणितैः करवीरैश्च जपाकुटजपाटलैः ॥३७४
अस्य वामेति सूक्तेन दद्यात् पुष्पाञ्जलिं हरेः ।
मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं कृष्णं श्रीतुलसीदलैः ॥३७५
तथैव जुहुयादग्नौ तिलैः कृष्णैः सकर्शरैः ।
आज्येन पौरुषं सूक्तं प्रत्यृचं जुहुयात् ततः ॥३७६
नारायणानुवाकेन उपस्थाय जनार्दनम् ।
सुसंयावैः सौहृदैश्च शाल्यन्नं विनिवेदयेत् ॥३७७
वैष्णवान् भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।
तस्यां रात्रौ जपेन्मन्त्रमयुतं हरिसन्निधौ ॥३७८

वैष्णवैरनुवाकैश्च दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं ततः ।
पुरतो वासुदेवस्य भूमौ स्वप्यात्कुशोत्तरे ॥३७९

एवं संपूज्य देवेशं मघायां वैष्णवोत्तमः ।
उद्धृत्य वंशजान् सर्वान् वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥३८०

व्यतीपाते तु संप्राप्ते हयग्रीवं जनार्दनम् ।
पुष्पैश्च करवीरैश्च पुण्डरीकैः समर्चयेत् ॥३८१

योरयीत्यनुवाकेन प्रत्यृचं वै यजेद्बुधः ।
मन्त्रेण च शतं दत्त्वा पश्चाद्धोमं समाचरेत् ॥३८२

यवैश्च तण्डुलैर्वाऽपि तिलैः पुष्पैरमापि वा ।
मन्त्रेणाष्टोत्तशरतं जुहुयाद्वैष्णवोत्तमः ॥३८३

अभूदेकाद्यष्टसूक्तैः प्रत्यृचं जुहुयाच्चरुम् ।
शेषं निवेद्य हरये संप्राश्याऽऽचमनं चरेत् ॥३८४

सहस्रशीर्षसूक्तेन उपस्थाय जनार्दनम् ।
शाल्योदनं सूपयुतं विविधैश्च फलैरपि ॥३८५

गवाज्येन युतं दत्त्वा दीपैर्नीराजयेत्ततः ॥३८६

ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद्दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ।
हविष्यन्तु स्वयं भुक्त्वा भूमौ स्वप्याजितेन्द्रियः ॥३८७

एवं संपूज्य देवेशं व्यतीपाते सनातनम् ।
दशावर्षसहस्रस्य पूजायाः फलनाप्नुयात् ॥३८८

ग्रहणे रविसंक्रान्तौ वराहवपुषं हरिम् ।
कुमुदैरुज्वलैः पद्मैस्तुलसीभिः कुरन्दकैः ॥३८९

अर्चयेद्भूधरं देवं तन्मन्त्रेणैव वैष्णवः ।
दूरादिहेति सूक्तेन दद्यात् पुष्पाञ्जलिं द्विजः ॥३९०
मन्त्रेण च सहस्रं तु शतं वाऽपि यजेत्तदा ।
तिलैश्च जुहुयात्तद्वत् सूक्तेन प्रत्यृचं घृतम् ॥३९१
सूपान्नं कृसरान्नं च भक्ष्यापूपान् घृतप्लुतान् ।
नैवेद्यं विनिवेद्येशे ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥३९२
एवं संपूज्य देवेशं संक्रान्तौ ग्रहणे हरिम् ।
कल्पकोटिसहस्राणि विष्णुलोके महीयते ॥३९३
वैशाखे पूजयेद्रामं काकुत्स्थं पुरुषोत्तमम् ।
सीतालक्ष्मणसंयुक्तं मध्याह्ने पूजयेद्विभुम् ॥३९४
पुन्नागकेतकीपद्मैरुत्पलैः करवीरकैः ।
चाम्पेयैर्बकुलैः पूजां षड्वर्णैनैव कारयेत् ॥३९५
जातवेदसेतिसूक्तेन कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ।
संक्षेपेण शतश्लोक्यां प्रतिश्लोकं यजेत्ततः ॥३९६
पुष्पाञ्जलिं सहस्रं तु मन्त्रेणैव यजेत्ततः ।
त्वमग्न इति सूक्तेन पायसं जुहुयादृचा ॥३९७
पश्चान्मन्त्रेणाऽऽज्यहोमो नैवेद्यं पायसं घृतम् ।
कदलीफलं शर्करां च पानकं च निवेदयेत् ॥३९८
पञ्च सप्त त्रयो वाऽपि पूजनीया द्विजोत्तमाः ।
सुहृद्यैरन्नपानाद्यैर्गोहिण्यादिदक्षिणैः ॥३९९
हविष्यान्नं स्वयं भुक्त्वा पठेद्रामायणं नरः ।
एवं संपूज्य विधिवद्राघवं जानकीयुतम् ॥४००

भुक्त्वा भोगान् मनोरम्यान् विष्णुलोके महीयते ।
लक्ष्मीनारायणं देवं भार्गवे वासरे निशि ॥४०१
अखण्डबिल्वपत्रैश्च तुलसीकोमलैर्दलैः ।
अर्चयेन्मन्त्ररत्नेन वामाङ्कस्थश्रिया सह ॥४०२
चन्दनं कुङ्कुमोपेतङ्कस्तूर्या च समर्चयेत् ।
श्रीसूक्तपुरुषसूक्ताभ्यां दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥४०३
मन्त्रद्वयेन पुष्पाणां सहस्रं च निवेदयेत् ।
त्वमग्न इति सूक्तेन प्रत्यृचं कुसुमान् यजेत् ॥४०४
अखण्डबिल्वपत्रैर्वा पद्मपत्रैर्घृतेन वा ।
श्रीसूक्तपुरुषसूक्ताभ्यां प्रत्यृचंजुहुयात् ततः ॥४०५
अग्निं न वेति सूक्तेन तिलैर्व्रीहिभिरेव वा ।
मन्त्ररत्नेन जुहुयात् सुगन्धकुसुमैः शतम् ॥४०६
मण्डकान् क्षीरसंयुक्तान् पायसान्नं सशर्करम् ।
शाल्यन्नं पृषदाज्यं च भक्त्यास्मै विनिवेदयेत् ॥४०७
अभ्यर्च्य विप्रमिथुनान् वासोऽलङ्कारभूषणैः ।
भोजयित्वा यथाशक्त्या पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः ॥४०८
मन्वन्तरशतं विष्णुं दुग्धाब्धौ हेमपङ्कजैः ।
संपूज्य यदवाप्नोति तत्फलं भृगुवासरे ॥४०९
एवं संपूज्यमानस्तु तस्मिन्नहनि वैष्णवैः ।
लक्ष्म्या सह हरिः साक्षात् प्रत्यक्षं तत्क्षणाद्भवेत् ॥४१०
कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां सायंसन्ध्यासमागमे ।
गोपालपुरुषं कृष्णमर्चयेच्छ्रद्धयाऽन्वितः ।
मल्लिकामालतीकुन्दयूथी कुटजकेतकैः ॥४११

लोध्रनीपार्जुनैर्नागैः कर्णिकारैः कदम्बकैः ।
कोविदारैः करवीरै र्बिल्वरास्फोटकैरपि ॥४१२
दशाक्षरेण मन्त्रेण पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ।
ये त्रिंशतीति सूक्तेन दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥४१३
श्रीकृष्णं तुलसीपत्रैः प्रत्यृचं पूजयेद्विभुम् ।
श्रीकृष्णाय नम इति सूक्तेनाष्टोत्तरं शतम् ॥४१४
पूजयित्वाऽथ होमन्तु तिलैः कृष्णैर्घृतान्वितैः ।
प्रत्यृचं वैष्णवैः सूक्तै र्जुहुयात् पुरुषोत्तमम् ॥४१५
समिद्भिः पिप्पलैश्चापि मन्त्रेणाष्टोत्तरं शतम् ।
नामभिः केशवाद्यैश्च चरुं पश्चाद् घृतप्लुतम् ॥४१६
वैष्णव्या चैव गायत्र्या पृषदाज्यं शतं तथा ।
गुडोदनं सर्पिषाऽक्तं भक्ष्याणि विविधानि च ॥४१७
क्षीरान्नं शर्करोपेतं नैवेद्यञ्च समर्पयेत् ।
वैष्णवान् भोजयेत्पश्चात् स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥४१८
एवमभ्यर्च्य गोविन्दं कृष्णाष्टम्यां विधानतः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥४१९
द्वयोरप्यनयोः श्रीशं कूर्मरूपं समर्चयेत् ।
ससागरां महीं सर्वां लभते नात्र संशयः ॥४२०
अर्चयेन्मूलमन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
अर्चयित्वा विधानेन हविष्यं व्यञ्जनैर्युतम् ॥४२१
सुदीर्घयन्त्रजान् सूपघृतमिश्रान् निवेदयेत् ।
अहं पूर्वेति सूक्तेन कुर्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः ॥४२२

सहस्रं मूलमन्त्रेण पूजयेत्तुलसीदलैः।
तिलमिश्रैश्च पृथुकै जुहुयाद्धव्यवाहने ॥४२३
प्रयद्ध इति सूक्ताभ्यां नासदासीत्यनेन च।
मन्त्रेणाऽऽज्यं सहस्रन्तु जुहुयाद्वैष्णवोत्तमः ॥४२४
भोजयेद्वैष्णवान् भक्त्या विशेषेणार्चयेद् गुरुम्।
कौर्मं तु शतवर्षन्तु समभ्यर्च्य विधानतः ॥४२५
अत्राप्यर्चनमात्रेण तत्फलं समवाप्नुयात्।
मधुशुक्लप्रतिपदि केशवं पूजयेद् द्विजः ॥४२६
स्नात्वा मध्याह्नसमये करवीरैः सुगन्धिभिः।
अग्निमील इत्याद्येन प्रत्यृचं कुसुमैर्यजेत् ॥४२७
मन्त्ररत्नेन वाऽभ्यर्च्य चरुपायसहोमकृत्।
ईले द्यावेति सूक्तेन यदिन्द्राग्नीत्यनेन च ॥४२८
विष्णुसूक्तैश्च जुहुयाद् गायत्र्या विष्णुसंज्ञया।
अपूपान् कटकाकारान् शाल्यन्नं घृतसंयुतम् ॥४२९
फलैश्च भक्ष्यभोज्यैश्च नैवेद्यं विनिवेदयेत्।
भोजयेद् ब्राह्मणान् शक्त्या दक्षिणाभिः प्रपूजयेत् ॥४३०
साग्रं सम्वत्सरं तत्र सम्यक् संपूजयेद्धरिम्।
सर्वान् कामानवाप्नोति हयमेधायुतं लभेत् ॥४३१
तस्मिन्नवम्यां शुक्ले तु नक्षत्रेऽदितिदैवते।
तत्र जातो जगन्नाथो राघवः पुरुषोत्तमः ॥४३२
तस्मिन्नुपोष्य मध्याह्ने स्नात्वा सन्ध्यां विधानतः।
तर्पयित्वा पितॄन् देवानर्चयेद्राघवं हरिम् ॥४३३

षडक्षरेण मन्त्रेण गन्धमाल्यानुलेपनैः।
अभ्यर्च्य जगतामीशं जपेन्मन्त्रं समाहितः।
शान्तिं शास्त्रं पुराणञ्च नाम्नां विष्णोः सहस्रकम् ॥४३४
पावमानैर्विष्णुसूक्तैः कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः।
रामायणशतश्लोक्या दद्यात् पुष्पाणि वैष्णवः ॥४३५
सशर्करं पायसान्नं कपिलाघृतसंयुतम्।
रम्भाफलं पानकञ्च नैवेद्यं विनिवेदयेत् ॥४३६
पीतानि नागपर्णानि स्निग्धपूगीफलानि च।
कर्पूरेण च संयुक्तं ताम्बूलञ्च समर्पयेत् ॥४३७
दीपान्नीराजयेद्भक्त्या नमस्कृत्य पुनः पुनः।
प्रीतये रघुनाथस्य कुर्याद्दानानि शक्तितः ॥४३८
षडक्षरेण साहस्रं तिलैर्वा पायसेन वा।
कमलै बिल्वपत्रैर्वा घृतेन जुहुयात्ततः ॥४३९
अस्य वामेति सूक्तेन समिद्भिः पिप्पलस्य तु।
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥४४०
रात्रौ जागरणं कुर्यात् द्वित्रियामं समर्चयेत्।
प्रभाते विमले चापि ततो भरतजन्मनि ॥४४१
तृतीयेऽहनि मध्याह्ने सौमित्रेर्जन्मवासरे।
सानुजं जगतामीशमर्चयेत् पूर्ववद् द्विजः ॥४४२
पूजां पुष्पाञ्जलिं होमं जपं ब्राह्मणभोजनम्।
अविच्छिन्नं तथा कुर्यादग्निहोत्रं त्रिवासरम् ॥४४३

एवं त्रिरात्रं कुर्वीत राघवाणां विधानतः।
महोत्सवं जन्मभेषु प्रत्यब्दं चैत्रमासिके ॥४४४
चतुर्थेऽह्नि तथा नद्यां कुर्यादवभृथं द्विजः।
वैष्णवैरनुवाकैश्च रामनामभिरेव च ॥४४५
चरितं रघुनाथस्य जपन्नवभृतं चरेत्।
देवान् पितृंश्च सन्तर्प्य गृहं गत्वाऽर्चयेत्प्रभुम् ॥४४६
कुर्यादवभृथेष्टिञ्च चरुणा पायसेन वा।
अस्य वामेति सूक्तेन परोमात्रेत्यनेन च ॥४४७
प्रत्यृचं जुहुयात्पश्चान्मन्त्रेण शतसंख्यया।
हुत्वा समाप्य होमन्तु शेषं सम्प्राशयेच्चरुम् ॥४४८
आचम्य पूजयेद्देवं वैष्णवान् भोजयेत्ततः।
स्वयं भुञ्जीत तद्रात्रावधःशायी समाहितः ॥४४९
एवं द्वादशभिः पूज्यश्चैत्रो नावमिके तथा।
षष्टिवर्षसहस्राणि श्वेतद्वीपनिवासिनम् ॥४५०
संपूज्य यदवाप्नोति तदेवात्र समश्नुते।
यज्ञायुतशतं लब्ध्वा विष्णुलोके महीयते ॥४५१
तस्यैव पौर्णमास्याञ्च शीतांशो रुदये तथा।
स्नात्वा संपूजयेद्देवं माधवं रमया सह ॥४५२
शुद्धजाम्बूनदप्रख्यं कन्दर्पशतसन्निभम्।
लक्ष्म्या सह समासीनं विमले हेमपङ्कजे ॥४५३
चन्दनेन सुगन्धेन करवीराब्जपङ्कजैः।
कर्पूरकुङ्कुमोपेतचन्दनेन च पूजयेत् ॥४५४

तन्मन्त्रमन्त्ररत्नाभ्यां माधवं विधिना यजेत् ।
मण्डकान् क्षीरसंयुक्तान् शाल्यन्नं घृतसंयुतम् ॥४५५

कृष्णरम्भाफलैर्जुष्टं नैवेद्यं विनिवेदयेत् ।
अस जीवत्व इत्यादि षट्सूक्तैः कुसुमैर्यजेत् ॥४५६

मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं कोमलै स्तुलसीदलैः ।
संपूज्य होमं कुर्वीत साज्येन चरुणा ततः ॥४५७

विहीभोतोरित्यतेन सूक्तेन प्रत्यृचं द्विजः ।
कमलै बिल्वपत्रै र्वा मन्त्रेणाष्टोत्तरं शतम् ॥४५८

हुत्वाऽथ पौरुषं सूक्तं श्रीसूक्तं जुहुयाद् द्विजः ।
सहस्रनामभिः स्तुत्वा वैष्णवान् भोजयेत्ततः ॥४५९

हुतशेषं स्वयं भुक्त्वा भूमौ स्वप्याज्जितेन्द्रियः ।
एवं संपूज्य देवेशं माधव्यां मधुसूदनः ॥४६०

सर्वान् कामानवाप्नोति हरिसायुज्यमाप्नुयात् ।
वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु मध्याह्ने पुरुषोत्तमम् ॥४६१

अर्च्चयेद्रक्तकमलै रुत्पलैः पाटलैरपि ।
ह्रीवेरकरवीरैश्च गायत्र्या विष्णुसंज्ञया ॥४६२

दध्यन्नं फलसंयुक्तं पायसञ्च निवेदयेत् ।
प्रत्यृचं चेद्दिवं सूक्तैः प्रत्यृचं जुहुयात्ततः ॥४६३

सौराष्ट्रे द्रेति सूक्तेन दीपैर्नीराजयेत्ततः ।
शक्त्या विप्रान् भोजयित्वा पूजयेद्देशिकं तथा ॥४६४

तस्मिन् सम्पूजितो देवः प्रत्यक्षस्तत्क्षणाद्भवेत् ।
शयने भोजयेद्विष्णुं पूजयेच्छ्रद्धयाऽन्वितः ॥४६५

कुशप्रसूनदूर्व्वाग्रपुण्डरीककदम्बकैः ।
मूलमन्त्रेण श्रीविष्णुं गायत्र्या च समर्चयेत् ॥४६६

सत्येनोत्तमसूक्तेन ऋग्भिः पुष्पाञ्जलिं यजेत् ।
मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं तुलसीपल्लवै स्तथा ॥४६७

पश्चाद्धोमं प्रकुर्व्वीत विष्णुसूक्तैः सुपायसम् ।
मन्त्ररत्नेन जुहुयादाज्यमष्टोत्तरं शतम् ॥४६८

सशर्करं पायसान्नमपूपान्विनिवेदयेत् ।
विश्वजितेति सूक्तेन कुर्य्यान्नीराजनं ततः ॥४६९

भोजयेद्वैष्णवान् विप्रान् पूजयेच्च विशेषतः ।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति हयमेधायुतं लभेत् ॥४७०

प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता नभःकृष्णाष्टमी यदा ।
नभस्यैव भवेत्सातु जयन्ती परिकीर्तिता ॥४७१

तस्यां जातो जगन्नाथः केशवः कंसमर्दनः ।
तस्मिन्नुपोष्य विधिवत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४७२

अष्टमी रोहिणीयोगो मुहूर्तं वा दिवानिशम् ।
मुख्यकाल इतिख्यात स्तत्र जातः स्वयं हरिः ।
मासद्वये यद्यलाभे योगे तस्मिन् दिवा निशि ॥४७३

नवमी रोहिणीयोगः कर्तव्यो वैष्णवैर्द्विजैः ।
रात्रियोगस्तु बलवान् तस्यां जातो जनार्दनः ॥४७४

तिलेन वै भवान्ते च पारणा यत्र चोच्यते ।
यामत्रयवियुक्तायां प्रातरेव हि पारणा ॥४७५

पूर्वेद्युर्नियमं कुर्य्याद्दन्तधावनपूर्वकम्।
प्रातः स्नात्वा विधानेन पूजयेत् कृष्णमव्ययम् ।।४७६

षडक्षरेण मन्त्रेण बालकृष्णतनुं हरिम्।
सुकृष्णतुलसीपत्रैरर्चयेच्छ्रद्धयाऽन्वितः ।।४७७

दुग्धं क्षीरं शर्कराश्च नवनीतं निवेदयेत्।
सहस्रमयुतं वाऽपि जपेन्मन्त्रं षडक्षरम् ।।४७८

गवाज्यं जुहुयाद्वह्नौ कृष्णमन्त्रेण पायसम्।
सहस्रं शतवारं वा प्रत्यृचं विष्णु सूक्तकैः ।।४७९

हुत्वा सुगन्धिपुष्पाणि तैरेव च समर्चयेत्।
सहस्रनाम्नां गीतानां पठनं गुरुपूजनम् ।।४८०

वैष्णवान् भोजयेच्छक्त्या हुतशेषं सकृत्स्वयम्।
हुत्वा (भुक्त्वा) कुशोत्तरे स्वप्याद्भूमौ नियमवान् शुचिः ।।४८१

परेऽह्नु पोष्य विधिवत् स्नात्वा नद्यां विधानतः।
तर्पयित्वा जगन्नाथं पितृन्देवांश्च तर्पयेत् ।।४८२

पूर्ववत् पूजयित्वेशं जपहोमादिकं चरेत् ।।४८३

अवैष्णवं द्विजं तस्मिन् वाङ्मात्रेणापि (न) वार्चयेत्।
पुराणादिप्रपाठेन रात्रौ जागरणं चरेत् ।।४८४

शीतांशावुदिते स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः शुचिः।
नवो नवो भवतीत्यृचाऽर्घ्यं विनिवेदयेत् ।।४८५

अर्चयेन्मातुरुत्सङ्गे स्थितं कृष्णं सनातनम्।
तुलसीगन्धपुष्पैश्च कस्तूरीचन्द्रचन्दनैः ।।४८६

षडक्षरेण मन्त्रेण भक्त्या सम्पूजयेद्धरिम् ।
वसुदेवं नन्दगोपं बलभद्रञ्च रोहिणीम् ॥४८७
यशोदां च सुभद्रां च मायां दिक्षु प्रपूजयेत् ।
प्रह्लादादीन् वैष्णवांश्च तथा लोकेश्वरानपि ॥४८८
धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलञ्च समर्पयेत् ।
अनूनमिति सूक्तेन भक्त्या नीराजनं तथा ॥४८९
शन्न इत्यादिसूक्तैश्च दद्यात् पुष्पाणि वैष्णवः ।
दशाक्षरेण मन्त्रेण पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥४९०
सहस्रनामभिः स्तुत्वा शय्यायां विनिवेशयेत् ।
गीतं नृत्यञ्च वाद्यञ्च यथा शक्त्या च कारयेत् ॥४९१
ततः प्रभातसमये सन्ध्यामन्वास्य वैष्णवः ।
दशाक्षरेण मन्त्रेण तुलसीचन्दनादिभिः ॥४९२
सम्पूज्य वैष्णवैः सूक्तैः कुर्य्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ।
मन्त्रेण जुहुयादाज्यं सहस्रं हव्यवाहने ॥४९३
ममाग्न इति सूक्ताभ्यां जुहुयात्पायसं ततः ।
परोमात्रेति सूक्तेन चरुं तिलविमिश्रितम् ॥४९४
सर्वैश्च भगवन्मन्त्रैरेकैकामाहुतिं यजेत् ।
नामभिः केशवाद्यैश्च तथा सङ्कर्षणादिभिः ॥४९५
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ।
ततो मङ्गलवादित्रै यानै यौक्तैश्च चामरैः ॥४९६
लाजै हरिद्राचूर्णैश्च गन्धैः पुष्पैः सुगन्धिभिः ।
मुदा विकीरयन् सर्वे बालवृद्धाश्च मध्यमाः ॥४९७

नार्य्यश्च रमणैः सार्द्धं सुवासिन्यश्च योषितः।
आरोप्य शिविकायान्तु देवकीनन्दनं हरिम् ॥४९८
अकर्दमां नदीं रम्यां तडागं वा मनोहरम्।
गच्छेयुर्ग्राहशैवालजलौकादिविवर्जितम् ॥४९९
कुर्य्यादवभृथं तत्र पावमान्यैः पवित्रकैः।
विष्णुसूक्तैश्च सुस्नात्वा देवान् पितॄंश्च तर्पयेत् ॥५००
विचित्राणि च भक्ष्याणि दद्यात्तत्र शुभान्वितः।
गृहं गत्वा तथैवेशं पूर्ववत्पूजयेद् द्विजः ॥५०१
भोजयित्वा ततो विप्रान् दक्षिणाभिश्च तोषयेत्।
हिरण्यवस्त्राभरणैराचार्यं पूजयेत्तु सः ॥५०२
स्वयञ्च पारणां कुर्य्यात् पुत्रपौत्रसमन्वितः।
सायाह्ने समनुप्राप्ते दोलायामर्च्चयेद्धरिम् ॥५०३
चतुः स्तम्भां चतुर्धामवितानाद्यैरलङ्कृताम्।
धूपैर्दीपैश्चैव रम्यां दोलां सम्पूजयेद् द्विजः ॥५०४
स्तम्भेषु वेदान् मन्त्रांश्च धामस्वभ्यर्च्य कच्छपम्।
पादेष्वाशागजान् पीठे सप्तच्छन्दांसि चाऽऽस्तरे ॥५०५
प्रणवञ्चाऽऽतपत्रे तु शेषं केतौ खगेश्वरम्।
इतिहासपुराणानि सर्वतः परिपूजयेत् ॥५०६
तस्यां निवेश्य दोलायां वासुदेवं श्रियः पतिम्।
उपचारैरर्चयित्वा शनैर्दोलाञ्च दोलयेत् ॥५०७
वेदाद्यैर्ब्रह्मणस्पत्यैः सूक्तै रङ्गैर्द्विजोत्तमः।
सामगानैः प्रबन्धैश्च गायन् कृष्णं जगद्गुरुम् ॥५०८

सुवासिन्यो दोलयित्वा वैष्णवान् पूजयेत्ततः।
एवं संपूज्य देवेशं पापैर्मुक्तो हरिं व्रजेत् ॥५०९

दोलायां दर्शनं विष्णोर्महापातकनाशनम्।
कोटियागानुजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥५१०

शिवब्रह्मादयो देवा नारदाद्या महर्षयः।
दोलायां दर्शनार्थं वै प्रयान्त्यनुचरैः सह ॥५११

गन्धर्वाप्सरसः सर्वा विमानस्थाः सकिन्नराः।
गायन्ति सामगानैश्च दोलायामर्चितं हरिम् ॥५१२

गवाज्यसंयुतैर्दीपैर्भक्त्या नीराजनं चरेत्।
मरुत्व इन्द्रसूक्तेन मङ्गलाशीर्भिरेव च ॥५१३

ताम्बूलफलपुष्पाद्यैर्वैष्णवान् भोजयेत्ततः।
आशिषोवाचनं कृत्वा नमस्कृत्वा विसर्जयेत् ॥५१४

एवं संपूज्य देवेशं जयन्त्यां मधुसूदनम्।
सर्वांल्लोकान् जपेत्त्वाशु याति विष्णोः परं पदम् ॥५१५

मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादश्यां विष्णुदैवते।
आदित्यामुदभूद्विष्णुरुपेन्द्रो वामनोऽव्ययः ॥५१६

तस्यां स्नानोपवासाद्यमक्षय्यं परिकीर्तितम्।
श्रीकृष्णजन्मवत् सर्वं कुर्यादत्रापि वैष्णवः ॥५१७

सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥५१८

माघमासे तु सप्तम्या मुदिते चैव भास्करे।
स्नात्वा नद्यां विधानेन पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥५१९

रक्तैश्च करवीरैश्च कुमुदेन्दीवरादिभिः।
मन्त्ररत्नेनार्चयित्वा पायसान्नं निवेदयेत् ॥५२०

यतश्च गोपा इत्यादि दश सूक्तान्यनुक्रमात्।
पुष्पाणि दद्याद्भक्त्या वै प्रत्यृचं वैष्णवोत्तमः ॥५२१

सहस्रं शतवारं वा मन्त्रेणापि यजेत्ततः।
पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत तिलैः कृष्णैः सशर्करैः ॥५२२

वैष्णवैरनुवाकैश्च मन्त्ररत्नेन मन्त्रवित्।
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा शेषं कर्म्म समाचरेत् ॥५२३

नीराजनं ततो दद्यादयं गौरित्यनेन तु।
इति वा इति सूक्तेन उपस्थाय जनार्दनम् ॥५२४

सहस्रनामभिः स्तुत्वा वैष्णवान् भोजयेत्ततः।
गुरुं सम्पूजयेद्भक्त्या भुञ्जीत तद्धविः सकृत् ॥५२५

अधःशायी ब्रह्मचारी जपेद्रात्रौ समाहितः।
एवं सम्पूज्य देवेशं तस्मिन्नहनि वैष्णवः ॥५२६

त्रिकोटिकुलमुद्धृत्य वैष्णवं पदमाप्नुयात्।
द्वादश्यामपि तस्यां वै यज्ञवाराहमच्युतम् ॥५२७

वैष्णव्या चैव गायत्र्या पूजयेत् प्रयतात्मवान्।
महिषाख्यं घृताक्तं वै धूपं दद्यात् प्रयत्नतः ॥५२८

दद्यादष्टाङ्गदीपं च गवाज्येन च वैष्णवः।
सशर्कराज्यं सूपान्नं मोदकान् कृसरं तथा ॥५२९

इक्षुदण्डानि रम्याणि फलानि च निवेदयेत्।
प्र ते महीति सूक्तेन दद्यात् पुष्पाणि भक्तिमान् ॥५३०

सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तै श्चरुणा पायसेन वा ।
मधुसूक्तेन होतव्यं गायत्र्या विष्णुसंज्ञया ॥५३१
आज्येन वैष्णवैर्मन्त्रैः त्रिशतं त्रिभिरेव तु ।
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥५३२
भोजयेद् ब्राह्मणान् भक्त्या गुरुं चापि प्रपूजयेत् ।
सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥५३३
तत्फलं लभते मर्त्यो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।
कोदण्डस्थे दिनकरे तस्मिन्मासि निरन्तरम् ॥५३४
अरुणोदयवेलायां प्रातः स्नानं समाचरेत् ।
तर्पयित्वा विधानेन कृतकृत्यः समाहितः ॥५३५
नारायणं जगन्नाथमर्चयेद्विधिवद् द्विजः ।
पौरुषेण विधानेन मूलमन्त्रेण वा यजेत् ॥५३६
शतपत्रैश्च जातीभिस्तुलसीबिल्वपुष्करैः ।
गन्धैर्धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥५३७
पायसान्नं शर्करान्नं मुद्गान्नं सघृतं हविः ।
सुवासितञ्च दध्यन्नमपूपान् मधुमिश्रितान् ॥५३८
मोदकान् पृथुकान् लाजान् शष्कुली(सक्तुभिः)चणकानपि ।
विविधानि च भक्ष्याणि फलानि च निवेदयेत् ॥५३९
वेदपारायणेनैव मासमेकं निरन्तरम् ।
ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च ॥५४०
ऋचामशीतिपादैश्च पारायणं प्रकीर्तितम् ।
वेदपारायणेनैव प्रत्यृचं कुसुमान्यजेत् ॥५४१

रात्रौ होमं प्रकुर्वीत तिलैर्व्रीहिभिरेव वा ।
सर्ववेदेष्वशक्तस्तु होमकर्मणि वैष्णवः ॥५४२
वैष्णवैरनुवाकैर्वा प्रत्यहं जुहुयाद् बुधः ।
यजुषाऽपि तथा साम्नां शक्त्या पुष्पाञ्जलिं चरेत् ॥५४३
अशक्तो यस्तु वेदेन प्रतिवासरमच्युतम् ।
मूलमन्त्रेण साहस्रं दद्यात् पुष्पाञ्जलिं द्विजः ॥५४४
तेनैव जुहुयाद्भक्त्या सहस्रं वह्निमण्डले ।
अथवा रघुनाथस्य चारित्रेण महात्मनः ॥५४५
प्रतिश्लोकेन पुष्पाणि दद्यान्मासं निरन्तरम् ।
अधःशायी ब्रह्मचारी सकृद्भोजी भवेद्द्विजः ॥५४६
मासान्ते तु विशेषेण पूजयेद् वैष्णवान् द्विजान् ।
एवमभ्यर्च्य गोविन्दं धनुर्मासे निरन्तरम् ॥५४७
दिने दिने वैष्णवेष्ट्या फलं प्राप्नोत्यसंशयः ।
यं यं कामयते चित्ते तं तमाप्नोति पुरुषः ॥५४८
महद्भिः पातकैर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।
ततोमास्युदिते भानौ मासमेकं निरन्तरम् ॥५४९
स्नात्वा नद्यां तडागे वा तर्पयेत्पतिमच्युतम् ।
अर्चयेन्माधवं नित्यं तन्मन्त्रेणैव तत्र वै ॥५५०
मन्त्ररत्नेन वा नित्यं माधवीचूतचम्पकैः ।
मण्ड(क)पानि विचित्राणि शर्कराज्ययुतानि च ॥५५१
शाल्यन्नं दधिसंयुक्तं मोदकांश्च निवेदयेत् ।
वैष्णवैः पावमानैश्च कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥५५२

तिलैश्च जुहुयाद्वह्नौ मधुशर्करमिश्रितैः।
प्रत्यृचं पुरुषसूक्तेन श्रीसूक्तेनापि वैष्णवः ॥५५३
सहस्रं मूलमन्त्रेण तन्मन्त्रेणापि वै द्विजः।
सहस्रं वा शतं वाऽपि शक्त्या च जुहुयाद् बुधः ॥५५४
यज्ञे यज्ञमिति ऋचा दीपान्नीराजयेत्ततः।
रात्रौ दोलार्चनं कुर्याद्वैष्णवैर्द्विजसत्तमैः ॥५५५
मासान्ते भोजयेद्विप्रान् वासोऽलङ्कारभूषणैः।
एवं सम्पूजिते तस्मिन् प्रसन्नोऽभूज्जनार्दनः ॥५५६
ददाति स्वपदं दिव्यं योगिगम्यं सनातनम्।
फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां वै उदिते च निशाकरे ॥५५७
उपोष्य विधिवद्भक्त्या पूजयेद्वैष्णवोत्तमः।
तिलैश्च करवीरैश्च कर्णिकारैश्च पाटलैः ॥५५८
कुन्दसहस्रकुसुमैर्यजेत् तं कमलापतिम्।
विष्णुसूक्तैः प्रत्यृचं च चरुणाऽऽज्येन मन्त्रतः ॥५५९
ब्रह्मा देवानामनेन दीपान्नीराजयेत्ततः।
प्रसन्नो नित्यमनेन उपस्थाय सनातनम्।
वैष्णवान् भोजयेच्छक्त्या भुञ्जीयाद्वाग्यतः स्वयम् ॥५६०
एवं सम्पूज्य देवेशं तस्यां रात्रौ सनातनम्।
षष्टिवर्षसहस्रस्य पूजामाप्नोत्यसंशयः ॥५६१
एवं सम्पूजयेद्विष्णुं निमित्तेषु विशेषतः।
यथाकालं यथावर्णं यथाशक्त्या यथाबलम् ॥५६२
यथोक्तपुष्पालाभे तु तुलस्या वै समर्चयेत्।

नैवेद्यस्याप्यलाभे तु हविष्यं वा निवेदयेत् ॥५६३

सूक्तानि वैष्णवान्येत्र सूक्तालाभे यथा जपेत् ।
एकेन वा पौरुषेण सूक्तेन जुहुयात्तथा ॥५६४

सर्वत्राऽज्यं प्रशस्तं स्याद्धोमद्रव्याद्यलाभतः ।
मन्त्रालाभे मूलमन्त्रं सर्वतन्त्रेषु यो यजेत् ॥५६५

उपस्थानन्तु सर्वत्र तद्विष्णोरिति वा ऋचा ।
नीराजनन्तु सर्वत्र श्रिये जातेत्यनेन वा ॥५६६

तत्तत्कालोचितं सर्वं मनसा वाऽपि पूजयेत् ।
तुलसीमिश्रितं तोयं भक्त्या वाऽपि समर्पयेत् ॥५६७

सर्वेष्वेषु निमित्तेषु महाभागवतोत्तमान् ।
सम्पूज्य परिपूर्णत्वमाप्नोत्यत्र न संशयः ॥५६८

इति वृद्धहारीतस्मृतौ विशिष्टपरमधर्मशास्त्रे भगवन्नित्यनैमित्तिक-
समाराधनविधिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

॥ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ महापापादिप्रायश्चित्तप्रकरणविधौ ।

प्रथमं भगवतः यात्रोत्सववर्णनम् ।

हारीत उवाच ।

महोत्सवविधिं कुर्याद्देवस्य परमात्मनः ॥१

ग्रामार्चायाः प्रकुर्वीत यथोक्तविधिना नृप ! ।
यात्रोत्सवे कृते विष्णोः श्रुतिस्मृत्युक्तमार्गतः ॥२

अनावृष्ट्यग्निदुर्भिक्षभयं नास्त्यत्र किञ्चन।
वारिजं वातजं वाऽग्निसर्पविद्युद्द्विषत्कृतम्॥३
महारोगग्रहैश्चैवं यद्भयं ग्रामवासिनाम्।
कृते महोत्सवे तत्र भयं नास्ति न संशयः॥४
तस्य दासा भविष्यन्ति नानाजनपदेश्वराः।
सार्वभौमो भवेद्राजा भक्त्या कृत्वा महोत्सवम्॥५
नवाह्निकं च सप्ताहं पञ्चाहं प्रत्यहं तथा।
सम्वत्सरे ऋतौ मासि पक्षेत् कुर्यात् क्रमेण तु॥६
तस्मिन्नादौ शुभदिने स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
अङ्कुरार्पणमादौ तु गरुत्मत्केतुमुच्छ्रयेत्॥७
याश्च षडित्योषधयः केतुको वेद इत्यपि।
अश्वत्थाख्यशमीगर्भशुभामरणिमाहरेत्॥८
निर्मथितेति सूक्तेन तथैवासीदमीति च।
आभ्यां च प्रत्यृचं तस्मिन्निध्माधानादि पूर्ववत्॥६
चर्वाज्यैरथमन्नीति उपस्थायार्चयेत्तथा।
तदाग्निं संग्रहेत्तावदुत्सवः परिपूर्यते॥१०
दीक्षितः स भवेत्तावदाचार्यो विजितेन्द्रियः।
वेदवेदाङ्गविच्छ्रौतस्मार्तकर्मविधानवत्॥११
महाभागवतो विप्रस्तान्त्रिकः सर्वकर्मसु।
लौकिके वा प्रकुर्वीत मथिताग्निर्न चेद्यदि॥१२
आभ्यामेव च सूक्ताभ्यामग्नौ देवं यजेद्बुधः।
प्रातः (स्नात्वा) स्मार्तविधानेन धौतवस्त्रोर्ध्वपुण्ड्रधृत्॥१३

ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैर्दान्तैर्यागभूमिं विशेद्गुरुः ।
देवालयस्य मध्ये तु वेदिं रम्यां प्रकल्पयेत् ॥१४
अङ्कुरार्पणपात्रैश्च भद्रकुम्भैरलङ्कृताम् ।
वितानकुसुमाद्युक्तां कृत्वा तत्र सुखासने ॥१५
महोत्सवार्हं बिम्बं च निवेश्यास्मिन् प्रपूजयेत् ।
श्रीभूनिलादिसंयुक्तं नित्यैः परिजनैर्वृतम् ॥१६
मन्त्ररत्नविधानेन पूजयित्वा जगद्गुरुम् ।
इमे विप्रस्येत्यादिभि स्त्रिभिः सूक्तैश्च पूजयेत् ॥१७
सुरभीणि च पुष्पाणि प्रत्यृचं विनिवेदयेत् ।
चदुर्दिक्षु च चत्वारो ब्राह्मणा मन्त्रवित्तमाः ॥१८
वाराहं नारसिंहं च वामनं राघवं मनुम् ।
ईशान्यादिषु चत्वारो विष्णुमन्त्रान् विदिक्षु च ॥१९
वेद्या दक्षिणतः कुण्डं (कुम्भं) लक्षणा(द्यं)ढ्यं च तत्र तु ।
हुताशनं प्रतिष्ठाप्य इध्माधानानिकं चरेत् ॥२०
सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैश्चरुं तिलविमिश्रितम् ।
प्रत्यृचं जुहुयाद्वह्नौ मध्वाज्यगुडमिश्रितम् ॥२१
आज्यं श्रीभूमिसूक्ताभ्यां त्वं सोम इति पायसम् ।
पूर्वोक्तैर्वैष्णवैर्मन्त्रैस्तिलैर्व्रीहिभिरेव वा ॥२२
प्रत्येकं जुहुयात्पश्चादष्टोत्तरशतं क्रमात् ।
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥२३
सुदध्यन्नं फलयुतं पानकञ्च निवेदयेत् ।
ताम्बूलञ्च समर्प्याथ ऋत्विजश्चापि पूजयेत् ॥२४

ततः स्यन्दनमानीय पताकाच्छत्रसंयुतम् ।
श्वेतैः सलक्षणैरूह्ययानमश्वैः प्रकल्पितैः ॥२५
वस्त्रपुष्पमणिस्वर्णभूषितं तत्र चित्रितम् ।
तस्मिन् मृदुतरश्लक्ष्णपर्यङ्कं स्थाप्य देशिकः ॥२६
तस्मिन्निवेश्य देवेशं देवीभ्यां सहितं हरिम् ।
अर्चयेद् गन्धपुष्पाद्यैर्धूपदीपादिभिस्तथा ॥२७
रथचक्रेषु वेदांश्च धर्मादीनपि पूजयेत् ।
आधारशक्तिमाधारे ईषादण्डे पुराणकम् ॥२८
छन्दांसि कूवरे सप्त पर्यङ्के भुजगाधिपम् ।
हयेषु चतुरो मन्त्रान् योक्त्रेष्वङ्गानि षट् च वै ॥२९
ध्वजे पताकराजानं छत्रेऽनन्तं स्वराणि तु ।
तालवृन्ते चामरे च अक्षराणि च पूजयेत् ॥३०
अभ्यर्च्यैवं रथं दिव्यं पश्चात् संपूजयेद्धरिम् ।
दिक्पालावरणांश्चैव मर्चयेद्दिक्षु सर्वतः ॥३१
जीमूतस्येति सूक्तेन तत्र पुष्पाञ्जलिं चरेत् ।
मरुत्वानिन्द्रेति सूक्तेन कृत्वा नीराजनं ततः ॥३२
वनस्पतीति सूक्तेन वादयेत्पटहादिकम् ।
गीतैर्नृत्यैश्च वादित्रैः पुण्यस्तोत्रैर्मनोहरैः ॥३३
हयैर्गजैः स्यन्दनैश्च परितस्तर्पयेत्प्रभुम् ।
ऋत्विजः पुरतो वेदानङ्गानि च जपेत्तदा ॥३४
गायेत् सामानि भक्त्या वै पुरतः पार्श्वतो हरेः ।
कुङ्कुमैः कुसुमै र्लाजै र्विकिरन्वै समन्ततः ॥३५

स्वलङ्कृतेषु विधिषु पर्यटन् सेवयेत्प्रभुम् ।
गृहद्वारेषु मार्गेषु भक्ष्यैरिक्षुभिरेव च ॥३६
कुसुमै धूपदीपैश्च ताम्बूलैश्चापि सेवयेत् ।
एवं निषेव्य देवेशं पुनर्गेहं निवेशयेत् ॥३७
तमभि प्रगायतेति जपन् सूक्तं निवेशयेत् ।
प्रसन्नाज मित्यनेन दीपान्नीराजयेत्ततः ॥३८
पीठे निवेश्य देवेशमुपचारान् समर्पयेत् ।
वयमुपेत्य ध्यायेम आशिषो वाचनं चरेत् ॥३६
अनेन विधिना कुर्यादुत्सवं प्रतिवासरम् ।
जपेर्होमै स्तथा दानैर्विप्राणां भोजनैरपि ॥४०
समाप्ते चोत्सवे विष्णोः कुर्यादवभृथं शुभम् ।
नदीं खातं तडागं वा देवेन सहितो व्रजेत् ॥४१
स्यन्दनादिषु यानेषु स्थिता नार्यः स्वलङ्कृताः ।
पुरुषाश्च हरिद्राश्च चूर्णादीन् विकिरन्मिथः ॥४२
कुर्यादवभृथं तत्र विशिष्टैर्ब्राह्मणैः सह ।
वासुदेवोत्सवे स्नानमश्वमेधफलं लभेत् ॥४३
स्नात्वा सन्तर्प्य देवादीन् प्रविश्य हरिमन्दिरम् ।
यजेतावभृथेष्टिभ्व अस्य वामेति सूक्ततः ॥४४
चरुमाज्यं तिलैर्वापि अनुवाकैश्च वैष्णवैः ।
एवं हुत्वावभृथेष्टिं वै वैष्णवान् भोजयेत्ततः ॥४५
गुरुश्व ऋत्विजश्चैव पूजयेद्भक्तित स्ततः ।
पिबासोमेत्यध्यायेन कुर्यात् स्वस्त्ययनं हरेः ॥४६

इच्छन्ति त्वेत्य ध्यानेन प्रत्यृचश्च द्वयेन च।
अष्टोत्तरशतं जुहुयात्कुसुमैरेव वैष्णवः ॥४७
हिरण्यगर्भसूक्तेन तथैवाऽऽज्यं द्विजोत्तमः।
पुनरेव तु होतव्यं हुत्वा वैकुण्ठपार्षदम् ॥४८
होमशेषं समाप्याथ वैष्णवान् भोजयेदपि।
सर्वयज्ञसमाप्तौ तु पुष्पयागं समाचरेत् ॥४६
सर्वं सम्पूर्णतामेति परितुष्टो जनार्दनः।
एवं महोत्सवं कुर्यात्प्रत्यब्दं परमात्मनः ॥५०
अथ नित्योत्सवे पूजा होमश्चात्र विधीयते।
शिविकायां निवेश्येशं पूजयित्वा विधानतः ॥५१
तत्र चामरवादित्रभृङ्गारैस्तालवृन्तकैः।
दीपिकाभिरनेकाभिर्दूर्वाग्रकुसुमाक्षतैः ॥५२
फलमोदकहस्ताभिर्नारीभिः समलङ्कृतम्।
देवस्याऽऽयतनं रम्यं त्रिः प्रदक्षिणमाचरेत् ॥५३
तत्तन्मन्त्रान् जपेद्दिक्षु सर्वासु द्विजपुङ्गवाः।
बलिञ्च निक्षिपेतासु देवानुद्दिश्य पूर्वतः ॥५४
प्राचीं विश्वजिते सूक्तमग्ने तव अनन्तरम्।
याम्ये परे इमां सन्तु मोषुणस्तु तदन्तरम् ॥५५
यच्चिद्धेति प्रतीच्यान्तु विहिहोत्येत्यनन्तरम्।
स सोम इति सौम्यान्तु कद्रुद्रायेत्यनन्तरम् ॥५६
प्रजापतिं तथा चोर्द्ध्वमधश्च पृथिवीं क्षिपेत्।
एवं दिक्षु बलिं दत्त्वा परिणीय जनार्दनम् ॥५७

स्तुतिभिः पुष्कलाभिश्च भवनं सम्प्रवेशयेत्।
पीठे निवेश्य देवेशं पूजयित्वा विधानतः ॥५८

विहिसोतादि सूक्तेन दद्यात् पुष्पाणि शार्ङ्गिणे।
नीराजनं ततो दद्यात् ध्रुवसूक्तेन वैष्णवः ॥५९

शाययित्वा च शय्यायां दद्यात् पुष्पाणि मन्त्रतः।
इमं महेति सूक्ताभ्यां पूजयेत् विष्णुमव्ययम् ॥६०

सौदर्शनेन मन्त्रेण रक्षां कुर्यात्समन्ततः ॥६१

एवं नित्योत्सवं कुर्याद्रात्रौ चाहनि सर्वदा।
गुरूणामन्त्यदिवसे भगवज्जन्मवासरे ॥६२

कार्तिक्यां श्रावणे वाऽपि कुर्यादिष्टिश्च वैष्णवीम्।
उपोष्य पूर्वदिवसे दीक्षितः सुसमाहितः ॥६३

स्वस्तिवाचनपूर्वेण कारयेदङ्कुरार्पणम्।
नद्यां स्नात्वा च ऋत्विग्भि श्चतुर्भि र्वेदपारगैः ॥६४

पौरुषेण विधानेन पूजयेत् पुरुषोत्तमम्।
गन्धै र्नानाविधैः पुष्पै र्धूपै र्दीपै र्निवेदनैः ॥६५

फलैश्च भक्ष्यभोज्यैश्च ताम्बूलाद्यैः प्रपूजयेत्।
अर्घ्याद्यैरुपचारैस्तु सूक्तान्ते पूजयेद्धरिम् ॥६६

अध्यायान्ते मण्डलान्ते नैवेद्यैर्विविधैरपि।
पूजयित्वा हरिं भक्त्या वैष्णवान् भोजयेत्तथा ॥६७

आज्येन चरुणा वाऽपि तिलैः पद्मैरथापि वा।
समिद्भिर्बिल्वपत्रै र्वा होमं कुर्वीत वैष्णवः ॥६८

यज्ञरूपं हरिं ध्यायन् प्रत्यृचं वेदसंहिताम्।
होमः समाप्यते यावत्तावद्वै दीक्षितो भवेत्॥६९
जुहुयाद्वै गार्हपत्यो सोऽग्निमभ्यर्च्य भूपते!।
अग्निरक्षणमप्युक्तं यावदिष्टिः समाप्यते॥७०
विशिष्टान् वैष्णवान् विप्रान् भोजयेत्प्रतिवासरम्।
ऋत्विजश्च पठेत्तावच्चतुर्मन्त्रान् समाहितः॥७१
यजेदवभृथेष्टिं च पावमान्यैश्च वैष्णवैः।
अन्ते संपूजयेद्विप्रान् वासोऽलङ्कारभूषणैः॥७२
ऋत्विजश्च गुरुं चैव पूजयेच्च विशेषतः।
एवमिष्टिन्तु यः कुर्याद्वैष्णवीं वैष्णवोत्तमः॥७३
क्रतूनां दशकोटीनां फलं प्राप्नोत्यसंशयः।
यस्मिन्देशे वैष्णवेष्ट्या पूजितो मधुसूदनः॥७४
दुर्भिक्षरोगाग्निभयं तस्मिन् नास्ति न संशयः।
अशक्तः सर्वदेवेन कर्त्तुमिष्टिं च वैष्णवीम्॥७५
सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैर्जुहुयात्प्रत्यृचं हविः।
तैरेव पुष्पाञ्जलिं च कुर्यादिष्ट्याः प्रपूर्त्तये॥७६
अथवा मूलमन्त्रं तु लक्षं जप्त्वा हुताशने।
अयुतं जुहुयात्तद्वत्पुष्पाणि च सनातने॥७७
इष्टिः संपूर्णतां याति सर्ववेदाः सदक्षिणाः।
एवमिष्टिं प्रकुर्वीत प्रत्यब्दं वैष्णवोत्तमः॥७८
तुष्ट्यर्थं वासुदेवस्य वंशस्योज्जीवनाय च।
वृष्ट्यर्थमपि लोकस्य देवतानां हिताय च॥७८

पिता वा यदि वा माता भ्राता वाऽन्ये सुहृज्जनाः।
यदि पञ्चत्वमापन्नाः कथं कुर्याद् द्विजोत्तमः ॥७९

कनिष्ठवर्जमेवात्र वपनं मुनिभिः स्मृतम्।
स्नात्वाऽऽचम्य विधानेन कारयेत् पूजनं हरेः।
रङ्गबल्यादिभि स्तत्र कुर्यात् सर्वत्र मङ्गलम् ॥८०

रोदनं वर्जयित्वैव गोमयेन शुचि स्थलम्।
विलिप्य मण्डले तत्र धान्यस्योपर्युलूखलम् ॥८१

कलशांस्तु चतुर्दिक्षु तण्डुलोपरि निक्षिपेत्।
हिरण्यपञ्चगव्यानि पञ्चत्वक्पल्लवान् न्यसेत् ॥८२

वाससा तन्तुना वाऽपि वेष्टयेत् त्रिः प्रदक्षिणम्।
उलूखले वासुदेवं कलशेषु क्रमेण च ॥८३

प्रद्युम्न मनिरुद्धञ्च सङ्कर्षण मधोक्षजम्।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्त्या भक्ष्यं निवेदयेत् ॥८४

अभ्यर्च्य मुसलं पुष्पैर्गायत्र्या प्रणवेन च।
हरिद्रामवहन्यात्तु परोमात्रेति वै जपन् ॥८५

भगवन्मन्दिरे विष्णुं हरिद्राद्यैः प्रपूजयेत्।
पितुः शरीरं विधिवत् स्नापयेत्कलशोदकैः ॥८६

तिलैश्च पञ्चगव्यैश्च गायत्र्या वैष्णवेन च।
उद्वर्त्यसर्वकर्मणेति स्नापयेत्पितरं सुतः ॥८७

नारायणानुवाकेन चैवं स्नाप्य ततः पितुः।
धौतवस्त्रञ्च सम्वेष्ट्य भूषणैर्भूषयेत्ततः ॥८८

गन्धमाल्यै रलङ्कृत्य शुचौ देशे कुशोत्तरे।
तिलोपरि विधायैनं वस्त्रं हित्वाऽन्यतः सुतम्॥८९
धारयेदुत्तरीये द्वे यावत्कर्म समाप्यते।
हुत्वैवोपासनं तस्य आर्द्रयज्ञीयकाष्ठकैः॥९०
शिविकां कारयित्वाऽथ वस्त्रमूल्यादिभिः शुभाम्।
तस्मिन्निवेश्य तं प्रेतं बाहकान्वरयेत्ततः॥९१
स्ववर्णवैष्णवानेव पूजयेत् स्वर्णदक्षिणैः।
वहेयुस्तेऽपि भक्त्या तं पठन् विष्णुस्तवान् मुदा॥९२
हरिद्रालाजपुष्पाणि विकिरन् वैष्णवा मुदा।
वादित्रनृत्यगीताद्यै र्व्रजेयुः कीर्तयन् हरिम्।
हुताग्निमग्रतः कृत्वा गच्छेयुस्तस्य बान्धवाः॥९३
वाहकानामलाभे तु शकटे गोवृषान्विते।
निवेश्य शिविकां रम्यां व्रजेयुर्न्नगराद्बहिः॥९४
दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत्।
पश्चिमोत्तरपूर्वेषु यथासङ्ख्यं द्विजातयः॥९५
प्रागद्वारं सर्ववर्णानां न निषिद्धं कदाचन।
गत्वा शुभतरं देशं रम्यं शुभजलान्वितम्॥९६
यज्ञवृक्षसमाकीर्ण ममेध्यादिविवर्जितम्।
खातयेत्तत्र कुण्डं तु निम्नं हस्तत्रयं तदा।
द्वाभ्यान्त्रिभिर्वा विस्तारं चतुरायतमेव च॥९६
ततः संमार्जनं कृत्वा गोमयान्वितवारिणा।
सम्प्रोक्ष्य यज्ञियैः काष्ठैः क्षितिं कुर्याद्यथाविधि॥९७

आस्तीर्य दक्षिणामेवमेणाजिन मनुत्तमम् ।
तस्मिन्नास्तीर्य्य दर्भांस्तु विकीर्य च तिलांस्तथा ॥९८

तस्मिन्निवेश्य तं देवं (प्रेतं) घृताक्तं नववस्त्रकम् ।
ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितम् ॥९९

अहतं तद्विजानीयाद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
परिषिच्य चितिं पश्चादापोऽप्यस्मानितीत्यृचा ॥१००

परिस्तीर्य शुभैर्दर्भैरपसव्येन सव्यतः ।
उरस्यग्निं निधायास्य पात्रासादनमाचरेत् ॥१०१

प्रोक्षणं चमसाज्येन चरुमिध्मस्रुवौ तथा ।
आसाद्योक्तविधानेन इध्माधानान्तमाचरेत् ॥१०२

स्वगृह्योक्तविधानेन हुत्वा सर्वमशेषतः ।
पश्चादाज्ययुतं हव्यं जुहुयादुपवीतवान् ॥१०३

सोमानमित्योदनेन प्रत्यृचं तत आज्यतः ।
तं महेन्द्रेति सूक्तेन हुत्वा प्रत्यृचमेव च ॥१०४

एष इत्यनुवाकाभ्यां पृथगाज्यं यजेत्ततः ।
सर्वैश्च वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम् ॥१०५

तिलैश्च जुहुयात्पादमष्टाविंशतिमेव वा ।
एकैकामाहुतिं पश्चाद्वैकुण्ठपार्षदं यजेत् ॥१०६

ब्रह्ममेध इति प्रोक्तं मुनिभिर्ब्रह्मतत्परैः ।
महाभागवतानां वै कर्तव्यमिदमुत्तमम् ॥१०७

केशवार्पितसर्वाङ्गं शशिभं मङ्गलाद्वयम् ।
न वृथा दापयेद्विद्वान् ब्रह्ममेधविधिं विना ॥१०८

परमावगतेनापि कर्तव्यं हि द्विजन्मनः ।
द्रव्यालाभेऽपि होतव्यं यज्ञियैश्च प्रसूनकैः ॥१०६
शूद्रस्यापि विशिष्टस्य परमैकान्तिनस्तथा ।
स्वाहाकारं च वेदं च हित्वा पुष्पैर्यजेच्छुभैः ॥११०
तूष्णीमद्भिः परिषिच्य परिस्तीर्य कुशैस्तिलैः ।
नामभिः केशवाद्यैश्च तथा सङ्कर्षणादिभिः ॥१११
मत्स्यकूर्म्मादिभिश्चैव वेदार्थोक्तप्रबन्धकैः ।
नमोऽन्तमेव जुहुयात् स्वाहाकारं विवर्जयेत् ॥११२
अमन्त्रकं प्रकुर्वीत शूद्रः सर्वमशेषतः ।
दग्ध्वा शरीरं विधिवद्वैष्णवस्य महात्मनः ॥११३
यन्मरणं तदवभृथमिति मत्वा विचक्षणः ।
स्नानार्थं पुण्यसलिलं व्रजेद्भागवतैः सह ॥११४
अनुलिप्य घृतं सर्वं गोमयं वा तिलैः सह ।
दूर्वाग्रैरक्षतैर्लाजैः स्नानं कुर्वीत मङ्गलम् ॥११५
स्वगृह्योक्तविधानेन तस्य पुत्राः स्वगोत्रजाः ।
पिण्डोदकप्रदानाद्यं सर्वमप्यौर्ध्वदेहिकम् ॥११६
निर्वर्त्य विधिना धर्मं सामान्येनावशेषतः ।
विशिष्टं परमं धर्मं नारायणबलिं ततः ॥११७
प्रकुर्याद्वैष्णवैः सार्द्धं यथाशास्त्रमतन्द्रितः ।
निमन्त्रयेत्तु पूर्वेद्यु र्ब्राह्मणान् वैष्णवान् शुभान् ॥११८
चतुर्विंशतिसंख्याकान् महाभागवतोत्तमः ।
केशवादीन् समुद्दिश्य चतुर्विंशति वैष्णवान् ॥११६

रात्रौ निमन्त्र्य सम्पूज्य तैः साद्धं विजितेन्द्रियः ।
प्रातरुत्थाय तैर्गत्वा नदीं पुण्यजलान्विताम् ॥१२०
धात्रीफलानुलिप्ताङ्गो निमज्ज्य विमले जले ।
जपन् वै वैष्णवान् सूक्तान् स्नानं कुर्वीत वै द्विजः ॥१२१
वैकुण्ठतर्पणं कुर्यात् कुसुमैः सतिलाक्षतैः ।
गृहं गत्वाऽर्चयेद्देवं सर्वावरणसंयुतम् ॥१२२
सुगन्धपुष्पैर्विविधैर्गन्धैर्धूपैश्च दीपकैः ।
नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्यैश्च फलैर्नीराजनैरपि ॥१२३
अर्चयित्वा विधानेन मूलमन्त्रेण वैष्णवः ।
पुरतोऽग्निं प्रतिष्ठाप्य इध्माधानं समाचरेत् ॥१२४
चरुं सशर्कराज्यन्तु जुहुयाद्वह्निमण्डले ।
प्रत्यृचं वैष्णवैः सूक्तैः केशवाद्यैश्च नामभिः ॥१२५
हुत्वाऽथ वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम् ।
गवाज्येनैव जुहुयाच्चतुर्भि वैष्णवोत्तमः ॥१२६
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ।
अग्नेरुत्तरभागेन गोमयेनानुलिप्य च ॥१२७
आस्तीर्य दर्भान् प्रागग्रान् चतुर्विंशतिसंख्यया ।
उदक्प्रावणिकेनैव केशवादिक्रमेण तु ॥१२८
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैस्तत्तन्मन्त्रैः पृथक् पृथक् ।
मध्वाज्यतिलमिश्रेण चरुणा पायसेन वा ॥१२९
कुशेषु तेषु दद्यात्तु पिण्डान् तीर्थं विधानतः ।
स्वाहाकारेण मनसा केशवादीन् क्रमेण वै ॥१३०

दत्त्वा पिण्डान् समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतोदकैः ।
नित्यमभ्यर्च्य मुक्तेभ्यो वैष्णवेभ्यस्तथैव च ॥१३१

दद्यात् पिण्डत्रयं चैव तेषां दक्षिणतः क्रमात् ।
विष्णोर्नुकेति सूक्तेन उपस्थानजपं तथा ॥१३२

प्रदक्षिणं नमस्कारं कृत्वा भक्त्याऽथ वैष्णवः ।
पिण्डांस्तु सलिले दत्त्वा स्नात्वा संपूज्य केशवम् ॥१३३

ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्पादप्रक्षालनादिभिः ।
अर्घ्याद्यैर्गन्धपुष्पाद्यैर्वासोऽलङ्कारभूषणैः ॥१३४

केशवादीन् समुद्दिश्य नित्यान् मुक्तांश्च वैष्णवान् ।
सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या महाभागवतोत्तमान् ॥१३५

पायसं सगुडं साज्यं शुद्धान्नं पानकैः फलैः ।
सम्भोज्य विप्रानाचान्तान् प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥१३६

हविष्यञ्च सकृद्धुत्वा भूमौ दद्यात् कुशोत्तरे ।
अयं नारायणबलिर्मुनिभिः सम्प्रकीर्तितः ॥१३७

स्वर्गस्थानां च सर्वेषां कर्तव्यो वैष्णवोत्तमैः ।
अलाभेषु तु विप्रेषु वैष्णवेष्वप्यशक्तितः ॥१३८

सर्वं कृत्वा विधानेन जपहोमार्चनादिकम् ।
केशवादीन् समुद्दिश्य नित्यान् मुक्तांश्च वैष्णवान् ॥१३९

एकं वा भोजयेद्विप्रं महाभागवतोत्तमम् ।
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं विशिष्टाद्यः समाचरेत् ॥१४०

वैष्णवं परमं धर्मं महाभागवतोत्तमम् ।
तस्मिन् सम्पूजिते विप्रे सर्वं सम्पूजितं जगत् ॥१४१

तस्माद्भागवतश्रेष्ठमेकं वाऽपि सुपूजयेत् ।
हरिश्च देवताश्चैव पितरश्च महर्षयः ॥१४२

तस्मिन् सम्पूजिते विप्रे तुष्यन्त्येव न संशयः ।
अर्चनं मन्त्रपठनं ध्यानं होमश्च वन्दनम् ॥१४३

मन्त्रार्थचिन्तनं योगो वैष्णवानाञ्च पूजनम् ।
प्रसादतीर्थसेवा च नवेज्याकर्म उच्यते ।
पञ्चसंस्कारसम्पन्नो नवेज्याकर्मकारकः ॥१४४

आकारत्रयसम्पन्नो महाभागवतोत्तमः ।
श्राद्धानामन्यलाभे तु एकं नारायणं बलिम् ॥१४५

कुर्वीत परया भक्त्या वैकुण्ठपदमाप्नुयात् ।
नित्यञ्च प्रतिमासञ्च पित्रोः श्राद्धं विधानतः ॥१४६

सोदकुम्भं प्रदद्यात्तु याव (न्दान्तिकं) दिष्ट्यान्तिकं द्विजः ।
प्रत्यब्दं पार्वणश्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि ॥१४७

अर्चयित्वाऽच्युतं भक्त्या पश्चात् कुर्याद्विधानतः ।
वैष्णवानेव विप्रांस्तु सर्वकर्मसु योजयेत् ॥१४८

सर्वत्रावैष्णवान् विप्रान् पतितानिव सन्त्यजेत् ।
शङ्खचक्रविहीनास्तु देवतान्तरपूजकाः ।
द्वादशीविमुखा विप्राः शैवाश्चावैष्णवाः स्मृताः ॥१४९

अवैष्णवानां संसर्गात् पूजनाद्वन्दनादपि ।
यजनाध्यापनात्सद्यो वैष्णवत्वाच्च्युतो भवेत् ॥१५०

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं नातिक्रम्याऽऽचरेत्सदा ।
स्वशाखोक्तविधानेन वैकुण्ठार्चनपूर्वकम ॥१५१

कर्तृत्वफलसङ्गित्वे परित्यज्य समाचरेत्।
धर्मस्य कर्ता भोक्ता च परमात्मा सनातनः ॥१५२
अधर्मं मनसा वाचा कर्मणाऽपि त्यजेत्सदा।
अकृत्यकरणाद्विप्रः कृत्यस्याकरणादपि ॥१५३
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां सद्यः पतनमृच्छति।
अनिशं मनसा यस्तु पापमेवाभिचिंतयेत् ॥१५४
कल्पकोटिसहस्राणि निरयं वै स गच्छति।
यस्तु वाचा वदेत्पाप मसत्यकथनादिकम् ॥१५५
कल्पायुतसहस्राणि तिर्यग्योनिषु जायते।
यस्त्वघं कुरुते नित्यं चापल्यात्करणादिभिः ॥१५६
युगकोटिसहस्राणि विष्ठायां जायते क्रिमिः।
दान्तः शुचि स्तपस्वी च सत्यवाग्विजितेन्द्रियः ॥१५७
स सात्त्विकः शमयुतः सुरयोनिषु जायते।
यस्त्वर्थकामनिरतः सदा विषयचापलः ॥१५८
स राजसो मनुष्येषु भूयो भूयोऽभिजायते।
क्रोधी प्रमादवान् हस्रो नास्तिको विपरीतवाक् ॥१५९
निद्रालु स्तामसो याति बहुशो मृगपक्षिताम्।
महापापञ्चातिपापं पातकञ्चोपपातकम्।
प्रासङ्गिकं नरः कृत्वा नरकान् याति दारुणान् ॥१६०
तामिस्र मन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ।
सङ्घातः कालसूत्रञ्च पूयशोणितकर्दमम् ॥१६१

कुम्भीपाकं लोहशङ्कुस्तथा विण्मूत्रसागरः ।
तप्तायसाख्यो घोरा रक्तप्रायसमयं गृहम् ॥१६२

शय्या तप्तायसमयी पानकश्चाग्निसन्निभम् ।
शूलमुद्गरसङ्घातं काककङ्कोलदंशितम् ॥१६३

सिंहव्याघ्रमहानागभीकरं सम्प्रतापनम् ।
क्रिमिराशिमहाज्वालं तथा विण्मूत्रभोजनम् ॥१६४

असिपत्रवनं घोरं तप्ताङ्गारमयी नदी ।
सञ्जीवनं महाघोरमित्याद्या नरकाः स्मृताः ॥१६५

महापातकजैर्घोरैरुपपातकजैरपि ।
व्रजतीमान् महाघोरान् दुर्वृत्तैरन्वितश्च यः ॥१६६

प्रायश्चित्तरपैत्येनो यदकार्यकृतं महत् ।
कामतस्तु कृतं यत्तु मरणान्तिसिद्धि मृच्छति ॥१६७

ब्रह्महत्या सुरापानं विप्रस्वर्णस्य हारणम् ।
गुरुदाराभिगमनं तत्संयोगश्च पञ्चमः ।
संलापात् स्पर्शनाद्वासा(सोद)देकशय्यासनाशनात् ॥१६८

सौहार्दाद्वीक्षणाद्दानात्तेनैव समतां व्रजेत् ।
गुर्वाक्षेपस्त्रयीनिन्दा सुहृदाम्वध एव च ॥१६९

ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयमधीतस्य च नाशनम् ।
यागस्थं क्षत्रियं वैश्यं विशिष्टं शूद्रमेव च ॥१७०

शरणागतं स्वामिनं च पितरं भ्रातरं गुरुम् ।
पुत्रं तपस्विनं शिष्यं भार्यां तेषां च सर्वतः ॥१७१

अन्तर्वत्नीं स्त्रियो गाश्च तथाऽऽत्रेयीं रजस्वलाः।
देवताप्रतिमां साध्वीं बालांश्चैव तपस्विनीम् ॥१७२
घातयित्वा समाप्नोति ब्रह्महत्यां न संशयः।
जैह्मयमात्मस्तवं क्रूरं निषिद्धानां च भक्षणम् ॥१७३
रजस्वलामुखास्वादः पञ्चयज्ञादिवर्जनम्।
अनृतं कूटसाक्षी च महायन्त्रप्रवर्तनम् ॥१७४
आकर्षणादि षट्कर्म लाक्षालवणविक्रयः।
पाषण्डकल्ककुहकवेदवाह्यविधिक्रिया ॥१७५
यक्षराक्षसभूतानामर्चनं वन्दनं तथा।
वक्त्रेणैवाम्बुपानञ्च सुरापस्त्रीनिषेवणम् ॥१७६
गवां निष्पीडनं क्षीरं ताम्रस्थं गव्यमेव च।
पात्रान्तरगतं यत्तु नारिकेलफलाम्बु च ॥१७७
तालहिन्तालमाधूकफलानां रसमेव च।
खरोष्ट्रमानुषीक्षीरं सुरापानसमानि वै ॥१७८
मानकूटं तुलाकूटं निक्षेपहरणानि च।
भूरत्ननारीहरणं रसान्नस्तेयमेव च ॥१७६
गुडकार्पासलवणतिलकान् सामिषाम्बु च।
का(कु)प्यवस्त्रे च हृत्वा च लोहानां हरणं तथा ॥१८०
विषाग्निदाहनं चैव सुवर्णस्तेयसम्मितम्।
सखी भार्या कुमारी च सगोत्रा शरणागता ॥१८१
साध्वी प्रव्रजिता राज्ञो निक्षिप्ता च रजस्वला।
वर्णोत्तमा तथा शिष्या भार्या भ्रातृपितृव्ययोः ॥१८२

मातामही पितामही पितुर्मातुश्च सोदराः ।
अन्या मा(भ्रा)तृव्यदुहिता मातुलानी पितृष्वसा ॥१८३

जननी भगिनी धात्री दुहिताऽऽचार्यभामिनी ।
स्नुषाऽऽचार्यसुता चैव तत्पत्नी सुमहातपाः ॥१८४

मातुः सपत्नी सार्वभौमी दीक्षिता चैव भामिनी ।
कपिला महिषी धेनुर्दैवताप्रतिमा तथा ॥१८५

आसामन्यतमाङ्गच्छेद् गुरुतल्पग उच्यते ।
महापातकिनामत्र तत्संयोगिन एव च ॥१८६

प्रायश्चित्तं नास्ति तेषां भृग्वग्निपतनं स्मृतम् ।
हीनवर्णाभिगमनं गर्भघ्नं भर्तृहिंसनम् ॥१८७

विशेषपतनीयानि स्त्रीणां पुंसां च यानि तु ।
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो गोबालहननं तथा ॥१८८

फलपुष्पद्रुमाणां हि चौषधीनाञ्च हिंसनम् ।
वापीकूपतड़ागानां ध्वंसनं ग्रामघातनम् ॥१८९

अभिचारादिकं कर्म्म सस्यध्वंसनमेव च ।
उद्यानारामहननं प्रपाविध्वंसनं तथा ॥१९०

मातापितृसुतत्यागो दारत्यागस्तथैव च ।
स्वाध्यायाग्निगुरुत्यागस्तथा धर्म्मस्य विक्रयः ॥१९१

कन्याया विक्रयश्चैव स्वाध्यायमद्यविक्रयः ।
परस्त्रीगमनञ्चैव परद्रव्यापहारणम् ॥१९२

तथा पुंसोऽभिगमनं पशूनां गमनं तथा ।
वृषक्षुद्रपशूनाञ्च पुंस्त्वविध्वंसनं तथा ॥१९३

कन्याया दूषणं चैव गवां योनिनिपीडनम्।
मानुषाणां पशूनाञ्च नासाद्यङ्गविभेदनम् ॥१९४
ग्रामान्त्यजस्त्रीगमनं विज्ञेयमनुपातकम्।
नित्यनैमित्तिकश्राद्धवर्जनं पशुहिंसनम् ॥१९५
मृगपक्षिमहासर्पयादसां हननक्रिया।
साधारणस्त्रीगमनं पत्न्यास्ये मैथुनं तथा ॥१९६
पारवित्तं पारदार्यं निन्दितार्थोपजीवनम्।
तथैवानाश्रमे वासो देवद्रव्योपजीवनम् ॥१९७
पयोदधितिलानाञ्च विक्रयं लवणक्रयम्।
शाकमूलफलस्तेयमतिवृद्ध्युपजीवनम् ॥१९८
निमन्त्रितातिक्रमणं दुष्प्रतिग्रहमेव च।
ऋणानामप्रदानत्वं सन्ध्याकालातिवर्तनम् ॥१९९
वृथैवाऽऽत्मपरित्यागः संग्रामेषु पलायिता।
दुर्भोजनं दुरालापं स्वधर्मस्य च कीर्तनम् ॥२००
परेषां दोषवचनं परदारनिरीक्षणम्।
नास्तिक्यं व्रतलोपश्च स्वाश्रमाचारवर्जनम् ॥२०१
असच्छास्त्राभिगमनं व्यसनान्यात्मविक्रयः।
व्रात्यतात्मार्थवचनमेकैकमुपपातकम् ॥२०२
इन्धनार्थं द्रुमच्छेदः क्रिमिकीटादिहिंसनम्।
भावदुष्टं कालदुष्टं क्रियादुष्टं च भक्षणम् ॥२०३
मृच्चर्मतृणकाष्ठाम्बुस्तेयमत्यशनं तथा।
अनृतं विषयचापल्यं दिवास्वप्नमसत्कथा ॥२०४

तच्छ्रावणं परान्नं च दिवामैथुनमेव च ।
रजस्वलां सूतिकां च परस्त्रीमभिदर्शनम् ॥२०५

उपवासदिने श्राद्धे दिवा पर्वणि मैथुनम् ।
शूद्रप्रेष्यं हीनसख्यमुच्छिष्टस्पर्शनादिकम् ॥२०६

स्त्रीभिर्हास्यं कामजल्पं मुक्तकेश्यादिवीक्षणम् ।
इत्यादयो ये च दोषाः प्रकीर्णाः परिकीर्तिताः ।
महापापं पातकञ्च अनुपातकमेव च ॥२०७

उपपापं प्रकीर्णञ्च पञ्चधा तत्र कीर्तितम् ।
महापातकतुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु ॥२०८

तानि पातकसंज्ञानि तन्न्यून मनुपातकम् ।
उपपापं ततो न्यूनं ततो हीनं प्रकीर्णकम् ॥२०९

संसर्गस्तु तथा तेषां प्रसङ्गात्सम्प्रकीर्तितम् ।
क्रमेण वक्ष्यते तेषां प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥२१०

यो येन सम्वसेत्तेषां तस्यैव व्रतमाचरेत् ।
संसर्गिणस्तु संसर्गस्तत्संसर्गस्तथैव च ॥२११

चतुर्थस्य न दोषस्तु पतत्येषु यथाक्रमम् ।
प्रकीर्णकादिदोषाणां प्रासङ्गिक मविद्यते ॥२१२

स्वल्पत्वात्पतनाभावात्तत्संसर्गान्न दुष्यति ।
स्नानाच्च शुद्धिर्दोषस्य संसर्गात्पतितं विना ॥२१३

सावित्र्या वाऽपि शुध्येत कर्तुरेव व्रतक्रिया ।
कृते पापे यस्य पुंसः पश्चात्तापोऽनुजायते ॥२१४

प्रायश्चित्तन्तु तस्यैव कर्त्तव्यं नेतरस्य तु।
जातानुतापस्य भवेत्प्रायश्चित्तं यथोदितम् ॥२१५
नानुतापस्य पुंसस्तु प्रायश्चित्तं न विद्यते।
नाश्वमेधफलेनापि नानुतापी विशुद्धयते ॥२१६
तस्माज्जातानुतापस्य प्रायश्चित्तं विशुद्धयते।
चरेदकामतः कृत्वा पतनीयं महत् पुमान् ॥२१७
न कामतश्चरेद्धर्मं भृग्वग्निपतनं विनः।
यः कामतो महापापं नरः कुर्यात्कथञ्चन ॥२१८
न तस्य शुद्धिर्निर्दिष्टा भृग्वग्निपतनं विना।
इत्युक्तं ब्रह्मणा पूर्वं मनुना च महर्षिभिः ॥२१९
पातकेषु च सर्वत्र कामतो द्विगुणं व्रतम्।
कामतः पतनीयेषु मरणाच्छुद्धिमृच्छति ॥२२०
हयमेधाय नः(न) शुद्धिः सर्वभौमस्य भूपतेः।
कामतस्त्वनुपापेषु लोके न व्यवहार्यता ॥२२१
महत्सु चातिपापेषु प्रदीप्तज्वलनं विशेत्।
प्रायश्चित्तैरपैत्येनो यदकामकृतं भवेत् ॥२२२
कामतो व्यवहारस्तु वचनादिह जायते।
इति योगेश्वरेणोक्त मुपपापेषु तत्र तत् ॥२२३
तस्मादकामतः पापं प्रायश्चित्तेन शुध्यति।
तेषां क्रमेण वक्ष्यामि प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥२२४
शिरः कपालध्वजवान् भिक्षाशी कर्म वेदयन्।
ब्रह्महा द्वादशाब्दानि पुण्यतीर्थे समाविशेत् ॥२२५

प्रयागे सेतुबन्धादिपुण्यक्षेत्रेषु पापकृत् ।
तत्र वर्षादि विज्ञाप्य स्वस्वकल्पमशेषतः ॥२२६
तत्रस्थैर्ब्राह्मणैरेवानुज्ञातो व्रतमाचरेत् ।
चत्वारो ब्राह्मणाः शिष्टाः पर्षदित्यभिधीयते ॥२२७
तै रुक्तमाचरेद्धर्ममेको वाऽध्यात्मवित्तमः ।
जटी वल्कलवासाश्च बहिरेव समाविशन् ॥२२८
स्नानं त्रिषवणं कुर्वन् क्षितिशायी जितेन्द्रियः ।
एकभुक्तेन नक्तेन फलैरनशनेन च ॥२२६
समापयेत्कर्मफलं यथाकालं यथाबलम् ।
राममिन्दीवरश्यामं पौलस्त्यघ्नमकल्मषम् ॥२३०
ध्यात्वा षडक्षरं मन्त्रं नित्यं तावदहर्निशम् ।
एवं द्वादशवर्षाणि पुण्यतीर्थे समाचरन् ॥२३१
मुच्यते ब्रह्महत्याया स्तपसा वीतकल्मषः ।
चरितव्रत आयाते यवसं गोषु दापयेत् ॥२३२
तै स्तस्य च सुसंस्काराः कर्तव्या बान्धवैर्जनैः ।
विप्रमुख्याय गां दत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥२३३
प्रारम्भव्रतमध्ये तु यदि पञ्चत्वमाप्नुयात् ।
विशुद्धिस्तस्य विज्ञेया शुभाङ्गतिमवाप्नुयात् ॥२३४
असंस्कृतस्तु गोषु स्यात् पुनरेव व्रतं चरेत् ।
अशक्तस्तु व्रते दद्याद् गोसहस्रं द्विजन्मनाम् ॥२३५
पात्रे धनं वा पर्याप्तं दत्त्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ।
ब्रह्महत्यासमेष्वेवं कामतो व्रतमाचरेत् ॥२३६

अकामतश्चरेद्धर्मं पापं मनसि चोच्यते।
आज्ञापयिताऽनुमन्ताऽनुग्राहकस्तथैव च ॥२३७
उपेक्षिताऽशक्तिमांश्चेत्पादोनं व्रतमाचरेत्।
कामतस्तु चरेत् पूर्णं तत्रापि द्विगुणं गुरौ ॥२३८
अन्तर्वत्न्यां तथा ऽऽत्रेय्यां तथैव व्रतमाचरेत्।
आचार्ये च वनस्थेन मातापित्रोर्गुरौ तथा ॥२३६
तपस्विनि ब्रह्मविदि द्विगुणं व्रतमाचरेत्।
यावत्स्वक्षत्त्रियं वैश्यं विशिष्टं शूद्रमेव च ॥२४०
कपिलां गर्भिणीञ्चाश्व हत्वा पूर्णव्रतं चरेत्।
अकामतस्तु तेष्वर्धं मुनिभिः सम्प्रकीर्तितम् ॥२४१
विधेः प्राथमिकादस्माद् द्वितीये द्विगुणं चरेत्।
तृतीये त्रिगुणं प्रोक्तं चतुर्थे नास्ति निष्कृतिः ॥२४२
चतुर्णामाश्रमाणाञ्च शौचवत् साधनं चरेत्।
प्रायश्चित्तान्तरं मध्ये केचिदिच्छन्ति सूरयः ॥२४३
गोब्राह्मणपरित्राण मश्वमेधावभृथं तथा।
इयं विशुद्धिरुदिता प्रहृत्या कामतो द्विजान् ॥२४४
अग्निप्रपतनं केचिदिच्छन्ति मुनिसत्तमाः।
लोमभ्यः स्वाहेत्यादि मन्त्रैर्हुत्वा पृथक् पृथक् ॥२४५
अवाक्शिराः प्रविश्याग्नौ दग्धः शुद्धो भवेन्नरः।
अकामतः सुरां पीत्वा मद्यं वाऽपि द्विजोत्तमः ॥२४६
पूर्ववद् द्वादशाब्दानि चरेद् व्रतमचिह्नितम्।
जपित्वा दशसाहस्रं त्रिसन्ध्यासु निरन्तरम् ॥२४७

द्वादशाब्दं मनुं जप्त्वा ततः शुद्धो भवेन्नरः ।
यानि कानि च पापानि सुरापानसमानि तु ॥२४८

अकामतश्चरेदर्धं कामतः पूर्णमाचरेत् ।
सर्वत्र पातनीयेषु चरित्वा व्रतमुक्तवत् ॥२४९

पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयश्चैते द्विजातयः ।
अज्ञानात्तु सुरां पीत्वा रेतोविण्मूत्रमेव च २५०

मानुषीक्षीरपानेन पुनः संस्कारमर्हति ।
इत्युक्तं मनुना पूर्वमन्यैश्चापि महर्षिभिः ॥२५१

करञ्जं लशुनं शिग्रु मूलकं ग्रामसूकरम् ।
छत्राकं कुक्कुटाण्डञ्च कालं(काकं) पिण्याकं लशुनं तथा ॥२५२

गृध्रमुष्ट्रं नृमांसं च (गो) खरं तत्तक्रमेव च ।
माहिषं माकरं मांससंवृ(मृ)क्षं वानरमेव च ॥२५३

निष्पीडितञ्च गोक्षीरमारनालं च मूषकम् ।
मार्जारं श्वेदवृन्ताकं कुम्भीनिम्बदलं तथा ॥२५४

क्रव्यादञ्च तथा भेकं शृगालं व्याघ्रमेव च ।
एवमादिनिषिद्धांस्तु भक्षयित्वा तु कामतः ॥२५५

चरेद्व्रतं तथा पूर्णं पादोनम्यादकामतः ।
नारिकेलरसं पीत्वा वायुना ताडितं द्विजः ॥२५६

द(ज)ग्ध्वा तालपलाशम्वा करनिर्मथितं दधि ।
ताम्रपात्रगतं गव्यं क्षीरं च लवणान्वितम् ॥२५७

कराग्रेणैव यद्दत्तं घृतं लवणमम्बु च ।
सूतकान्नञ्च शूद्रान्नं कदर्यान्न मेव च ॥२५८

अस्पृष्टं सूतिकादृष्टं मुद्(राया)क्यादृष्टमेव च।
पाषण्डभण्डचण्डालवृषलीपतिवीक्षितम् ॥२५९
दत्त्वावशिष्टं यक्षाणां भूतानां रक्षसां तथा।
उद्धृत्य वामहस्तेन वक्त्रेणैव पिबेदपः ॥२६०
यच्चान्नमार्यैकोद्दिष्टमुच्छिष्टमगुरोरपि।
हरेरनर्पितं भुक्त्वा न भुक्त्वा देवतार्पितम् ॥२६१
कामतस्तु चरेद्धर्मश्चरेद्धेदमकामतः।
अकामतः सकृज्जग्ध्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥२६२
म्लेच्छचण्डालपतितपाषण्डा(न्न)नामकामतः।
उदक्यासह भुक्त्वा च चरेद्धर्मव्रतं द्विजः ॥२६३
चण्डालकूपभाण्डस्थं मद्यभाण्डस्थमेव च।
पीत्वा समाचरेत्पापं कामतोऽर्द्धं समाचरेत् ॥२६४
मद्यगन्धं समाघ्राय कामतो व्रतमाचरेत्।
अकामतस्तु निष्ठीव्य चरेदाचमनं द्विजः ॥२६५
अभिमन्त्र्य जलं प्राश्य सावित्र्या च समन्वितम्।
वृथा मांसाशनं चैव भावदुष्टादि भक्षणे ॥२६६
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं चान्द्रायणमथापि वा।
कामतस्तु चरेत्पादमभ्यासे पूर्णमाचरेत् ॥२६७
कामतस्तु सुरां पीत्वा सततं चाग्निसन्निभम्।
गोमूत्रमम्बु वा पीत्वा मरणाच्छुद्धिमृच्छति ॥२६८
सुरायाः प्रतिषेधस्तु द्विजानामेव कीर्तितः।
विशिष्टस्यापि शूद्रस्य केचिदिच्छन्ति सूरयः ॥२६९

अनृतं मद्यमांसञ्च परस्त्रीस्वापहारणम् ।
विशिष्टस्यापि शूद्रस्य पातित्यं मनुरब्रवीत् ॥२७०

सुरा वै मलमन्नादेः पापाद्वै मलमुच्यते ।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥२७१

चकाराद्विशिष्टस्य शूद्रास्यापि पूर्ववचनात् यत्तु राजन्यवैश्ययोगवाज्यादिमद्यस्याप्रतिषेधस्तन्न मतं स्यात् न च निषिद्धादीनां सतां मतञ्च । विशिष्ट शूद्रस्यापि मद्यमांसनिषिद्धत्वात् । इज्याध्ययनादिश्रौतस्मार्तकर्मार्हस्य । क्षत्त्रविशिष्टस्यापि तद्वद्वैश्यस्य च प्रतिषेधात् न तु प्रायश्चित्तालपत्वप्रतिपादनपराण्येव नत्वप्रतिषिद्धपराणि ब्राह्मणस्य मरणान्तिक मुपदिष्टं राजन्यवैश्यविशिष्टशूद्राणाम् पूर्णपादोनार्द्धोनव्रतचर्या उक्ता । सुरायान्तु सर्वेषां द्विजाणां मरणान्तिकमेव शूद्रस्य गोसहस्रदानं वा परिपूर्णव्रतं वाऽऽचरितव्यम् नतु मरणान्तिकम् ।

अग्निवर्णां सुरां पीत्वा सुरायास्तु द्विजातयः ।
मरणाच्छुद्धिमृच्छन्ति शूद्रस्तु व्रतमाचरेत् ॥२७२

राजन्यवैश्यौ तु मद्यं पीत्वा चरेतां व्रतमेव च ।
शूद्रस्त्वर्धश्चरेत्तद्वद् ब्राह्मणो मरणाच्छुचिः ॥२७३

यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासमम् ।
नात्तव्यमेव विप्रेण भुक्त्वा तु ज्वलनं विशेत् ॥२७४

मद्यं वाऽपि सुरां वाऽपि यः पिबेद् ब्राह्मणाधमः ।
अग्निवर्णन्तु गोमूत्रं पिबेदञ्जलिपञ्चकम् ॥२७५

मरणाच्छुद्धिमाप्नोति जीवेद्यदि विशुध्यति।
मद्यस्य प्रतिषिध्यर्थं घृतं क्षीरमथाम्बु वा ॥२७६
प्राशयित्वाऽग्निवर्णन्तु तद्वत्तां शुद्धिमाप्नुयात्।
दत्त्वा सुवर्णं विप्राय गाञ्च दत्त्वा विशुध्यति ॥२७७
क्षत्रविट्शूद्रजातीनां सुवर्णे तु यथाक्रमम्।
पादोनमर्द्धं पादं वा चरेद् व्रतं यथोक्तवत् ॥२७८
समेष्वर्धं प्रकुर्वीत कामतः पूर्णमाचरेत्।
कामतः स्वर्णहारी तु राज्ञे मुसलमर्पयेत् ॥२७६
स्वकर्म ख्यापयंश्चैव हतो मुक्तोऽपि वा शुचिः।
राज्ञा यदि विमुक्तः स्यात् पूर्ववद् व्रतमाचरेत् ॥२८०
आत्मतुल्यसुवर्णं वा दद्याद्विप्रस्य तुष्टिकृत्।
तत्समव्यतिरिक्तेषु पादमेव चरेद् व्रतम् ॥२८१
चान्द्रायणं पराकं वा कुर्यादल्पेषु सर्वशः।
द्रव्यप्रत्यर्पणं कर्तुस्तन्मूल्यद्रव्यमेव वा ॥२८२
व्रतं समाचरेत् कृत्वा यथा परिषदीरितम्।
बलाच्चौर्य्येण वा स्नेहाद् व्यवहारादिनाऽपि वा ॥२८३
समाहरति यद् द्रव्यं तत्सर्वं स्तेयमुच्यते।
देशं कालं वयः शक्तिं पापञ्चावेक्ष्य सर्वतः ॥२८४
प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं धर्मविद्भिर्मनीषिभिः।
भगिनीं मातरं पुत्रीं स्नुषामाचार्ययोषितम् ॥२८५
अकामतः सकृद् गत्वा चरेत् पूर्णव्रतं नरः।
पश्चिमाभिमुखां गङ्गां कालिन्द्या सह सङ्गताम् ॥२८६

प्लक्षप्रस्रवणं पुण्यं द्वारकां सेतुमेव वा।
चन्द्रपुष्करणीं वाऽपि वेणी सागरसङ्गमम् ॥२८७

गोदावर्याः शबर्या वा गत्वा तत्राऽऽचरेद् व्रतम्।
पूर्ववत् द्वादशाब्दानि चरेद् व्रतमनुत्तमम् ॥२८८

कृष्णाय नम इत्येष मन्त्रः सर्वाघनाशनः।
इममेव जपन्मन्त्रं ध्यात्वा हृदि सनातनम् ॥२८९

त्रिसन्ध्यास्वयुतं भक्त्या नित्यं द्वादशवत्सरम्।
चान्द्रायणैः पराकै र्वा कृच्छ्रै र्वा शमयेत् समाः ॥२९०

जीवे क्षीणेऽथवा पुण्यकामी मण्डपपाटलैः।
निवसित्वा बहिर्ग्रामात् क्षितिशायी जितेन्द्रियः ॥२९१

मनः सन्तापकरणमुद्वहेच्छोकमन्ततः।
सदा कृष्णं हरिं ध्यायन् जपन्मन्त्रमनुत्तमम् ॥२९२

द्वादशाब्दाद्विमुच्येत पापादस्मात्तपो बलात्।
भगिन्यादिषु योषित्सु यो गच्छेत्कामतो नरः ॥२९३

व्रतमासमतोयेन समाश्लिष्य हुताशने।
शयित्वा सुमहद्वह्नौ दग्धः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥२९४

एतासु मतिदुष्टासु कामतो बहुशो व्रजेत्।
एवमग्नि विशेद्धीमान् पापं विज्ञाप्य पर्षदि ॥२९५

अकामतः सकृद् गत्वा चरेद्धर्मव्रतं नरः।
अभ्यासे तु चरेत् पूर्णं कामतः सकृदेव च ॥२९६

कामतोऽभ्यासविषये तत्रापि मरणान्तिकम्।
समेष्वर्थं प्रकुर्वीत सकृदेव ह्यकामतः ॥२९७

कामतस्तु चरेत् पूर्णमभ्यासे मरणान्तिकम्।
अकामतो वाऽभ्यासे तु पूर्णमेव व्रतं चरेत् ॥२९८

अन्यास्वपि च नारीषु सकृद्गत्वाऽप्यकामतः।
पादमेवाऽऽचरेद्विद्वानभ्यासे त्वर्धमाचरेत् ॥२९९

साधारणासु सर्वासु चरेच्चान्द्रायणव्रतम्।
कामतो द्विगुणं तासु अभ्यासे व्रतमाचरेत्।
स्वदारास्वास्यगमने पुंसि तिर्यक्षु कामतः ॥३००

चान्द्रायणं पराकं वा प्राजापत्यमथापि वा।
उदक्यां सूतिकां गत्वा चरेत्सान्तपनं व्रतम् ॥३०१

चान्द्रायणं तथाऽन्यासु कामतो द्विगुणं चरेत्।
अष्टम्याश्च चतुर्दश्यां दिवा पर्वणि मैथुनम् ॥३०२

कृत्वा सचैलं स्नात्वा च वारुणीभिश्च मार्जयेत्।
चण्डालीं पुंश्चलीं म्लेच्छां पाषण्डीं पतितामपि ॥३०३

रजकीं बुरुडीं व्याधां सर्वा ग्रामान्त्यजाः स्त्रियः।
अकामतः सकृद् गत्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥३०४

अभ्यासे तु व्रतं पूर्णन्ताभिश्च सह भोजने।
कामतस्तु सकृद् गत्वा भुक्त्वा त्वर्धव्रतं चरेत् ॥३०५

तत्र भूयश्चरेत् पूर्णमभ्यासे मरणान्तिकम्।
यो येन सम्वसेदेषान्तत्पापं सोऽपि तत्समः ॥३०६

संलापस्पर्शनादेव शय्याशनासनादिभिः।
वद्धदेवाऽऽचरेत् सर्वं व्रतं द्वादशवार्षिकम् ॥३०७

अकामतश्चरेदर्द्धं षण्मासात्पादमाचरेत् ।
मासत्रये द्विवर्षं स्यान्मासमात्रे तु वत्सरम् ॥३०८

कामतो द्विगुणं तत्र चरेदब्दादिकं व्रतम् ।
ऊर्द्धन्तु वत्सरात्पूर्णं द्वैगुण्याद्यमतः क्रमात् ॥३०९

कामतो वत्सरादूर्ध्वं द्विगुणव्रतमाचरेत् ।
ऊर्ध्वं द्विवर्षात्तस्यापि मरणान्तिकमुच्यते ॥३१०

यजनाध्यापनाद्दानात्पानाच्च सह भोजनात् ।
सद्य एव पतत्यस्मिन् पतितेन सहाऽऽचरन् ॥३११

तत्राप्यकामतस्त्वर्थं कामतः पूर्णमाचरेत् ।
षण्मासे वत्सरेऽप्यत्र द्विगुणं त्रिगुणं स्मृतम् ॥३१२

ऊर्ध्वे तु निष्कृति र्न स्याद् भृग्वग्निपतनं विना ।
द्वितीयस्य तृतीयस्य नेष्यते मरणान्तिकम् ॥३१३

अर्द्धं पादं समुद्दिष्टं कामतो द्विगुणं तथा ।
ब्रह्मकूर्चोपवासेन चतुर्थस्य विनिष्कृतिः ॥३१४

पञ्चमस्य न दोषः स्यादिति धर्मविदो विदुः ।
अन्येषामपि संसर्गात्प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥३१५

पतनीयेषु नारीणां मरणान्तिकमुच्यते ।
अकामतश्चरेदर्द्धमव्रतं पृथु यथोदितम् ॥३१६

व्यभिचारे तु सर्वत्र कामतो मरणाच्छुचिः ।
अकामतश्चरेत्पूर्णं प्रातिलोम्यं गता सती ॥३१७

अर्द्धमेवाऽऽनुलोम्येषु तथैव भ्रूणहादिषु ।
यतिश्च ब्रह्मचारी च गत्वा स्त्रियमकामतः ॥३१८

गुरुतल्पगमुद्दिष्टं पूर्णमर्थं समाचरेत् ।
नामतो ब्रह्मचारी तु पूर्णमेवाऽऽचरेद् व्रतम् ॥३१६
यतेस्तु मरणाच्छुद्धिः शिश्नः स्यात् कृन्तनेन वा ।
तयोस्तु रेतः स्खलने कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् ॥३२०
जप्त्वा सहस्रं गायत्र्या गृहस्थः शुद्धिमाप्नुयात् ।
द्विसहस्रं वनस्थस्तु जपेद्व्रतो निपातने ॥३२१
तत्रापि कामतस्तेषां द्विगुणत्रिगुणादिकम् ।
परिव्राजनकामस्तु नयनोत्पाटनं तथा ॥३२२
एवं समाचरेद्धीमान् प्रायश्चित्त मतन्द्रितः ।
प्रायश्चित्त मकुर्वाणः पापेषु निरतः सदा ॥३२३
कल्पायुतशतं गत्वा नरकं प्रतिपद्यते ।
धृत्वा गोचर्ममात्रन्तु सममेकं निरन्तरम् ॥३२४
पञ्चगव्यं पिबन् गोघ्नो गुरुगामी विशुध्यति ।
गोमूत्रेणैव च स्नात्वा पीत्वा चाऽऽचम्य वारिभिः ॥३२५
विष्णोः सहस्रनामानि जपेन्नित्यं समाहितः ।
शयीत गोव्रजे रात्रौ गवां हित मनुस्मरन् ॥३२६
व्याघ्रादिभिर्गृहीतां गां पङ्के निपतितां तथा ।
स चरेदथवा प्राणान् तदर्थं वै परित्यजेत् ॥३२७
तेनैव हि विशुद्धः स्यादसम्पूर्णव्रतोऽपि वा ।
व्रतान्ते गोप्रदो भूत्वा ततः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥३२८
गोस्वामिने च गां दत्त्वा पश्चादेवं व्रतं चरेत् ।
दद्यात् त्रिरात्रमुपोष्य वृषमेकञ्च गा दश ॥३२९

योक्त्रेच गृहदाहाद्यैर्बन्धनैर्वा हता यदि ।
मतिपूर्वेण गां हत्वा चरेत्त्रैवार्षिकं व्रतम् ॥३३०
द्विवर्षं पूर्ववद्वाऽपि चर्मणाऽऽर्द्रेण वाससा ।
कपिलां गर्भिणीं वाऽपि वृषं हत्वा च कामतः ॥३३१
व्रतं द्वादशवर्षाणि चरेद् ब्रह्मव्रतोदितम् ।
आचार्यदेवविप्राणां हत्वा च द्विगुणं चरेत् ॥३३२
होमधेनुं प्रसूताञ्च दाने च समलङ्कृताम् ।
उपभुक्तां वृषेणापि ताञ्च द्वादशवार्षिकम् ॥३३३
निष्पीडनं वाऽपि तेषु दोषेष्वल्पमतन्द्रितः ।
शरणागतबालस्त्रीघातुकैः सम्वसेन्न तु ॥३३४
चीर्णव्रतानपि चरन् कृतघ्नानपि सर्वदा ।
अग्निदाङ्गरदां चण्डीं भर्तृघ्नीं लोकघातिनीम् ॥३३५
हिंस्रयंस्तु विधानस्त्रीं हत्वा पापं न गच्छति ।
गुरुं वा बालवृद्धान्वा श्रोत्रियं वा बहुश्रुतम् ॥३३६
आततायिन मायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ।
नाऽऽततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥३३७
प्रख्यातदोषः कुर्वीत परित्यक्तं यथोदितम् ।
अनभिख्यातदोषस्तु रहस्यव्रतमाचरेत् ॥३३८
कण्ठमात्रजले स्थित्वा राममन्त्रं समाहितः ।
जपेद्वा दशसाहस्रं ब्रह्महा शुद्धिमाप्नुयात् ॥३३९
सुरापः स्वर्णहारी तु जपेदष्टाक्षरं तथा ।
लक्षं जप्त्वा कृष्णमन्त्रं मुच्यते गुरुतल्पगात् ॥३४०

उपोष्यान्तजले स्थित्वा वासुदेवमनुं शुभम्।
जपेद्द्वादशसाहस्रं गोघ्नः प्रयतमानसः ॥३४१
असंख्यानि च पापानि अनुक्तान्यपि यानि च।
चित्तस्थो भगवान् कृष्णः सर्वं हरति तत्क्षणात् ॥३४२
एकादश्युपवासस्य फलं प्राप्नोति मानवः।
आषाढ़ादिचतुर्मासे कृते भुक्त्वा जितेन्द्रियः ॥३४३
दुग्धाब्धौ शेषपर्यङ्के शयानं कमलापतिम्।
ध्यात्वा समर्चयेन्नित्यं महद्भिर्मुच्यते ह्यघैः ॥३४४

इति रहस्यप्रायश्चित्तवर्णनम्।

अथ महापापादिप्रायश्चित्तप्रकरणवर्णनम्।

रजस्वलां सूतिकाञ्च चण्डालं पतितं तथा ॥३४५
पाषण्डिनं विकर्मस्थं शौवं स्पृष्ट्वाऽप्यकामतः।
गोमयेनानुलिप्ताङ्गः सवासा जलमाविशेत् ॥३४६
गायत्र्यष्टशतं जप्त्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति।
स्पृष्ट्वा तु कामतः स्नात्वा चरेत्सान्तपनं व्रतम् ॥३४७
श्वपचं पतितं स्पृष्ट्वा गोपालव्यजनाहतम्।
विड्वराहं शुनङ्काकं गर्दभं यूपमेव च ॥३४८
मद्यं मासं तथैवोष्ट्रं विण्मूत्रं दशमेव च।
करकञ्जलफेनञ्च वृक्षनिर्यासमेव च ॥३४६

करञ्जं लशुनञ्चानुगच्छति स्वस्य शुद्धये ।
सचैलमेकवाह्याप: सावित्रीं त्रिशतं जपेत् ॥३५०

तत्स्पृष्टस्पृष्टिनौ स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ।
ऊर्ध्वमाचमनं प्रोक्तं धर्मविद्भिरकल्मषैः ।
उच्छिष्टकेशभस्मास्थिकपालं मलमेव च ॥३५१

स्नानार्द्रधरणीञ्चैव स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत् ।
प्रक्षाल्य पादौ संक्रम्य तथैवाऽऽचम्य वारिणा ॥३५२

मन्त्रसम्मार्जितजलं स्पृष्ट्वा ताञ्च विशुध्यति ।
विशिष्टानाञ्च विप्राणां गुरूणां व्रतशालिनाम् ॥३५३

विनीततराणामुच्छिष्टं स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत् ।
शैवानां पतितानाञ्च वाह्यानान्त्यक्तकर्मणाम् ॥३५४

उच्छिष्टस्पर्शनं कृत्वा चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ।
उच्छिष्टेन स्वयं चान्यमुच्छिष्टं यथाकामतः ॥३५५

स्पृष्ट्वा सचैलं स्नात्वा च सावित्र्यष्टशतं जपेत् ।
कामतश्चाऽऽचरेत् कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चं द्विजोत्तमः ॥३५६

राजानञ्च विशं शूद्रं चरेच्चान्द्रायणं द्विजः ।
तौ च स्नात्वा चरेत् कृच्छ्रं गां वा दद्यात्पयस्विनीम् ॥३५७

उच्छिष्टिनं स्पृशन् शूद्रमुच्छिष्टं श्वानमेव वा ।
सवासा जलमाप्लुत्य चरेत्सान्तपनव्रतम् ॥३५८

तत्रापि कामतः स्पृष्ट्वा पराकद्वयमाचरेत् ।
पञ्चगव्यं पिबेच्छूद्रः स्नात्वा नद्यां विधानतः ॥३५६

चण्डालं पतितं मद्यं सूतिकाञ्च रजस्वलाम् ।
उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टः पराकत्रयमाचरेत् ॥३६०

उच्छिष्टेन चिरं काल मुषित्वा स्नानमाचरेत् ।
उच्छिष्टाशौचमरणे चरेदब्दं द्विजातयः ॥३६१

रजस्वला सूतिका वा पञ्चत्वं यदि चेद् गता ।
पञ्चगव्यैः स्नापयित्वा पावमान्यैर्द्विजोत्तमाः ॥३६२

प्रत्यृचं कलशैः स्नाप्य सपवित्रैर्जलैः शुभैः ।
शुभ्रवस्त्रेण सम्वेष्ट्य दाहं कुर्याद्विधानतः ॥३६३

चण्डालात् ब्राह्मणात्सर्पात् क्रव्यादादुदकादिभिः ।
हतानामपि कुर्वीत पूर्ववद् द्विजपुङ्गवः ॥३६४

तत्रापि कामतः कुर्यात् षडब्दं तस्य बान्धवाः ।
विषाद्यैर्धनशस्त्राद्यैरात्मानं यदि घातयेत् ॥३६५

गोशतं विप्रमुख्येभ्यो दद्यादेकं वृषं तथा ।
नारायणबलिं कृत्वा सर्वमप्यौर्ध्वदेहिकम् ॥३६६

रजस्वला तु या नारी स्पृष्ट्वा चान्यां रजस्वलाम् ।
चण्डालं पतितं वाऽपि शुनं गर्दभमेव च ॥३६७

तावत्तिष्ठेन्निराहारा चरेत्सान्तपनं व्रतम् ।
स्पृष्ट्वाऽप्यकामतः स्नात्वा पञ्चगव्यैः शुभैर्जलैः ॥३६८

चातुर्वर्णस्य गेहेषु चण्डालः पतितोऽपि वा ।
अन्तर्वत्नी भवेत्सा चेत्कथं स्यात्तत्र निष्कृतिः ॥३६९

तद्गृहन्तु परित्यक्त्वा दग्ध्वा वाऽन्यत्र संस्थितः ।
संसर्गोक्तप्रकारेण प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥३७०

पृथक् पृथक् प्रकुर्वीरन् सर्वे गृहनिवासिनः ।
दाराः पुत्राश्च सुहृदः प्रायश्चित्तं यथोदितम् ॥३७१

सभर्तृकाणां नारीणां वपनन्तु विवर्जयेत् ।
सर्वान् केशान् समुद्धृत्य च्छेदयेदङ्गुलित्रयम् ॥३७२

केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमाचरेत् ।
प्रायश्चित्ते तु सम्पूर्णे कृत्वा सान्तपनं व्रतम् ॥३७३

ब्रह्मकूर्चोपवासं वा विशुध्यन्ति तदेनसः ।
अर्वाक्सम्वत्सरार्धात्तु गृहदाहं न चोदितम् ॥३७४

यद्गृहे पातकोत्पत्ति स्तत्र यत्नेन दाहयेत् ।
त्यजेद्वा संनिकृष्टाच्च शुद्धिश्चैवाऽऽत्मनस्ततः ॥३७५

सम्बन्धाच्चैव संसर्गात्तुल्यमेव नृणामघम् ।
तस्मात्संसर्गसम्बधान् पतितेषु विवर्जयेत् ॥३७६

चण्डालपतितादीनां तोयं यस्तु पिवेन्नरः ।
पराकं कामतः कुर्याद् ब्रह्मकूर्चमकामतः ॥३७७

अभ्यासे तु षडब्दं स्याच्चान्द्रायणमकामतः ।
चण्डालानां तडागे वा नदीनां तीर्थ एव वा ॥३७८

स्नात्वा पीत्वा जलं विप्रः प्राजापत्यमकामतः ।
कामतस्तु पराकं वा चान्द्रायणमथाऽपि वा ॥३७९

अभ्यासे तु व्रतं पूर्णं षडब्दं स्यादकामतः ।
सर्वेषां प्रतिलोमानां पीत्वा सन्तापनं चरेत् ॥३८०

चान्द्रायणं पराकं वा त्र्यब्दं वाऽपि यथाक्रमम् ।
भोजने गमनेऽप्येवं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥३८१

चाण्डालपतितादीनां गृहेष्वन्नमपि द्विजः ।
भुक्त्वाऽब्दमाचरेत् कृच्छ्रं चान्द्रायणमकामतः ॥३८२

चण्डालवाटिकायान्तु सुप्त्वा भुक्त्वाऽप्यकामतः ।
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं चान्द्रायणमथाऽपि वा ॥३८३

चण्डालवाटिकायान्तु मृतस्याब्दं विशोधनम् ।
स्नापनं पञ्चगव्यैश्च पावमान्यै शुभैर्जलैः ॥३८४

शूद्रान्नं सूतिकान्नं वा शुना स्पृष्टञ्च कामतः ।
भुक्त्वा चान्द्रायणं कृच्छ्रं पराकं वा समाचरेत् ॥३८५

जलं पीत्वा तयोर्विप्रः पञ्चगव्यं पिबेद् द्व्यहम् ।
चण्डालः पतितो वाऽपि यस्मिन् गेहे समा(विशेत्)चरेत् ।
त्यक्त्वा मृण्मयभाण्डानि गोभिः संक्रामयेत् त्र्यम् ॥३८६

मासादूर्ध्वं दशाहन्तु द्विमासं पक्षमेव तु ।
षण्मासात्तु तथा मासं गवां वृन्दं निवेशयेत् ॥३८७

ऊर्ध्वन्तु दहनं प्रोक्तं लाङ्गुलेन च खातनम् ।
ब्रह्मकूर्चं तथा कृच्छ्रं चान्द्रायणमथापि वा ॥३८८

अतिकृच्छ्रं पराकञ्च त्र्यब्दं वाऽपि समाचरेत् ।
षडब्दमूर्ध्वं षण्मासात्प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥३८९

वत्सरादूर्ध्वसम्पूर्णं व्रतमेवाऽऽचरेद् बुधः ।
अमेध्यशवचण्डालमद्यमांसादिदूषितात् ॥३९०

कूपादुद्धृत्य कलशैः सहस्रं रेचयेज्जलम् ।
निक्षिप्य पञ्चगव्यानि वारुणैरपि मन्त्रयेत् ॥३९१

तडागस्यापि शुध्यर्थं गोभिः संक्रामयेज्जलम् ।
धान्यन्तु क्षालनाच्छुद्धिर्बाहुल्यं प्रोक्षणादपि ॥३६२
रसानान्तु परित्याग श्चाण्डालादिप्रदूषणात् ।
प्रासादद्देवहर्म्याणां चण्डालपतितादिषु ॥३६३
अन्तः प्रविष्टेषु तदा शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा ।
गोभिः संक्रमणं कृत्वा गोमूत्रेणैव लेपयेत् ॥३६४
पुण्याहं वाचयित्वाऽथ तत्तोयैर्दर्भसंयुतैः ।
सम्प्रोक्ष्य सर्वतः पश्चादेवं समभिषेचयेत् ॥३६५
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः स्नापयित्वाऽथ वैष्णवः ।
प्रत्यृचं पावमान्यैश्च वैष्णवैश्चाभिषेचयेत् ॥३६६
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ।
चतुर्भिर्वैष्णवैर्मन्त्रैः स्नाप्य पुष्पाञ्जलिं तथा ॥३६७
श्रीसूक्तेन तदा दिव्यैर्दद्यान्नीराजनं ततः ।
अवैष्णवस्पर्शनेऽपि एवं कुर्वीत वैष्णवः ।
भिन्ने बिम्बे तथा दग्धे परित्यक्त्वैव तं गृहे ॥३६८
वैदेहीं वैष्णवीमिष्ट्वा पुनः स्थापनमाचरेत् ।
चोराद्यपहृते नष्टे वासुदेवीं यजेद्धरूम् ॥३६९
स्थानान्तरगते बिम्बे पुनः स्थापनमाचरेत् ।
तोयाधिवासनं वेद्यामधिरोहणमेव च ॥४००
नयनोन्मीलनं दीक्षां वर्जयित्वाऽन्यमाचरेत् ।
पञ्चगव्यैः स्नापयित्वा पञ्चत्वक्पल्लवाम्बितैः ॥४०१

मङ्गलद्रव्यसंयुक्तैरद्भिः समभिषेचयेत्।
सूक्तैश्च ब्राह्मण स्पत्यै रविगैर्वैष्णवीस्तथा ॥४०२
चतुर्भिर्वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम्।
वैष्णव्या चैव गायत्र्या शङ्खेन स्नापयेद् बुधः ॥४०३
ध्रुवसूक्तमृचं स्मृत्वा जपन् संस्थापयेद्धरिम्।
ततस्तन्मूर्तिमन्त्रेण मूलमन्त्रेण वा द्विजः ॥४०४
दद्यात् पुष्पसहस्राणि देवतां स मनुं स्मरन्।
पश्चात् सावरणं विष्णोरर्चयित्वा विधानतः ॥४०५
इन्द्रसोमं सोमपतेरिति सूक्तमनुत्तमम्।
जपन् भक्त्याऽथ देवैस्तु दद्यान्नीराजनं द्विजः ॥४०६
प्रदक्षिणं नमस्कारं कृत्वा विप्रांस्तु भोजयेत्।
अवैष्णवेन विप्रेण शूद्रेणैवार्चिते हरौ ॥४०७
सहस्रमभिषेकं च पुष्पाञ्जलिसहस्रकम्।
महाभागवतो विप्रः कुर्यान्मन्त्रद्वयेन च ॥४०८
देवतोत्तरसम्पर्कं विना स्वाहरणं हरौ।
अवैष्णवानां मन्त्राणां पक्वान्नस्य निवेदने ॥४०९
कृत्वा नारायणीमिष्टिं पुनः संस्कारमाचरेत्।
देशान्तरगते बिम्बे चिरकालमनर्चिते ॥४१०
अधिवासादिकं सर्वं पूर्ववद्वैष्णवोत्तमः।
विष्णोरुत्सवमध्ये तु विद्युत् स्तनितसम्भवे ॥४११
रथे बिम्बे ध्वजे भग्ने बिम्बे च पतिते भुवि।
ग्रामदाहेऽश्मवर्षे च गुरावृत्विजि वै मृते ॥४१२

नालङ्कृतेषु विधिषु परिणीते जनार्दने ।
अवैदिकक्रियोपेते जपहोमादिवर्जिते ॥४१३

कुर्वीत महतीं शान्तिं वैष्णवीं वैष्णमोत्तमः ।
अग्निनाशे तु तन्मध्ये पुनरादानमाचरेत् ॥४१४

कुर्वीत वैनतेयेष्टिं वैष्वक्सेनीमथापि वा ।
श्वशूकरादिसम्पर्के पवित्रेष्टिं समाचरेत् ॥४१५

वैष्णवेष्टिं प्रकुर्वीत पाषण्डादिप्रदूषिते ।
अथास्य संप्लुवे विष्णोर्यत्र यत्र च सङ्करम् ॥४१६

तत्र तत्र यजेदिष्टिं पावमानीं द्विजोत्तमः ।
स्वापचारै स्तथाऽन्यैर्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥४१७

अवैष्णवेन विप्रेण स्थापिते मधुसूदने ।
तद्राष्ट्रं वा भूपतिर्वा विनाशमुपयास्यति ॥४१८

कुर्वीत वासुदेवेष्टिं सर्वं पापं प्रशामयेत् ।
महाभागवतेनैव पुनः संस्कारमाचरेत् ॥४१९

सेनेशवैनतेयादि नित्यानाञ्च दिवौकसाम् ।
मुक्तानामपि पूजार्थं बिम्बानि स्थापयेद्यदि ॥४२०

स निवेश्यै करात्रन्तु गव्यैः स्नाप्याऽथ देशिकः ।
सर्ववैष्णवसूक्तैश्च तद्गायत्र्या सहस्रकम् ॥४२१

शङ्खे (कुम्भे)नैवाभिषिच्याथ भगवत्पुरतो न्यसेत् ।
स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य यजेच्च पुरतो हरेः ॥४२२

अस्य वामेति सूक्तेन पायसं मधुमिश्रितम् ।
अष्टोत्तरशतं पश्चादाज्यं मन्त्रचतुष्टयात् ॥४२३

सु(प)वर्णतार्क्ष्यसूक्ताभ्यां पृषदाज्यं यजेत्ततः।
तिलैर्व्याहृतिभिर्हुत्वा पश्चादष्टोत्तरं शतम् ॥४२४
वैकुण्ठं पार्षदञ्चैव होमशेषं समापयेत्।
अहमस्मीतिसूक्तेन पीठे संस्थापयेद्बुधः ॥४२५
प्रणवादि चतुर्थ्यन्तनामभिस्तत्प्रकाशकैः।
आवाह्य पूजयित्वाऽथ दद्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः ॥४२६
द्वादशार्णेन मनुना सहस्रमथवा शतम्।
सोमरुद्रेति सूक्तेन दीपैर्नीराजयेत्ततः ॥४२७
भोजयित्वा ततो विप्रान् गुरुं सम्यक् प्रपूजयेत्।
मत्स्यकूर्मादिमूर्तीनामेवं संस्थापनं चरेत् ॥४२८
तत्तत्प्रकाशकैर्मन्त्रैर्जपहोमादिकं चरेत्।
सहस्रनामभिर्दद्यात्पुष्पाणि सुरभीणि च ॥४२९
वापीकूपतडागानां तरूणां स्थापने तथा।
वारुणीभिश्च सौम्यैश्च जपहोमादिकं चरेत् ॥४३०
तरूणां स्थापने गोपकृष्णं मातरमेव च।
ताभ्यामेव तु मन्त्राभ्यां सहस्रं जुहुयाद् घृतम् ॥४३१
वैनतेयाङ्कितं स्तम्भं मध्ये संस्थापयेद्बुधः।
अवैष्णवान्वये जातः कृत्वेष्टिं वैष्णवीं द्विजः ॥४३२
वैष्णवैः पञ्चसंस्कारैः संस्कृतो वैष्णवो भवेत्।
देवतान्तरशेषस्य भोजने स्पर्शने तथा ॥४३३
अनर्चिते पद्मनाभे तस्यानर्पितभोजने।
अवैष्णवानां विप्राणां पूजने वन्दने तथा ॥४३४

याजनेऽध्यापने दाने श्राद्धे चैषाञ्च भोजने।
अनर्चिते भागवते हरिवासरभोजने ॥४३५
प्रायश्चित्तं प्रकुर्व्वीत वेश्यूही मिश्रिसुत्तमाम्।
पश्चाद्भागवतानाञ्च पिबेत् पादजलं शुभम् ॥४३६
एतःसमस्तपापानां प्रायश्चित्तं मनीषिभिः।
निर्णीतं भगवद्भक्तपादामृतनिषेवणम् ॥४३७
अङ्गीकृतं महाभागैर्महाभागवतैर्द्विजैः।
सर्व्वापचारैर्मुच्येत परां वृतिश्च विन्दति ॥४३८
प्रयश्चित्तं तथा चीर्णे महाभागवताद् द्विजात्।
वैष्णवैः पञ्चसंस्कारैः संस्कृतो हरिमर्चयेत् ॥४३६

इति वृद्धहारीतस्मृतौ महापापादिप्रायश्चित्तप्रकरणं नाम षष्ठोऽध्यायः।

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ नानाविधोत्सवविधानवर्णनम्।

अम्बरीष उवाच।

भगवन्! भवता प्रोक्ता विष्णोराराधनक्रिया।
प्रायश्चित्तमकृत्यानामसतां दण्डमेव च ॥१
अधुना श्रोतुमिच्छामि शाश्वतीं वृत्तिरुत्तमाम्।
इष्टीनाञ्च विधानानि विशेषांश्चोत्सवान् हरेः ॥२

हारीत उवाच।

शृणु राजन्! प्रवक्ष्यामि सर्वं निरवशेषतः।
इष्टीनाञ्च विधानञ्च हरेस्तत्सवकर्मणाम् ॥३
नारायणी वासुदेवी गारुडी वैष्णवी तथा।
वैय्यूही वैभवी पाद्मो (द्मी) पवित्री पावमानिका ॥४
सौदर्शिनी च सेनेशी आनन्ती च शुभाह्वया।
महाभागवतीत्येताः सर्वपापहराः शुभाः ॥५
प्रायश्चित्तार्थमपि वा भोगार्थं वा समाचरेत्।
पूर्वं विघनसे विष्णुः प्रोक्तवान् विघनसा भृगोः ॥६
प्रोक्तं ममेरितं तेन भृगुणा दिव्यमुत्तमम्।
गुह्यं तत्सर्ववेदेषु निश्चितं ते ब्रवीम्यहम् ॥७
अग्निर्वै देवानामव मे विष्णुरीश्वरः।
तदन्तरेण वै सर्वा देवता इति ह श्रुतिः ॥८
निवसन्ति पुरोडाशमग्नौ वैष्णवमव्ययम्।
देवाश्च ऋषयः सर्वे योगिनः सनकादयः ॥९
अग्नौ यद्धूयते हव्यं विष्णवे परमात्मने।
तदग्नौ वैष्णवं प्रोक्तं सर्वदेवोपजीवनम् ॥१०
एतदेवहि कुर्वन्ति सदा नित्या अपीश्वराः।
विमुक्ता अपि भोगार्थमेतमेव मुमुक्षवः ॥११
एतदेव परं प्रीतिः सश्रियः परमात्मनः।
एतद्विना न तुष्येत भगवान् पुरुषोत्तमः ॥१२

यज्ञार्थमेव संसृष्टमात्मवर्गं चतुर्विधम् ।
यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्तु तदेषां कर्मबन्धनम् ॥१३

वह्निर्जिह्वा भगवतो वेदा अङ्गाः सदाऽध्वरे ।
अस्थीनि समिधः प्रोक्ता रोमा दर्भाः प्रकीर्तिताः ॥१४

स्वाहाकारः शिरः प्रोक्तं प्राणा एव हवींषि च ।
सर्ववेदक्रिया भोगा मन्त्राः पत्न्यः प्रकीर्तिताः ॥१५

एवं यज्ञवपुर्विष्णुर्विदित्वैनं हुताशने ।
जुहुयाद्वै पुरोडाशं अज्ञात्वैवम्पतेदथ ॥१६

यज्ञो यज्ञपति यज्वा जज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः ।
यज्ञभृद्यज्ञकृद्यज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः ॥१७

यज्ञान्तकृद्यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च ।
तस्मादेनं विदित्वैवं यज्ञं यज्ञेन पूजयेत् ॥१८

कोऽयं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कथं स्यात्परतः शुचिः ।
द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथा परे ॥१९

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च सदा कुर्वन्ति योगिनः ॥२०

हरेर्भोगतया कुर्यान्न साधनतया क्वचित् ।
साधनं भगवान् विष्णुः साध्याः स्युर्वैदिकाः क्रियाः ॥२१

शेषभूतश्च जीवस्य तद्दास्यैकफलाः क्रियाः ।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म तद्दास्यं परिकीर्तितम् ॥२२

नैसर्गिकं तथा कुर्यात्तद्दास्यंकं निकीर्तितम् ।
वैदिकेनैव मार्गेण पूजयेत्परमेश्वरम् ॥२३

अन्यथा नरकं याति कल्पकोटिशतत्रयम् ।
तस्माच्छ्रुत्युक्तमार्गेण यजेद्विष्णुं हि वैष्णवः ॥२४
अर्चायामर्चयेत्पुष्पैरग्नौ च जुहुयाद्धविः ।
ध्यायेत्तु मनसा वाचा जपेन्मन्त्रान् सुवैदिकान् ॥२५
एवं विदित्वा सत्कर्म भोगार्थं परमात्मनः ।
कुर्वीत परमैकान्ती पत्युः पत्नी यथा प्रिया ॥२६
इदं प्रसङ्गेणोक्तं स्याद्विधानं तद् ब्रवीमि ते ।
पूर्वपक्षदशम्यान्तु स्नात्वा सम्पूज्य केशवम् ॥२७
स्वस्तिवाचनपूर्वेण कुर्यादत्राङ्कुरार्पणम् ।
हरिं नारायणेऽभ्यर्थमिति सङ्कल्प्य पूजयेत् ॥२८
विष्णुप्रकाशकै राज्यं भूसूक्ताभ्यां शतं ततः ।
मन्त्रेण चैव वैकुण्ठं पार्षदं हुत्वा समापयेत् ॥२९
अयुतं तु जपेन्मत्रं होमश्चाष्टोत्तरं शतम् ।
शेषं निवेद्य देवाय भुञ्जीयात् स्वयमेव च ॥३०
ततो मौनी जपेन्मत्रं शयीत पुरतो हरेः ।
प्रभाते च नदीं गत्वा स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः ॥३१
सन्ध्यामन्वास्य चाऽऽगत्य स्वगेहे समलङ्कृते ।
वेद्यां संपूज्य देवेशं मन्त्ररत्नविधानतः ॥३२
सप्तावरणसंयुक्तं महिषीभिः समन्वितम् ।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्धूपदीपनिवेदनैः ॥३३
अर्चयित्वा विधानेन कुण्डं दक्षिणभागतः ।
विस्तरायामनिम्नैश्च हस्तमात्रन्त्रिमेखलम् ॥३४

तत्र वह्निं प्रतिष्ठाप्य इध्माधानान्तमाचरेत् ।
ओङ्कारः स्यात्परं ब्रह्म सर्वमन्त्रेषु नायकः ॥३५

त्र्यक्षरं तत्त्रयाणाञ्च वेदानां बीजमुच्यते ।
अजायन्त ऋचः पूर्वमकाराद्विष्णुवाचकात् ॥३६

श्रीवाचकादुकारात्तु यजूंषि तदनन्तरम् ।
अजायन्त तयोः सङ्गात्सामान्यत्यान्यनेकशः ॥३७

तयोर्दासो मकारेण प्रोच्यते सर्वदेहिनः ।
कारणं सर्ववर्णानामकारः प्रोच्यते बुधैः ॥३८

अकारो वै च सर्वा वाक् सैषा स्पर्शोष्मभिः सदा ।
बह्वी सा व्यज्यमानाऽपि नानारूपा इति श्रुतिः ॥३९

अकार एव लुप्यन्ति सर्वमन्त्राक्षराणि हि ।
अकारो वासुदेवः स्यात्तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥४०

मन्त्रो हि बीजं सर्वत्र क्रिया तच्छक्तिरुच्यते ।
मन्त्रतन्त्रसमायुक्तो यज्ञ इत्यभिधीयते ॥४१

मन्त्रः पुमान् क्रिया स्त्री च तदुक्तं मिथुनं स्मृतम् ।
तस्माद्यजूंषि तन्त्राणि ऋचो मन्त्राणि चाध्वरे ॥४२

मन्त्रक्रियायुगमेव मिथुनं यज्ञ उच्यते ।
मन्त्रतन्त्रांशमेते ऋग्यजुषी यज्ञकर्मणि ॥४३

उद्गीतं तु भवेत्साम तस्मात्तद्वैष्णवं त्रयम् ।
ऋग्भिरेव तमुद्दिश्य पुरोडाशं यजेद् बुधः ॥४४

ताभिरेव तु पुष्पाणि दद्यात्कर्मसु शार्ङ्गिणे ।
इन्द्राग्निवरुणादीनि नामान्युक्तानि तत्र तु ।
ज्ञेयानि विष्णो स्तान्यत्र नान्येषां स्युः कथञ्चन ॥४५

अकारे रूढइत्यग्निमिन्द्रत्वं वर ईश्वरे ।
आत्मनां प्रसवे सूर्यः सौम्यत्वात्साम इत्यतः ॥४६

वायुः स्याज्जीवतः प्राणाद्वरुणः सर्वजीवनः ।
मित्रः स्यात्सर्वमित्रत्वादात्मैकत्वाद् बृहस्पतिः ॥४७

रोगनाशो भवेद्रुद्रो यमः स्यात्तु नियामकः ।
हिरण्यत्वमिति प्रोक्तं नेति प्राप्यत्वमुच्यते ॥४८

नित्यसत्वाद्धिरण्यः स्यात्तद्गर्भत्वाद्धिरण्मयः ।
हिरण्यगर्भ इत्युक्तः सत्वगर्भो जनार्दनः ॥४६

हिरण्मयः स भूतेभ्यो ददृशे इति वै श्रुतिः ।
सर्वान् स त्राति सविता पिता च पितृतत्पिता ॥५०

स्वर्भूर्भुव इति प्रोक्तो वेदवेद्येति चोच्यते ।
यस्य छन्दांसि चाङ्गानि स सुवर्ण मिहोच्यते ॥५१

अत्राङ्गं वर्णमित्युक्तं छन्दोमयमुदाहृतम् ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ॥५२

त्रिष्टुप् च जगती चैव छन्दांस्येतान्यनुक्रमात् ।
एतानि यस्य चाङ्गानि स सुपर्ण इहोच्यते ॥५३

यस्माज्जातास्त्रयो वेदा जातवेदाः स उच्यते ।
पवमानः पावयित्वा शिवः स्यात्सर्वदा शुभात् ॥५४

सुजनैः सेव्यते यस्तु अतो वै शम्भुरित्यजः ।
सव्यान्यस्यैव नामानि वैदिकानि विवेचनात् ॥५५

पुन्नामानि यानि विष्णोः स्त्री नामानि श्रियस्तथा ।
परस्य वैदिकाः शब्दाः समाकृष्येतरेष्वपि ॥५६

व्यवह्रियन्ते सततं लोकवेदानुसारतः ।
न तु नारायणादीनि नामान्यन्यस्य कर्हिचित् ॥५७
एतन्नाम्नां गतिर्विष्णुरेक एव प्रचक्षते ।
शब्दब्रह्मत्रयी सर्वं वैष्णवं तद्‌विदोच्यते ॥५८
देवतान्तरशङ्का तु न कर्तव्या हि वैदिकैः ।
वषट्‌कृतं यद्वेदेन तदत्यन्तप्रियं हरेः ॥५९
स्वाहास्वधाभ्यां नमसा हुतं तद्वैष्णवं स्मृतम् ।
समिदाज्यै र्या आहुतीर्ये वेदेनैव जुह्वति ।
यो मनसा सत्वर इत्यृचां प्रोक्तः सदाऽध्वरे ॥६०
वेदेनैव हरिं तस्माद्यजेत द्विजसत्तमः ।
प्रसङ्गादेव मुक्तं स्याद्विधानं तद् ब्रवीमि ते ॥६१
ऋग्वेदसंहितायान्तु मण्डलानि दश क्रमात् ।
एकैकमिष्ट्या होतव्यं चरुणा पायसेन वा ॥६२
घृतेन वा तिलै र्वाऽपि बिल्वपत्रैरथापि वा ।
अग्निमील इति पूर्वं मण्डलं प्रत्यृचं यजेत् ॥६३
पुष्पाणि च तथा दद्यात् सुगन्धीनि जनार्दने ।
विष्णुसूक्तैर्हविर्हुत्वा चतुर्मन्त्रैः शतं यजेत् ॥६४
वैष्णवान् भोजयेन्नित्यमग्निश्चापि सुसंग्रहेत् ।
उपोषितो दीक्षितश्च यावदिष्टिः समाप्यते ॥६५
अन्ते चावभृथेष्टिश्च पुष्पयागश्च पूर्ववत् ।
आचार्यं ब्राह्मणांश्चापि दक्षिणाभिः प्रपूजयेत् ॥६६

इमान्नारायणेष्टिश्च सकृद्वाऽपि यजेत्तु यः।
अनधीतवेदश्चेष्टिमयुतं मूलमन्त्रतः ॥६७

होमं पुष्पाञ्जलिं वाऽपि तथैवायुतमाचरेत्।
पूजयित्वा ततो विप्रान्निष्ट्वाः सम्यक्फलो भवेत्।
अवाक्यपौरुषं सूक्तमष्टोत्तरशतं चरुम्।
हुत्वा चतुर्भिर्मन्त्रैश्च लभेदिष्टिं न संशयः ॥६६

अथ वासुदेवेष्टिरुच्यते।

एकादश्यां कृष्णपक्षे समुपोष्य जनार्दनम्।
समर्चयेद्विधानेन रात्रौ जागरणान्वितः ॥७०

द्वादश्यां प्रातरुत्थाय स्नायान्नद्यां तिलैः सह।
द्वादशार्णेन मनुना सिञ्चेदष्टोत्तरं शतम् ॥७१

अभिमन्त्र्य जलं पश्चात्तुलसीमिश्रितं पिबेत्।
सर्वकर्मस्वभिहित एतद्देवाघमर्षणः ॥७२

तत्तत्कर्मणि तन्मन्त्रं यो जपेदघमर्षणे।
स्नात्वा सन्तर्प्य देवर्षीन् कृतकृत्यः समाहितः ॥७३

गृहं गत्वाऽर्चयेद्देवं वासुदेवं सनातनम्।
द्वादशार्णविधानेन कस्तूरीचन्दनादिभिः ॥७४

जातिकेतककुन्दाद्यैः सुकृष्णतुलसीदलैः।
सुधाब्धौ शेषपर्यङ्के समासीनं श्रिया सह ॥७५

इन्दीवरदलश्यामं चक्रशङ्खगदाधरम्।
सर्वाभरणसम्पन्नं सदायौवनमच्युतम् ॥७६

अनन्तं विहगाधीशं शौनकाद्यैरुपासितम् ।
त्रिदशेन्द्रैर्विमानस्थैर्ब्रह्मरुद्रादिभि स्तथा ॥७७

स्तूयमानं हरिं ध्यात्वा अर्चयेत्प्रयतात्मवान् ।
सर्वमावरणं पश्चादर्चयेत् कुसुमादिभिः ॥७८

प्रथमं महिषीसङ्घं लक्ष्मीभूम्यौ सनीलया ।
अनन्तरञ्च गरुडधर्मसेनादिभि स्तथा ॥७६

ऐश्वर्यज्ञानवैराग्याः पूजनीया यथाक्रमम् ।
सनन्दनश्च सनकः सनत्कुमारः सनातनः ॥८०

औडुश्च सोमकपिलः पञ्चमो नारद स्तथा ।
भृगुर्विघनसोऽत्रिश्च मरीचिः कश्यपोऽङ्गिराः ॥८१

पुलहः स्वायम्भुवो दाल्भ्यो वशिष्ठाद्यास्ततः क्रमात् ।
वशिष्ठो वामदेवश्च हारीतश्च पराशरः ॥८२

व्यास शुकश्च प्रह्लादः शौनको जनकस्तथा ।
मार्कण्डेयो ध्रुवश्चैव पुण्डरीकश्च मारुतः ॥८३

रुक्माङ्गदः शिवो ब्रह्मा पूजनीया यथाक्रमम् ।
तथा लोकेश्वराः पूज्याः शङ्खचक्रादिहेतयः ॥८४

वेदाश्च साङ्गाः स्मृतयः पुराणं धर्मसंहिताः ।
राशयो ग्रहनक्षत्राः पूजनीया समं ततः ॥८५

एवं सम्पूज्य देवेश मग्न्याधानादिपूर्वकम् ।
द्वितीयं मण्डलमृचा जुहुयात्सघृतं चरुम् ॥८६

ध्यात्वा वह्नौ वासुदेवं दद्यात्पुष्पाणि तत्र तु ।
वैष्णवांश्च यजेत्तत्रावभृथं पुष्पयागकम् ॥८७

ब्राह्मणान् भोजयेदन्ते गुरुश्चापि प्रपूजयेत्।
इमाश्च वासुदेवेष्टिं यः कुर्याद्वैष्णवोत्तमः ॥८८
कुलकोटिं समुद्धृत्य स गच्छेत्परमं पदम्।
अथवा वासुदेवस्य मन्त्रेणैव द्विजोत्तमः ॥८९
जुहुयादयुतं वह्नौ वैष्णवैः प्रत्यृचं तथा।
पुण्याणि दत्त्वा देवेशे सम्यगिष्ट्वा लभेत्फलम् ॥९०
अथ वक्ष्यामि राजर्षे! वैष्णवेष्ट्या विधिं ततः।
श्रवणर्क्षे तु पूर्वाह्णे पूर्वंवच्च समारभेत् ॥९१
उपोष्य पूर्वदिवसे पूजयेज्जागरे हरिम्।
प्रभाते पूर्ववत् स्नात्वा तर्पयेज्जगतां पतिम् ॥९२
षडक्षरविधानेन परव्योम्नि स्थितं हरिम्।
वह्न्यर्क हेमबिम्बाद्यैर्योगपीठसुसंस्थितम् ॥९३
चतुर्भुजं सुन्दराङ्गं सर्वाभरणभूषितम्।
चक्रशङ्खगदाशार्ङ्गान् बिभ्राणं दोर्भिरायतैः ॥९४
वामाङ्कस्थश्रिया सार्द्धं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
नैवेद्यैश्च फलैर्भक्ष्यैर्दिव्यैर्भोज्यैः सुपानकैः ॥९५
अर्चयेद्देवदेवेशं सर्वाभरण संयुतम्।
श्रीर्लक्ष्मीः कमला पद्मा सीता सत्या च रुक्मिणी ॥९६
सावित्री परितः पूज्या ततस्तुते बलादयः।
अनन्ततार्क्ष्यदेवेशसत्यधर्मदमाः शमाः ॥९७
बुद्धिश्च पूजनीयास्ते दिक्षु सर्वास्वनुक्रमात्।
ततो लोकेश्वराः पूज्या स्ततश्चक्रादिहेतयः ॥९८

महाभागवताः पूज्या होमकर्म समाचरेत् ।
चतुर्भिर्वैष्णवैः सूक्तैः प्रत्यृचं जुहुयाच्चरुम् ॥६६

व्यापका मन्त्ररत्नञ्च चतुर्मन्त्रा उदाहृताः ।
तैरप्यष्टोत्तरशतं पृथक् पृथगतो यजेत् ॥१००

तृतीयमण्डलं पश्चाज्जुहुयात्प्रत्यृचं ततः ।
तथा पुष्पैश्च सम्पूज्य कुर्यादवभृथं ततः ॥१०१

समाप्य दुग्धयोगेन वैष्वान् भोजयेत्ततः ।
एवं कर्तुमशक्तश्चेद्वैष्णवीं वैष्णवोत्तमः ॥१०२

वैष्णव्या चैव गायत्र्या पुष्पाञ्जल्ययुतं चरेत् ।
त्रिसहस्रं चरुं हुत्वा वैष्णवेष्ट्याः फलं लभेत् ॥१०३

इमां तु वैष्णवी मिष्टिं यः कुर्याद्वैष्णवोत्तमः ।
त्रिकोटिकुलमुद्धृत्य याति विष्णोः परं पदम् ॥१०४

प्रायश्चित्त मिदं कुर्याद् व्रतिभङ्गेषु वैष्णवः ।
शान्त्यर्थं देवकार्येषु पापेषु च महत्स्वपि ॥१०५

अथ वैयूही इष्टिरुच्यते ।

शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां सङ्क्रान्तौ ग्रहणेऽपि वा ।
उपोष्य विधिवद्विष्णुं पूजयित्वा विधानतः ॥१०६

अभ्यर्चयेद् गन्धपुष्पैः केशवादीन् पृथक् पृथक् ।
सङ्कर्षणादीनपि च पूजयेत्प्रयतात्मवान् ॥१०७

तत्तन्मूर्तिं पृथक् ध्यात्वा पृथगेव समर्चयेत् ।
केशवस्तु सुवर्णाभः श्यामो नारायणोऽव्ययः ॥१०८

माधवः स्यादुत्पलाभो गोविन्दः शशिसन्निभः।
गौरवर्ण स्तथा विष्णुः शोणो मधुजिदव्ययः ॥१०९
त्रिविक्रमोऽग्निसङ्काशो वामनः स्फटिकप्रभः।
श्रीधरस्तु हरिद्राभो हृषीकेशोंऽशुमान् यथा ॥११०
पद्मनाभो घनश्यामो हैमो दामोदरः प्रभुः।
सङ्कर्षणस्तु मुक्ताभो वासुदेवो घनद्युतिः ॥१११
प्रद्युम्नो रक्तवर्णः स्यादनिरुद्धो यथोत्पलम्।
अधोक्षजः शाद्वलाभो रक्ताङ्गः पुरुषोत्तमः ॥११२
नृसिंहो मणिवर्णः स्यादच्युतोऽर्कसमप्रभः।
जनार्दनः कुन्दवर्ण उपेन्द्रो विद्रुमद्युतिः ॥११३
हरिर्वै सूर्यसङ्काशः कृष्णोभिन्नाञ्जनद्युतिः।
आयुधानि ब्रुवे चैषां दक्षिणाधः करादितः ॥११४
पद्मं शङ्खं गदाचक्रं गदां दधाति केशवः।
शङ्खं पद्मं गदाचक्रं धत्ते नारायणोऽव्ययः ॥११५
माधवस्तु गदां चक्रं शङ्खं पद्मं बिभर्त्ति च।
चक्रं गदां तथा पद्मं शङ्खं गोविन्द एव च ॥११६
गदां पद्मं गदाशङ्खं चक्रं विष्णुर्बिभर्त्ति हि।
चक्रं शङ्खं तथा पद्मं गदां च मधुसूदनः ॥११७
पद्मं गदां तथा चक्रं शङ्खं चैव त्रिविक्रमः।
शङ्खं चक्रं गदापद्मं वामनो बिभृयात्तथा ॥११८
पद्मं चक्रं गदाशङ्खं श्रीधरः श्रीपतिर्दधत्।
गदां चक्रं हृषीकेशः पद्मं शङ्खं बिभर्त्ति हि ॥११९

पद्मनाभस्तथा शङ्खं पद्मं चक्रं गदां धरेत् ।
पद्मं शङ्खं गदां चक्रं धत्ते दामोदरस्तथा ॥१२०
सङ्कर्षणो गदां शङ्खं पद्मं चक्रं दधाति हि ।
वासुदेवो गदां शङ्खं चक्रं पद्मं बिभर्त्ति हि ॥१२१
चक्रं शङ्खं गदां पद्मं प्रद्युम्नो बिभृयात्तथा ।
अनिरुद्धस्तथा चक्रं गदां शङ्खं च पङ्कजम् ॥१२२
चक्रं पद्मं तथा शङ्खं गदां च पुरुषोत्तमः ।
पद्मं गदां तथा शङ्खं चक्रं चाधोक्षजो हरिः ॥१२३
चक्रं पद्मं गदां शङ्खं नरसिंहो बिभर्त्ति हि ।
अच्युतश्च गदां पद्मं चक्रं शङ्खं बिभर्त्ति हि ॥१२४
जनार्दन स्तथा पद्मं शङ्खं चक्रं गदां धरेत् ।
उपेन्द्रस्तु तथा शङ्खं गदां चक्रं च पङ्कजम् ॥१२५
हरिस्तु शङ्खं चक्रं च पद्मं चैव गदां धरेत् ।
शङ्खं गदां पङ्कजं च चक्रं कृष्णो बिभर्त्ति हि ॥१२६
एवं चतुर्विंशतिस्तु मूर्तीं ध्यात्वा समर्चयेत् ।
तत्तद्बिम्बेषु वा राजन् ! शालग्रामशिलासु वा ॥१२७
गन्धैः पुष्पैश्च ताम्बूलैर्धूपैर्दीपैर्निवेदनैः ।
फलैश्च भक्ष्यभोज्यैश्च पानीयैः शर्करान्वितैः ॥१२८
नामभिस्तैश्चतुर्थ्यन्तैर्मूलमन्त्रेण वा यजेत् ।
देवानावरणीयांश्च पूजयेत्परितः क्रमात् ॥१२९
यं हेत्याह(वह्नी त्वने)तिसूक्तेन कुर्यान्नीराजनं शुभम् ।
पुरतोऽग्निं प्रतिष्ठाप्य स्वगृह्योक्तविधानतः ।
मण्डलेन चतुर्थेन प्रत्युचं जुहुयाच्चरुम् ॥१३०

पुष्पैः सम्पूजयेद्भक्त्या कुर्यादवभृथं नरः।
इमां वैयूहिकीमिष्टिं सम्यक् प्राहुर्महर्षयः॥१३१
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं पातकेषु महत्स्वपि।
अनघ्स्वपि च विप्राणां शान्त्यर्थं वा समाचरेत्॥१३२
प्रायश्चित्तं विशिष्टं स्याद्देयं प्रत्यूचकर्मसु।
अनधीतः कथं कुर्याद्वैयूहीं वैष्णवीं द्विजः॥१३३
प्रत्येकं शतमष्टौ च मन्त्रैस्तेषां यजेद्बुधः।
सर्वत्रावभृथेष्टिश्च पुष्पयागश्च वैष्णवः॥१३४
द्वयेन मूलमन्त्रेण कुर्वीत सुसमाहितः।
वैष्णवान् भोजयेद्भक्त्या कर्मान्ते सत्वसिद्धये॥१३५
चतुर्विंशतिसंख्यान्वै महाभागवतान् द्विजान्।
एकं वा भोजयेद्विप्रं महाभागवतोत्तमम्।
सर्वं सम्पूर्णतामेति तस्मिन् संपूजिते द्विजे॥१३६
यः करोति शुभामिष्टिं वैयूहीं वैष्णवोत्तमः।
अनन्तस्याच्युतानाञ्च विशिष्टोऽन्यतमो भवेत्॥१३७
वैभवीमथ वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम्।
पावनीं सर्वलोकानां सर्वकामप्रदां शुभाम्॥१३८
भगवज्जन्मदिवसे वारे सूर्यसुतस्य वा।
स्वजन्मर्क्षेऽपि वा कुर्याद्वैभवीं मङ्गलाह्वयाम्॥१३९
पूर्वं कृत्वाभ्युदयं कुर्यादङ्कुरार्पणपूर्वकम्।
उपोष्य पूजयेद्विष्णुमान्याधानं समाचरेत्॥१४०

स्नात्वा परेऽह्नि विधिना सन्तर्प्य पितृदेवताः ।
विशिष्टैर्ब्राह्मणैः सार्द्धमर्चयित्वा जनार्दनम् ॥१४१

मत्स्यं कूर्मं च वाराहं नारसिंहं च वामनम् ।
श्रीरामं बलभद्रञ्च कृष्णं कल्किनमव्ययम् ॥१४२

हयग्रीवं जगद्योनिं पूजयेद्वैष्णवोत्तमः ।
नार्चयेद्भार्गवं बुद्धं सर्वत्रापि च कर्मसु ॥१४३

कुशग्रन्थिषु बिम्बेषु शालग्रामशिलासु वा ।
अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैः प्रागुदक्प्रवणेन च ॥१४४

पृथक् पृथक् च नैवेद्यं विविधं वै समर्पयेत् ।
मोदकान् पृथुकान् सक्तूनपूपान् पायसांस्तथा ॥१४५

हविष्यमन्नमुद्गान्नं मण्डकान् मधुसंयुतान् ।
दध्यन्नञ्च गुडान्नञ्च भक्त्या तेभ्यो निवेदयेत् ॥१४६

कर्पूरसंयुतं दिव्यं ताम्बूलञ्च निवेदयेत् ।
इमा विश्वेतिसूक्तेन दद्यान्नीराजनं तथा ॥१४७

सहस्रनामभिः स्तुत्वा भक्त्या च प्रणमेद्बुधः ।
इध्माधानादिपर्य्यन्तं कृत्वा होमं समाचरेत् ॥१४८

सर्वैस्तु वैष्णवैः सूक्तैर्हुत्वा पूर्वं शुभं हविः ।
पञ्चमं मण्डलं पश्चात्प्रत्यृचं जुहुयाद्द्विजः ॥१४९

इमान्तु वैभवीमिष्टिं कुर्याद्विष्णुपरायणः ।
अकृत्वा वैभवीमन्त्रं योऽध्यापयति देशिकः ॥१५०

रौरवं नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ।
होमं विना स शूद्राणां कुर्यात् सर्वमशेषतः ॥१५१

मन्त्रैर्वा जुहुयादाज्यं तत्तन्मूर्तिप्रकाशकैः।
पूजयित्वा द्विजवरान् पश्चान्मन्त्रं प्रदापयेत् ॥१५२
अशक्तो यस्तु वेदेन कर्तुमिष्टिं द्विजोत्तमः।
तत्तन्मूर्तिमयैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम् ॥१५३
हुत्वा चरुं घृतयुतं सम्यगिष्ट्याः फलं लभेत्।
वैष्णवत्वाच्युतस्यापि कारयेदिष्टिमुत्तमाम् ॥१५४
उद्दिश्य वैष्णवान् स्वस्वपितॄनपि च वैष्णवः।
यः कुर्याद्वैष्णवीमिष्टिं भक्त्या परमया युतः ॥१५५
वैष्णवत्वं कुलं सर्वं लभेत स न संशयः।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि आनन्तीमघनाशनीम् ॥१५६
पौर्णमास्यां प्रकुर्वीत पूर्वोक्तविधिना नृप !।
आदानं पूर्ववत्कृत्वा अङ्कुरार्पणपूर्वकम् ॥१५७
उपोष्याभ्यर्चयेद्देवमनन्तं पुरुषोत्तमम्।
सहस्रशीर्षं विश्वेशं सहस्रकरलोचनम् ॥१५८
सहस्र(किरणं)चरणं श्रीशं सदैवाश्रितवत्सलम्।
पौरुषेण विधानेन पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥१५९
गन्धपुष्पैश्च धूपैश्च दीपैश्चापि निवेदनैः।
पूजयित्वा जगन्नाथं पश्चादावरणं यजेत् ॥१६०
पार्श्वयोश्च श्रियं भूमिं नीलाञ्च शुभलोचनाम्।
हिरण्यवर्णा हरिणी जातवेदा हिरण्मयी ॥१६१
चन्द्रा सूर्या च दुर्धर्षा गन्धद्वारा महेश्वरी।
नित्यपुष्टा सहस्राक्षी महालक्ष्मीः सनातनी ॥१६२

पूजनीया समस्ताश्च गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
संकर्षणस्तथाऽनन्तः शेषो भूधर एव च ॥१६३
लक्ष्मणो नागराजश्च बलभद्रो हलायुधः ।
तच्छक्तयः पूजनीयाः प्रागादिषु यथाक्रमम् ॥१६४
रेवती वारुणी कान्तिरैश्वर्या च इला तथा ।
भद्रा सुमङ्गला गौरी शक्तयः परिकीर्तिताः ॥१६५
अष्टान् लोकेश्वरान् पूज्य पश्चाद्धोमं समाचरेत् ।
पश्चात्तु मण्डलं षष्ठं प्रत्यृचं जुहुयाच्चरुम् ॥१६६
पुष्पाणि च तथा दत्त्वा कुर्य्यादवभृथादिकम् ।
अशक्तश्चेन्नृसूक्तेन शतमष्टोत्तरं चरुम् ॥१६७
इष्टे वैष्णव्याः फलं सम्यगाप्नोत्येव न संशयः ।
आनन्तीयामिमामिष्टिं वैकुण्ठपदमाप्नुयात् १६८
न दास्यमीशस्य भवेद्यस्य दास्यं नृणामसत् ।
तत्र कुर्यादिमामिष्टिं दास्यैकफलसिद्धये ॥१६९
अधुना वैनतेयेष्टिं वक्ष्यामि नृपसत्तम ! ।
पञ्चम्यां भानुवारे वा कस्मिंश्चिच्छुभवासरे ॥१७०
उपोष्य पूर्ववत्सर्वं कुर्य्यादभ्युदयादिकम् ।
स्नात्वाऽर्चयित्वा देवेशं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥१७१
लक्ष्म्या सह समासीनं वैकुण्ठभवने शुभे ।
सर्वमन्त्रमये दिव्ये वाङ्मये परमासने ॥१७२
मन्त्रस्वरैः रक्षरैश्च साङ्गैर्वेदैः समन्वितः ।
तारेण सह सावित्र्या संस्तीर्णे शुभवर्चसि ॥१७३

ईश्वर्या च समासीनं सहस्रार्कसमद्युतिम्।
चतुर्भुजमुदाराङ्गं कन्दर्पशतसन्निभम्।
युवानं पद्मपत्राक्षं चक्रशङ्खगदाङ्गिनम्॥१७४
वैष्णव्या चैव गायत्र्या पूजयेद्धरिमव्ययम्।
श्रियं देवीं नित्यपुष्टां सुभगाञ्च सुलक्षणाम्॥१७५
ऐरावतीं वेदवतीं सुकेशीञ्च सुमङ्गलाम्।
अर्चयेत्परितो देवीः सुरूपा नित्ययौवनाः॥१७६
ततः समर्चयेत्तार्क्ष्यं गरुड़ं विनतासुतम्।
सुपर्णञ्च चतुर्दिक्षु विदिक्षु शक्तयस्तथा॥१७७
श्रुतिस्मृतीतिहासाश्च पुराणानीति शक्तयः।
अस्त्रादीनीश्वरान् पश्चादर्चयेत् कुसुमाक्षतैः॥१७८
धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलञ्च समर्चयेत्।
अयं हि ते चार्थीति दद्यान्नीराजनं शुभम्!॥१७६
प्रदक्षिणं नमस्कारं कृत्वा होमं समाचरेत्।
वशि(सि)ष्ठेन च संदृष्टं सप्तमं मण्डलं धु(हु)नेत्॥१८०
पुष्पाणि च ततो दत्त्वा कुर्यादवभृथादिकम्।
रद(थ)यानादिभङ्गे च वाहनध्वंसने तथा॥१८१
अवैदिकक्रियाजुष्टे कुर्यादिष्टिमिमां शुभाम्।
अरिष्टे चोपपातेषु शान्त्यर्थमपि वा यजेत्॥१८२
इष्ट्याऽनया पूजितेशे रोगसर्पाग्निभिः शमेत्।
वैनतेयसमो भूत्वा भवेदनुचरो हरेः॥१८३

वैष्वक्सेनीं ततो वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
उपोष्यैकादशीं शुद्धां पूर्ववत् पूजतेद्धरिम् ॥१८४
तद्विष्णोरितिमन्त्राभ्यामुपचारैः समर्चयेत् ।
विष्वकसेनञ्च सेनेशं सेनान् पञ्च चमूपतिम् ॥१८५
अर्चयित्वा चतुर्दिक्षु शक्तयश्च विदिक्षु च ।
त्रयीं सूत्रवतीं सौम्यां सावित्रीं चार्च्चयेद् द्विजः ॥
अश्वान् (दिगीशान्)दीपांश्च सम्पूज्य होमं पश्चात् समाचरेत् । १८६
कृत्वेध्माधानपर्यन्तमग्रमं मण्डलं यजेत् ॥१८७
पायसेनाथ पुष्पाणि दद्यात् प्रयतमानसः ।
अन्ते चावभृथेष्टिञ्च प्रसूनयजनं तथा ॥१८८
ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्तया दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ।
अशक्तो यस्तु वेदेन कर्तुमिष्टिञ्च वैष्णवः ॥१८९
तद्विष्णोरिति मन्त्राभ्यां सहस्रं जुहुयाच्चरुम् ।
कृत्वा पुष्पाञ्जलिञ्चापि सम्यगिष्टिं लभेन्नरः ॥ १९०
वैष्वक्सेनी मिमां हुत्वा विष्वक्सेनसमो भवेत् ।
प्रभूतधनधान्याढ्यमैश्वर्यं चैव विन्दति ॥१९१
यक्षराक्षसभूतानां तामसानां दिवौकसाम् ।
अभ्यर्चने तद्दोषस्य विशुद्ध्यर्थमिदं यजेत् ॥१९२
सौदर्शनीं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
व्यतीपाते वैधृतौ वा समुपोष्यार्चयेद्धरिम् ॥१९३
अखण्डबिल्वपत्रैर्वा कोमलैस्तुलसीदलैः ।
अर्चयित्वा हृषीकेशं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥१९४

पश्चात्समर्चनीयाः स्युः श्रीभूनीलादिमातरः।
सुदर्शनसहस्रारं पवित्रं ब्रह्मण स्पतिम् ॥१६५
सहस्रार्कं शतोद्यामं लोकद्वारं हिरण्मयम्।
अभ्यर्च्चयेत् क्रमाद्दिक्षु तथा शक्तीः समर्च येत् ॥१६६
अनिष्टध्वंसिनी माया लज्जा पुष्टिः सरस्वती।
प्रकृतीर्जगदाधारा कामधुक् चाष्टशक्तयः ॥१६७
तथा ताश्चैव लोकेशाः पूज्या दिक्षु यथाक्रमात्।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥१६८
ऋग्वेदोक्तस्य सूक्तेन ततो नीराजनं हरेः।
नवमं मण्डलं पश्चाद्धोतव्यं चरुणा नृप ! ॥१६९
आज्येन वा तिलैर्वाऽपि बिल्वैर्वाऽपि सरोरुहैः।
हुत्वा पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा कुर्यादवभृथादिकम् ॥२००
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद् गुरुश्चापि समर्चयेत्।
उद्वाह्य वैष्णवीं कन्यां याचित्वा वैष्णवीं तथा ॥२०१
हुत्वा वा वैष्णवेनैव तथैवाऽऽदित्यभुज्यपि।
अन्यलिङ्गधृतौ चापि कुर्यादिष्टिमिमां द्विजः ॥२०२
सौदर्शनेन मन्त्रेण सहस्रं जुहुयाच्चरुम्।
पुष्पाणि दत्त्वा साहस्रं सम्यगिष्ट्याः फलं लभेत् ॥२०३
अथ भागवतीमिष्टिं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम !।
उपोष्यैकादशीं शुद्धां द्वादश्यां पूर्ववद्धरिम् ॥२०४
अर्चयित्वा विधानेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
पौरुषेण तु सूक्तेन श्रीमदष्टाक्षरेण वा ॥२०५

अर्चयेज्जगतामीशं सर्वाभरणसंयुतम् ।
ततो भागवतान् सर्वानर्चयेत्परितो द्विजः ॥२०६

पुष्पैर्वा तुलसीपत्रैः सलिलै रक्षतैरपि ।
प्रह्लादं नारदञ्चैव पुण्डरीकं विभीषणम् ॥२०७

रुक्माङ्गदं तत्सुतञ्च हनूमन्तं शिवं भृगुम् ।
वशि(सि)ष्ठं वामदेवञ्च व्यासं शौनकमेव च ॥२०८

मार्कण्डेयं चाम्बरीषं दत्तात्रेयं पराशरम् ।
रुक्मदाल्भ्यौ कश्यपञ्च हारीतञ्चात्रिमेव च ॥२०६

भरद्वाजं बलिं भीष्म मुद्धवाक्रूरपुष्करान् ।
गुहं सूतञ्च वाल्मीकं स्वायम्भुवमनुं ध्रुवम् ॥२१०

वैणञ्च रोमशञ्चैव मातंगं शबरीं तथा ।
सनन्दनञ्च सनकं विघनञ्च सनातनम् ॥२११

वोटुं(ढुं)पञ्चशिखञ्चैव गजेन्द्रञ्च जटायुषम् ।
सुशीलां त्रिजटां गौरीं शुभां सन्ध्यावलिं तथा ॥२१२

अनसूयां द्रौपदीञ्च यशोदां देवकीं तथा ।
सुभद्राञ्चैव गोपीश्च शुभा नन्दव्रजे स्थिताः ॥२१३

नन्दं च वसुदेवञ्च दिलीपं दशरथं तथा ।
कौसल्याञ्चैव जनककन्यामपि च वैष्णवान् ॥२१४

अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्धूपैर्दीपैर्निवेदनैः ।
ताम्बूलैर्भक्ष्यभोज्यैश्च दीपैर्नीराजनैरपि ॥२१५

अहं भुवेति सूक्तेन दद्यान्नीराजनं हरेः ।
पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत अग्न्याधानादिपूर्ववत् ॥२१६

दशमं मण्डलं सर्वं प्रत्यृचं जुहुयाद्धविः।
तिलमिश्रेण साज्येन चरुणा गोघृतेन वा ॥२१७
सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैश्चतुर्भिश्चाष्टोत्तरं शतम्।
नामभिश्च चतुर्थ्यन्तै स्तान सर्वान् वैष्णवान् यजेत् ॥२१८
पुष्पैरिष्ट्वा चावभृथं प्रसूनेष्टिश्च कारयेत्।
होमं कर्तुमशक्तश्चेद्वेदेन नृपनन्दन ! ॥२१९
चतुर्भिर्वैष्णवैर्मन्त्रैः साहस्रं वा पृथक् पृथक्।
इमां भागवतीमिष्टिं यः कुर्याद्वैष्णवोत्तमः ॥२२०
अनन्तगरुडादीनामयमन्यतमो भवेत्।
पावमानैर्यदा ऋग्भिरिज्यते मधुसूदनः ॥२२१
तत्त्वावमानी मुनिभिः प्रोच्यते मधुसूदनः।
यदा तु द्वादशी शुक्ला भृगुवासरसंयुता ॥२२२
तस्यामेव प्रकुर्वीत पाद्मोमिष्टिं द्विजोत्तमः।
महाप्रीतिकरं विष्णोः सद्योमुक्तिप्रदायकम् ॥२२३
तस्यां कृतायामिष्ट्यां तु लक्ष्मीभर्त्ता जनार्दनः।
प्रत्यक्षो हि भवेत्तत्र सर्वकामफलप्रदः ॥२२४
श्रीधरं पूजयेत्तत्र तन्मन्त्रेणैव वैष्णवः।
सुवर्णमण्डपे दिव्ये नानारत्नप्रदीपिते ॥२२५
उदयादित्यसङ्काशे हिरण्ये पङ्कजे शुभे।
लक्ष्म्या सह समासीनं कोटिशीतांशुसन्निभम् ॥२२६
चक्रशङ्खगदापद्मपाणिनं श्रीधरं विभुम्।
पीताम्बरधरं विष्णुं वनमालाविराजितम् ॥२२७

अर्च्चयेज्जगतामीशं सर्वाभरणभूषितम्।
पद्मां पद्मालयां लक्ष्मीं कमलां पद्मसम्भवाम्॥२२८

पद्ममाल्यां पद्महस्तां पद्मनाभीं सनातनीम्।
प्रागादिषु तथा दिक्षु पूजयेत् कुसुमादिभिः॥२२६

अष्टाङ्गीनीश्वरान् पूज्य नमस्कुर्वीत भक्तितः।
ततो नीराजनं दत्त्वा श्रीसूक्तेन तु वैष्णवः॥२३०

पुरतो जुहुयादग्नौ पायसं घृतमिश्रितम्।
तन्मन्त्रेणैव साहस्रं सूक्ताभ्यां सकृदेव हि॥२३१

हुत्वा मन्त्रेण साहस्रं दद्यात पुष्पाणि शार्ङ्गिणे।
वैष्णवं मित्रमिथुनं पूजयेद्भोजयेत्तथा॥२३२

इमां पाद्मीं शुभामिष्टिं यः कुर्याद्वैष्णवोत्तमः।
प्रभूतधनधान्याढ्यो महाश्रियमवाप्नुयात्॥२३३

सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोकं स गच्छति।
लक्ष्म्यायुक्तो जगन्नाथः प्रत्यक्षः समभूद्धरिः॥२३४

ददाति सकलान् कामानिह लोके परत्र च।
पुण्यैः पवित्रदैवत्यैरिज्यते यत्र केशवः॥२३५

तां पवित्रेष्टिमित्याहुः सर्वपापप्रणाशिनीम्।
यत्ते पवित्रमित्यादि ऋग्भिर्यत्र यजेद्द्विजः॥२३६

प्रायश्चित्तार्थं सहसा शान्त्यर्थं वा समाचरेत्।
एवं विधानमिष्टीनां सम्यगुक्तं महर्षिभिः॥२३७

वैदिकेनैव विधिना यथाशक्त्या समाचरेत्।
अवैदिकक्रियाजुष्टं प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥२३८

क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के बुध्यमाने सनातने।
अत्रोत्सवं प्रकुर्वीत पञ्चरात्रं निरन्तरम् ॥२३६

नद्याश्च पुष्करिण्या वा तीरे रम्यतले शुचौ।
मण्डपं तत्र कुर्वीत चतुर्भिस्तोरणैर्युतम् ॥२४०

बितानपुष्पमालादि पताकाध्वजशोभितम्।
अङ्कुरार्पणपूर्वेण यज्ञवेदिञ्च कल्पयेत् ॥२४१

ऋत्विग्भिः सार्द्धमाचार्यो दीक्षितो मङ्गलस्वनैः।
रथमारोप्य देवेशं छत्रचामरसंयुतम् ॥२४२

पठन्वैशाकुनान् मन्त्रान् यज्ञशालां प्रवेशयेत्।
स्वस्तिवाचनपूर्वेण कुर्यात्कौतुकबन्धनम् ॥२४३

पूर्णकुम्भान् शस्ययुतान् पालिकाः परितः क्षिपेत्।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः पश्चादावरणं यजेत् ॥२४४

वासुदेवमनन्तञ्च सत्यं यज्ञं तथाऽच्युतम्।
महेन्द्रं श्रीपतिं विश्वं पूर्णकुम्भेषु पूजयेत् ॥२४५

पालिकाः सद्दिगीशांश्च दीपिकास्त्वथ हेतयः।
तोरणेषु च चण्डाद्याः पूजनीया यथाक्रमम् ॥२४६

वेद्याश्च दक्षिणे भागे कुण्डं कुर्यात्सलक्षणम्।
निक्षिप्याग्निं विधानेन इध्माधानान्तमाचरेत् ॥२४७

आचार्योपासनाग्नौ वा लौकिके वा नृपोत्तम !।
आधानं पूर्ववत् कृत्वा पश्चात्कर्म समाचरेत् ॥२४८

प्रातः स्नात्वा विधानेन पूजयित्वा सनातनम्।
प्रत्यृचं पावमानीभिर्जुहुयात्पायसं शुभम् ॥२४६

वैष्णवैरनुवाकैश्च मन्त्रैः शक्त्या पृथक् पृथक् ।
चतुर्भिर्व्यापकैश्चान्यै प्रत्येकं जुहुयाद् घृतम् ॥२५०

वैकुण्ठं पार्षदं हुत्वा होमशेषं समाचरेत् ।
ताभिरेव च पुष्पाणि दद्याच्च जगताम्पतेः ॥२५१

उद्बोधयित्वा शयने देवदेवं जनार्दनम् ।
पश्चात् सर्वमिदं कुर्यादुत्सवार्थं द्विजोत्तमः ॥२५२

अथ नावं सुविस्तीर्णां कृत्वा तस्मिन् जले शुभे ।
पुष्पमण्डपचिह्नादि समास्तीर्णसमन्विताम् ॥२५३

सुतोरणवितानाढ्यां पताकाध्वजशोभिताम् ।
तस्मिन् कनकपर्यङ्के निवेश्य कमलापतिम् ॥२५४

अर्चयित्वा विधानेन लक्ष्म्या सार्द्धं सनातनम् ।
पुष्पाञ्जलिशतं तत्र मन्त्ररत्नेन कारयेत् ॥२५५

श्रीपौरुषाभ्यां सूक्ताभ्यां दद्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः ।
परितः शक्तयः पूज्या स्तथाऽऽवरणदेवताः ॥२५६

दीपैर्नीराजनं कृत्वा बलिं द ात् समन्ततः ।
नौभिः समन्ताद् बहुभि र्गीतवादित्रसंयुतम् ॥२५७

दीपिकाभिरनेकाभि स्तोत्रैरपि मनोरमैः ।
प्लावयन्तो जगन्नाथं तत्र तत्र जलाशये ॥२५८

फलैर्भक्ष्यैश्च ताम्बूलैः कलशैर्दधिमिश्रितैः ।
कुङ्कुमैः कुसुमैर्लाजैर्विकिरन्तः परस्परम् ॥२५९

गानैर्वेदैः पुराणैश्च सेवेत निशि केशवम् ।
ऋत्विजो वारुणान् सूक्तान् जपेयुस्तत्र भक्तितः ॥२६०

जपेच्च भगवन्मन्त्रान् शान्तिपाठञ्चरेत्तथा ।
एवं संसेव्य बहुधा रात्रावस्मिन् जलाशये ॥२६१
प्रदेवत्रेति सूक्तेन यज्ञशालां प्रवेशयेत् ।
तत्र नीराजनं दत्त्वा कुर्यादर्घ्यादिपूजनम् ॥२६२
धृतव्रतेति सूक्तेन तत्र नीराजनं द्विजः ॥२६३
स्नात्वा पूर्ववदभ्यर्च्य हुत्वा पुष्पाञ्जलिं तथा ।
आशिषोवाचनं कृत्वा भोजयेद् ब्राह्मणान् शुभान् ॥२६४
शाययित्वाऽथ देवेशं भुञ्जीयाद्वाग्यतः स्वयम् ।
एवं प्रतिदिनं कुर्यादुत्सवं पञ्चवासरम् ।।२६५
अन्ते चावभृथेष्टिं च पुष्पयागञ्च कारयेत् ।
आचार्यं मृत्विजो विप्रान् पूजयेद्दक्षिणादिभिः ॥२६६
एवं क्षीराब्धियजनं प्रत्यब्दं कारयेन्नृप ! ।
स्वसम्यगर्थवृद्ध्यर्थं भोगाय कमलापतेः ॥२६७
वृद्ध्यर्थमपि राष्ट्रस्य शत्रूणां नाशनाय च ।
सर्वधर्मविवृद्ध्यर्थं क्षीराब्धियजनं चरेत् ।
तत्र दुर्भिक्षरोगाग्निपापबाधा न सन्ति हि ॥२६८
गावः पूर्णदुघा नित्यं बहुलस्य फलाधरा ।
पुष्पिताः फलिता वृक्षा नार्यो भर्तृपरायणाः ॥२६९
आयुष्मन्तश्च शिशवो जायते भक्तिरच्युते ।
यः करोति विधानेन यजनं जलशायिनः ॥२७०
क्रतुकोटिफलं तत्र प्राप्नोत्येव न संशयः ।
यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं क्षीराब्धियजनं हरेः ॥२७१

सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोकञ्च विन्दति ।
पुष्पिते तु रसाले तु तत्राप्युत्सवमात्मनः ॥२७२

त्रिवासरं प्रकुर्वीत दोलानाम महोत्सवम् ।
उपोषितः संयतात्मा दीक्षितो माधवं हरिम् ॥२७३

छत्रचामरवादित्रैः पताकैः शिविकां शुभाम् ।
आरोप्यालङ्कृतं विष्णुं स्वयञ्च समलङ्कृतः ॥२७४

हरिद्रां विकिरन्तो वै गायन्तः परमेश्वरम् ।
गच्छेयुराद्रुमं प्रातर्नरनारीजनैः सह ॥२७५

तत्राऽऽम्रवृक्षच्छायायां वेद्यांसम्पूजयेद्धरिम् ।
चूतपुष्पैः सुगन्धीभिर्माधवीभिश्च यूथिकैः ॥२७६

मरीचिमिश्रं दध्यन्नं मोदकञ्च समर्पयेत् ।
शष्कुल्यादीनि भक्ष्याणि पानकञ्च निवेदयेत् ॥१७७

सकर्पूरञ्च ताम्बूलं पूगीफलसमन्वितम् ।
सर्वमावरणं पूज्यं होमं पश्चात्समाचरेत् ॥२७८

कृत्वेऽग्न्यानादिपर्यन्तं विष्णुसूक्तैश्चरुं यजेत् ।
माधवेनैव मनुना शर्करासंयुतान् तिलान् ॥२७९

सहस्रं जुहुयाद्वह्नौ भक्त्या वैष्णवसत्तमः ।
वैकुण्ठं पार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥२८०

प्रत्यृचं पावमानीभिर्दद्यात् पुष्पाञ्जलिं हरेः ।
अथ दोलां शुभाकारां बद्धारश्मिन् समलङ्कृताम् ॥२८१

वज्रवैदूर्यमाणिक्यमुक्ताविद्रुमभूषिताम् ।
तस्यां निवेश्य देवेशं लक्ष्म्या सार्द्धं प्रपूजयेत् ॥२८२

गन्धैः पुष्पैर्धूपदीपैः फलैर्भक्ष्यैर्निवेदनैः ।
कुसुमाक्षतदूर्वाग्रतिलसर्पिर्मधूदकम् ॥२८३

सर्षपाणि च निक्षिप्य अष्टाङ्गार्घ्यं निवेदयेत् ।
पादेषु चतुरो वेदान् मन्त्राण्योक्तेषु चास्तरे ॥२८४

नागराजञ्च दोलायां पीठे सर्वस्वरैरपि ।
व्यजनैर्वैनतेयञ्च सावित्रीं चामरे तथा ॥२८५

दिनिशामर्चयेद्दिक्षु ऊर्ध्वं ब्रह्म वृहस्पतिः ।
अधस्ताच्चण्डिकां रुद्रं क्षेत्रपालविनायकौ ॥२८६

विताने चन्द्रसूर्यौ च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ।
वेदाश्च सेतिहासांश्च पुराणं देवता गणाः ॥२८७

भूधराः सागराः सर्वे पूजनीयाः समन्ततः ।
एवं सम्पूज्य दोलायां लक्ष्म्या सह जनार्दनम् ॥२८८

दोलयेच्च ततो दोलां चतुर्वेदैश्चतुर्दिनम् ।
सूक्तैश्च ब्रह्मणोऽपत्यैः सामगानैः प्रबन्धकैः ॥२८९

नामभिः कीर्तयन् देवमेव मन्दं प्रदोलयेत् ।
स्त्रियं स्वलङ्कृताः सर्वा गायन्त्यो विभुमच्युतम् ॥२९०

चरितं रघुनाथस्य कृष्णस्य चरितं तथा ।
दोलयेयुर्मुदा भक्त्या दोलायां परमेश्वरम् ॥२९१

दोलाया दर्शनं विष्णोर्महापातकनाशनम् ।
भक्तिप्रसादनं नृणां जन्ममृत्युनिकृन्तनम् ॥२९२

देवाः सर्वे विमानस्था दोलायामर्चितं हरिम् ।
दर्शयन्ति ततः पुण्यं दोलानामोत्सवं हरेः ॥२९३

भक्त्या नीराजनं दद्यात् श्रीसूक्तेनैव वैष्णवः।
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद्दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥२९४
एवं त्रिवासरं कुर्यादुत्सवं वैष्णवोत्तमः।
प्रद्युम्नमेवं कुर्वीत तत्तत्काले तु वैष्णवः ॥२९५
श्रौतेनैव च मार्गेण जपहोमपुरःसरम्।
उत्सवं वासुदेवस्य यथाशक्त्या समाचरेत् ॥२९६
यत्र यत्रोत्सवं विष्णोः कर्त्तुमिच्छति वैष्णवः।
होमं कुर्यात्तत्र मन्त्रै स्तथाविष्णुप्रकाशकैः ॥२९७
अतो देवेतिसूक्तेन तथाविष्णोर्नुकेन च।
परोमात्रेति सूक्ताभ्यां पौरुषेण च वैष्णवः ॥२९८
नारायणानुवाकेन श्रीसूक्तेनापि वैष्णवः।
प्रत्यृचं जुहुयाद्वह्नौ चरुणा पायसेन वा ॥२९९
चतुर्भि वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम्।
आज्यहोमं प्रकुर्वीत गायत्र्या विष्णुसंज्ञया ॥३००
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा शेषं पूर्ववदाचरेत्।
अनादिष्टेषु सर्वेषु कुर्यादेवं विधानतः ॥३०१
ब्राह्मणान् भोजयेद्विप्रान् सर्वं सम्पूर्णतां व्रजेत्।
अथवा मन्त्ररत्नेन सहस्रं प्रतिवासरम् ॥३०२
हुत्वा पुष्पाणि दत्त्वा च शेषं पूर्ववदाचरेत्।
होमं विना न कर्तव्य मुत्सवं परमात्मनः ॥३०३
जपहोमविहीनन्तु न गृह्णाति जनार्दनः।
तस्माच्छ्रौतं प्रवक्ष्यामि विष्णोराराधनं नृप ! ॥३०४

अश्वयुक्कृष्णपक्षे तु सम्यगभ्युदिते रवौ ।
आदर्शात् सप्तरात्रन्तु पूजयेत्प्रभुमव्ययम् ॥३०५
स्नात्वा नद्यां विधानेन कृतकृत्यः समाहितः ।
गृहीत्वा जलकुम्भन्तु वारुणान् प्रवरान् व्रजेत् ॥३०६
पञ्चत्वक्पल्लवान् पुष्पाण्यभिमन्त्र्य विनिक्षिपेत् ।
सौरभेयीं तथा मुद्रां दर्शयित्वा च पूजयेत् ॥३०७
त्रिवारं वैष्णवैर्मन्त्रैः शङ्खेनैवाभिषेचयेत् ।
पूजयित्वा विधानेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥३०८
अपूपान् पायसं शक्तून् कृसरञ्च निवेदयेत् ।
मन्त्रैरष्टोत्तरशतं दत्त्वा पुष्पाणि चक्रिणः ॥३०९
पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत साज्येन चरुणा ततः ।
कस्य वा नेतिसूक्तेन वैष्णवैरपि वैष्णवः ॥३१०
हुत्वा तु मन्त्ररत्नेन घृतमष्टोत्तरं शतम् ।
वैकुण्ठं पार्षदं हुत्वा वैष्णवान् भोजयेत्ततः ॥३११
सकृद्भोजनसंयुक्तः क्षितिशायी भवेन्निशि ।
सायाह्नेऽपि समभ्यर्च्य जातीपुष्पैः सुगन्धिभिः ॥३१२
बहुभिर्दीपदण्डैश्च सेवेरन् पुरवासिनः ।
एवं महोत्सवं कृत्वा धनधान्ययुतो भवेत् ॥३१३
तत्तत्कालोचितं विष्णोरुत्सवं परमात्मनः ।
द्रव्यहीनोऽपि कुर्वीत पत्रपुष्पैः फलादिभिः ॥३१४
समिद्भिर्बिल्वपत्रैर्वा होमं कुर्वीत वैष्णवः ।
सन्तर्पयेच्च विप्रांस्तु कोमलैस्तुलसीदलैः ॥३१५

भक्त्या वै देवदेवेशः परितुष्टो भवेद् ध्रुवम्।
आस्तिक्यः श्रद्धधानश्च वियुक्तमदमत्सरः ॥३१६
पूजयित्वा जगन्नाथं यावज्जीवमतन्द्रितः।
इह भुक्त्वा मनोरम्यान् भोगान् सर्वान् यथेप्सितान् ॥३१७
सुखेन देहमुत्सृज्य जीर्णंत्वच मिवोरगः।
स्थूलसूक्ष्मात्मिकाञ्चेमां विहाय प्रकृतिन्द्रुतम् ॥३१८
सारूप्यमीश्वरस्याऽऽशु गत्वा तु स्वजनैः सह।
दिव्यं विमानमारुह्य वैकुण्ठं नाम भास्करम् ॥३१९
दिव्याप्सरोगणैर्युक्तो दिव्यभूषणभूषितः।
स्तूयमानः सुरगणैर्गीयमानश्च किन्नरैः ॥३२०
ब्रह्मलोकमतिक्रम्य गत्वा ब्रह्माण्डमण्डपम्।
विष्णुचक्रेण वै भित्वा सर्वानावरणान् घनान् ॥३२१
अतीत्य वीरजामाशु सर्ववेदस्रवां नदीम्।
अभ्युद्गच्छद्भिरव्यग्रैः पूज्यमानः सुरोत्तमैः ॥३२२
सम्प्राप्य परमं धाम योगिगम्यं सनातनम्।
यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं हरेः ॥३२३
तद्विष्णोः परमं धाम सदा पश्यन्ति योगिनः।
शीतांशुकोटिसङ्काशैः सर्वैश्च भवनैर्युतम् ॥३२४
आरूढयौवनैर्दिव्यैः पुंभिः स्त्रीभिश्च सङ्कुलम्।
सर्वलक्षणसम्पन्नैर्दिव्यभूषणभूषितैः ॥३२५
अक्षरं परमं व्योम यस्मिन्देवा अधिष्ठिताः।
इरावती धेनुमती व्यस्तभ्नासूयवासिनी ॥३२६

यत्र गावो भूरिशृङ्गाः साऽयोध्या देवपूजिता।
अनन्तव्यूहलोकैश्च तथा तुल्यशुभावहैः॥३२७

सर्ववेदमयं तत्र मण्डपं सुमनोहरम्।
सहस्रस्थूणसदसि ध्रुवे रम्योत्तरे शुभे॥३२८

तस्मिन् मनोरमे पीठे धर्माद्यैः सूरिभिर्वृते।
सहाऽऽसीनं कमलया दृष्ट्वा देवं सनातनम्॥३२९

स्तुतिभिः पुष्कलाभिश्च प्रणम्य च पुनः पुनः।
प्रहर्षपुलको भूत्वा तेन चाऽऽलिङ्गितः क्रमात्॥३३०

पूजितः सकलैर्भोगैः श्रिया चापि प्रपूजितः।
अनन्तविहगेशाद्यैरर्चितः सर्वदैवतैः॥३३१

तेषामन्यतमो भूत्वा मोदते तत्र देववत्।
एषु केषु च लोकेषु तिष्ठते कमलापतिः॥३३२

तेषु तेष्वपि देवस्य नित्यदासो भवेत्सदा।
दासवत्पुत्रवत्तस्य मित्रवद् बन्धुवत् सदा॥३३३

अश्नुते सकलान् कामान् सह तेन विपश्चिता।
इमान् लोकान् कामभोगः कामरूप्यनुसञ्चरन्॥३३४

सर्वदा दूरविध्वस्तदुःखावेशलवांशकः।
गुणानुभवजप्रीत्या कुर्याद्दानमशेषतः॥३३५

इवमेव परं मोक्षं विदुः परमयोगिनः।
काङ्क्षन्ति परमं दासा मुक्तमेकं महर्षयः॥३३६

हरेर्दास्यैकपरमां भक्तिमालम्ब्य मानवः।
इहैव मुक्तो राजर्षे! सर्वकर्मनिबन्धनः॥३३७

इति वृद्धहारीतस्मृतौ विशिष्टपरमधर्मशास्त्रे नानाविधोत्सवविधानं नाम सप्तमोऽध्यायः।

॥ अष्टमोऽध्यायः ॥

अथ विष्णुपूजाविधिवर्णनम् ।

हारीत उवाच ।

अथ वक्ष्यामि राजेन्द्र ! विष्णुपूजाविधिं परम् ॥१
श्रौतं महर्षिभिः प्रोक्तं वशिष्ठाद्यैः पुरातनैः ।
वैखानसैश्च भृग्वाद्यैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ॥२
वैष्णवै वैंदिकैः पूर्वैर्यद्यदाचरितं पुरा ।
तत्ते वक्ष्यामि राजेन्द्र ! महाप्रियतमं हरेः ॥३
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय सम्यगाचम्य वारिणा ।
ध्यात्वा हृत्पङ्कजे विष्णुं पूजयेन्मनसैव तु ॥४
तं प्रत्नवेति सूक्तेन बोधयेत्कमलापतिम् ।
वनस्पतेति सूक्तेन तूर्यघोषं निनादयेत् ॥५
कुर्यात्प्रदक्षिणं विष्णोरतोदेवेत्यनेन तु ।
तद्विष्णोरिति मन्त्राभ्यान्त्रिः प्रणम्याऽऽचरेत्ततः ॥६
कृतशौचस्तथाऽऽचान्तो दन्तधावनपूर्वकम् ।
स्नानं कुर्याद्विधानेन धात्रीश्रीतुलसीयुतम् ॥७
नारायणानुवाकेन कृत्वा तत्राघमर्षणम् ।
कृतकृत्यः शुचिर्भूत्वा तर्पयित्वा च पूर्ववत् ॥८
धृतोर्ध्वपुण्ड्रदेहश्च पवित्रकर एव च ।
प्रविश्य मन्दिरं विष्णोः संमार्जन्या विशोधयेत् ॥९

वास्तोष्पतेति वै सूक्तं जपन् संमार्जयेद् गृहम् ।
आगाव इति सूक्तेन गोमयेनानुलेपयेत् ।
आनोभद्रेति सूक्तेन रङ्गवल्लिंश्च निक्षिपेत् ॥१०
ततः कलशमादाय जपन्वै शाकुनीर्ऋचः ।
गत्वा जलाशयं रम्यं निर्मलं शुचि पाण्डुरम् ॥११
इमं मे गङ्गेति ऋचा जलं भक्त्याऽभिमन्त्रयेत् ।
आपो अस्मानिति ऋचा कलशं क्षालयेद् द्विजः ॥१२
समुद्र ज्येष्ठमन्त्रेण गृह्णीयात्प्रयतो जलम् ।
उतस्मैनं वस्तुभिरिति वस्त्रेणाऽऽच्छाद्य वैष्णवः ॥१३
प्रसम्राजेति सूक्तं वै जपन् सम्प्रविशेद् गृहम् ।
धान्योपरि तथा कुम्भं न्यसेद्दक्षिणतो हरेः ॥१४
इमं मे वरुणेत्यृचा मङ्गलद्रव्यसंयुतम् ।
अञ्जन्ति (मित्र)स्येति सूक्तेन कुर्य्यात्पुष्पस्य सञ्चयम् ॥१५
अर्व्वाञ्चि सुभगे द्वाभ्यां गन्धांश्च पेषयेत्तथा ।
वाग्यतः प्रयतो भूत्वा श्रीसूक्तेनैव वैष्णवः ।
विश्वानि न इति ऋचा दीपं दद्यात्सुदीपितम् ॥१६
तत्तत्पात्रेषु सलिलं दत्त्वा गन्धांस्तु निक्षिपेत् ।
शन्नो देव्या च सलिलं गायत्र्या च कुशांस्तथा ॥१७
आयनेति च पुष्पाणि यवोऽसीति ऋचाऽक्षतान् ।
गन्धद्वारेति वै गन्धा नौषध्या तिलसर्षपान् ॥१८
काण्डात्काण्डेति दूर्वाग्रान् सहिरण्येति रत्नकम् ।
हिरण्यरूपेति ऋचा हिरण्यं निक्षिपेत्तथा ॥१९

एवं द्रव्याणि निक्षिप्य तुलस्या च समर्पयेत् ।
सवितुश्चेत्यादि ऋचा दद्यादर्घ्योदकं हरेः ॥२०
श्रियेति पादेति ऋचा दद्यात् पादजलं तथा ।
भद्रन्ते हस्तेत्यनेन हस्तप्रक्षालनं चरेत् ॥२१
वयः सुपर्णेति ऋचा मुखसम्मार्जनं तथा ।
आपो अस्मानिति ऋचा वक्त्रगण्डूषमेव च ॥२२
हिरण्यदन्तेत्यनेन दन्तकाष्ठं निवेदयेत् ।
वृहस्पते प्रथमेति जिह्वालेखनमेव च ॥२३
आपयित्वा उ भेषजीरिति गण्डूषमाचरेत् ।
आपो हि ष्ठा इत्यनेन कुर्य्यादाचमनीयकम् ॥२४
मूर्धामव इत्यनेन तैलाभ्यङ्गं समाचरेत् ।
मूर्धानन्दीव इत्यनेन गन्धान् केशेषु लेपयेत् ॥
तद्धियस्तस्थौ केशवन्ते केशान् वै क्षालयेत्पुनः ।
श्रिये पृश्न(इ)ति ऋचा तद्वचोद्वर्तनादिकम् ॥२६
आपोयम्बः प्रथममिति सूक्तेनाभ्यङ्गसूचनम् ।
कृत्वाऽदः स्नापयेत्सूक्त वैष्णवैर्गन्धवारिणा ॥२७
ततः पञ्चामृतैर्गव्यैः स्नापयेत्तत्प्रकाशकैः ।
आप्यायस्वेत्यृचा क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ॥२८
घृतमामिक्षेति घृतं मधुवातेति वै मधु ।
तत्ते वयं यथा गोभिरित्यृचेक्षुरसं शुभम् ॥२९
एभिः पञ्चामृतैः स्नाप्य चन्दनञ्च निवेदयेत् ।
श्रीसूक्तपुरुषसूक्ताभ्यां पुनः संस्थापयेद्धरिम् ॥३०

वनस्पतेति सूक्तेन कुर्य्याद् घोषसमन्वितम्।
श्रिये जात इति ऋचा दद्यान्नीराजनं ततः ॥३१
युवा सुवासेति ऋचा वस्त्रेणाङ्गं प्रमार्जयेत्।
प्रसेनानेति मन्त्रेण वस्त्रं सम्वेष्टयेत्ततः ॥३२
युवं वस्त्राणीति ऋचा उत्तरीयं तथैव च।
सर्वत्राऽऽचमनं दद्याच्छन्नो देवीत्यृचा च तु ॥३३
उपवीतं ततो दद्याद् ब्राह्मणानिति वै ऋचा।
ऋतस्य तन्तुवितते दद्यात्कुशपवित्रकम् ॥३४
पश्चादाचमनं दद्याद् भूषणैर्भूषयेद्धरिम्।
विश्वजित्सूक्तेन दद्याद् भूषणानि शुभानि वै ॥३५
हिरण्यकेशेति ऋचा केशान् संशोषयेत्तथा।
सुपुष्पैः कवरीं दद्याद्विहिसोतेत्यनेन वै ॥३६
कृपायमिन्द्र ते रथ इत्यृचा तिलकं शुभम्।
गन्धश्च लेपयेद् गात्रे गन्धद्वारेति वै ऋचा ॥३७
त्रातारमिन्द्र इत्यृचा पुष्पमालां समर्पयेत्।
चक्षुषः पितेति ऋचा चक्षुषो रञ्जनं शुभम् ॥३८
सहस्रशीर्षेति ऋचा किरीटं शिरसि क्षिपेत्।
ऋक्सामाभ्यामिति श्रोत्रे कुण्डले मा करेऽर्पयेत् ॥३६
दमूनसौ अपस इति केयूरादिविभूषणम्।
आश्वेते यस्येति ऋचा हाराणि विमलानि च ॥४०
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्या मित्यृचा चाङ्गुलीयकम्।
अस्य त्रिपूर्णमधुना सूर्य्याके विन्यसेच्छुभे ॥४१

इद्गन्त्वदुत्तर इति कटिसूत्रं सुरोचिषम् ।
स्वस्तिदा विशस्पतिरित्यायुधानि समर्पयेत् ॥४२

द्यौर्नय इन्द्रेति दद्याच्छत्रं सुविमलं तथा ।
सोमः पवर्ततेत्यृचा चामरं हैममुत्तमम् ॥४३

सोमापूषणेत्यृचा तालवृन्तौ सुवर्चसौ ।
रूपं रूपमिति ऋृचा दद्यादादर्शनं शुभम् ॥४४

इन्द्रमेव धीषणेति ऋृचा ऽऽसने विनिवेशयेत् ।
इहैवास्तमेति ऋृचा दद्याच्च कुशविष्टरम् ॥४५

आपूस्वन्तरिति ऋृचा पाद्यं दद्याच्च भक्तितः ।
गौरीमिमाय सूक्तेन अर्घ्यं हस्ते निवेदयेत् ॥४६

नतमंहो न दुरितमित्याचमनं समर्पयेत् ।
पिवासोममसित्यनेन मधुपर्कञ्च प्राशयेत् ॥४७

अपूस्वग्ने सधिष्टवेति पुनराचमनं चरेत् ।
अर्चन्तस्त्वाहवामहेत्यक्षतैरर्चयेच्छुभैः ॥४८

तण्डुलाः सहरिद्रास्तु अक्षता इति कीर्तिताः ।
विष्णोर्नुकमिति सूक्तेन धूपं दद्याद् घृतान्वितम् ॥४९

भावामितेति सूक्तेन दीपान्नीराजयेच्छुभान् ।
इदन्ते पात्रमिति(च)भाजनं विन्यसेच्छुभम् ॥५०

तस्मा अरङ्गमामवेति पात्रप्रक्षालनं चरेत् ।
अस्मिन् पदे पर(मेतच्छिवांस)मिति गवाज्येनाभिपूरयेत् ।
पितुं नुस्तोषमिति सूक्तेन दद्यादन्नादिकं हविः ॥५१

तदस्यानिकमिति ऋचा सहिरण्यं घृतं तथा।
तस्मिन् रायवतय इति दद्यादापोशने घृतम् ॥५२
ततः प्राणाद्याहुतयो होतव्याः परमात्मनि।
अग्ने विवस्वदुषस इति पञ्चभिश्च यथाक्रमम् ॥५३
समुद्रा दूर्मीति सूक्तेन घृतधाराः समाचरेत्।
परोमात्रेति सूक्तेन भोजयेत्सश्रियं हरिम् ॥५४
तुभ्यं हिन्वान इत्यनेन वयः सर्वं निवेदयेत्।
इन्द्र पीवेत्यनेन दद्यादापोशनं पुनः ॥५५
प्रत आश्विनि पवमानेत्यृचा हस्तप्रक्षालनं चरेत्।
सरस्वतीं देवयन्त इति (तिसृभि)र्गण्डूषमेव च ॥५६
वृष्टिं दिवीशः तद्वारेति (द्वाभ्यां) दद्यादाचमनं ततः।
शिशुं जिज्ञाग्निनमिति ऋचा मुखहस्तौ च मार्जयेत् ॥५७
दक्षिणावतामिति ऋचा दद्यात्ताम्बूलमुत्तमम्।
स्वादुः पवस्वेति ऋचा दद्यादाचमनं पुनः।
आज्यं गौरिति सूक्ताभ्यां दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥५८
दीपश्रीराजयेत्पश्चाद् घृतसूक्तेन वैष्णवः।
यत इन्द्रेत्यादि षड्भिर्दिक्षु रक्षां प्रदापयेत् ॥५९
यज्ञा देवानामिति सूक्तेन उपस्थानजपं चरेत्।
तद्विष्णोरिति (च)द्वाभ्यां प्रणमेच्चैव भक्तितः ॥६०
गौरीमिमायेति ऋचा दद्यादाचमनन्ततः।
सहस्रनामभिः स्तुत्वा पश्चाद्धोमं समाचरेत् ॥६१
प्रातरौपासनं हुत्वा तस्मिन्नग्नौ जनार्दनम्।
ध्यात्वा संपूज्य जुहुयाद्वैष्णवैः प्रत्यृचं हविः ॥६२

श्रीभूसूक्ताभ्यामपि च हुत्वा घृतयुतं हविः ।
याभिः सोमो मोदतेत्यनेन मातृभ्यां जुहुयाद्धविः ॥६३

किंस्विद्वनमित्या(तिसृचाअ)न्नन्तं जुहुयाद्धविः ।
सुपर्णं विप्रा इति ऋचा सुपर्णाय महात्मने ॥६४

चमूष च्छ्येन इति च सेनेशायापि हूयताम् ।
पवित्रन्त इति द्वाभ्याञ्चक्रायामिततेजसे ॥६५

स्वादुषं स इति ऋचा हेतिभ्यो जुहुयाद्धविः ।
इन्द्रश्रेष्ठानितीन्द्राय अग्निमूर्धेति पावकम् ॥६६

यमाय सोमेति यमन्नैर्ऋतं मोषुणेत्यृचा ।
यच्चिद्धितेति वरुणं वायवायाहीति मारुतम् ।
द्रविणोदा ददातु नाद्रविणाद्याशमेव च ॥६७

त्र्यम्बकमृ(कमित्यृ)चा रुद्र मानः प्रजां प्रजापतिम् ।
यज्ञेनेत्यृचा साध्येभ्यो मरुतो यद्धवेति च ॥६८

योनः सपत्नेति ऋचा वसुरुद्रेभ्य एव च ।
विश्वेदेवाः स च (वाश्च)तसृभिर्ये देवा स ऋचा तथा ॥६९
सर्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो जुहुयादन्नमुत्तमम् ।
नासत्याभ्यामिति ऋचा अश्विच्छन्दोभ्य एव च ॥७०
सोम(मा)पूषे(षणे)ति ऋचा सूर्य्याचन्द्रमसोस्तथा ।
संसमिद्युद(व)सूक्तेन वैष्णवेभ्यस्तथापुनः ॥७१
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा भुक्तेभ्यश्च बलिं क्षिपेत् ।
नमो महद्भ्य ऋ(इत्यृ)चा बलिं भुवि विनिक्षिपेत् ॥७२

आचम्य वारिणा पश्चान्मन्त्रयागं समाचरेत् ।
एतच्छ्रौतं नृपश्रेष्ठ ! मुनिभिः सम्प्रकीर्तितम् ॥७३

सम्यगुक्तं मया तेऽद्य निश्चितं मतमुत्तमम् ।
एतत्प्रियतमं विष्णोः स्रि(श्रि)यो नाथस्य सर्वदा ॥७४

श्रौतेनैव हरिं देवमर्चयन्ति मनीषिणः ।
श्रौतस्मार्त्तागमैर्विष्णो स्त्रिविधं पूजनं स्मृतम् ॥७५

एतच्छ्रौतं ततः स्मार्त्तं पौरुषेण च यत् स्मृतम् ।
मन्त्रैरष्टाक्षराद्यैस्तु तद्दिव्यागममुच्यते ॥७६

श्रौतमेव विशिष्टं स्यात्तेषां नृपवरोत्तम ॥
श्रौतमेव तथा विप्राः प्रकुर्वन्ति जनार्दने ॥७७

यजन्ति केचित्त्रितयन्त्रिसन्ध्यासु च देशिकाः ।
यजन्ति केचित्त्रितयन्त्रयो वर्णा द्विजोत्तमाः ॥७८

शुश्रूषा च तथा नामकीर्तनं शूद्रजन्मनः ।
अपि वा परमेकान्ति बालकृष्णवपुर्हरिम् ॥७९

स्त्रीणामप्यर्चनीयः स्यात्स्ववर्णस्याऽऽनुरूपतः ।
मन्त्ररत्नेन वै पूज्यो हित्वा श्रौतं विधानतः ॥८०

एवमभ्यर्च्चनं विष्णोर्मुनिभिः सम्प्रकीर्तितम् ।
श्रौतस्मार्तागमोक्ताश्च नित्यनैमित्तिकाः क्रियाः ॥८१

प्रायश्चित्तमकृत्यानां दण्डमप्याततायिनाम् ।
अधुना सम्प्रवक्ष्यामि वृत्तिमैकान्तिलक्षणाम् ॥८२

नारीणामपि कर्तव्या अहन्यहनि शाश्वतीम् ।
उत्थाय पश्चिमे यामे भर्त्तुः पूर्वमतन्द्रिताः ॥८३

कृत्वा शौचं विधानेन दन्तधावनमाचरेत्।
कृत्वाऽथ मङ्गलस्नानं धृत्वा शुक्लाम्बरं तथा ॥८४
आचम्य धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रं शुभ्रं मृदैव तु।
चन्दनेनापि कस्तूर्य्याः कुङ्कुमेनापि वाऽसति ॥८५
जप्त्वा मन्त्रं गुरुं पश्चादभिनन्द्य च वैष्णवान्।
नमस्कृत्वा जगन्नाथं जप्त्वा च शरणागतिम् ॥८६
आत्मानं समलङ्कृत्य चिन्तयेन्मधुसूदनम्।
गृहभाण्डादिकं सर्वं वाग्यता नियतेन्द्रियाः ॥८७
संशोधयेत्प्रतिदिनं यज्ञार्थं परमात्मनः।
मार्जयित्वा गृहं पश्चाद् गोमयेनानुलिप्य च ॥८८
रङ्गवल्ल्यादिभिः पश्चादलङ्कृत्य समन्वतः।
चतुर्विधानां भाण्डानां क्षालनन्तु समाचरेत् ॥८६
पाचकानि बहिष्ठानि जलस्याऽऽनयनानि च।
स्थापनानि जलार्थं वा चतुर्विध मुदाहृतम् ॥६०
पृथक् पृथगुदञ्चानि तेषु तेष्वपि विन्यसेत्।
नान्योन्यं सङ्करं कुर्याद्भाण्डानां सर्वकर्मसु ॥६१
तानि तानि स्पृशेत्पाणिं प्रक्षाल्यैव पुनः पुनः।
सम्यक् प्रक्षाल्य भाण्डानि दाहयेद्यज्ञियैस्तृणैः ॥६२
पुनः प्रक्षाल्य सन्तप्त्वा पश्चात्पचनमाचरेत्।
रसभाण्डानि सर्व्वाणि क्षालयेदुष्णवारिणा ॥६३
चतुर्भिः पञ्चभिर्ध्यात्वा स्रुक्स्रुवौ क्षालयेत्तदा।
वहिर्न निष्क्रामयीत पाचकानि गृहान्तिकात् ॥६४

ताभिरेव तु दद्यात्तु भुञ्जीत हि कथञ्चन ।
दत्त्वा पात्रान्तरे दद्यात्कांस्येवा मृण्मयेऽपि वा ॥९५

पुटे पर्णमये वाऽपि दद्यादत्र तु वैष्णवे ।
स्रुवं दारुमयं कांस्यं कुर्वीतायोमयं न तु ॥९६

न दद्यादारनालस्य घटं तस्मिन् महावने ।
आरनालस्य यत् कुम्भन्त्यजेन्मद्यघटं यथा ॥९७

आरनालङ्कारशाकं करञ्जं तिलपिष्टकम् ।
लशुनं मूलकं शिग्रुं छत्रां (त्रं) कोशातकीफलम् ।
अलाबुञ्चान्त्रं शाकञ्च करनिर्मथितं दधि ॥९८
विम्बं बिड्जञ्च निर्यासं पीलुं श्लेष्मातकं फलम् ।
आरग्वधञ्च निर्गुण्डीं कालिङ्गन्नालिकां तथा ॥९९
नालिकेर्याख्यशाकञ्च श्वेतवृन्ताकमेव च ।
उष्ट्राविमानुषीक्षीरमवत्सानिर्दशाहगोः ॥१००
एतान्यकामतः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ।
मत्या जग्ध्वा व्रतं कुर्यान्मुर्जं जग्ध्वा पतेदधः ॥१०१
केशानां रञ्जनार्थं वा न स्पृशेदारनालकम् ।
चन्दनं घनसारं वा मकरन्दमथापि वा ॥१०२
माषमुद्गादिचूर्णं वा तक्रं जाम्वीरमेव वा ।
तिन्तिड्ञ्च कलायं वा केशरञ्जनमाचरेत् ॥१०३
ऊर्ध्वं मासात्त्यजेत्सर्वं मृद्भाण्डं वैष्णवोत्तमः ।
न त्यजेल्लोहभाण्डानि तापयेच्च हुताशने ॥१०४

दारूणां सन्त्यजेद्वाऽपि तक्षणं वा समाचरेत् ।
अश्मनामश्मभिर्घृत्वा गोबालैर्घर्षयेत्तथा ॥१०५

सूतके मृतके वाऽपि शुनादिस्पर्शने तथा ।
स्पर्शने वाऽप्यभक्ष्याणां सद्य एव परित्यजेत् ।
एवं संशोध्य भाण्डानि यज्ञार्थं याचयेद्धविः ॥१०६

सम्प्रोक्ष्याद्भिः शुचौ देशे धान्यं संशोधयेद् बुधः ।
अवहन्याच्छुभतरं गायन्ति मधुसूदनम् ॥१०७

संशोध्य तण्डुलान् पश्चादद्भिः संक्षालयेत्त्रिभिः ।
अम्भस्त्रिवारं वस्त्रेण शोधयित्वा घटान्तरे ॥१०८

कुशेनैव पवित्रेण तण्डुलान् निर्वपेच्छुभान् ।
अन्तर्धाय कुशं तत्र मन्त्ररत्न मनुस्मरन् ॥१०९

पाचयेत्सपवित्रेण वाग्यतो नियतेन्द्रियः ।
उपविश्य शुभे कुण्डे वह्निं प्रज्वालयेत्ततः ॥११०

अवैष्णवस्य शूद्रस्य पतितस्य तथैव च ।
पाषण्डस्याप्यशुद्धस्य गृहेष्वग्निं विवर्जयेत् ॥१११

सम्प्रोक्ष्य मन्त्ररत्नेन वह्निं कुशजलैस्त्रिभिः ।
यज्ञियैर्विमलैः काष्ठैर्व्यजनेन प्रदीपयेत् ॥११२

सान्तर्धानमुखेनापि धमयित्वा प्रदीपयेत् ।
पालाशैर्खादिरैर्बिल्वैर्गोशकृत्पिटकैरपि ॥११३

अन्यैर्वा यज्ञियैः काष्ठैस्तृणैर्वा यज्ञियैः शुभैः ।
वर्जयेन्मद्यदिग्धानि तथा वैभीतकानि च ॥११४

आरग्वधानि शिग्रूणि तथा नैर्गुण्डिकानि च।
नैपानि च कपित्थानि कार्पासैरण्डकानि च ॥११५

अमेध्यानि सकीटानि दौर्गन्धानि तथैव च।
असद्ग्राह्यानि चैत्यानि काकखट्वासनानि च ॥११६

देवालयानि यौप्यानि तथोपकरणानि च।
महिषोष्ट्रखरादीनां कारीषपीठकानि च ॥११७

अन्यानां पाकशेषाणि वर्जयेद्यज्ञकर्म्मणि।
प्रदीप्याग्निं ततोऽन्नाद्यं पच्यान्नियतमानसः ॥११८

चिन्तयन् परमात्मानं जपन्मन्त्रद्वयं तथा।
शुद्धं हृद्यं तथा रुच्यं पश्चादभ्यन्तरं शुभम् ॥११९

निषिद्धानि च शाकानि फलमूलानि वर्जयेत्।
अतिरूक्षञ्चातिदुष्टमतिरक्तञ्च वर्जयेत् ॥१२०

भावदुष्टं क्रियादुष्टं कालदुष्टं तथैव च।
संसर्गदुष्टमपि च वर्जयेद्यज्ञकर्म्मणि ॥१२१

रूपतो गन्धतो वाऽपि यच्चाभक्ष्यैः समम्भवेत्।
भावदुष्टञ्च यत्प्रोक्तं मुनिभिर्धर्म्मपारगैः ॥१२२

आरनालञ्च मद्यञ्च करनिर्म्मथितं दधि।
हस्तदत्तञ्च लवणं क्षीरं घृतपयांसि च ॥१२३

हस्तेनोद्धृत्य यत्तोयं पीतं वक्त्रेण बकदा।
शब्देन पीतं भुक्तञ्च गव्यं ताम्रेण संयुतम् ॥१२४

क्षीरञ्च लवणोन्मिश्रं क्रियादुष्टमिहोच्यते।
एकादश्यां तु यच्चान्नं यच्चान्नं राहुदर्शने।
सूतके मृतके चान्नं शुष्कं पर्युषितं तथा ॥१२५

अनिर्दशाहगोःक्षीरं षष्ठ्यां तैलं तथाऽपि च।
नदीष्वसमुद्रगासु सिंहकर्कटयोर्जलम् ॥१२६

निःशेषजलवाप्यादौ यत्प्रविष्टं नवोदकम्।
नातीतपञ्चरात्रं तत्कालदुष्टमिहोच्यते ॥१२७

शैवपाषण्ड पतितैर्विकर्मस्थैर्निरीश्वरैः।
अवैष्णवैर्द्विजैः शूद्रैर्हरिवासरभोक्तृभिः ॥१२८

श्वकाकसूकरोष्ट्राद्यैरुदक्यासूतिकादिभिः।
पुंश्चलीभिश्च नारीभिर्वृषलीपतिभिस्तथा ॥१२६

दृष्टं स्पृष्टं च दत्तं च भुक्तशेषं तथैव च।
अभक्ष्याणां च संयुक्तं संसर्ग दुष्ट मुच्यते ॥१३०

विम्बं शिग्रु च कालिङ्गं तिलपिष्टञ्च मूलकम्।
कोशातकीमलाबुञ्च तथा कटूफलमेव च ॥१३१

शा(बाली)लिका ना(रि) लिकेत्यादिजातिदुष्टमिहोच्यते।
एवं सर्वाण्यभक्ष्याणि तत्सङ्गान्यपि संत्यजेत् ॥१३२

तथैवाभक्ष्यभोक्तृणां हरिवासरभोजिनाम्।
लोकायतिकविप्राणां देवतान्तरसेविनाम् ॥१३३
अवैष्णवानामपि च संसर्गं दूरतस्त्यजेत् ॥१३४

पक्वान्नाद्यं यथा पक्वं वाग्यतो नियतेन्द्रियः।
सम्मार्जयेच्छुभतरं वारिणा वाससैव च ॥१३५
करकैरपिधायाथ चक्रेणैवाङ्कयेत्ततः।
गन्धेन वा हरिद्रेण जलेनाप्यथ वा लिखेत् ॥१३६

सुदर्शनं पाञ्चजन्यं भाण्डानां यज्ञयोगिनाम् ।
कुशोत्तरे शुचौ देशे विन्यस्य कुशवारिणा ॥१३७
संप्रोक्ष्य मन्त्ररत्नेन वस्त्रेणाऽऽच्छादयेत्ततः ।
क्षालयित्वाऽथ देवस्य भाजनानि शुभैर्जलैः ॥३३८
अभिपूर्य ततो दद्याद्भोजयेच्च विशेषतः ।
भोजयेदागतान् काले सखिसम्बन्धिबान्धवान् ॥१३९
बालान् वृद्धान् भोजयित्वा भर्तारं भोजयेत्ततः ।
स्वयं दृष्ट्वा ततोऽश्नीयाद्भर्तुर्भुक्तावशेषितम् ॥१४०
पशाचिकानां यक्षाणां शक्तानां लिङ्गधारिणाम् ।
द्वादशीविमुखानां च संलापादि विवर्जयेत् ॥१४१
शैवबौद्धस्कान्दशाक्तस्थानानि न विशेत् क्वचित् ।
वर्जयेत्तत्समीपस्थं जलपुष्पफलादि च ॥१४२
न निरीक्षेत देवानामुत्सवादि कदाचन ।
स्तुतिं वाऽप्यन्यदेवानां न कुर्याच्छृणुयान्न च ॥१४३
कामप्रसङ्गसंलापान् परिहासादि वर्जयेत् ।
अन्यचिह्नाङ्कितं वस्त्रं भूषणासनभाजनम् ॥१४४
वृक्षं पशुं कूपगृहान् भाण्डं चैव विवर्जयेत् ।
अन्यालये हरिं दृष्ट्वा देवतान्तरसंसदि ॥१४५
नार्चयेन्नप्रणमेच्च तीर्थसेवां विवर्जयेत् ।
अवैष्णवस्य हस्तात्तु दिव्यदेशादुपागतम् ॥१४६
हरेः प्रसादतीर्थाद्यं यत्नेन परिवर्जयेत् ।
आकारत्रयसम्पन्नो नवेज्याकर्म्मणि स्थितः ॥१४७

विष्णोरनन्यशेषत्वं तथैवानन्यसाधनम् ।
तथैवानन्यभोग्यत्वमाकारत्रयमुच्यते ॥
अर्चनं मन्त्रपठनं ध्यानं होमश्च वन्दनम् ।
स्तुतिर्योगः समाधिश्च तथा मन्त्रार्थचिन्तनम् ॥१४९
एवं नवविधा प्रोक्ता चेज्या वैष्णवसत्तमैः ।
प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्युश्च प्रत्यगात्मनः ॥१५०
प्राप्त्युपायं फलञ्चैव तथा प्राप्तिविरोधि च ।
ज्ञातव्यमेतदर्थस्य पञ्चकं मन्त्रवित्तमैः ॥१५१
जगतः करणत्वं च तथा स्वामित्वमेव च ।
श्रीशत्वं सगुरुत्वञ्च ब्रह्मणो रूपमुच्यते ॥१५२
देहेन्द्रियादिभ्योऽन्यत्वं नित्यत्वादिगुणौघता ।
श्रीहरेर्दास्य धर्मत्वं स्वरूपं प्रत्यगात्मनः ॥१५३
उपायाध्यवसायेन त्यक्त्वा कर्मौघमात्मनः ।
हरेः कृपावलम्बित्वं प्राप्त्युपायमिहोच्यते ॥१५४
सर्वैश्वर्यफलं त्यक्त्वा शब्दादिविषयानपि ।
दास्यैकसुखसङ्गित्वं विष्णोः फलमिहोच्यते ॥१५५
तज्जनस्यापराधित्वं शब्दादिष्वनुरक्तता ।
कृत्यस्य च परित्यागो ह्यकृत्यकरणं तथा ॥१५६
द्वादशीविमुखत्वं च विरोधि स्यात् फलस्य हि ।
अर्थपञ्चकमेतद्धि ज्ञातव्यं स्यान्मुमुक्षुभिः ॥१५७
विहितं सकलं कर्म विष्णोराराधनं परम् ।
निबोध तन्नृपश्रेष्ठ ! भोगार्थं परमात्मनः ॥१५८

वृत्त्याख्यस्य तरोरस्य सुदृढं मूलमुच्यते।
त्यागेन चैव धर्मस्य निषिद्धाचरणेन च ॥१५९
आज्ञातिक्रमणाद्विज्ञः पतत्येव न संशयः।
ज्योतिष्टोमादयः सर्वे यज्ञा वेदेषु कीर्तिताः ॥१६०
पुण्यव्रताः पुराणोक्ता दाना नैमित्तिकादिषु।
विष्णोर्भोगतया सर्वाः कर्तव्या वैष्वणोत्तमैः ॥१६१
यस्तूपायतया कृत्यं नित्यनैमित्तिकादिकम्।
सत्कृत्यं कुरुते विष्णोर्वैष्णवः स उदीरितः ॥१६२
विष्णो रञ्जतया यस्तु सत्कृत्यं कुरुते बुधः।
स एकान्तीति मुनिभिः प्रोच्यते वैष्णवोत्तमः ॥१६३
यस्तु भोगतया विष्णोः सत्कृत्यं कुरुते सदा।
स भवेत्परमैकान्ती महाभागवतोत्तमः ॥१६४
वर्जनीयमकृत्यन्तु सर्वेषां करणै स्त्रिभिः।
अकामतस्तु यत्प्राप्तं प्रायश्चित्ताद्विनश्यति ॥१६५
अकृत्यं वैष्णवैः पापबुध्या शास्त्रविरोधितः।
एकान्त परमैकान्ति रुच्यभावाच्च सन्त्यजेत् ॥१६६
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं यस्त्यजेद्वैष्णवाधमः।
स पाषण्डीति विज्ञेयः सर्वलोकेषु गर्हितः ॥१६७
अकृत्यकरणाद्वाऽपि कृत्यस्याकरणादपि।
द्वादशीविमुखत्वेन पतत्येव न संशयः ॥१६८
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्कृत्यं सर्वदा चरेत्।
आज्ञातिक्रमणाद्विष्णो मुक्तोऽपि विनिबध्यते ॥१६९

समस्तयज्ञभोक्तारं ज्ञात्वा विष्णुं सनातनम्।
दैवं पैत्रं तथा यज्ञं कुर्यान्नतु परित्यजेत्॥१७०
त्रिदण्डमवलम्बन्ते यतयो ये महाधियः।
तेषामपि हि कर्तव्यं सत्कृत्यमितरेषु किम्॥१७१
ब्रह्म ब्रह्मा ब्राह्मणाश्च त्रितयं ब्राह्ममुच्यते।
तस्माद् ब्राह्मेणविधिना परं ब्रह्माणमर्चयेत्॥१७२
समस्तयज्ञभोक्तारमज्ञात्वा विष्णुमव्ययम्।
वेदोदितं यः कुरुते स लोकायतिकः स्मृतः॥१७३
यस्तु वेदोदितं धर्मन्त्यक्त्वा विष्णुं समर्चयेत्।
स पाषण्डत्वमापन्नो नरकं प्रतिपद्यते॥१७४
वेदाः प्राणा भगवतो वासुदेवस्य सर्वदा।
तदुक्तकर्माकुर्वाणः प्राणहर्ता भवेद्धरेः॥१७५
विष्णोराराधनाद्वेदं विना यस्त्वन्यकर्मणि।
प्रयुञ्जीत विमूढात्मा वेदहन्ता न संशयः॥१७६
वत्सं माता लेढि यथा तथा लेढि स मातरम्।
श्रुतं विष्णोः प्रियं ज्ञात्वा विष्णुं वेदेन वै यजेत्॥१७७
तस्माद्वेदस्य विष्णोश्च संयोगो यस्तु दृश्यते।
स एव परमो धर्मो वैष्णवानां यथा नृप!॥१७८
कश्चित् पुरा नृपश्रेष्ठ! काश्यपो ब्राह्मणोत्तमः।
शाण्डिल्य इति विख्यातः सर्वशास्त्रविशारदः॥१७९
स तु धर्मप्रसङ्गेन विष्णोराराधनं प्रति।
अवैदिकेन विधिना कृतवान् धर्मसंहिताम्॥१८०

अवलम्ब्य मतं तस्य केचिदत्र महर्षयः।
अवैदिकेन मार्गेण पूजयन्ति स्म केशवम् ॥१८१

अशास्त्रविहितं धर्मं सर्वे कुर्वन्ति मानवाः।
स्वाहास्वधावषट्कारवर्जितं स्यान्महीतलम् ॥१८२

ततः क्रुद्धो जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः।
इदमाह मुनिश्रेष्ठं शाण्डिल्यममितौजसम् ॥१८३

दुर्बुद्धे ! मामकं धर्मं परमं वैदिकं महत्।
अवैदिकक्रियाजुष्टं प्राग्लभ्यात् कृतवानसि ॥१८४

यस्मादवैदिकं धर्मं प्रवर्तयसि मां द्विज !।
तस्मादवैदिकं लोकं निरयं गच्छ दारुणम् ॥१८५

तद्वाक्यादेव देवस्य शाण्डिल्योऽभूद्भयाकुलः।
स्तुवन् प्राह जगन्नाथं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥१८६

त्राहि त्राहीहि लोकेश ! मां विभो ! सापराधिनम्।
ततः स कृपया विष्णुर्भगवान् भूतभावनः ॥१८७

दिव्यवर्षशतं विप्र ! भुक्त्वा नरकयातनाम्।
उत्पत्स्यसे भृगोवंशे जमदग्निरितीरितः ॥१८८

तत्राऽऽराध्य पुनर्मां तु वैदिकेनैव धर्मतः।
गच्छ तस्मिन् मुनिश्रेष्ठ ! मम लोकं सुनिर्मलम् ॥१८९

इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत।
शाण्डिल्यो निरयं प्राप्य पुनरुत्पद्य भूतले ॥१९०

वेदोक्तविधिना विष्णुमर्चयित्वा सनातनम्।
विशुद्धभावात् सम्प्राप्य तद्धाम परमं हरेः ॥१९१

तस्माद्वैदिकं धर्मं दूरतः परिवर्जयेत् ।
वैदिकेनैव विधिना भक्त्या सम्पूजयेद्धरिम् ॥१९२

श्रौतेन विधिना चक्रं धृत्वा वै बाहुमूलयोः ।
धृतोर्ध्वपुण्ड्रः शुद्धात्मा विधिनैवार्चयेद्धरिम ॥१९३

कर्मणा मनसा वाचा न प्रमाद्येत् सनातनात् ।
न प्रमाद्येत्परं धर्मात् श्रुतिस्मृत्युक्तगौरवात् ॥१९४

सुशीलन्तु परं धर्मं नारीणां नृपसत्तम ! ।
शीलभङ्गेन नारीणां यमलोकः सुदारुणः ॥१९५

मृते जीवति वा पत्यौ या नान्यमुपगच्छति ।
सैव कीर्ति मवाप्नोति मोदते रमया सह ॥१९६

पतिं या नातिचरति मनोवाक्कायकर्मभिः ।
सा भर्तृलोकमाप्नोति यथैवारुन्धती तथा ॥१९७

आर्ताऽर्ते मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा ।
मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता ॥१९८

या स्त्री मृतं परिष्वज्य दग्धा चेद्धव्यवाहने ।
सा भर्तृलोकमाप्नोति हरिणा कमला यथा ॥१९९

ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कृतघ्नं वाऽपि मानवम् ।
यमादाय मृता नारी तं भर्त्तारं पुनाति हि ॥२००

साध्वीनामिह नारीणामग्निप्रपतनादृते ।
नान्यो धर्मोऽस्ति विज्ञेयो मृते भर्तरि कुत्रचित् ॥२०१

वैष्णवं पतिमादाय या दग्धा हव्यवाहने ।
सा वैष्णवपदं याति यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥२०२

मृते भर्तरि या नारी भवेद्यदि रजस्वला ।
चिताग्निं संग्रहे तावत् स्नात्वा तस्मिन् प्रवेशयेत् ॥२०३
गर्भिणी नानुगन्तव्या मृतं भर्त्तारमव्यया ।
ब्रह्मचर्यव्रतं कुर्याद्यावज्जीवमतन्द्रिता ॥२०४
केशरञ्जनताम्बूलगन्धपुष्पादिसेवनम् ।
भूषितं रङ्गवस्त्रञ्च कांस्यपात्रे च भोजनम् ॥२०५
द्विवारं भोजनञ्चाक्ष्णोरञ्जनं वर्जयेत्सदा ।
स्नात्वा शुक्लाम्बरधरा जितक्रोधा जितेन्द्रिया ॥२०६
न कल्क कुहका साध्वी तन्द्रालस्य विवर्जिता ।
सुनिर्मला शुभाचारा नित्यं सम्पूजयेद्धरिम् ॥२०७
क्षितिशायी भवेद्रात्रौ शुचौ देशे कुशोत्तरे ।
ध्यानयोगपरा नित्यं सतां सङ्गे व्यवस्थिता ॥२०८
तपश्चरणसंयुक्ता यावज्जीवं समाचरेत् ।
तावत्तिष्ठेन्निराहारा भवेद्यदि रजस्वला ॥२०९
सभर्तृका सती वाऽपि पाणिपूरान्नभोजनम् ।
एकवारं समश्नीयाद्रजसा च परिप्लुता ॥२१०
एवं सुनियताहारा सम्यग्व्रतपरायणा ।
भर्त्रा सह समाप्नोति वैकुण्ठपदमव्ययम् ॥२११
दग्धव्या साऽग्निहोत्रेण भर्त्तुः पूर्वं मृता तु या ।
स्वांशमग्निं समादाय भर्त्ता पूर्ववदाचरेत् ॥२१२
कृत्वा कुशमयीं पत्नीं यावज्जीवमतन्द्रितः ।
जुहुयादग्निहोत्रं तु पञ्चयज्ञादिकं तथा ॥२१३

अथ च प्रव्रजेद्विद्वान् कन्यां वाऽपि समुद्वहेत्।
प्रव्रज्यामपि कुर्वीत कर्म वेदोदितं महत् ॥२१४
आत्मन्यग्निं समारोप्य जुहुयादात्मवान् सदा।
मनसा वा प्रकुर्वीत नित्यनैमित्तिकक्रियाः ॥२१५
गृहस्थो वा वनस्थो वा यतिर्वाऽपि भवेद् द्विजः।
अनाश्रमी न तिष्ठेत यावज्जीवं द्विजोत्तमः ॥२१६
वर्णाश्रमेषु सर्वेषां पूजनीयो जनार्दनः।
न व्यापकेन मन्त्रेण सदैव च महीपते ॥२१७
व्यापकानां च सर्वेषां ज्यायानष्टाक्षरो मनुः।
अष्टाक्षरस्य जप्ता तु साक्षान्नारायणः स्वयम् ॥२१८
सन्यासं च समुद्दश्च सर्षिश्छन्दोऽधि दैवतम्।
न (स) दीक्षा विधि न(स)ध्यानं सार्थं मन्त्रमुदाहृतम् ॥२१९
स्नात्वा शुद्धः प्रसन्नात्मा कृतकृत्यो जनार्दनम्।
मनसाऽप्यर्चयित्वा वा जपेन्मन्त्रं सदा बुधः ॥२२०
दानप्रतिग्रहौ यागं स्वाध्यायं पितृतर्पणम्।
पितृक्रियाष्टाक्षरस्य जप्ता कुर्यादतन्द्रितः ॥२२१
धृतोर्ध्व पुण्ड्रदेहश्च चक्राङ्कितभुजस्तथा।
अष्टाक्षरं जपन्नित्यं पुनाति भुवनत्रयम् ॥२२२
जपेद्भोगतया मन्त्रं सततं वैष्णवोत्तमः।
न साधनतया जप्यं कर्तव्यं विष्णुतत्परैः ॥२२३
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरन्तु वा।
त्रिसन्ध्यासु जपेन्मन्त्रं तदर्थमनुचिन्तयन् ॥२२४

उपोष्य पूर्वदिवसे नद्यां स्नात्वा विधानतः ।
आचार्यं संश्रयेत् पूर्वं महाभागवतं द्विजः ॥२२५
आचार्यो विष्णुमभ्यर्च्य पवित्रं चापि पूजयेत् ।
पुरतो वासुदेवस्य इध्माधानान्तमाचरेत् ॥२२६
प्रजपेदस्य सूक्तेन पवित्रन्तेवततेत्यृचा ।
पवमानस्य आद्येन ऋग्भिश्चतसृभिः क्रमात् ॥२२७
आज्यं हुत्वा ततश्चक्रं तदग्नौ प्रतपेद् गुरुः ।
चरणं पवित्रमिति यजुषा तच्चक्रेणाङ्कयेद्भुजम् ॥२२८
वामं सम्प्रतपेत्पश्चात्ताञ्च जन्येन देशिकः ॥२२९
अग्निर्मन्वेति यजुषा तद्धोमाग्नौ प्रतप्य वै ।
ततस्तु पार्थिवैः ऋग्भिर्हुत्वा पुण्ड्राणि धारयेत् ॥२३०
अतो देवेति सूक्तेन विष्णोर्नुक्रमणेन च ।
पूजयेद्द्वादशभिर्वै केशवादीननुक्रमात् ॥२३१
कुशग्रन्थिषु संपूज्य जुहुयात्ताभिरेव तु ।
हुत्वाऽथ चरुणा सम्यक् मृदा शुभ्रेण देशिकः ॥२३२
ललाटादिषु चाङ्गेषु ऋग्भिस्ताभिः क्रमेण वै ।
नामभिः केशवाद्यैश्च सच्छिद्राण्येव धारयेत् ॥२३३
श्रिये जात इति ऋचा कुङ्कुमङ्केषु धारयेत् ।
परोमात्रेति सूक्तेन उपस्थाय जनार्दनम् ॥२३४
होमशेषं समाप्याथ मूर्त्युद्वापनमाचरेत् ।
एवं पुण्ड्रक्रियां कृत्वा नाम दद्यात्ततः परम् ॥२३५

प्रवः पान्तमिति सूक्तेन नाममूर्तिं समर्चयेत्।
गवाज्यं प्रत्यृचं हुत्वा नाम दद्याच्च वैष्णवः ॥२३६

अभिप्रियाणीति सूक्तेनोपस्थाय जनार्दनम्।
प्रदक्षिण नमस्कारौ कृत्वा शेषं समाचरेत् ॥२३७

मन्त्रदीक्षा विधानन्तु श्रौतं मुनिभिरीरितम्।
नवाहिता भवेद्दीक्षा न पृथक्त्वेन वक्ष्यते ॥२३८

अदीक्षितो भवेद्यस्तु मन्त्रं वैष्णवमुत्तमम्।
अर्चनं वाऽपि कुरुते न संसिद्धिमवाप्नुयात् ॥२३९

नादीक्षितः प्रकुर्वीत विष्णोराराधनक्रियाम्।
श्रौतं वा यदि वा स्मार्त्तं दिव्यागममथापि वा ॥२४०

तस्मादुक्तप्रकारेण दीक्षितो हरिमर्च्चयेत्।
पूर्वेन्द्युरुपोष्य गुरुणा नद्यां स्नात्वा कृतक्रियः ॥२४१

आचार्यः पूजयेद्विष्णुं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
ईशान्यादि चतुर्दिक्षु संस्थाप्य कलशान् शुभान् ॥२४२

तेषु गव्यानि निक्षिप्य चतुर्मूर्तीन् समर्चयेत्।
वाराहं नारसिंहञ्च वामनं कृष्णमेव च ॥२४३

तद्विष्णोरिति च द्वाभ्यां वाराहं पूजयेत्ततः।
प्रतद्विष्णु इति ऋचा नारसिंहमनामयम् ॥२४४

न ते विष्णो रित्यनेन वामनं पूजयेत्तथा।
वषट्तेविष्णव इति कृष्णं संपूजयेत् द्विजः ॥२४५

संपूज्याऽऽवरणं सर्वं गन्धपुष्पैर्विधानतः।
प्रतिष्ठाप्य ततो वह्निमिध्माधानान्तमाचरेत्।
चतुर्भिर्वैष्णवैः सूक्तैः पायसं मधुमिश्रितम् ॥२४६

हुत्वाऽऽज्यं जुहुयात्पश्चाच्छ्रीसूक्तेन समाहितः ।
अग्निमीळ इत्यनुवाकेन सावित्र्या वैष्णवेन च ॥२४७
सर्वैश्च वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम् ।
हुत्वा वेदसमाप्तिञ्च जुहुयाद्देशिकोत्तमः ॥२४८
ततो भद्रासने शिष्यमुपविश्याभिषेचयेत् ।
चतुर्भिर्वैष्णवैर्मन्त्रैः सूक्तैस्तत्कलशोदकैः ॥२४९
ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः शिष्यमभिषिच्याऽथ देशिकः ।
कौपीनं कटिसूत्रञ्च तथा वस्त्रञ्च धारयेत् ॥२५०
ऊर्ध्वपुण्ड्राणि पद्माक्ष तुलसीमालिकेऽपि च ।
कुशान्तरे समासीनमाचान्तं विनयान्वितम् ॥२५१
अध्यापयेद्वैष्णवानि सूक्तानि विमलानि च ।
व्यापकान् वैष्णवान् मन्त्राननन्यांश्चापि विधानतः ॥२५२
तदर्थन्यासमुद्रादि सर्षिश्छन्दोऽधिदैवतम् ।
तस्मिन्निवेश्य सद्वृत्तौ शासयेच्छासनाच्छ्रुतेः ॥२५३
शासितो गुरुणा शिष्यः सद्वृत्तौ सत्पथे स्थितः ।
अर्चयेत्परमैकान्त्य सिद्धये हरिमव्ययम् ॥२५४
आचार्यात्समनु प्राप्तं विग्रहं सुमनोहरम् ।
लब्ध्वाऽथ विधिना विष्णोः पूजयेत्तदनुज्ञया ॥२५५
पूर्वऽह्नि पूर्ववत्पूज्यः श्रौतेनैवोपचारकैः ।
ताभिरेव च हुत्वाऽथ ऋग्भिराज्यं तथाक्रमात् ॥२५६
शय्यासूक्तान्तमाज्येन हुत्वाऽग्निं वैष्णवोत्तमः ।
अध्यापयित्वा तान् मन्त्रान् वैदिकान् वैदिकोत्तमः ॥२५७

पूजाविधानं त्रिविधं तस्मै होमान्तमाविशेत् ।
स्नानतर्पणहोमार्चा जप्याद्या विविधाः क्रियाः ॥२५८
वैशिष्येण गुरोर्ज्ञात्वा शक्त्या सर्वं समाचरेत् ।
परमापद्गतो वाऽपि न भुञ्जीत हरेर्दिने ॥२५९
न तिर्यग्धारयेत्पुण्ड्रं नान्यं देवं प्रपूजयेत् ।
वैष्णवः पुरुषो यस्तु शिव ब्रह्मादिदैवतान् ॥२६०
प्रणमेतार्चयेद्वाऽपि विष्ठायां जायते क्रिमिः ।
रजस्तमोऽभिभूतानां देवतानां निरीक्षणात् ॥२६१
पूजनाद्वन्दनाद्वाऽपि वैष्णवो यात्यधोगतिम् ।
शुद्धसत्वमयो विष्णुः पूजनीयो जगत्पतिः ॥२६२
अनर्चनीया रुद्राद्याः विष्णोरावरणं विना ।
यस्तु स्वात्मेश्वरं विष्णुमतीत्यान्यं यजेत हि ॥२६३
स्वात्मेश्वराय हरये च्यवते नात्रसंशयः ।
यज्ञाध्ययनकाले तु नमस्यानि वषट्कृता ॥२६४
तानि वै यज्ञियान्यत्र यज्ञो वै विष्णुरव्ययः ।
तस्यैवाऽवरणं प्रोक्तं यज्ञाध्ययनकर्मसु ॥२६५
स्तुवन्ति वेदास्तस्यात्र गुणरूपविभूतयः ।
तस्मादावरणं हित्वा ये यजन्ति परान् सुरान् ॥२६६
ते यान्ति निरयं घोरं कल्पकोटिशतानि वै ।
रुद्रः काली गणेशश्च कूष्माण्डा भैरवादयः ॥२६७
मद्यमांसाशिनश्चान्ये तामसाः परिकीर्तिताः ।
शुद्रानामपि देवानां या स्वतन्त्राऽर्चनक्रिया ॥२६८

सा दुर्गतिं नयत्येव वैष्णवं वीतकल्मषम्।
अर्चयित्वा जगन्नाथं वैष्णवः पुरुषोत्तमम्॥२६९

तदावरणरूपेण यजेद्देवान् समन्ततः।
अन्यथा नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम्॥२७०

वासुदेवं जगन्नाथमर्चयित्वैव मानवः।
प्राप्नोति महदैश्वर्यं ब्रह्मेन्द्रत्वादिकं क्षणात्॥२७१

मनसाऽपि जलेनापि जगन्नाथं जनार्दनम्।
सम्प्राप्नोत्यमलां सिद्धिं जगत्सर्वं समश्चितम्॥२७२

हृषीकेशं त्रयीनाथं लक्ष्मीशं सर्वदं हरिम्।
तं विना पुण्डरीकाक्षं कोऽर्चयेदितरान् सुरान्॥२७३

नारायणं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते।
स्वपतिं नृपतिं हित्वा यथा स्त्री पुरुषाधमम्॥२७४

विष्णोर्निवेदितं हव्यं देवेभ्यो जुहुयात्तथा।
पितृभ्यश्चैव तद्दद्यात्सर्वमानन्त्यमश्नुते॥२७५

निर्माल्यमितरेषां तु यदन्नाद्यं दिवौकसाम्।
उपभुञ्ज्य नरो याति ब्रह्महत्यां न संशयः॥२७६

नैवेद्य भोजनं विष्णो स्तत्पादाम्बु निषेवणम्।
तुलसी खादनं नृणां पापिनामपिमुक्तिदम्॥२७७

एकादश्युपवासश्च शङ्खचक्रादिधारणम्।
तुलस्या पूजनं विष्णो स्त्रितयं वैष्णवं स्मृतम्॥२७८

अवैष्णवः स्याद्यो विप्रो बहुशास्त्रश्रुतोऽपि वा।
सजीवन्नेव चण्डालो मृतः श्वानोऽभिजायते॥२७९

क्रतुसाहस्रिणं वाऽपि लोके विप्रमवैष्णवम् ।
चण्डालमिव नेक्षेत वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥२८०
भगवद्भक्तिदीप्ताग्निदग्धदुर्जातिकल्मषः ।
चण्डालोऽपि बुधैः श्लाघ्यो न तु पूज्यो ह्यवैष्णवः ॥२८१
शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरहितं ब्राह्मणाधमम् ।
पूजयिष्यति यः श्राद्धे सर्वकर्मास्य निष्फलम् ॥२८२
तिर्यक्पुण्ड्रधरं विप्रं यः श्राद्धे भोजयिष्यति ।
पितरस्तस्य यान्त्येव कालसूत्रं सुदारुणम् ॥२८३
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं चक्राङ्कितभुजं तथा ।
पूजयिष्यति यः श्राद्धे गयाश्राद्धायुतं लभेत् ॥२८४
शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्राद्यैरन्वितं वैष्णवं द्विजम् ।
भक्त्या सम्पूजयेद्यस्तु दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥२८५
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
यास्यन्ति पितरस्तस्य विष्णुलोकं सुनिर्मलम् ॥२८६
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं तप्तचक्राङ्कितांसकम् ।
श्राद्धे सम्पूजयेद्यस्तु गयाश्राद्धायुतं लभेत् ॥२८७
तप्तचक्रेण विधिना बाहुमूलेन लाञ्छितः ।
पुनाति सकलं लोकं नारायण इवाघभित् ॥२८८
अविद्यो वा सविद्यो वा शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रधृत् ।
ब्राह्मणः सर्वलोकेषु पूज्यमानो हरिर्यथा ॥२८९
दुराशी वा दुराचारी शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रधृत् ।
नृणां हन्ति समस्ताघं तमः सूर्योदये यथा ॥२९०

चक्राङ्कितस्य विप्रस्य पादप्रक्षालितं जलम्।
पुनाति सकलं लोकं यथा त्रिपथगानदी ॥२९१

तिस्रः कोट्यर्द्ध कोटी च तीर्थानि भुवनत्रये।
चक्राङ्कितस्य विप्रस्य पादे तिष्ठन्त्यसंशयः ॥२९२

चक्राङ्कितस्य विप्रस्य पादप्रक्षालितं जलम्।
पीत्वा पातकसाहस्रैर्मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥२९३

श्राद्धे दाने व्रते यज्ञे विवाहे चोपनायने।
चक्राङ्कितं विप्रमेव पूजयेदितरान्न तु ॥२९४

विष्णुचक्राङ्कितो विप्रो भुञ्जानोऽपि यतस्ततः।
न लिप्यते स पापेन तमसैव प्रभाकरः ॥२९५

चक्राङ्कित भुजो विप्रः पङ्क्ति मध्ये तु भुञ्जते।
पुनाति सकलां पङ्क्तिं गङ्गे वोत्तरवाहिनी ॥२९६

चक्राङ्कित भुजं विप्रं यो भूम्यामभिवादयेत्।
ललाटे पांशु संख्यानि विष्णुलोके महीयते ॥२९७

ब्राह्मणः क्षत्त्रियो वैश्यः शूद्रो वा वैष्णवः पुमान्।
अर्चयित्वेतरान् देवान् निरयं यान्त्यसंशयम् ॥२९८

विष्णोरावरणं हित्वा पूजयित्वेतरान् सुरान्।
वैष्णवः पुरुषो याति कालसूत्रमधोमुखः ॥२९९

महापापी महापापैरन्वितो यदि वैष्णवः।
मन्वादि धर्मशास्त्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥३००

प्रायश्चित्तविशेषं तु पश्चात् कुर्वीत वैष्णवः।
वैयासिकीं वैष्णवीं च पवित्रीञ्च समाचरेत् ॥३०१

वैष्णवानान्तु विप्राणां पश्चात्पादजलं पिबेत्।
वृत्तौ न परिपूर्णोऽथ कर्मस्वधिकृतो भवेत् ॥३०२
मन्त्ररत्नार्थविच्छान्त नवेज्याकर्मसंयुतः।
द्वादशी नियतो विप्रः स एव पुरुषोत्तमः ॥३०३
किमत्र बहुनोक्तेन सारं वक्ष्यामि ते नृप !।
एकादश्युपवासश्च शङ्खचक्रादिधारणम् ॥३०४
तदीयानां पूजनञ्च वैष्णवं त्रितयं स्मृतम्।
पुण्याद्विष्णुदिनादन्यन्नोपोष्यं वैष्णवैः सदा ॥३०५
तथा भागवतादन्यो नार्चनीयो हि कुत्रचित्।
भगवन्तमनुद्दिश्य न दद्या न यजेत् कचित् ॥३०६
नावैष्णवान्नं भुञ्जीत दद्यान्ना वैष्णवाय च।
नार्चयेदितरान् देवान्न तिर्यग्धारयेत्तथा ॥३०७
एकादश्यान्न भुञ्जीत वसेन्नावैष्णवैः सह।
अष्टाक्षरस्य जप्तारं शङ्खचक्रधरं द्विजः ॥३०८
अवमत्य विमूढात्मा सद्यश्चण्डालतां व्रजेत्।
वैष्णवं ब्राह्मणं गाञ्च तुलसीं द्वादशीं तथा ॥३०९
अनर्चयित्वा मूढात्मा निरयं दुर्गतिं व्रजेत्।
विष्णोः प्रधानतनवो विप्रा गावश्च वैष्णवाः ॥३१०
शक्त्या संपूज्य तानेव याति विष्णोः परं पदम्।
एकादश्युपवासश्च द्वादश्यां विप्रपूजनं ॥३११
नित्यमामलकस्नानं पापिनामपि मुक्तिदम्।
पक्षे पक्षे हरि दिने चक्राङ्कितभुजे नृप ! ॥३१२

संपूज्यमाने विप्रेन्द्रे हरिस्तेषां प्रसीदति।
अभावे वैष्णवे विप्रे संप्राप्ते हरि वासरे ॥३१३
तद्वत्सम्पूजयेद् गांव तुलसीं वाऽपि वैष्णवः।
अग्निहोत्रन्तु जुहुयात्सायं प्रातर्द्विजोत्तमः ॥३१४
पञ्चयज्ञांश्च कुर्वीत वैष्णवान् विष्णुमर्च्चयेत्।
तदर्पितं वै भुञ्जीत पिबेत्तत्पादवारि वै ॥३१५
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि।
पूजयेद्वैष्णवं विप्रं द्वादश्यामपि वैष्णवः ॥३१६
विष्णोः प्रसाद तुलसीं तीर्थं वाऽपि द्विजोत्तमः।
उपवासदिने वाऽपि प्राशयेदविचारयन् ॥३१७
उपवासदिने यस्तु तीर्थं वा तुलसीदलम् ॥३१८
न प्राशयेद्विमूढात्मा रौरवं नरकं व्रजेत्।
हर्य्यर्पितन्तु यच्चान्नं तीर्थं वा पितृकर्मणि ॥३१९
दद्यात् पितॄणां यद्भक्ष्यं गयाश्राद्धायुतं लभेत्।
हरेर्निवेदितं भक्त्या यो दद्याच्छ्राद्धकर्मणि ॥३२०
पितरस्तस्य यान्त्येव तद्विष्णोः परमं पदम्।
तीर्थं वा तुलसीपत्रं यो दद्यात्पितृदैवतम् ॥३२१
आकल्पकोटि पितरः परितृप्ता न संशयः।
यः श्राद्धकाले मूढात्मा पितॄणाञ्च दिवोकसाम् ॥३२२
न ददाति हरेर्भुक्तं तस्य वै नारकी गतिः।
हर्य्यर्पितन्तु यच्चान्नं यच्च पादोदकं हरेः ॥३२३

तुलसीं वा पितृणाञ्च दत्त्वा श्राद्धायुतं लभेत् ।
सर्वं यज्ञमयं विष्णुं मत्वा देवं जनार्दनम् ।
आमन्त्र्य वैष्णवान् विप्रान् कुर्याच्छ्राद्धमतन्द्रितः ॥३२४
प्रत्यब्दं पार्वणश्राद्धं कुर्यात्पित्रोर्मृतेऽहनि ।
अन्यथा वैष्णवो याति ब्रह्महत्यां न संशयः ॥३२५
अमायां कृष्णपक्षे च पित्र्ये वाऽभ्युदये तथा ।
कुर्यात् श्राद्धं विधानेन विष्णोराज्ञा मनुस्मरन् ॥३२६
न कुर्यात् यो विधानेन पितृयज्ञं नराधमः ॥३२७
आज्ञातिक्रमणाद्विष्णोः पतत्येव न संशयः ।
शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिचिह्नैः प्रियतमैर्हरेः ॥३२८
अन्वितान् ब्राह्मणानेव पूजयेत्सर्वकर्मसु ।
अश्राद्धिनोऽन्ययज्ञस्य कर्मत्यागिन एव च ॥३२९
वेदस्याप्यनधीतस्य संसर्गं दूरतस्त्यजेत् ।
पित्रोः श्राद्धं प्रकुर्वीत नैकादश्यां द्विजोत्तमः ॥३३०
द्वादश्यान्तत्प्रकुर्वीत नोपवास दिने क्वचित् ।
विष्णोर्जन्मदिने वाऽपि गुरूणाञ्च मृतेऽहनि ॥३३१
वैष्णवेष्टिं प्रकुर्वीत वेदिकं वैष्णवोत्तमः ।
अगम्यागमनं हिंसा मभक्ष्याणाञ्च भक्षणम् ॥३३२
असत्य कथनं स्तेयं मनसाऽपि विवर्जयेत् ।
तप्तचक्राङ्कनं विष्णोरेकादश्यामुपोषणम् ॥३३३
धृतोर्ध्वं पुण्ड्रदेहत्वं तन्मंत्राणां परिग्रहः ।
नित्यभामङ्गलकस्नानं देवतान्तरवर्जनम् ।
ध्यानं मन्त्रं जपो होमस्तुलस्याः पूजनं हरेः ॥३३४

प्रसादस्तीर्थसेवा च तदीयानाञ्च पूजनम्।
उपायान्तर सन्त्यागस्तथा मन्त्रार्थ चिन्तनम् ॥३३५
श्रवणं कीर्तनं सेवा सत्कृत्यकरणं तथा।
असत्कृत्य परित्यागो विषयान्तरवर्जनम् ॥३३६
दानं दम स्तपः शौच मार्जवं क्षान्तिरेव च।
आनृशंस्यं सतां सङ्गः पारमैकान्त्यहेतवः ॥३३७
वैष्णवः परमैकान्ती नेतरो वैष्णवः स्मृतः।
नावैष्णवो व्रजेन्मुक्तिं बहुशास्त्रश्रुतोऽपि वा ॥३३८
वैष्णवो वर्णबाह्योऽपि याति विष्णोः परं पदम्।
एतत्ते कथितं राजन् पारमैकान्त्यसिद्धिदम् ॥३३९
वैशिष्ट्यं वैष्णवं धर्मशास्त्रं वेदोपबृंहितम्।
विष्वक्सेनाय धात्रे च सम्प्रोक्तं परमात्मना ॥३४०
विष्वक्सेनाय सम्प्रोक्तमेतद्विघनसे पुरा।
भृगोः प्रोक्तं विघनसा भृगुणा च महर्षिणा ॥३४१
भृगुणा च (वैवस्वत) मनोः प्रोक्तं मनुना च ममेरितम्।
मनुस्तु धर्मशास्त्रन्तु सामान्येनोक्तवान् स्वयम् ॥३४२
तदेव हि मया राजन्! वैशिष्ट्येण तवेरितम्।
विशिष्टं परमं धर्मशास्त्रं वैष्णवमुत्तमम् ॥३४३
य इदं शृणुयाद्भक्त्या कथयेद्वा समाहितः।
पारमैकान्त्य संसिद्धिं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥३४४
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम्।
यस्त्विदं शृणुयाद्भक्त्या नित्यं विष्णोश्च सन्निधौ ॥३४५

अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयः।
हारीतमेतच्छास्त्रन्तु परमां धर्म्मसंहिताम्॥३४६
आलोक्य पूजयन् विष्णुं पारमैकान्त्यमश्नुते।
एतच्छ्रुत्वाम्बरीषस्तु हारीतोक्ति नृपोत्तमः॥३४६
ववन्दे परया भक्त्या तमृषिं वैष्णवोत्तमः।
त्वमेव परमोधर्म्मस्त्वमेव परमं तपः॥३४७
त्वदङ्घ्रियुगलं प्राप्य सर्वसिद्धिमवाप्नुयाम्।
महामुनिमिति स्तुत्वा राजर्षिः स महातपाः॥३४७
प्राप्तवान् परमैकान्त्यं तत्प्रसादात्सुसिद्धिदम्।
वैशिष्ट्यं पारमैकान्त्य मेतच्छास्त्रं ममाव्ययम्॥३४८
भारद्वाजादयः सर्वे नृपाश्च जनकादयः।
योगिनः सनकाद्याश्च नारदाद्याः सुरर्षयः॥३४६
वसि(शि)ष्ठाद्या वैष्णवाश्च विष्वक्सेनादयः सुराः।
एतच्छास्त्रानुसारेण पूजयामासुरच्युतम्॥३५०
परमं वैदिकं शास्त्रमेतद्वैष्णवमुत्तमम्।
ज्ञात्वैव परमैकान्ती पूजयेद्विष्णुमीश्वरम्॥३५१

इति वृद्धहारीतस्मृतौ विशिष्टधर्म्मशास्त्रे वृत्यधिकारो नाम
अष्टमोऽध्यायः॥

समाप्ताचेयं वृद्धहारीतस्मृतिः।

....

समाप्तश्चायं धर्मशास्त्रस्य (स्मृतिसन्दर्भस्य) द्वितीयोभागः।

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु।